KGS IAS

आधुनिक भारत का इतिहास





KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform

KGS IAS

KHAN GLOBAL STUDIES

Most Trusted Learning Platform



GET IN ON Google Play

Download on the App Store

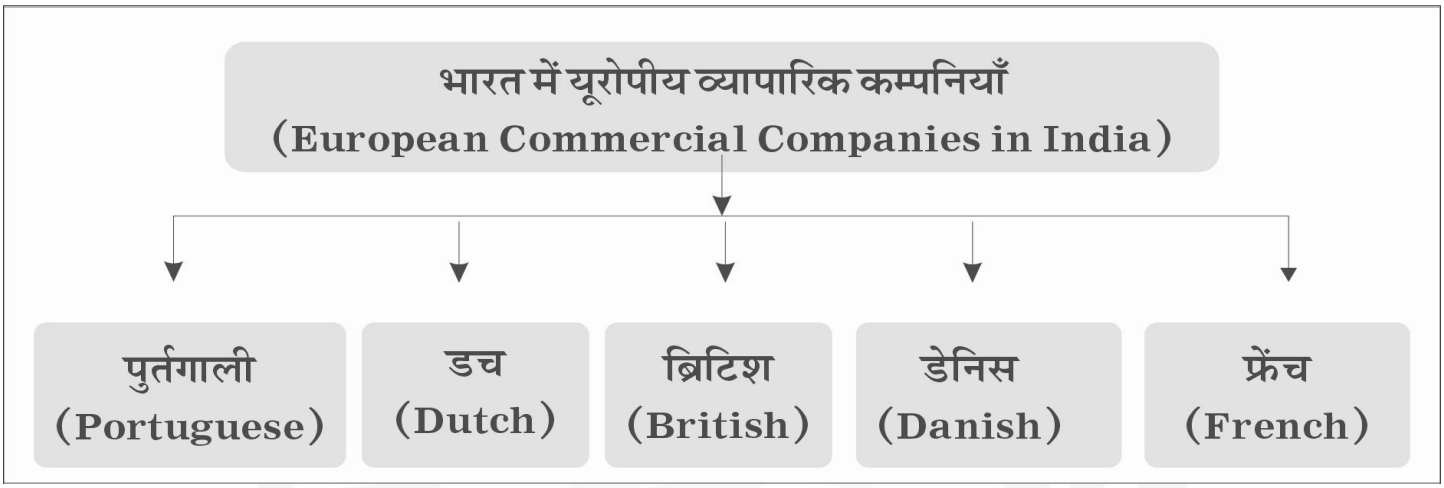
Download the Khan Global Studies App

विषय सूची

यूरोपीय कंपनियों का आगमन तथा भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना तथा विस्तार	**1**
भारत में यूरोपीय कम्पनियों का आगमन	1
डच	2
आगमन का उद्देश्य	2
प्लासी का युद्ध (23 जून, 1757 ई.)	5
भारतीय राज्यों पर ब्रिटिश विजय	**5**
बक्सर का युद्ध (22 अक्टूबर, 1764 ई.)	6
अवध के साथ समझौता	7
मैसूर विजय	8
मराठा विजय	9
सिंध विजय (1843 ई.)	10
पंजाब विजय (1849 ई.)	11
रिंगफेस या घेरे या मध्य राज्य की नीति (1765-1813 ई.)	12
भारतीय रियासतों के प्रति ब्रिटिश नीति	**12**
वैलेजली की सहायक संधि	13
डलहौजी की विलय नीति	14
उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती देशों के साथ संबंध	16
न्यायिक सेवा	17
स्थानीय प्रशासन	18
ब्रिटिश शासन के दौरान संवैधानिक विकास (1773-1935 ई.)	**19**
अगस्त घोषणा	21
1919 का अधिनियम	22
गवर्नर-जनरल और भारत के वायसराय	22
ब्रिटिश पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था	24
भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद	24
उपनिवेशवाद का प्रथम चरण: वाणिज्यिक चरण (1757-1813 ई.)	24
ब्रिटिश आर्थिक नीतियाँ	**24**
स्थायी बंदोबस्त (1793)	26
रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त (1820)	27
महालवाड़ी बंदोबस्त (1822)	28
कृषि के वाणिज्यीकरण के कारण	28
आर्थिक निकास	31
शिक्षा नीति के विकास का प्रारंभिक इतिहास	32
ब्रिटिश भारत में औपनिवेशिक नीतियाँ	**32**
चार्ल्स वुड घोषणा-पत्र 1854	33
हंटर शिक्षा आयोग (1882-83)	34
मौलिक शिक्षा या वर्धा योजना	35
अंग्रेजों की शिक्षा नीति का मूल्यांकन	36
रेलवे का विकास	41
राजनैतिक कारण	48
प्रशासनिक कारण	48
आर्थिक कारण	48
सामाजिक एवं धार्मिक कारण	48
ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह	**48**
सैनिक कारण	49
विद्रोह का प्रभाव	51
जनजातीय विद्रोह के कारण	54
ताना भगत आंदोलन	56
जनजातीय विद्रोहों की असफलता के कारण	57
19वीं सदी के किसान आंदोलन	58
20वीं सदी के किसान आंदोलन	60
1930-40 के दशक के किसान आंदोलन	62
विभिन्न प्रांतों में किसानों की गतिविधियाँ	63
भारतीय पुनर्जागरण: सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन	68
सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन के लिए उत्तरदायी कारण	68
19वीं सदी के सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलन	**68**
राजा राममोहन राय एवं ब्रह्म समाज	69
यंग बंगाल आंदोलन	70
इस्लाम धर्म सुधार आंदोलन	72
पारसी धर्म-सुधार आंदोलन	73
सिख धर्म सुधार आंदोलन	73
सुधार आंदोलन की उपलब्धियाँ एवं सीमाएँ	75
आधुनिक भारत में महिला सुधार आंदोलन	**78**
असहयोग आंदोलन एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन	79
श्रमिक वर्ग आंदोलन में महिलाएँ	80
क्रांतिकारी और कम्युनिस्ट आंदोलन में महिलाएँ	80
भारत छोड़ो आंदोलन में महिलाएँ	80
महिला संगठन	80
आधुनिक भारत में निम्न जातीय आंदोलन	**83**
भारत में निम्न-जाति आंदोलन के कारण	83
सत्य शोधक समाज	84
समीक्षा	86
लिटन, रिपन व कर्जन की नीतियों के प्रति प्रतिक्रिया	87
आर्थिक शोषण की नीति	87
भारत का राजनीतिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक एकीकरण	87
19वीं सदी में भारतीय राष्ट्रवाद का विकास	**87**
तत्कालीन विश्वव्यापी घटनाओं का प्रभाव	88
भारत के अतीत का पुन: उत्थान एवं आत्मगौरव का विकास	88
सुधार आंदोलनों द्वारा राष्ट्रवादी भावना का विकास	88
पाश्चात्य चिंतन तथा शिक्षा का भारतीय जनता पर प्रभाव	88
मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों का विकास	89

कांग्रेस की स्थापना के पूर्व प्रमुख राजनीतिक संगठन	90
मद्रास में स्थापित राजनीतिक संस्थाएँ	90
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना एवं विकास	**90**
सुरक्षा वाल्व सिद्धांत	91
आधुनिक दृष्टिकोण	91
नरमपंथी चरण (1885-1905)	91
उग्रपंथी चरण (1905-1915)	93
उग्रवादी दल के उदय के कारण	93
प्रशासनिक सुविधा के दृष्टिकोण से	98
फूट डालो और राज करो की नीति	98
बंगाल विभाजन एवं स्वदेशी आंदोलन	**98**
बंगालियों को अल्पसंख्यक बनाना	99
स्वदेशी आंदोलन का प्रारंभ	99
स्वदेशी आंदोलन का अंत	99
क्रांतिकारी राष्ट्रवाद	**101**
गदर आंदोलन	102
आरंभिक गतिविधियाँ	103
संगठन, योजना एवं कार्यक्रम	103
गदर आंदोलन:1914 की घटनाएँ तथा गदर का अंत	103
गदर आंदोलन की उपलब्धियाँ	103
कमजोरियाँ/सीमाएँ	103
पहली धारा (पंजाब एवं यूपी आदि में केंद्रित गतिविधियाँ)	104
द्वितीय धारा (बंगाल में केंद्रित)	104
क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का मूल्यांकन	105
होमरूल आंदोलन	**107**
तिलक का होमरूल आंदोलन	107
राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गाँधी की भूमिका	**109**
दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी के प्रयोग (1894-1906)	110
दक्षिण अफ्रीका में गाँधी जी के अनुभव	111
गाँधी जी की सत्याग्रह की तकनीक	111
चंपारण सत्याग्रह 1917 (प्रथम सविनय अवज्ञा)	112
अहमदाबाद मिल हड़ताल (फरवरी-1918) (प्रथम भूख हड़ताल)	112
खेड़ा सत्याग्रह (अप्रैल-1918)	112
रॉलेट एक्ट मार्च, 1919	112
जलियांवाला बाग हत्याकांड 13 अप्रैल, 1919	112
खिलाफत का मुद्दा	114
राष्ट्रीय आंदोलन में 1920 का दशक	**114**
असहयोग आंदोलन (अगस्त, 1920)	115
स्वराज दल	118
वामपंथी आंदोलन	119
भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी	119
कांग्रेस समाजवादी दल	120
साइमन कमीशन	120
राष्ट्रीय आंदोलन में 1930 का दशक	**124**
अधिनियम के पारित होने की परिस्थितियाँ	126
अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ	127
1935 के अधिनियम का मूल्यांकन	128
नागरिक स्वतंत्रता	129
कृषि सुधार	130
मजूदरों के प्रति नजरिया	130
समाज कल्याण संबंधी सुधार	130
मूल्यांकन	131
द्वितीय विश्व युद्ध और राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया	132
राष्ट्रीय आंदोलन में 1940 का दशक	**132**
अगस्त प्रस्ताव	134
क्रिप्स मिशन	135
भूमिगत गतिविधियाँ	136
भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान समानांतर सरकारें	136
आंदोलन का सरकार द्वारा दमन	137
मूल्यांकन	137
स्मरणीय तथ्य	137
आजाद हिन्द फौज	138
सुभाष चंद्र बोस और आजाद हिन्द फौज	138
आजाद हिन्द फौज पर मुकदमा	138
कांग्रेस की प्रतिक्रिया	142
भारत विभाजन की ओर	142
माउंटबेटन योजना, 3 जून, 1947	143
अधिनियम का मूल्यांकन	144
सांप्रदायिकता का अर्थ	146
सामाजिक-आर्थिक कारण	146
सांप्रदायिकता एवं भारत का विभाजन	**146**
प्रथम चरण/उद्भव चरण (1857-1905)	146
द्वितीय चरण/विकास चरण (1906-37)	147
तीसरा चरण/उग्रपंथी सांप्रदायिकता का दौर (1937-47)	147
1939 से 1947 के बीच की विभिन्न घटनाएँ	147

यूरोपीय कंपनियों का आगमन तथा भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना तथा विस्तार
(Arrival of European Companies and British Establishment and Expansion in India)



भारत में यूरोपीय कम्पनियों का आगमन (Arrival of European Companies)

15वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी के मध्य यूरोप में अप्रत्याशित आर्थिक बदलाव हुए। इस समयावधि में कृषि एवं विशेष रूप से विनिर्माण के क्षेत्र में अपनाई गई प्रौद्योगिकी के आधार पर व्यापार एवं वाणिज्य में तीव्र वृद्धि हुई। ये बदलाव यूरोप में तब शुरू हुए, जब यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियाँ नए विकल्पों की खोज में निकली।

यूरोपीय देशों ग्रीस तथा रोम के साथ भारत के व्यापारिक संबंध बहुत पहले से रहे हैं। मध्यकाल में यूरोप और दक्षिण पूर्व एशिया के साथ भारत का व्यापार अनेक मार्गो से चलता था। एशिया का माल यूरोप तक पहुँचने से पहले अनेक राज्यों और हाथों से गुजरता था। फिर भी यह व्यापार बहुत लाभदायक होता था। एशिया में इस व्यापार का अधिकांश भाग अरब व्यापारियों द्वारा चलाया जाता था, तथा इसके भूमध्यसागरीय और यूरोपीय भाग पर इटली का लगभग एकाधिकार था।

- यूरोपीय शक्तियों में भारत में सबसे पहले पुर्तगाली कंपनी ने प्रवेश किया। 17 मई, 1498 में पुर्तगाली व्यापारी वास्कोडिगामा ने भारत के पश्चिमी तट पर अवस्थित बंदरगाह कालीकट पर पहुंचकर भारत के लिए नए समुद्री मार्ग की खोज की।

पुर्तगाली (Portuguese)

भारत में आने वाले यूरोपीय व्यापारियों में पुर्तगाली प्रथम थे जो 15वीं सदी में (भौगोलिक खोजों के संदर्भ में) वास्कोडिगामा के नेतृत्व में पहुँचे। वास्कोडिगामा को यहाँ के व्यापार से (मसाला आदि) लगभग 60 गुना अधिक फायदा हुआ। तत्पश्चात् 'लिस्बन' यूरोप मे भारतीय वस्तुओं के व्यापार केन्द्र के रूप में उभरा। पुर्तगाली व्यापारियों का मुख्य उद्देश्य भारतीय मसालों का व्यापार था जिसकी यूरोपीय परिवेश में बहुत माँग थी। पुर्तगालियों ने 1503 ई. में पहली **फैक्ट्री 'कोचीन'** में लगाई जिसका विस्तार विभिन्न 'पुर्तगाली गवर्नरों के समय हुआ।

प्रथम पुर्तगाली गवर्नर **फ्रांसिस डी अल्मेडा (1505-09 ई.)** ने **नीले पानी की नीति,** चलाई जिसका उद्देश्य हिन्द महासागर के क्षेत्र से होने वाले व्यापार पर नियंत्रण करना था। इसमें कार्टेज व्यवस्था के तहत परमिट प्रणाली लागू की गई। इस प्रकार पुर्तगालियों के समय से ही अधिकाधिक आर्थिक व्यापारिक लाभ हेतु क्षेत्रीय प्रभाव स्थापित करने की कोशिश होती रही।

पुर्तगाली **गवर्नर अल्बुकर्क (1509-15 ई.)** को पुर्तगाली व्यापारिक साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक माना जाता है क्योंकि इसने उसे व्यवस्थित रूप से संगठित किया और **कोचीन** को मुख्यालय बनाया। 1510 ई. में बीजापुर से गोवा को छीना जो व्यापारिक दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण था।

गवर्नर **नीनो डी. कुन्हा (1529-38 ई.)** ने मुख्यालय को कोचीन की जगह गोवा में स्थानांतरित किया। व्यापारिक हितों के कारण ही गुजरात राज्य के साथ पुर्तगालियों ने लम्बे समय तक संघर्ष किया।

पतन के कारण

भारत में पुर्तगाली वाणिज्यवादी नीति सफल नहीं रही क्योंकि उन्होंने अपनी घरेलू अर्थव्यवस्था के विकास के लिए प्रयास नहीं किया और वहाँ कृषि एवं पशुचारी व्यवस्था ही जारी रही इसलिए व्यापारिक प्रतिस्पर्धा में वे पिछड़ गए। चूंकि पुर्तगाली भौगोलिक एवं व्यापारिक खोजों के प्रारंभकर्त्ता देश थे इसलिए कुछ समय तो इनका प्रभाव बना रहा परन्तु जब अन्य देश (डच, ब्रिटेन आदि) इस प्रतिस्पर्धा में शामिल हुए तो अपनी दुर्बलताओं के कारण पुर्तगाली वाणिज्य का पतन प्रारम्भ हो गया। साथ ही, पुर्तगालियों ने भारत में अपने प्रभाव वाले क्षेत्रों में बलात् धर्म परिवर्तन की नीति अपनाई, जिसके प्रतिरोध के कारण वे कुछ ही क्षेत्रों में सिमट कर रह गए।

महत्त्वपूर्ण तथ्य
1498 को वास्कोडिगामा ने कालीकट तट तक की यात्रा की।
पुर्तगालियों ने भारत में पहला दुर्ग कोचीन में 1503 में स्थापित किया।
दूसरा दुर्ग 1505 में स्थापित किया।
फ्रांसिस्को डी अल्मेडा को भारतीय क्षेत्र का गवर्नर 1505 में बनाया गया।
अल्मेडा ने गुजरात और मिस्र के संयुक्त बेड़े को 1509 में पराजित किया।
मलाया द्वीप में स्थित मलक्का पर पुर्तगालियों ने 1511 में अधिकार कर लिया।
1530 में पुर्तगालियों ने गोवा को अपने भारतीय राज्य की राजधानी बना ली।
1535 में पुर्तगालियों ने दीव पर अधिकार कर लिया।
1559 में दमन पर अधिकार कर लिया।
1663 में मालाबार के सभी दुर्गों को डचों ने जीतकर पुर्तगालियों को भारत से निर्णायक रूप से खदेड़ दिया।

डच (Dutch)

भारत में आने वाले यूरोपीय व्यापारियों में पुर्तगालियों के पश्चात् डचों का आगमन हुआ। 1581 ई. में डचों पर से स्पेन का प्रभाव समाप्त होने के पश्चात, डचों ने अपनी परिस्थितियों के अनुरूप अपनी वाणिज्यवादी नीति का प्रतिपादन किया और उसका प्रसार किया। डच प्राथमिक रूप से इंडोनेशिया में केन्द्रित थे तथा मसालों के व्यापार में संलग्न थे। जब भारत के साथ इनका सम्पर्क बना तब इन्होंने अपने व्यापार में सूती वस्त्र के व्यापार को भी शामिल किया जिससे इन्हें अत्यधिक लाभ मिला।
डचों की पहली फैक्ट्री 1605 ई. में पूर्वी तट पर **मसूलीपट्टनम्** में स्थापित हुई इन्होंने **'पुलिकट'** को अपना मुख्यालय बनाया, परन्तु आगे चलकर **'नागपटट्नम्'** को मुख्यालय बना दिया। इनकी अधिकांश फैक्ट्रियां पूर्वी तट पर थीं क्योंकि ये इंडोनेशिया से भी जुड़े थे। 17वीं सदी में जब व्यापारिक प्रतिस्पर्धा की वृद्धि हुई तो डचों को ब्रिटेन से कड़ी प्रतिस्पर्धा मिली और नौसैनिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण 1759 ई. में **बेदरा की लड़ाई** में अंग्रेजों से इन्हें पराजय मिली तत्पश्चात् ये सिर्फ एक व्यापारिक समूह बन कर रह गये।

- भारत के पूर्वी भाग, पूर्वी तटीय क्षेत्र और पश्चिमी तट पर डचों ने अपनी फैक्ट्रियाँ स्थापित की।
- 1605 में मसूलीपट्टनम्, 1610 पुलिकट में, 1616 सूरत में, 1641 में, बिमिलिपट्टम में, 1645 में करिकल में, 1663 में चिनसुरा में, 1658 में कासिम बाजार, पटना, बालासोर व नागापट्टम में तथा 1663 में कोचीन में डचों ने अपनी फैक्ट्रियाँ स्थापित की।

ब्रिटिश (British)

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना 1600 ई. में एक निजी कम्पनी के रूप में हुई थी, जिसे 15 वर्षों के लिए व्यापारिक एकाधिकार मिला था। इस एकाधिकार को समय-समय पर बढ़ाया जाता रहा, साथ ही साथ इस पर निरंतर ब्रिटिश सरकार का हस्तक्षेप भी बढ़ता रहा।
कम्पनी के संचालन हेतु एक प्रबंधकीय समिति थी जिसमें एक निदेशक, एक उपनिदेशक तथा 24 सदस्य होते थे। इन सबका चुनाव व्यापारियों की आम सभा द्वारा होता था।

आगमन का उद्देश्य

इस कम्पनी की स्थापना का उद्देश्य ब्रिटिश व्यापारियों के व्यापारिक हितों के हिसाब से अधिकाधिक लाभ की प्राप्ति करना था। व्यापारिक मदों में मुख्यत: मसालें थे पर जल्दी ही इसमें वस्त्र तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ शामिल हो गईं, परन्तु आरम्भिक वर्षों में व्यापार का सन्तुलन भारत के ही पक्ष में रहा।
अंग्रेजों ने **1608 ई.** में सर्वप्रथम **सूरत** में व्यापारिक फैक्ट्री की स्थापना का प्रयास किया, जिसके लिए तत्कालीन ब्रिटिश सम्राट **'जेम्स प्रथम'** ने अपने दूत **विलियम हॉकिंस** को जहाँगीर के दरबार में अनुमति हेतु भेजा था। विलियम हॉकिंस ने 1609 में बादशाह जहाँगीर से अजमेर में मिलकर सूरत में बसने की आज्ञा मांगी।
यहाँ के व्यापारियों और पुर्तगालियों द्वारा विरोध किया गया परिणामस्वरूप उसे स्वीकृति नहीं मिली। हालांकि अंग्रेज **कैप्टन मिडिलटन** द्वारा **स्वाल्ली** में पुर्तगालियों के जहाजी बेडे को हराए जाने से प्रभावित होकर **जहाँगीर** ने **1613** में फैक्ट्री स्थापित करने की स्वीकृति दे दी। यह इस बात का संकेतक है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी एक निजी कम्पनी थी, पर उसे यथासम्भव शासकीय सहयोग प्रारंभ से ही मिला।

- 1632 ई. के **सुनहरा फरमान** के तहत गोलकुण्डा के राजा ने 500 पैगोडा वार्षिक कर के बदले अंग्रेजों को **गोलकुण्डा** राज्य के बंदरगाहों से व्यापार करने की अनुमति प्रदान की।
- 1639 ई में अंग्रेजों ने **मद्रास** में अपनी फैक्ट्री **'फोर्ट सेन्ट जार्ज'** के नाम से बनाई। 1668 ई. में बम्बई की फैक्ट्री स्थापित हुई।
- 1698 ई. में कलकत्ता की फैक्ट्री **'फोर्ट विलियम'** नाम से स्थापित हुई, जिसे प्रथम प्रेसीडेन्सी भी बनाया गया। इस प्रकार मद्रास, बम्बई एवं कलकत्ता में फैक्ट्री की स्थापना से तीनों महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में ब्रिटिश कम्पनी का प्रभाव हो गया।
- 1651 ई. में अंग्रेजों ने अपनी फैक्ट्री **हुगली** में स्थापित की। 1651 ई. में ही बंगाल के सूबेदार शाहशुजा ने 3000 रू. वार्षिक शुल्क के बदले बंगाल क्षेत्र में अंग्रेजों को मुक्त व्यापार करने की अनुमति दे दी।
- 1698 ई. में **'फोर्ट विलियम'** की स्थापना हुई, इस स्थल की प्राप्ति बंगाल के सूबेदार **'अजीमुश्शान'** द्वारा **सुतानाती, कोलकाता** एवं **गोविंदपुर** नामक तीन गांवों की जमींदारी देने से मिली थी। जिसके बदले में अंग्रेजों को 1200 रुपये देने थे।
- 1717 ई. में कम्पनी का एक मिशन **जॉन सरमन** की अध्यक्षता में **फर्रूखसियर** के दरबार में गया था जिसके पश्चात् एक शाही फरमान के तहत् 3000 वार्षिक शुल्क के बदले बंगाल क्षेत्र में मुक्त व्यापार करने का अधिकार दे दिया गया।

महत्त्वपूर्ण तथ्य
ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना 1600 ई. में हुई।
विलियम हॉकिन्स जहांगीर के दरबार में 1609 में आया था।
1611 में कैप्टन मिडिलटन सूरत के मुगल गवर्नर से वहां व्यापार करने का अनुमत प्राप्त किया।
1611 में कंपनी ने दक्षिण भारत के मसूलीपट्टनम में अपनी पहली फैक्टरी स्थापित की।
सूरत में ईस्ट इंडिया कंपनी ने स्थायी फैक्टरी की स्थापना 1613 में की।
1633 में कंपनी ने पूर्वी भारत में हरिहरपुर, बालासोर में अपनी पहली फैक्टरी स्थापित की।
1639 में कंपनी ने स्थानीय राजा से लीज पर मद्रास हासिल किया।
1651 में कंपनी को हुगली (बंगाल) व्यापार करने की अनुमत दी गयी।
1662 में ब्रिटिश सम्राट चार्ल्स द्वितीय को पुर्तगाली राजकुमारी (कैथरीन ऑफ ब्रेगेंजा) से विवाह करने के बदले दहेज के बदले में बॉम्बे दिया गया।
1717 में मुगल सम्राट फर्रुखसियर द्वारा जारी फरमान जिसे कंपनी का मैग्नाकार्टा भी कहा गया, ने कंपनी को भारी मात्रा में व्यापार संबंधी छूट प्रदान की।

डेनिस (Danish)

भारत में यूरोपीय व्यापारिक शक्तियों के आगमन के संदर्भ में **डेनमार्क के व्यापारियों** (डेन्स) का उल्लेख करना भी जरूरी हैं। **डेनिश ईस्ट इंडिया कंपनी** की स्थापना **1616 ई.** में हुई। इसने 1620 ई. में **त्रैंकोबर (तमिलनाडु)** में पूर्वी तट पर एक कारखाना स्थापित किया।

- डेनिस अपनी व्यापारिक गतिविधियों से अधिक मिशनरी गतिविधियों के लिए जाने जाते थे। डेनिस ने कलकत्ता के नजदीक **सेरामपुर/ श्रीरामपुर में 1755 ई.** में मुख्य व्यापारिक बस्ती की स्थापना की और यह इनकी व्यापारिक गतिविधियों का मुख्य केन्द्र रहा। भारत में अपनी वाणिज्यिक अवस्थापनाएँ, जो कभी भी महत्त्वपूर्ण नहीं रही, 1854 ई. में ब्रिटिश सरकार को बेच दी।

फ्रेंच (French)

फ्रांसीसी केंद्रों की स्थापना

1664 ई. में फ्रेंच ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना, तत्कालीन फ्रांसीसी शासक **लुई 14वें** के समय हुई, जिसका मुख्य उद्देश्य अपने अन्य समकालीन यूरोपीय

कम्पनियों की भांति वाणिज्यवादी नीतियों के तहत एशियाई व्यापार का फायदा उठाकर फ्रांस को आर्थिक दृष्टि से एक समृद्ध राष्ट्र बनाना था।
इस कम्पनी का निर्माण फ्रांस की सरकार द्वारा किया गया था तथा इसका सारा खर्च भी सरकार ही वहन करती थी। इसे सरकारी व्यापारिक कम्पनी भी कहा जाता था क्योंकि यह कंपनी सरकार द्वारा संरक्षित व सरकारी आर्थिक सहायता पर निर्भर करती थी।

- सूरत में 1668 ई. में फ्रांसीसियों की प्रथम कोठी की स्थापना **फैंक कैरो** द्वारा की गयी।
- फ्रांसीसियों द्वारा दूसरी व्यापारिक कोठी की स्थापना गोलकुंडा में मार्टिन द्वारा सन् 1673 ई. में की गयी। बंगाल के नवाब शाइस्ता खाँ ने फ्रांसीसियों को एक जगह किराये पर दी जहाँ **चंद्रनगर** की सुप्रसिद्ध कोठी की स्थापना की गई।
- डचों ने 1693 ई. में पांडिचेरी को फ्रांसीसियों के नियंत्रण से छीन लिया, किंतु 1697 ई. के **रिजविक समझौते** के अनुसार उसे वापस कर दिया।
- फ्रांसीसियों द्वारा 1721 ई. में मॉरिशस, 1725 ई. में माहे (मालाबार तट) एवं 1739 ई. में कराइकल पर अधिकार कर लिया गया। 1742 ई. के पश्चात् व्यापारिक लाभ कमाने के साथ-साथ फ्रांसीसियों की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाएँ भी जागृत हो गयीं। परिणामस्वरूप अंग्रेज और फ्रांसीसियों के बीच युद्ध छिड़ गया। इन युद्धों को 'कर्नाटक युद्ध' के नाम से जाना जाता है।

पतन के कारण

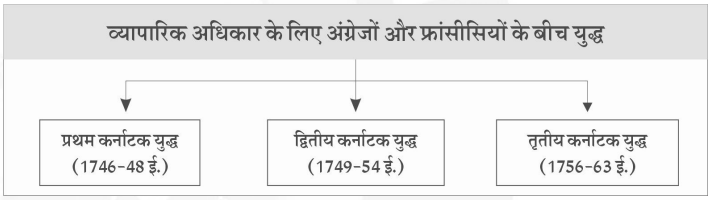
भारत में फ्रांसीसियों के पतन का सर्वाधिक प्रमुख कारण उनका सरकारी उपक्रम के रूप में होना था क्योंकि तत्कालीन फ्रांस में **निरंकुश राजतंत्र** था और उनके **अतिशय हस्तक्षेप** के कारण **व्यापारिक नीतियों का समुचित विकास** संभव नहीं हो पाया। फ्रांसीसी अधिकारियों में संबंध सहयोग एवं समन्वय का अभाव भी था।
इसके अतिरिक्त **फ्रांस** लगातार **यूरोपीय युद्धों** में उलझा रहा एवं ब्रिटेन की तुलना में **कमजोर नौसेना** तथा भारतीय नेतृत्व की **नीतियों में अदूरदर्शिता** आदि के कारण भी **फ्रेंच कम्पनी** असफल रही।

कर्नाटक में एंग्लो-फ्रेंच प्रतिस्पर्धा
(Anglo-French Competition in Karnataka)

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 1668 ई. में फ्रांसीसियों ने सूरत में पहली व्यापारिक कोठी स्थापित करने में सफलता पायी। **1690-92 ई.** के दौरान उन्होंने **कलकत्ता** में भी व्यापारिक केन्द्र स्थापित कर लिया।

- अठारहवीं शताब्दी के आरंभिक दो वर्षों में फ्रांसीसी कंपनी को व्यापार में काफी प्रगति हुई। **फ्रेंच ईस्ट इंडिया कंपनी** तथा **ईस्ट इंडिया कंपनी** के बीच संघर्ष का मुख्य कारण **व्यापार में एकाधिकार** और **राजनीतिक नियंत्रण** था।
- भारत में अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी दोनों ही कम्पनियों का उद्देश्य व्यापार से अधिकाधिक लाभ उठाना तथा भारत से कच्चे माल तथा अन्य समान को सस्ते दामों पर खरीदना था। यह तभी संभव था जब उन्हें व्यापार पर एकाधिकार प्राप्त हो जाए।
- अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए दोनों कम्पनियों में भारत की राजनीति में हस्तक्षेप कर नियंत्रण करने की प्रतिस्पर्धा शुरू हो गयी क्योंकि बिना राजनैतिक नियंत्रण के व्यापार में अधिक लाभ उठाना संभव नहीं हो पा रहा था।
- 1741 ई. में **पांडिचेरी** के गवर्नर पद पर **डूप्ले की नियुक्ति** के साथ ही उसके राजनीतिक उद्देश्य भी सामने आने लगे। **1746 ई.** में फ्रांसीसियों ने **मद्रास पर कब्जा** कर लिया।
- तत्कालीन भारत का स्वरूप एकीकृत न होकर स्थानीय क्षेत्रों में विभक्त था। इस स्थिति का लाभ सभी यूरोपीय कंपनियों को हुआ। दक्षिणी क्षेत्रों में विशेषकर कर्नाटक, मद्रास और पांडिचेरी में राजनीतिक अनिश्चितता कायम थी।
- 17वीं तथा 18वीं शताब्दी में ब्रिटिश तथा फ्रांसीसी के बीच यूरोप में आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के लिए युद्ध आरंभ हुआ, जिसका प्रभाव अन्य देशों में भी देखा गया। संसार के प्रत्येक कोने में जहाँ ये दोनों कम्पनियाँ कार्यरत थी वहाँ भी उसके बीच संघर्षपूर्ण संबंध रहे।
- भारत में हुए कर्नाटक युद्ध भी इसी सघंर्ष के परिणाम थे। उस समय फ्रांसिसियों का मुख्य कार्यालय पांडिचेरी तथा अंग्रेजों की मुख्य बस्तियाँ, मुंबई, मद्रास तथा कर्नाटक में थी। इंग्लैंड का विशेष ध्यान ऑस्ट्रिया की ओर था, इसलिए उनका कोई जहाजी बेड़ा मद्रास के समुद्री तट पर तैनात नहीं था, लेकिन वहां फ्रांसीसी जहाजी बेड़ा उपस्थित था। इस स्थिति का फ्रांसीसियों ने पूरा लाभ उठाया और **मद्रास पर कब्जा** कर लिया।
- दो वर्ष बाद यूरोप में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच युद्ध की समाप्ति **एक्स ला शापेल की संधि** के साथ हुई। इस संधि के अनुसार **मद्रास ईस्ट इंडिया कंपनी** को लौटा दिया गया।

1746 से 1765 ई. के बीच अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच युद्ध चलता रहा। कर्नाटक, दक्कन के सूबेदार के अधीन एक प्रांत था जिसका शासन नवाब के हाथों में था। व्यापारिक अधिकार के लिए अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच तीन युद्ध हुए।



प्रथम कर्नाटक युद्ध (1746-48 ई.)

प्रथम कर्नाटक युद्ध प्रारंभ होने का तात्कालिक कारण एक अंग्रेज अधिकारी कैप्टन बर्नेट द्वारा कुछ फ्रांसीसी जहाजों पर कब्जा कर लेना था। डूप्ले ने मॉरिशस के फ्रांसीसी **गवर्नर ला बूर्दने** की सहायता से मद्रास को घेर लिया।

- यद्यपि अंग्रेजी गवर्नर **मोर्श ने 21 सितम्बर, 1746 ई.** को आत्मसमर्पण कर दिया किन्तु डूप्ले का रणनीतिक लक्ष्य **'फोर्ट सेन्ट डेविस'** को जीतना था। लेकिन वह इसे जीत पाने में असफल रहा। भारत में फ्रांसीसियों के समक्ष अंग्रेज इस समय बिल्कुल असहाय थे। इसी समय **'सेन्ट टोमे'** नामक एक और युद्ध फ्रांसीसी सेना और कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन के बीच लड़ा गया। इस युद्ध में फ्रांसीसी विजयी रहे।

प्रथम कर्नाटक युद्ध का अंत **1748 ई. में ऑस्ट्रिया** के उत्तराधिकार युद्ध की समाप्ति के पश्चात् हुई **'एक्स ला शापेल की संधि'** से हुआ। इस संधि की शर्तों के अनुसार **मद्रास अंग्रेजों** को वापस कर दिया गया।

द्वितीय कर्नाटक युद्ध (1749-1754 ई.)

कर्नाटक का द्वितीय युद्ध हैदराबाद तथा कर्नाटक के विवादास्पद उत्तराधिकारियों के कारण हुआ। डूप्ले की राजनीकि महत्त्वाकांक्षाएँ कर्नाटक के प्रथम युद्ध की सफलता के पश्चात् बढ़ने लगी थीं। भारत में ब्रिटेन और फ्रांस की कंपनियों ने एक-दूसरे के विरोधी गुटों को अपना समर्थन देकर आग में घी डालने का काम किया।

- डूप्ले ने नवाब पद के लिए चन्दा साहब को समर्थन दिया तथा दक्कन की सूबेदारी के लिए **मुजफ्फरजंग** का समर्थन किया। अंग्रेजों ने इनके प्रतिद्वन्द्वियों अनवरुद्दीन एवं नासिरजंग को अपना समर्थन दिया।

- 1749 ई. में अंबूर में **चंदा साहब** ने **अनवरुद्दीन** को पराजित कर मार डाला तथा कर्नाटक के अधिकांश हिस्सों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया।
- वहीं दूसरी ओर दक्कन की सूबेदारी हेतु लड़े गए युद्ध में **मुजफ्फरजंग** अपने भाई **नासिरजंग** से पराजित हो गया। मुजफ्फरजंग अपने भाई नासिरजंग की मृत्यु के पश्चात् 1750 ई. में दक्कन का सूबेदार बन गया।
- 1751 ई. में इसी युद्ध के दौरान **क्लाइव** द्वारा अर्काट का घेरा डाला गया जो क्लाइव की प्रथम कूटनीतिक विजय मानी जाती है।

इस युद्ध का विस्तार से विवेचन न करते हुए यह कहना ही पर्याप्त होगा कि इस युद्ध में फ्रांस तथा फ्रांसीसी गवर्नर डूप्ले को अपूर्णीय क्षति हुई। फ्रांसीसी सरकार ने डूप्ले को वापस बुला लिया तथा **गोडेहू** को अगला गवर्नर बनाकर भेजा।
गोडेहू के प्रयासों से अंग्रेजी कंपनी के साथ जनवरी **1754 ई.** में **'पांडिचेरी की संधि'** हुई जिसके तहत दोनों पक्ष युद्ध विराम पर सहमत हुए। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि यह युद्ध अंग्रेजों के पक्ष में रहा।

तृतीय कर्नाटक युद्ध (1756-63 ई.)

यह युद्ध यूरोप में ब्रिटेन एवं फ्रांस के बीच चल रहे **सप्तवर्षीय युद्ध (1756-63 ई.)** का भारतीय विस्तार था। **1760 ई. में वांडीवाश की लड़ाई** हुई जिसमें अंग्रेजी सेना का नेतृत्व **जनरल आयरकूट** एवं फ्रेंच सेना का नेतृत्व **काउंट लाली** ने किया, इस युद्ध में फ्रेंच पराजित हुए।

- 1761 ई में ब्रिटिश सेना ने फ्रेंच मुख्यालय **पाण्डिचेरी** पर अधिकार कर लिया।
- 1763 ई. में सप्तवर्षीय युद्ध की समाप्ति पर **पेरिस की संधि** हुई, जिसके तहत पांडिचेरी फ्रांस को वापस कर दिया गया।

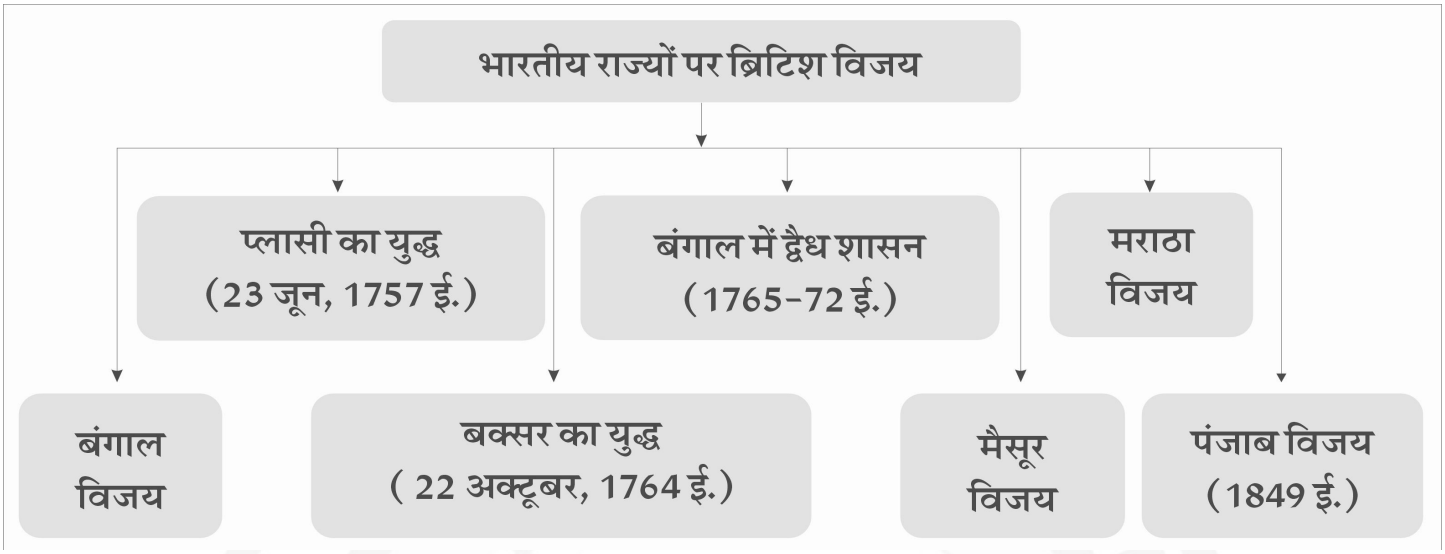
यह तय हुआ कि फ्रांसीसी भविष्य में किसी भी प्रकार से भारतीय मामलों में राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं करेंगे और सिर्फ एक व्यापारिक कम्पनी बनकर रहेंगे।

पेरिस की संधि का महत्त्व

1763 ई. की **पेरिस की संधि** का एक निर्णायक महत्त्व है क्योंकि इससे ब्रिटेन के एक मजबूत प्रतिद्वंद्वी की प्रतिस्पर्धा की समाप्ति हुई। इसके पूर्व 1759 ई. के बेदरा के युद्ध से डच प्रतिद्वंद्विता समाप्त हो गई थी।
अत: अब ब्रिटिश अपने सभी यूरोपीय प्रतिद्वंद्वियों से निपट चुके थे और उन्हें भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्वयं को स्थापित एवं प्रसारित करना था। इधर भारतीय परिप्रेक्ष्य में मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् उभर रहा मराठा विकल्प **1761 ई. में पानीपत के तृतीय युद्ध** में हारकर विकल्प की दौड़ से बाहर हो गया था, अत: अब एक शून्यता की स्थिति थी जिसमें ब्रिटेन को स्वयं को स्थापित करना था।

- 1757 में प्लासी विजय के साथ ब्रिटेन अब भारतीय राज्यों में सक्रिय प्रभाव स्थापित करने के लिए उत्सुक था अंतत: कहा जा सकता है कि 1763 ई. की पेरिस संधि भी भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के क्रम में एक युग-विभाजक वर्ष है। परन्तु, संधि में यह शर्त रखी गई थी कि फ्रांसीसी भारत में सेना नहीं रख सकेंगे। इस संधि के बाद फ्रांसीसियों ने अंग्रेजों का विरोध करना छोड़ दिया और अपना सारा ध्यान व्यापार पर केंद्रित कर लिया। फ्रांसीसियों की पराजय ने भारत के लिए राजनीतिक गुलामी का मार्ग खोल दिया।

भारतीय राज्यों पर ब्रिटिश विजय
(British Victory on Indian States)



बंगाल विजय

भूमिका

भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के क्रम में बंगाल विजय का निर्णायक महत्त्व है। इस विजय के पीछे तत्कालीन परिस्थितियों के साथ ही एक लंबी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी रही है, जिस हम राजनीतिक एवं आर्थिक संदर्भों में देख सकते हैं। राजनीतिक स्तर पर दिल्ली सल्तनत की स्थापना के समय से ही बंगाल के राजनीतिक नेतृत्व द्वारा अलग एवं स्वतंत्र रहने वाली प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। उदाहरण के रूप में **बख्तियार खिलजी, बुगरा खाँ, मुर्शिद कुली खाँ** आदि को देख सकते हैं।

1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य का पतन प्रारंभ हुआ। इस संदर्भ में भी बंगाल स्वतंत्र होने वाले शुरूआती राज्यों में था। आर्थिक स्तर पर अपने भौगोलिक स्थिति एवं कृषि, उद्योग, व्यापार आदि की समृद्धि के कारण भी बंगाल महत्त्वपूर्ण था। इस प्रकार बंगाल भारतीय राज्यों में एक महत्त्वपूर्ण राज्य था, जिस पर आधिपत्य का राजनीतिक, सामरिक एवं आर्थिक महत्व था।

ब्लैक होल की घटना

ऐसा माना जाता है कि बंगाल के नवाब ने 146 अंग्रेज बंदियों को, जिसमें स्त्रियां और बच्चे भी शामिल थे, को एक छोटी कोठरी में बंद कर दिया था। जिसके पश्चात 20 जून, 1756 ई. की रात को बंद करने के बाद 23 जून को कोठरी को खोला गया तो उसमें 23 लोग ही जीवित पाए गए। इसमें **हॉलवेल** भी था जो जीवित बच गया। इस घटना को उसकी ही रचना मानी जाती है। इसलिए इस घटना को इतिहासकारों ने संदिग्ध माना है।

इतिहास में इस घटना का महत्व केवल इतना ही है कि अंग्रेजों ने इस घटना को आगे के आक्रामक युद्ध का कारण बनाए रखा। इस पक्ष में ब्रिजैन गुप्ता द्वारा 1959 में किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि ये घटना तो हुई है लेकिन इसमें प्रवेश करने वाले लोगों की संख्या 64 थी और जीवित बचे लोगों की संख्या 21 थी।

अंग्रेज नागरिकों पर हुए इस क्रूरता का बदला लेने के लिए अंग्रेज सरकार ने राबर्ट **क्लाइव** और **एडमिरल वॉटसन** को भेजा। छोटे युद्ध के बाद नवाब अंग्रेजों को उनके पहले की स्थिति में बहाल करने के लिए सहमत हुआ।

प्लासी का युद्ध (23 जून, 1757 ई.)

भारत का यूरोप के साथ व्यापारिक संबंध प्राचीन काल से था। यह व्यापार एशिया माइनर और भूमध्य सागर से होकर होता था।

व्यापार कई बाधाओं से गुजरने के बावजूद लाभदायक होता था। 1453 में उस्मानिया सल्तनत द्वारा एशिया माइनर के व्यापारिक मार्गों पर तुर्कों का अधिकार हो गया। इसके अतिरिक्त यूरोप और एशिया के व्यापार पर **वेनिस** और **जेनेवा** के व्यापारियों का एकाधिकार था और वे पश्चिमी यूरोप के राष्ट्रों को पुराने व्यापारिक मार्गों से होने वाले व्यापार में भागीदार नहीं बनाना चाहते थे। इन परिस्थितियों में पश्चिमी यूरोप के देशों ने नए व्यापारिक मार्गों की खोज करना प्रारंभ कर दिया, जिससे भारत और इंडोनेशिया के मसाला द्वीप से व्यापार प्रारंभ करना था।

नए व्यापारिक मार्गों के खोज करने के पीछे उद्देश्य यह था कि अरब और वेनिस वासियों के एकाधिकार को तोड़कर और तुर्कों से बिना शत्रुता के पूर्व के देशों के साथ व्यापार करना था। इसी क्रम में 15वीं शताब्दी के अंत तक यूरोपीय कंपनियों का भारत में आगमन प्रारंभ हुआ।

ब्रिटिश प्रभुसत्ता के विकास के संदर्भ में प्लासी का युद्ध एक मील का पत्थर था जिसने भारत में अंग्रेजों के पैर जमाने में आधार का काम किया। इस युद्ध के कारणों को हम राजनीतिक एवं आर्थिक संदर्भों में देख सकते हैं।

राजनीतिक कारण

राजनीतिक स्तर पर प्लासी के युद्ध के लिए कई आंतरिक एवं बाह्य तत्व उत्तरदायी थे। विशेषकर यह कि तत्कालीन **नवाब सिराजुद्दौला (1756-57 ई.)** के सत्ता प्राप्ति के समय से ही षड्यंत्रों का दौर जारी था। नवाब की **मौसी घसीटी बेगम,** पूर्णिया का **नवाब शौकतजंग,** सेनापति **मीर जाफर,** बैंकर **जगत सेठ,** व्यापारी **अमीनचंद** आदि सभी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपने-अपने हितों को लेकर **सिराजुद्दौला** के विरुद्ध षड्यंत्र में शामिल थे।

बाह्य स्तर पर इस समय चल रहे **सात वर्षीय युद्ध (1756-63 ई.)** जो ब्रिटेन एवं फ्रांस के बीच में यूरोप में जारी था, की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इस

लड़ाई के कारण इन दोनों देशों की कंपनियाँ बंगाल क्षेत्र में अपनी फैक्ट्रियों की किलेबंदी करना चाहती थी। ब्रिटेन अपनी फैक्ट्री **फोर्ट विलियम (कलकत्ता)** तथा फ्रांस अपनी **फैक्ट्री चंद्रनगर** की किलेबंदी करना चाहता था। जब **सिराजुद्दौला** ने इसकी अनुमति देने से इंकार कर दिया तब फ्रेंच कंपनी तो इसके लिए मान गई लेकिन ब्रिटिश कंपनी किलेबंदी करती रही।

आर्थिक कारण

1717 ई. में मुगल सम्राट फर्रुखसियर ने ब्रिटिश कंपनी को अपने शाही फरमान के तहत अनेक प्रकार की छूटें दी थीं। इन छूटों पर अंग्रेज हर कीमत पर अधिक से अधिक अधिकार चाहते थे। साथ ही, मुक्त व्यापार या दस्तकों के कारण तनाव की स्थिति उत्पन्न हो रही थी क्योंकि अंग्रेज इसका दुरुपयोग करते थे, वे पैसे लेकर इस छूट का इस्तेमाल भारतीय व्यापारियों के संदर्भ में करते थे।

तात्कालिक कारण

प्लासी के युद्ध का तात्कालिक कारण फोर्ट विलियम की किलेबंदी से उत्पन्न तनाव था।

युद्ध का घटनाक्रम

- जब अंग्रेजों द्वारा किलेबंदी का काम जारी रखा गया तब जून 1756 ई. में **सिराजुद्दौला** ने फोर्ट विलियम पर आक्रमण कर उस पर **कब्जा** कर लिया।
- अधिकार के बाद ही **हॉलवेल** (यह अस्थाई रूप से गवर्नर भी बना था) ने एक काल कोठरी घटना की चर्चा की है जो 20 जून 1756 ई. को हुई। जिसे **ब्लैकहोल की घटना** के नाम से जाना जाता है। इसमें यह बताया गया है कि 146 अंग्रेजों को एक काल कोठरी में बंद कर दिया गया था, अगले दिन सिर्फ 23 अंग्रेज ही बच पाए थे।
- जब फोर्ट विलियम पर सिराजुद्दौला द्वारा कब्जे की खबर मद्रास पहुंची तो **वाटसन (जलसेना)** तथा **क्लाइव (थलसेना)** के नेतृत्व में एक सेना बंगाल पहुँची और उसने **जनवरी, 1757 ई. में फोर्ट विलियम** पर पुनः कब्जा कर लिया।
- **फोर्ट विलियम** पर अधिकार के पश्चात् **अलीनगर की संधि** हुई। इस संधि के तहत अंग्रेजों को **फोर्ट विलियम की किलेबंदी,** बिना कर व्यापार, सिक्का ढालने आदि का अधिकार मिल गया।
- तत्कालीन समय में नवाब के विरुद्ध एक षड्यंत्र चल रहा था जिसमें उसका सेनापति **मीर जाफर,** दीवान **रायदुर्लभ, जगत सेठ** (बंगाल का सबसे बड़ा बैंकर), **अमीनचंद** (सबसे बड़ा व्यापारी) तथा कई अन्य लोग शामिल थे।
- ब्रिटिश कंपनी ने इसका फायदा उठाते हुए मीर जाफर से समझौता किया जिसके तहत उसे नवाब बनाने के बदले कंपनी को **24 परगने की जमींदारी** मिलनी थी।
- अतंतः 23 जनू, 1757 ई. को नाटकीय रूप से कुछ घंटों के लिए प्लासी का युद्ध चला, जिसमें **मीर जाफर, रायदुर्लभ** आदि नवाब की सेना को धोखा देने के लिए शामिल हुए। **मीर मदान** और **मोहन लाल** नवाब की ओर से लड़े और मारे गए। नवाब मुर्शिदाबाद भाग गया जहाँ उसकी हत्या कर दी गई। कुल मिलाकर यह नाममात्र का युद्ध था। वास्तव में यह एक षड्यंत्र था।

प्लासी युद्ध का प्रभाव

- ***राजनीतिक प्रभाव***– अंग्रेजों को युद्ध में साथ देने के पुरस्कार स्वरूप मीर जाफर नवाब घोषित हुआ। चूंकि नवाब कठपुतली मात्र था, इसलिए बंगाल के साधनों का प्रयोग कर ब्रिटिश सेना ने स्वयं को मजबूत किया। यह विजय ब्रिटिश शासन की स्थापना का प्रारंभिक चरण थी जिसके बाद कंपनी एक व्यापारिक कंपनी न रहकर सैन्य एवं राजनीतिक कंपनी बन गई।
- ***आर्थिक प्रभाव***– इस युद्ध के पश्चात् 24 परगना की जमींदारी ब्रिटिश कंपनी को मिली साथ ही बंगाल की सारी फ्रांसीसी बस्तियां अंग्रेजों को दे दी गईं और कम्पनी को कर मुक्त व्यापार की पुनः अनुमति मिली।

इस युद्ध से कम्पनी को बड़े स्तर पर आर्थिक लाभ (हर्जाना की राशि, अधिकारियों को रिश्वत, पुरस्कार आदि) प्राप्त हुआ और कलकत्ता में कंपनी के टकसाल की स्थापना हुई।

विश्लेषण

वास्तव में इस युद्ध के प्रभाव से धीरे-धीरे ब्रिटिश आर्थिक शोषण की प्रक्रिया व्यापक होती गई। बंगाली **कवि नवीनचंद्र सेन** के अनुसार *"प्लासी के युद्ध के बाद भारत के लिए शाश्वत दुखों की काली रात का आरंभ हुआ।"*

बक्सर का युद्ध (22 अक्टूबर, 1764 ई.)

बक्सर के युद्ध की पृष्ठभूमि 1757 ई. के प्लासी के युद्ध से तैयार हो चुकी थी, जिसे आगे चलकर विभिन्न घटनाओं ने साकार रूप प्रदान कर दिया। इसके लिए मुख्यतः निम्न राजनीतिक एवं आर्थिक कारण उत्तरदायी थे।

राजनीतिक कारक

मीर जाफर (1757-60 ई.) प्लासी के युद्ध के पश्चात् बंगाल का कठपुतली नवाब बना। वह अपने पूरे शासनकाल में अंग्रेजों की विभिन्न मांगों को पूरा करता रहा। जब वह इसमें सक्षम नहीं हो पाया तो अंग्रेजों ने अधिक लाभ प्राप्ति के उद्देश्य से मीर जाफर के दामाद **मीर कासिम** से समझौता कर उसे नवाब बना दिया।

मीर कासिम (1760-63 ई.) ने **वर्द्धमान, मिदनापुर** एवं **चटगाँव की दीवानी** अंग्रेजों को दी, परन्तु **मीर कासिम** के समय ही ऐसी कई घटनाएँ हुई जिसके कारण बक्सर के युद्ध का आधार तय हो गया।

- ***सत्ता स्वामित्व का द्वन्द***– मीर जाफर के विपरीत मीर कासिम ने कई शासन सुधार किए। वह अंग्रेजों का कठपुतली मात्र नहीं रहना चाहता था। उसने अंग्रेजों को व्यापारिक अधिकार तो प्रदान किया था पर सत्ता में उन्हें साझेदार नहीं बनाना चाहता था।
- ***राजधानी***– मीर कासिम ने मुर्शिदाबाद में चलने वाले विभिन्न षड्यंत्र एवं अंग्रेजों के हस्तक्षेप से बचने के लिए अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से मुंगेर बना ली। कासिम के इस कदम से भी तनाव उत्पन्न हुआ।
- ***शाह आलम द्वितीय के सत्ता प्राप्ति के समय का मामला***– **आलमगीर द्वितीय** की मृत्यु के पश्चात् शाहआलम द्वितीय बिहार में था। उसने स्वयं को सम्राट घोषित कर दिया। अपने प्रभाव विस्तार के उद्देश्य से अंग्रेजों ने शाहआलम द्वितीय को समर्थन दिया और मीर कासिम से कहा कि वह सम्राट को औपचारिक रूप से स्वीकार करें, परंतु कासिम ने इस बात से इंकार कर दिया क्योंकि उसे डर था कि अंग्रेज सहायता के एवज में सम्राट से बंगाल की सूबेदारी न प्राप्त कर लें।
- ***रामनारायण का मामला***– रामनारायण **बिहार का उप-दीवान** था। जब मीर कासिम ने मतभेद के कारण उसे इस पद से हटा दिया तो वह अंग्रेजों के पास चला गया तब मीर कासिम ने उसे सौंपने की बात अंग्रेजों से कही तो अंग्रेजों ने इस बात को मान लिया।
- ***पटना प्रकरण***– **1763 ई. में एलिस** नामक अंग्रेज अधिकारी ने पटना पर आक्रमण कर दिया। मीर कासिम ने उसे पराजित किया तथा साथ ही कई अंग्रेज अधिकारियों को भी बंदी बना लिया। इस घटना से अंग्रेज क्रोधित हो गए और वे मीर कासिम को हटाने का प्रयास करने लगे।

आर्थिक कारण

अंग्रेजों को मिले कर मुक्त व्यापारिक अधिकारों के दुरुपयोग को देखकर मीर कासिम ने 1763 ई. में समस्त आंतरिक व्यापार को सभी के लिए कर मुक्त कर दिया जिससे अंग्रेज नाराज हो गए, क्योंकि भारतीय तथा ब्रिटिश व्यापारियों की समानता की स्थिति में उन्हें काफी हानि हुई। यह मुद्दा भी मीर कासिम को उसके पद से हटाने का एक कारण बना।

1763 ई. में मीर कासिम को नवाब के पद से हटाकर **मीर जाफर** को पुन: नवाब का पद दिया गया। अत: मीर कासिम अब पुन: नवाब का पद प्राप्त करने का प्रयास करने लगा। इसके लिए उसने अवध के नवाब जो मुगल सम्राट का वजीर भी था, के साथ धन देकर सैनिक सहायता प्राप्ति की संधि की।

अंतत: **22 अक्टूबर, 1764 ई. में बक्सर के मैदान** में **युद्ध** हुआ जिसमें एक तरफ अंग्रेजी सेना का नेतृत्व **हेक्टर मुनरो** कर रहा था और दूसरी तरफ बंगाल के पूर्व नवाब **मीर कासिम,** अवध का नवाब **शुजाउद्दौला** एवं **शाहआलम द्वितीय** की सम्मिलित सेना थी। युद्ध में सम्मिलित सेना की करारी हार हुई। मीर कासिम भाग गया तथा शाहआलम द्वितीय आदि ने आत्मसमर्पण कर दिया।

बक्सर युद्ध का प्रभाव

राजनीतिक प्रभाव

- इस युद्ध के निर्णय ने प्लासी युद्ध के निर्णय की व्यावहारिक स्तर पर पुष्टि कर दी।
- प्लासी का युद्ध सैन्य दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं था क्योंकि वह षड्यंत्रों का परिणाम था पर बक्सर युद्ध से अंग्रेजी सेना के युद्ध कौशल का प्रदर्शन हुआ।
- इस युद्ध से अब यह स्पष्ट हो गया कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में अंग्रेजों को चुनौती देने वाला कोई नहीं है।

अवध के साथ समझौता

इलाहाबाद की संधि

बक्सर युद्ध में अंग्रेजों की विजय से उन्हें उत्तरी भारत में चुनौती देने वाली कोई शक्ति नहीं थी। इस युद्ध के परिणाम का प्रभाव समस्त भारत पर पड़ा। युद्ध के पश्चात् क्लाइव को भारत में अंग्रेजी प्रदेशों का मुख्य सेनापति तथा गवर्नर बनाकर भेजा गया। क्लाइव का प्रथम कार्य परास्त भारतीय शक्तियों से संबंधों को सुनिश्चित करना था। इस परिप्रेक्ष्य में उसने इलाहाबाद की संधि को मूर्त रूप प्रदान किया।

इलाहाबाद की प्रथम संधि अगस्त 1765 ई. में अवध के नवाब **शुजाउददौला** और **अंग्रेजों** के बीच हुआ। इस संधि के अनुसार–

- नवाब शुजाउद्दौला से इलाहाबाद और कड़ा का क्षेत्र लेकर मुगल बादशाह शाहआलम को दे दिया।
- युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में नवाब द्वारा कंपनी को 50 लाख रुपए दिया गया तथा अवध क्षेत्र में कंपनी को करमुक्त व्यापार की अनुमति देनी पड़ी।
- नवाब द्वारा बनारस के जागीरदार बलवंत सिंह को उनकी जागीर लौटानी पड़ी।

इलाहाबाद की द्वितीय संधि

इलाहाबाद की दूसरी संधि मुगल सम्राट **शाह आलम** और **अंग्रेजों** के बीच हुई संधि से शाहआलम द्वितीय अंग्रेजी संरक्षण में आ गया तथा उसे **इलाहाबाद** तथा **कड़ा** क्षेत्र दिया गया।

- अंग्रेजों को **बंगाल, बिहार** और **उड़ीसा** की दीवानी मिली, जिसके बदले में कंपनी को 26 लाख रुपये मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय को देने थे। वस्तुत: इस संधि के बाद मुगल सम्राट की स्थिति रबड़ स्टैम्प जैसी हो गई। अवध के नवाब शुजाउद्दौला के साथ संधि के अनुसार नवाब द्वारा इलाहाबाद तथा कड़ा क्षेत्र मुगल सम्राट शाहआलम को दिया गया।
- अवध को एक **सहायक संधि** भी करनी पड़ी। इस संधि के तहत अवध को अपने खर्चे पर कंपनी की सेना रखनी थी। वास्तव में अवध को बंगाल के लिए एक सुरक्षा कवच (बफर राज्य) के रूप में स्थापित किया गया। अगर अंग्रेज चाहते तो उसे मिलाया जा सकता था, पर मराठा, अहमदशाह अब्दाली आदि के आक्रमणों के भय से एवं अंग्रेजों के लिए उपयुक्त परिस्थितियों के अभाव के कारण अवध को नहीं मिलाया गया।
- बंगाल के नवाब **नज्मुद्दौला** के साथ **द्वैध शासन** के संदर्भ में समझौता हुआ जिसके तहत दीवानी अधिकार (अर्थात् राजस्व वसूली, आर्थिक मामले आदि) अंग्रेजों के पास रहा और निजामत का अधिकार (प्रशासन, न्याय आदि) नवाब को सौंपा गया। वास्तव में यह व्यवस्था शक्ति और उत्तरदायित्व के पृथक्करण की बात करता है जिसमें शक्ति कंपनी के पास थी और उत्तरदायित्व नवाब के पास था।

आर्थिक प्रभाव

द्वैध शासन के कारण भारतीय कृषि क्षेत्र में तेजी से गिरावट आई। परंपरागत शिल्पों का पतन हुआ, व्यापार-वाणिज्य में गिरावट आई तथा धन निकासी की प्रक्रिया तेज हुई। 1770 ई. में बंगाल का अकाल यहां की आर्थिक दुर्दशा का स्पष्ट परिचायक है।

- सिर्फ **द्वैध शासन काल (1765-72 ई.)** के दौरान जितना धन भारत से बाहर भेजा गया उसके प्रभाव से 18वीं सदी के मध्य में चल रहे औद्योगिक क्रांति को बड़ी मात्रा में पूंजी मिली साथ ही भारत में आगे सैन्य विजयों हेतु आर्थिक मदद भी मिली। *यही कारण है कि* ***के.एम. पणिक्कर*** *ने इस काल को* ***'लूट का काल'*** *कहा है।*

बंगाल में द्वैध शासन (1765-72 ई.)

प्लासी एवं बक्सर विजय के पश्चात बंगाल में कंपनी को **दीवानी का अधिकार** प्राप्त हुआ। अब कंपनी व्यापारिक स्वरूप के साथ-साथ **राजनैतिक स्वरूप** से भी युक्त हो गई। अत: **क्लाइव** ने बंगाल में एक नवीन प्रशासनिक संरचना का गठन किया जिसे **द्वैध शासन** के नाम से जाना जाता है।

- वस्तुत: बंगाल में अंग्रेजों ने नवाब का पद तो बनाए रखा, दूसरी तरफ वित्तीय अधिकार दीवान के रूप में स्वयं प्राप्त किया। इस तरह बंगाल का नवाब अभी भी भारतीय था जो शक्ति से रहित था जबकि अंग्रेजों के पास वास्तविक शक्ति थी। इस तरह नवाब के पास उत्तरदायित्व एवं कंपनी के पास शक्ति थी।
- उपरोक्त आधार पर बंगाल में **दो शक्तियों** का शासन मौजूद था, जिसे **द्वैध शासन** कहा जाता है।

उत्तरदायी कारक

कंपनी द्वारा बंगाल का प्रत्यक्ष शासन लेने से भारतीय असंतुष्ट होकर कंपनी के विरुद्ध एकजुट हो सकते थे। अत: **कंपनी के आर्थिक लाभ में बाधा पहुँचती**। इससे बचने के लिए द्वैध शासन लागू किया गया।

- बंगाल का प्रत्यक्ष शासन लेने से कंपनी को अनेकों प्रकार की प्रशाासनिक कठिनाइयों से उलझना पड़ता, चूंकि कंपनी को भारतीय परिवेश एवं प्रशासन की गहन जानकारी नहीं थी इसीलिए उसने प्रशासनिक कठिनाईयों से बचने के लिए द्वैध शासन लागू किया।
- अन्य यूरोपीय जो बंगाल में व्यापार कर रहे थे, वे ब्रिटिश शासन को **'कर'** देने से मना कर सकते थे। इससे एक तरफ कंपनी को राजस्व की हानि

होती तो दूसरी तरफ यूरोपीय राजनीति में ब्रिटिश एवं अन्य यूरोपीय देश के बीच बंगाल में टकराव से विवाद भी पैदा हो सकता था। इससे बचने के लिए कंपनी ने द्वैध शासन लागू किया।

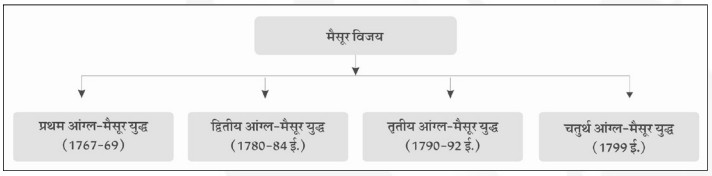
दुष्परिणाम

द्वैध शासन से बंगाल में प्रशासनिक अव्यवस्था फैली। वस्तुत: बंगाल के नवाब को कानून व्यवस्था लागू करने और न्याय करने की स्वतंत्रता थी। अत: कानून व्यवस्था की स्थिति कमजोर हुई। फलत: जनता को अत्यधिक कष्ट उठाना पड़ा। इतना ही नहीं, प्रशाासनिक शिथिलता का लाभ उठाकर कंपनी के एजेंट तथा बिचौलियों ने शिल्पकारों का अत्यधिक शोषण किया। वस्तुत: कम्पनी के व्यापारी कम दाम पर शक्ति के बल पर भारतीय शिल्पकारों से वस्तुओं की खरीद करते थे। अत: शिल्पकारों की दशा कमजोर हुई और उन्होंने निर्माण कार्य छोड़ दिया और जीवन यापन के लिए **डाकू** एवं **संन्यासी** बन गए।

द्वैध शासन से आर्थिक क्षेत्र में अव्यवस्था आई। वस्तुत: द्वैध शासन में कर संग्रह की नीलामी होती थी। प्रत्येक वर्ष नीलामी की राशि में अत्याधिक वृद्धि होने से किसानों पर **'कर'** का बोझ बढ़ा। अत: किसान कृषि कार्य छोड़ने लगा। फलत: उत्पादन में कमी आयी साथ ही, **किसानों का निर्धनीकरण** हुआ। फलत: अकाल की स्थिति पैदा हुई और इस अकाल के दौरान भी कंपनी का शोषण जारी रहा।

बंगाल से धन की निकासी तीव्र हुई। अत: बंगाल की आर्थिक कमजोरी तो बढ़ी ही साथ ही, कंपनी को भी आर्थिक क्षति उठानी पड़ी क्योंकि कंपनी के व्यापारी एवं कर्मचारी निजी व्यापार पर बल देते थे। अत: उनमें भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति बढ़ी।

मैसूर विजय



भारत में मुगल साम्राज्य के पतन के क्रम में कई क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ, जिनमें दक्षिण के मराठा एवं निजाम के साथ ही मैसूर भी महत्त्वपूर्ण है। मैसूर के दक्षिण भारतीय शक्ति के रूप में स्थापित होने के पीछे **हैदर अली** एवं **टीपू सुल्तान** की व्यक्तिगत प्रतिभा की निर्णायक भूमिका रही है।

मैसूर के शक्तिशाली होने से न सिर्फ उसका समकालीन पड़ोसी राज्यों निजाम, मराठा आदि से संघर्ष हुआ वरन् ब्रिटिश कंपनी द्वारा दक्षिण में प्रभुत्त्व स्थापना के क्रम में मैसूर से संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

- 1799 ई. में मैसूर पर प्रभुत्त्व स्थापित करने तक अंग्रेजों को चार युद्ध लड़ने पड़े।
- ये युद्ध सिर्फ **अंग्रेजों** एवं **मैसूर** के लिए ही नहीं वरन् **दक्षिण भारतीय राजनीति** के लिए भी निर्णायक रहे।

प्रथम आंग्ल-मैसूर युद्ध (1767-69 ई.)

इस युद्ध के लिए निम्नलिखित कारकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही– हैदरअली की महत्त्वकांक्षा एवं विस्तारवादी नीति एवं अंग्रेजों के दक्षिण विस्तार की आर्थिक एवं राजनीतिक आवश्यकताओं के साथ ही मराठा, निजाम आदि दक्षिण भारतीय शक्तियों का मैसूर की बढ़ती शक्ति से चिंतित होना था।

- इस युद्ध के प्रारंभ होने में हैदरअली की विस्तारवादी महत्त्वाकांक्षा की प्रमुख भूमिका रही। साथ ही, वह दक्षिण भारत में अंग्रेजी प्रभाव की खत्म करना चाहता था।
- इस युद्ध में एक तरफ **हैदरअली** तथा दूसरी तरफ **अंग्रेज, मराठा** एवं **निजाम** की सम्मिलित शक्ति थी।
- अंग्रेजों ने **1766 ई.** में **निजाम** से संधि की थी जिसमें निजाम ने ब्रिटिश सहायता के बदले उसे **उत्तरी सरकार** देने का वादा किया था।
- 1767 ई. में जब युद्ध प्रारंभ हुआ तो कुछ समय बाद ही यह त्रिगुट टूट गया। हैदरअली ने मराठों को धन तथा निजाम को कुछ देशों का प्रलोभन देकर गुट से अलग कर लिया।

विश्लेषण

इस युद्ध में **हैदरअली** काफी हद तक सफल रहा और एक संदर्भ में वह पहला भारतीय शासक था जिसने प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों को हराया। **हैदरअली** जब विजय प्राप्त करते हुए मद्रास तक पहुँच गया तब विवश होकर अंग्रेजों ने **1769 ई.** में **मद्रास की संधि** की, जिसके प्रमुख प्रावधान निम्न थे;

- दोनों पक्ष एक-दूसरे के विजित क्षेत्रों को लौटा देंगे परन्तु कोई दूसरा पक्ष इन दोनों पर आक्रमण करता है तो वे एक-दूसरे की परस्पर सहायता करेंगे।
- मूलत: यह संधि **हैदर अली** के पक्ष में थी तथा उसने अपनी शर्तों पर यह संधि की थी। इससे अंग्रेजी अजेयता पर भी चोट पहुँची थी। इस युद्ध के परिणामोंने आगे होने वाले युद्धों को भी प्रभावित किया। प्रथम **आंग्ल-मराठा युद्ध (1775-82 ई.)** इसका स्पष्ट प्रमाण है।

द्वितीय आंग्ल-मैसूर युद्ध (1780-84 ई.)

इस युद्ध का तात्कालिक कारण मैसूर राज्य में स्थित माहे बंदरगाह जिसे फ्रेंच संचालित करते थे, पर अंग्रेजों द्वारा आक्रमण कर अधिकार करने का प्रयास करना था।

- बंदरगाह मैसूर राज्य के लिए सैन्य एवं आर्थिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था क्योंकि ज्यादातर सैन्य आपूर्ति या आयात-निर्यात की वस्तुएं इसी बंदरगाह से कार्यान्वित होती थीं। अत: विद्यमान परिस्थितियों में युद्ध अवश्यंभावी था।

इस युद्ध में मराठे एवं निजाम हैदर के साथ थे। प्रारंभ में ही हैदर ने **अरकाट** की महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त की। पर कुछ समय बाद अंग्रेजों ने निजाम को गुंटूर क्षेत्र देकर तथा मराठों के साथ **सालबाई (1782 ई.) की संधि** के प्रावधानों के तहत हैदर अली के गुट से अलग कर दिया। इस लड़ाई में अंग्रेजी सेना का नेतृत्व **आयरकूट** ने किया।

- **पोर्टोनोवा** की लड़ाई में हैदर अली की पराजय हुई तथा वह घायल हो गया और कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गई।
- हैदर की मृत्यु के पश्चात् युद्ध के दौरान ही 1782 ई. में **टीपू** ने मैसूर की कमान संभाली और संघर्ष को आगे बढ़ाया, पर **1784 ई.** के **मंगलौर संधि** से द्वितीय **आंग्ल-मैसूर** युद्ध की समाप्ति हुई। युद्ध बराबरी पर समाप्त हुआ तथा दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के जीते हुए क्षेत्र लौटा दिये।

तृतीय आंग्ल-मैसूर युद्ध (1790-92 ई.)

इस युद्ध के आरंभ होने के पीछे टीपू की नीतियों की प्रमुख भूमिका रही। टीपू ने यूरोपीय पद्धति पर अपनी एक विकसित सेना गठित की। साथ ही अंग्रेजों के विरुद्ध फ्रांस, तुर्की आदि देशों से वैदेशिक संबंध स्थापित किए।

इस समय फ्रांसीसी क्रांति का दौर था। टीपू ने स्वयं को **जैकोबियन क्लब** से जोड़ा। युद्ध के आरंभ होने का तात्कालिक कारण टीपू द्वारा पश्चिमी तट पर नियंत्रण का प्रयास था, जिसके परिणामस्वरूप पुन: त्रिगुट बना जिसमें **अंग्रेज, मराठे** एवं **निजाम** थे। युद्ध में टीपू की हार हुई। इस युद्ध की समाप्ति **1792 ई. की श्रीरंगपट्टनम की संधि** से हुई, जिसके प्रमुख प्रावधानों के अंतर्गत टीपू को अपना आधा राज्य अंग्रेजों को देना पड़ा अर्थात् अंग्रेजों को **डिंडिगुल,**

बारामहल, मालाबार क्षेत्र मिला जबकि मराठों को **तुंगभद्रा नदी** का उत्तरी भाग प्राप्त हुआ और हैदराबाद के निजाम को **कृष्णा** एवं **पेन्नार नदी** के बीच का भाग मिला।

इस संधि पर तत्कालीन **गवर्नर जनरल लॉर्ड कार्नवालिस** ने कहा था कि, *'हमने अपने मित्रों को अधिक मजबूत बनाए बिना ही अपने शत्रुओं को निर्णायक रूप से कमजोर बना दिया।'* इस संधि से ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार तो हुआ ही, साथ ही टीपू का राज्य काफी कमजोर हो गया, जिसकी अंतिम परिणति **1799 ई.** में मैसूर के पूर्ण पराजय के रूप में हुई।

चतुर्थ आंग्ल-मैसूर युद्ध (1799 ई.)

1792 ई. में पराजय के पश्चात् से ही टीपू सुल्तान युद्ध में हार एवं अपमान का बदला लेने की कोशिश कर रहा था। इसके लिए पुन: फ्रांस, तुर्की आदि देशों से वैदेशिक संपर्क बढ़ाकर सहयोग प्राप्त करना चाहा।

युद्ध का तात्कालिक प्रमुख कारण था **वेलेजली की सहायक संधि** की नीति द्वारा साम्राज्य विस्तार। जब वेलेजली ने संधि का प्रस्ताव भेजा तो टीपू ने इसे अस्वीकार कर दिया। परिणामत: वेलेजली ने मैसूर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

इस युद्ध तक टीपू बहुत कमजोर पड़ गया था फिर भी वह बहादुरी से लड़ा और लड़ते हुए मारा गया।

1799 ई. में मैसूर की राजधानी **श्रीरंगपट्टनम** पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। मैसूर की सत्ता **वाड्यार वंश** के अल्प वयस्क बालक को सौंपकर तथा उसे अंग्रेजी संरक्षण देकर मैसूर पर संधि थोप दी गई। इस संधि के बाद वेलेजली ने कहा था कि- *'पूरब का साम्राज्य अब हमारे कदमों में है।'*

मराठा विजय

मुगल साम्राज्य के कमजोर होने पर भारत में जिन राजनीतिक शक्तियों का उदय हुआ उनमें मराठे सवाधिक महत्त्वपूर्ण थे। मराठा शक्ति के संस्थापक **शिवाजी** से लेकर **पेशवा बालाजी बाजीराव** तक मराठा साम्राज्यवाद का लगातार विकास होता गया।

- **1761 ई. में पानीपत के तृतीय युद्ध** में अहमद शाह अब्दाली ने मराठों को बुरी तरह पराजित किया परिणामत: मराठे धीरे-धीरे कमजोर पड़ते गए। साथ ही यह भी तय हो गया कि मराठों की केन्द्रीय विकल्प बनने की स्थिति नहीं है।
- इधर अंग्रेज **1757 ई. के प्लासी विजय** के पश्चात से निरंतर सफलताएँ प्राप्त कर रहे थे साथ ही, **1759 ई. में बेदरा का युद्ध, 1760 ई. के वांडिवाश का युद्ध** तथा **1763 ई की पेरिस की संधि** से अपने समकालीन यूरोपीय व्यापारिक प्रतिद्वन्द्वियों से निपट चुके थे।
- अंग्रेज, मराठों को ही भारत में अपनी सर्वश्रेष्ठता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा मानते थे। अत: **1764 ई. में बक्सर विजय** के पश्चात वे इस तलाश में रहने लगे कि जब उचित अवसर मिले तब मराठों पर प्रभाव स्थापित किया जाये।



प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध (1775-82 ई.)

इस युद्ध का मूल कारण मराठों के आपसी झगड़े एवं अंग्रेजों की महत्त्वाकांक्षा थी। **1772 ई.** में **माधवराव** की मृत्यु के बाद **नारायण राव पेशवा** बना परन्तु **रघुनाथ राव** द्वारा उसकी हत्या कर दी गयी।

- **रघुनाथ राव** हर स्थिति में पेशवा पद चाहता था, इस कारण उसने अंग्रेजों से सहायता लेनी चाही। ब्रिटिश कंपनी की कलकत्ता, बंबई, मद्रास आदि में अलग-अलग सरकारें थीं।
- **रघुनाथ राव** ने बंबई सरकार के साथ **1775 ई.** में **सूरत की संधि** की। इसके तहत यह तय हुआ कि अंग्रेज, रघुनाथ राव को पेशवा बनाएंगे, बदले में अंग्रेजों को सैन्य खर्च के अतिरिक्त सालसेट एवं बेसिन क्षेत्र प्राप्त होंगे।
- इस संधि के पश्चात् मराठों एवं अंग्रेजों के बीच तनाव प्रारंभ हुआ और यही तनाव प्रथम अंग्रेज-मराठा युद्ध का कारण बना। 1775 ई. की सूरत की संधि के पश्चात् जब युद्ध चल रहा था तो तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए **कलकत्ता सरकार** ने सूरत की संधि को नहीं माना तथा युद्ध बंद करने का आदेश दिया।
- कलकत्ता सरकार ने मराठा प्रतिनिधि **नाना फड़नवीस** के साथ 1776 ई. में **पुरंधर की संधि** की, जिसके तहत **माधवराव-द्वितीय** को ही पेशवा माना गया तथा बदले में **सालसेट** क्षेत्र पर अंग्रेजी प्रभाव की बात की गई।
- **सूरत संधि** के बावजूद गतिरोध जारी रहा और युद्ध शांत नहीं हुआ। 1778-79 ई. में **बड़गाँव का युद्ध** हुआ जिसमें अंग्रेजों की भयंकर पराजय हुई और उन्हें बड़गाँव की संधि करनी पड़ी।

अंतत: 1782 ई. में **सालबाई की संधि** से युद्ध का अंत हुआ। यह संधि मराठा सरदार **महादजी सिंधिया** के प्रयासों से संभव हो पाई। संधि के प्रमुख प्रावधान निम्न थे;

- दोनों पक्ष एक-दूसरे के जीते हुए क्षेत्र वापस लौटा देंगे और माधव राव द्वितीय को ही पेशवा माना जायेगा। 3 लाख रुपये वार्षिक पेंशन रघुनाथ राव को दिया गया और सालसेट पर अंग्रेजी अधिकार की पुष्टि की गई।
- इस युद्ध से इस बात का भी संकेत मिला कि 1761 ई. में मराठों के पतन की जो बात की जा रही थी, उनमें अभी भी शक्ति है। अपनी आंतरिक फूट के बावजूद भी मराठों ने अच्छा प्रदर्शन किया।

द्वितीय आंग्ल-मराठा यद्ध (1803-06 ई.)

1800 ई. में नाना फड़नवीस की मृत्यु हो गई तत्पश्चात् मराठों की स्थिति और भी खराब हो गई। तत्कालीन पेशवा **बाजीराव द्वितीय (1796-1818 ई.)** अयोग्य था और वह अपनी सर्वोच्चता सिद्ध करने के लिए मराठा राज्यों में आपसी फूट को बढ़ावा देता था।

- **पेशवा** बाजीराव-द्वितीय ने **सिंधिया** से मिलकर होल्कर प्रमुख **यशवंत राव होल्कर** के छोटे भाई की हत्या कर दी। परिणामत: यशवंत राव होल्कर ने पूना पर आक्रमण कर दिया। लड़ाई में **पेशवा** एवं **सिंधिया** की सम्मिलित सेना पराजित हुई। इस स्थिति में **बाजीराव द्वितीय** ने पूना से भागकर बेसीन में शरण लिया और वहां अंग्रेजों से **1802 ई. में बेसीन (बसई की संधि)** की संधि की। इस संधि के द्वारा वह सहायक संधि के प्रावधानों को स्वीकार करता है। बेसीन की संधि के प्रमुख प्रावधान थे;
- दोनों पक्ष एक-दूसरे को सहयोग प्रदान करेंगे, पेशवा बाजीराव द्वितीय अपने राज्य में अंग्रेजों की सहायक सेना रखेगा, जिसके बदले में वह अंग्रेजों को 26 लाख वार्षिक आय वाला क्षेत्र देगा तथा पेशवा वैदेशिक संबंध के मामलों में कंपनी के निर्देशन में कार्य करेगा।
- इस संधि के पश्चात अन्य मराठा सरदार इससे रुष्ट हो गए और उन्होंने इस आपत्तिजनक संधि के विरुद्ध अंग्रेजों से युद्ध प्रारंभ कर दिये, पर उन्हें असफलता मिली और सहायक संधि के प्रावधानों के तहत ही निम्न संधियाँ करनी पड़ीं। **1803 ई. में भोंसले के साथ देवगाँव की संधि, 1803 में सिंधिया के साथ सुर्जी अर्जुनगाँव की संधि, 1805 ई.** में होल्कर के साथ **राजपुर घाट की संधि,** लेकिन बड़ौदा के **गायकवाड़** इनमें तटस्थ रहे।

- बेसीन संधि से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कंपनी को भारत का साम्राज्य मिल गया तथा बाजीराव द्वितीय द्वारा **बेसीन की संधि** के रूप में सहायक संधि के प्रावधानों को स्वीकार करने से यह तय हो गया कि मराठा विकल्प अब सिद्धातं एवं व्यवहार दोनों स्तर पर समाप्त हो चुका है।

तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध (1817-18 ई.)

लार्ड हेस्टिंग्स द्वारा (1813-1823 ई.) पिंडारियों के दमन की प्रक्रिया के पहले से ही व्याप्त अंग्रेजों एवं मराठों के बीच तनाव और व्यापक हो गए, जिसकी परिणति तृतीय अंग्रेज-मराठा युद्ध के रूप में हुई।

बाजीराव-द्वितीय पर यह दबाव बन रहा था कि वह मराठा प्रमुख का पद छोड़े। दबाव की परिस्थिति में **बाजीराव द्वितीय** ने 1817 ई. में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। आगे चलकर अन्य मराठा राज्य भी इसमें शामिल हुए और धीरे-धीरे सभी की हार हुई और संधियां करनी पड़ीं जैसे- पूना के पेशवा के साथ **पूना की संधि (1817 ई.)**, इसके तहत मराठा संघ भंग कर दिया गया तथा पेशवा नेतृत्व भी समाप्त हो गया, 1817 ई. में सिंधियां के साथ **ग्वालियर की संधि, 1818 ई. होल्कर** के साथ मंदसौर की संधि, नागपुर के भोंसले ने पहले ही **1816 ई. में नागपुर** की संधि कर ली थी।

अंतत: जब 1818 ई. में युद्ध का अंत हुआ तो बाजीराव-द्वितीय ने आत्मसमर्पण कर दिया। 1818 ई. में ही मराठा राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। पेशवा को पेंशनर बनकर बिठूर में (कानपुर) रहना पड़ा।

मराठा पतन के कारण

मुगल साम्राज्य के पतन के चरण में मराठे ही भारतीय शक्तियों में सर्वश्रेष्ठ विकल्प थे, पर निम्न कारणों से मराठों का पतन होता गया।

राजनीतिक कारण

केन्द्रीय शक्ति की दुर्बलता ने मराठा संघ को और कमजोर कर दिया साथ ही, समय-समय पर इनमें आपसी लड़ाइयाँ होती रहीं। इससे मराठा संघ कमजोर पड़ता गया तथा जब मराठे भारत की सर्वश्रेष्ठ शक्ति बने हुए थे तब उन्होंने बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन नहीं किया और स्वयं को क्षणिक स्वार्थों में उलझाये रखा। अगर वे चाहते तो नाममात्र के मुगल बादशाह को समाप्त कर प्रशासनिक उत्तरदायित्व लेते हुए अपने मराठा साम्राज्य की स्थापना कर शासन संभाल लेते, इससे वे संपूर्ण भारत के संसाधनों का भी प्रयोग करने में सफल हो सकते थे। **नाना फड़नवीस** के बाद मराठा नेतृत्व में योग्य नेतृत्व का अभाव हो गया था।

- **शिवाजी** के बाद के समय जिसमें मराठा सरदार, षड्यंत्र एवं अपने स्वार्थों में ही डूबे रहते थे, जिससे मराठा राज्य के प्रति जन सहभागिता निष्क्रिय हो गई। सैन्य दुर्बलताएँ जैसे गुरिल्ला युद्ध पद्धति की सीमाएँ इत्यादि के कारण भी मराठा अपने साम्राज्य को बनाए नहीं रख पाए।

- **मराठा प्रसार की चौथ** एवं **सरदेशमुखी कर की नीति** के कारण भी देशी राज्य मराठों से जुड़ नहीं पाए और मराठों ने अपने समकालीन वैदेशिक शक्तियाँ,विशेषकर ब्रिटेन के प्रति दूरदूर्शी नीति का पालन नहीं किया। वे ब्रिटिश खतरे का भी सही अंदाजा नहीं लगा सके, अहमद शाह अब्दाली से हार भी इसी अक्षमता का परिणाम था और अंतत: अंग्रेजों की सैन्य श्रेष्ठता, योग्य नेतृत्व, कुशल (समुचित) रणनीति आदि ने मराठों को परास्त किया।

चौथ सैन्य कर था जो तीसरी शक्ति के आक्रमण से सुरक्षा प्रदान करने के एवज में लिया जाता था। जबकि सरदेशमुखी कर विजित क्षेत्रों से वसूल किया जाता था।

सामाजिक-सांस्कृतिक कारण

शिवाजी के समय से मराठा राज्य एक सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा पर भी स्थापित हुआ था। इस राष्ट्रवाद को निर्मित करने में रामदास **(दासबोध के लेखक शिवाजी के गुरू)** आदि सुधारकों ने बड़ी भूमिका निभाई थी। इसके प्रभाव स्वरूप एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना को बल मिला था, पर आगे चलकर मराठा राष्ट्रवाद विकृत हो गया और क्षेत्रीय आधारों पर राष्ट्रीयताओं का विभाजन हुआ।

आर्थिक कारण

मराठों के पतन के लिए आर्थिक तत्वों की भी निर्णायक भूमिका रही। इनका मूल क्षेत्र उपजाऊ क्षेत्र नहीं था तथा **चौथ** और **सरदेशमुखी** जैसे करों को एक समय के बाद **वसूलना संभव** नहीं रहा और समुचित कर व्यवस्था के अभाव में मराठा साम्राज्य **आर्थिक अव्यवस्था का शिकार** हुआ, जिसने मराठों के पतन में निर्णायक भूमिका का निर्वहन किया।

सिंध विजय (1843 ई.)

अंग्रेजों की सिंध विजय तत्कालीन पृष्ठभूमि में हुए कुछ परिवर्तनों एवं सिंध क्षेत्र के अवस्थिति से संबंधित था।

कारण

- सिंध व्यापारिक सामरिक एवं राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। सिंध क्षेत्र से ही फारस की खाड़ी से होने वाला व्यापार संपादित होता था। वैदेशिक संबंधों की दृष्टि से भी सिंध महत्त्वपूर्ण था।
- **अफगानिस्तान** एवं **फारस** के रास्ते सिंध होते हुए भारत पर आक्रमण किया जा सकता था। इस समय रूसी प्रसार का दौर चल रहा था अत: रूसी प्रसार को रोकने एवं रूसी आक्रमण और फ्रेंच आक्रमण से सुरक्षा की दृष्टि से सिंध पर ब्रिटिश प्रभाव स्थापित करना आवश्यक था।

इसके अतिरिक्त प्रथम आंग्ल-अफगान युद्ध (1839-42 ई.) में अंग्रजों की अपमानजनक पराजय का सिंध विजय के साथ महत्त्वपूर्ण संबंध है। 1843 ई. में सिंध विजय संपन्न हुआ। सिंध पर अमीरों का शासन था। समय-समय पर इन्होंने अंग्रेजों के प्रभाव के कारण उनके कहे अनुसार संधिया कीं।

- **1809 ई.** में **गवर्नर जनरल लॉर्ड मिंटो** के समय फ्रांसीसी भय को समाप्त करने के लिए सिंध के साथ संधि की गयी।
- जिसमें यह प्रावधान था कि इनके सिंध में बसने पर रोक होगी। 1820 ई. में इसी संधि का नवीनीकरण किया गया और यह प्रावधान किया गया कि सिंध में अंग्रेजों को छोड़कर अन्य के बसने पर मनाही होगी।
- **1832 ई.** में संधि के तहत सिंध के नदी मार्गों एवं सडक़ को ब्रिटिश व्यापारियों के लिए खोल दिया गया।
- 1839 ई. में सिंध ने **सहायक संधि** के प्रावधानों को भी स्वीकार कर लिया। इसी समय प्रथम आंग्ल अफगान युद्ध में अंग्रेजी सेना की बुरी पराजय हुई तथा उसके मान-सम्मान एवं प्रतिष्ठा पर गहरा धक्का लगा तब कुछ अंग्रेज अधिकारियों ने सिंध विजय के माध्यम से अंग्रेजी पुनर्प्रतिष्ठा की स्थापना तथा सैन्य मनोबल में वृद्धि की बात सोची। उस समय **लॉर्ड एलनबरो (1842-44) गवर्नर जनरल** था तथा **चार्ल्स नेपियर** सिंध में अंग्रेज रेजीडेंट/प्रतिनिधि था। नेपियर ने सर्वप्रथम तीन मांगे रखीं-

1. सिंध का एक भाग कंपनी को सौंपा जाए।
2. सिंधु नदी में चलने वाले ब्रिटिश जहाजों के ईंधन का प्रबंध सिंध सरकार करे।
3. कंपनी को सिंध क्षेत्र में सिक्के ढालने का अधिकार मिले। जनवरी, 1843 ई. में नेपियर ने सैन्य शक्ति का प्रदर्शन करते हुए सिंध के कुछ दुर्गों पर

आक्रमण किया, प्रतिक्रिया में वहां के अमीरों ने अंग्रेज रेजीडेंसी पर आक्रमण कर दिया। इस स्थिति में नेपियर ने विधिवत रूप से सिंध के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। सिंध के अमीर परास्त हुए अंतत: अगस्त, 1843 ई. में सिंध पर विजय प्राप्त कर उसका अंग्रेजी राज्य के साथ विलय कर दिया गया।

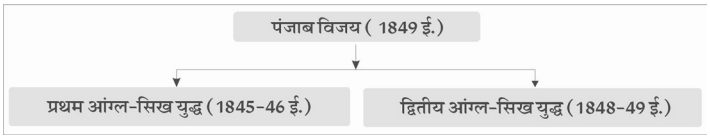
समीक्षा

भारत में अंग्रेजी सरकार का अपने पड़ोसी राज्यों के साथ संबंध साम्राज्यवादी भावना से प्रभावित रहा। शांतिपूर्ण वाणिज्यिक कंपनी ने जब राजनीतिक शक्ति हथिया ली तो उसकी सुरक्षा के लिए विस्तार होना शुरू हो गया। बार-बार विस्तारवादी नीति के खिलाफ घोषणा के बाद भी शक्तिशाली सत्ता अपनी राज्य सीमा को यथावत न रख सकी तथा अपने निकटवर्ती अव्यवस्थित लोगों को अधिशासन में विलय करती गई।

- यूरोप की अन्य साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रभाव को भी अंग्रेज भारतीय साम्राज्यवाद की ओर जाने वाले जल व थल मार्ग पर सहन नहीं कर सके। पड़ोसी राज्य जब तक मित्रवत और सहयोग के लिए उन पर निर्भर थे और किसी विदेशी प्रभाव से मुक्त थे, तब तक उन्हें चिंता नहीं थी, किन्तु उनकी शक्तिशाली अथवा अन्य शक्ति पर आश्रित होना उन्हें पसंद नहीं था।
- अंग्रेज अपने साम्राज्य के चारों ओर वे **'प्रभावित क्षेत्रों'** का घेरा स्थापित करना चाहते थे। किन्तु यदि दूसरे साम्राज्यवादी को उस ओर बढ़ते देखते तो उससे पूर्व की दूसरी शक्ति उसे हड़पे, अंग्रेज स्वयं भू-भाग पर अधिकार के अवसर से नहीं चूकते थे।
- 19वीं सदी के शुरू में औपनिवेशिक विस्तार नई व्यापारिक मंडियां प्राप्त करने के लिए था, 20वीं सदी में वह आर्थिक कार्यवाहियों की आड़ में बढ़ने लगा।

पंजाब विजय (1849 ई.)

18वीं सदी के अंतिम दशक में **रणजीत सिंह** के नेतृत्व में जिस पंजाब राज्य की सुदृढ़ स्थापना हुई थी, वह 1839 ई. में उनकी मृत्यु के साथ ही अव्यवस्था का शिकार हो गई। अस्थिरता की इस स्थिति में कई शासक आए जैसे- **खड़ग सिंह (1839-40 ई.), शेर सिंह (1840-43 ई.), दिलीप सिंह (1843-49 ई.)** आदि। इसी अस्थिरता को देखकर अंग्रेजों ने फायदा उठाया, जिसकी परिणति दो अंग्रेज सिख युद्ध के रूप में हुई।



प्रथम आंग्ल-सिख युद्ध (1845-46 ई.)

इस समय **दिलीप सिंह सिख** राजा थे। उसकी अल्पवयस्कता की स्थिति में **रानी जिंदल** उसकी संरक्षिका थी। रानी जिंदल की राजनीतिक महत्वाकांक्षा इस युद्ध का बड़ा कारण बनी। युद्ध के दौरान कुछ सिख सरदारों ने विश्वासघात किया। परिणामत: अंग्रजों से सिख पराजित हुए।

- **1846 ई.** में लाहौर पर अधिकार के बाद **लाहौर की संधि** करनी पड़ी। अन्य प्रावधानों के अतिरिक्त इसमें लाहौर में ब्रिटिश सेना की उपस्थिति निश्चित की गयी तथा **हेनरी लारेंस** को लाहौर में ब्रिटिश रेजीडेंट बनाया गया।

सिखों की पराजय के कारण

सिखों की पराजय का मूल कारण **दिलीप सिंह** की अयोग्यता, **रानी जिंदल** का अतिशय हस्तक्षेप, सिख सरदारों की स्वार्थपरता एवं विश्वासघात आदि थे।

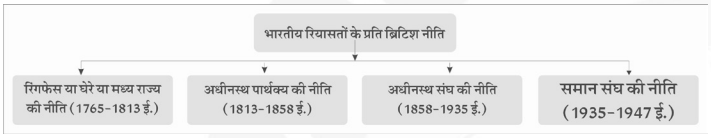
द्वितीय आंग्ल-सिख युद्ध (1848- 49 ई.)

प्रथम युद्ध से अंग्रेजी प्रभाव की शुरूआत के बाद जब **डलहौजी 1848 ई.** में भारत का गवर्नर जनरल बना तब वह पंजाब को अपने साम्राज्य में मिलाना चाहता था। इसी समय अंग्रेजी प्रभाव के विरुद्ध कुछ सिख सरदारों के विद्रोह से डलहौजी को यह मौका मिल गया। अंतत: अंग्रेजों एवं सिख सेना में युद्ध हुआ तथा **1849 ई.** में पंजाब राज्य पर विजय प्राप्त कर **डलहौजी** द्वारा उसे ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना लिया गया। यह अंग्रेजों द्वारा विजित अंतिम महत्त्वपूर्ण राज्य था।

भारतीय रियासतों के प्रति ब्रिटिश नीति
(British Policy for Indian State)

भारतीय रियासतों के साथ अंग्रेजों के संबंध दो नीतियों से निर्देशित थे- पहली, साम्राज्य की रक्षा के लिये उनसे संबंधों की स्थापना एवं उनका उपयोग तथा दूसरा, उन्हें पूर्णतया साम्राज्य के अधीन कर लेना (अधीनस्थ संघीय नीति)।

- 1857 ई. के विद्रोह के बाद की नीति शासकों को पदच्युत करने या उन्हें दंड देने की थी न कि उनके राज्य को विलय करने की। इसके साथ ही रियासतों को उनकी क्षेत्रीय अखंडता की गारंटी भी दी गयी तथा घोषणा की गयी कि सरकार रियासतों द्वारा किसी उत्तराधिकारी को गोद लेने के अधिकार का सम्मान करेगी।
- वस्तुत: **1757 ई.** में **प्लासी की विजय** से लेकर **1947 ई.** में **भारतीय आजादी** तक देशी रियासतों एवं कंपनी तथा ब्रिटिश सरकार की नीतियों के संबंध में कई चरण दिखायी पड़ते हैं।



रिंगफेस या घेरे या मध्य राज्य की नीति (1765-1813 ई.)

कंपनी ने अपने निरंतर बढ़ते हुए साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए अपने राज्य के चारों ओर मध्य राज्य स्थापित करने की नीति का अनुसरण किया।

- वारेन हेस्टिंग्स (1772-85) के समय इसका प्रारंभ देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए **बंगाल राज्य** की रक्षा हेतु **अवध की रक्षा** का भार उठाया गया ताकि अफगान व मराठों के आक्रमण से बंगाल की रक्षा की जा सके।
- **लॉर्ड वेलेजली (1798-1805)** ने अपनी सहायक संधि की नीति द्वारा इसे व्यवस्थित आधार प्रदान किया। **सहायक संधि** के द्वारा कई राज्य अपनी सुरक्षा के लिए कंपनी पर आश्रित हो गए।

अधीनस्थ पार्थक्य की नीति (1813-1858 ई.)

इस नई नीति के तहत रियासतों ने अपनी समस्त बाह्य संप्रभुता कंपनी के अधीन कर दी। हालाँकि अपने आंतरिक मामलों में वे पूर्ण स्वतंत्र थें। प्रारंभ में **ब्रिटिश रेजीडेन्ट, कंपनी** एवं भारतीय रियासतों के मध्य संपर्क सूत्र की भूमिका निभाता था। किन्तु धीरे-धीरे रियासतों के आंतरिक प्रशासन में उसके प्रभाव में वृद्धि होने लगी।

- 1833 के चार्टर एक्ट से कंपनी की समस्त व्यापारिक शक्तियां समाप्त हो गयीं तथा अब वह पूर्णरूपेण एक राजनीतिक शक्ति के रूप में कार्य करने लगीं।
- रियासतों के प्रति कंपनी की नीति में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह किया गया कि उत्तराधिकार के मसले पर अब उसे कंपनी की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक था।
- कालांतर में कंपनी ने उनके मंत्रियों तथा अधिकारियों की नियुक्ति में भी हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया।
- 1834 ई. में कंपनी के डायरेक्टरों ने रियासतों के विलय संबंधी एक विस्तृत दिशा-निर्देश जारी किया, जिसके अनुसार 'जब कभी और जहां कहीं संभव हो' रियासतों का कंपनी में विलय कर लिया जाए।
- **लॉर्ड डलहौजी** के विलय के सिद्धांत द्वारा लगभग आधा दर्जन रियासतें अंग्रेजी साम्राज्य में विलय कर ली गयीं, जिनमें सतारा एवं नागपुर जैसी बड़ी रियासतें भी सम्मिलित थीं।

अधीनस्थ संघ की नीति (1858-1935 ई.)

1858 ई. के एक्ट के तहत कंपनी का शासन समाप्त हुआ तथा शासन सीधे ब्रिटिश सम्राट के हाथों में आ गया। इस दौरान रियासतों के संबंध में नीतिगत परिवर्तन हुआ।

- **सम्राट ने विलय की नीति** को त्याग दिया क्योंकि वे इसका दुष्प्रभाव 1857 के विद्रोह में देख चुके थे।
- इस चरण में सरकार रियासतों को एक अधीनस्थ संघ की तरह देखता था। 1921 में इसी दृष्टि से नरेश मंडल (Chamber of Princes) का गठन हुआ। यह रियासत एवं भारत सरकार के मध्य संबंधों को निर्धारित करने के संदर्भ में एक सलाहकारी संस्था थी।
- आधुनिक संचार व्यवस्था, रेलवे, सड़कें, टेलीग्राफ, नहरें, पोस्ट ऑफिस, प्रेस तथा भारतीय जनमत ने भी अंग्रेजों को भारतीय रियासतों के मामलों में हस्तक्षेप करने तथा उनके अधिकार को कम करने में सहायक परिस्थितियों की भूमिका निभायी। भारत सरकार इन रियासतों के बाहरी और विदेशी संबंधों में भी पूर्ण नियंत्रण रखती थी।
- सरकार इनकी ओर से स्वयं युद्ध की घोषणा कर सकती थी, तटस्थता कर सकती थी एवं शांति संधि का प्रस्ताव पारित कर सकती थी।

बटलर समिति
सरकार तथा रियासतों के संबंधों के परीक्षण तथा इन्हें परिभाषित करने के लिए भारत सरकार ने 1927 ई. में 'बटलर समिति' की नियुक्ति की। समिति की प्रमुख सिफारिशें–
सर्वश्रेष्ठता, सर्वश्रेष्ठ ही रहनी चाहिए तथा इसे बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल अपना दायित्व निभाना चाहिए। अस्पष्ट मामलों में रीति-रिवाज महत्त्वपूर्ण होते हैं।
भारतीय रियासतों को उनके शासकों की अनुमति के बिना किसी ऐसी भारतीय सरकार को नहीं सौंपना चाहिए जो भारतीय विधानसभा के प्रति उत्तरदायी हो।
वायसराय, रियायतों के संबंध संचालन हेतु ताज का प्रतिनिधि होना चाहिए।
किंतु सर्वश्रेष्ठता को अभी भी स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया था। अंतत: यह राक्षसरूपी रिवाज, नरेंद्रों की निहित अनुमति तथा ताज के विशेषाधिकारियों पर पल्लवित होता रहा।
निष्कर्ष- बटलर समिति के गठन का उद्देश्य परमसत्ता और राजाओं के बीच के संबंधों से जुड़े मुद्दों की जांच करना था, ताकि ब्रिटिश भारत और भारतीय रियासतों के बीच संतोषजनक संबंधों की स्थापना की जा सके।

समान संघ की नीति (1935-1947 ई.)

1935 के एक्ट के प्रावधानों के तहत भारत सरकार ने राज्यों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के अधिकार द्वारा अपनी **'सर्वोच्च श्रेष्ठता'** की नीति को बनाए रखा।

- सरकार इन राज्यों में अपने रेजिडेंट नियुक्त कर या अधिकारियों की नियुक्ति या बर्खास्तगी संबंधी मामलों में हस्तक्षेप कर अपने हस्तक्षेप करने का अधिकार बनाए रखी और भारत सरकार ने संचार, रेलवे, सड़क, टेलीग्राफ,

नहरों, पोस्ट-आफिस आदि का इन राज्यों में आधुनिक ढंग से विकास किया गया तथा इन माध्यमों द्वारा भी उसे राज्यों में दखल देने का अवसर बराबर मिलता रहा।

- राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करने का सरकार का एक उद्देश्य यह था कि इससे राष्ट्रवाद के उदय एवं लोकतांत्रिक भावनाओं के प्रसार को रोका जा सके।

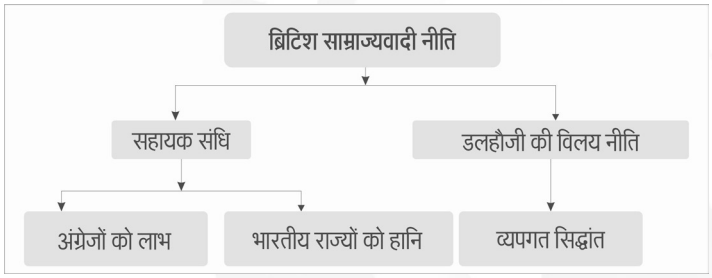
ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति (British Imperialistic Policy)

ब्रिटिश सर्वोच्च सत्ता के साम्राज्यवादी विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया, कंपनी द्वारा 1757-1857 ई. के दौरान दो तरफा पद्धति

(i) विजय एवं युद्ध द्वारा विलय की नीति और

(ii) कूटनीतिक एवं प्रशासनिक तंत्र द्वारा विलय की नीति के माध्यम से किया गया।

- कंपनी ने बंगाल, मैसूर, मराठा और सिख जैसी बडी़ भारतीय शक्तियों के विरुद्ध युद्ध करके, उन्हें परास्त कर अपने अधीन किया।
- लेकिन अन्य कई शक्तियों को अधीन करने के लिए ब्रिटिश शासकों ने युद्ध की जगह **कूटनीतिक** एवं **प्रशासनिक नीतियों** को अपनाया, जिससे आर्थिक व्यय से बचा जा सकें।
- इसी संदर्भ में, भारत में वेलेजली की **'सहायक संधि'** और डलहौजी का **'व्यपगत सिद्धांत या हड़प की नीति'** का उद्‌भव हुआ, जिससे भारत में ब्रिटिश प्रभुत्व का विस्तार तीव्रता से हुआ।



वैलेजली की सहायक संधि

सर्वप्रथम **डूप्ले** ने **सहायक संधि** प्रणाली जैसी अवधारणा भारत के दक्षिण राज्यों के संदर्भ में प्रस्तुत की। इसके तहत उसने भारतीय राजाओं को सैनिक सहायता देने के बदले धन प्राप्ति का लक्ष्य बनाया। किन्तु डूप्ले इस नीति को **संस्थागत** रूप नहीं दे सका।

- इस नीति से प्रेरित होकर क्लाइव ने भी कर्नाटक एवं अवध के साथ ऐसा संबंध बनाकर लाभ लेने का प्रयास किया। किन्तु पहली बार वेलेजली ने इसे ब्रिटिश साम्राज्यवादी विस्तार का साधन बनाकर उसकी विस्तृत व्याख्या की।
- वेलेजली से पूर्व ब्रिटिश साम्राज्यवाद की कोई स्पष्ट नीति नहीं थी और इससे ब्रिटिश हितों की पूर्ति नहीं हो पा रही थी। अत: वेलेजली ने आते ही ब्रिटिश हितों की पूर्ति के लिए अपने दो उद्देश्य घोषित किए।
- पहला, ब्रिटिश कंपनी को भारत की सर्वोच्च शक्ति बनाना।
- दूसरा, देशी रियासतों को अधीन बनाना।

वस्तुत: यूरोप में फ्रांस की क्रांति चल रही थी और नेपोलियन ब्रिटिश के विरूद्ध अभियान में संलग्न था। अत: अंग्रेजों के भारतीय उपनिवेश को भी खतरा पैदा हुआ साथ ही, मैसूर जैसी क्षेत्रीय शक्ति में एक ऐसी राजनैतिक प्रणाली की आवश्यकता थी जो भारतीय शक्तियों को यूरोपियों के सहयोग से वंचित करने के साथ ही, औद्योगिक क्रांति के इस दौर में ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं की बिक्री के लिए बाजार का निर्माण भी करे। इसी क्रम में वेलेजली ने सहायक संधि प्रणाली को लागू किया।

विशेषताएँ

- देशी राज्य की सुरक्षा के लिए अंग्रेज संबंधित राज्य में एक सेना रखेंगे, जिसका खर्च देशी राज्य देगा। यह धनराशि नकद या उस राज्य के किसी भू-भाग के रूप में होगी, इसका निर्धारण अंग्रेज करेंगे।
- अंग्रेजों की अनुमति के बिना देशी राज्य युद्ध या शांति के दौर में किसी अन्य राज्य से कोई संबंध नहीं बनाएगा अर्थात् देशी राज्य की विदेश नीति अंग्रेजों के अधीन रहेगी।
- देशी राज्य ब्रिटिश की अनुमति के बिना किसी यूरोपीय अथवा अंग्रेजों के शत्रु राज्य के व्यक्ति को अपनी सेवा में नहीं रखेंगे।
- संबंधित देशी राज्य में एक ब्रिटिश प्रतिनिधि (रेजिडेंट) रहेगा।
- ब्रिटिश संबंधित देशी राज्य के आंतरिक मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं करेंगे।
- इस नीति के तहत अंग्रेजों ने **निजाम, मैसूर, मराठा, अवध** आदि से **सहायक संधि** की।
- सबसे पहले यह संधि 1798 ई. में हैदराबाद के **निजाम** से की गई।
- फिर **मैसूर (1799 ई.), तंजौर (अक्टूबर 1799 ई.), अवध (नवंबर 1801 ई.), पेशवा (दिसंबर 1801 ई.), बरार के भोंसले (दिसंबर 1803 ई.), सिंधिया (फरवरी 1804 ई.), जोधपुर, जयपुर, मच्छेडी, बूंदी** और **भरतपुर** के साथ की गई।

अंग्रेजों को लाभ

- सहायक संधि प्रणाली का पूरा लाभ अंग्रेजों को मिला। अब फ्रांसीसियों के विरोध का भय समाप्त हो गया क्योंकि भारतीय राज्यों से उनके गठबंधन की समाप्ति हुई।
- कंपनी को एक बड़ी सेना के गठन का अवसर मिला जिसका निर्माण भारतीय धन से किया गया और अब इस सेना के माध्यम से कंपनी की साम्राज्यवादी पकड़ मजबूत हुई।
- इस संधि के माध्यम से अंग्रेजों के आर्थिक व्यापारिक हितों की पूर्ति हुई।

भारतीय राज्यों को हानि

सहायक संधि प्रणाली से भारतीय राज्यों ने अपनी स्वतंत्रता गिरवी रख दी अर्थात ब्रिटिश सर्वोच्चता को स्वीकार कर लिया। इस तरह उनकी संप्रभुता सीमित हुई।

- ब्रिटिश प्रतिनिधि राज्य के आंतरिक मामलों में अनेक प्रकार से हस्तक्षेप करते थे। अत: देशी राज्यों के शासकों को शासन चलाने में रूचि ही समाप्त हो गई।
- देशी राज्यों की आर्थिक दशा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। वस्तुत: ब्रिटिश सेना का खर्च भी भारतीय राज्यों को उठाना पड़ा तथा साथ ही समय-समय पर अंग्रेजों ने देशी राज्यों से उपहार स्वरूप धन की प्राप्ति की। फलत: देशी राज्यों की आर्थिक स्थिति कमजोर हुई।
- देशी राज्यों के शासक आलसी और विलासी हो गए क्योंकि उन्हें ब्रिटिश सुरक्षा का आश्वासन मिला था। वस्तुत : देशी राज्य अब इस दायित्व से मुक्त हो गए कि उन्हें अपनी प्रजा के लिए कुछ करना है और कुछ न करने पर प्रजा के विद्रोह का भय भी समाप्त हो गया क्योंकि इस विद्रोह से सुरक्षा की गारंटी अंग्रेजों ने दी थी।
- देशी राज्यों पर अपना प्रभाव स्थापित कर कंपनी ने देशी राज्यों को हस्तशिल्पों को संरक्षण देने से वंचित कर दिया। फलत: भारतीय हस्तशिल्प उद्योगों के पतन को बढ़ावा मिला। कुल मिलाकर सहायक संधि द्वारा अंग्रेजों को अत्यधिक लाभ मिला किन्तु, भारतीय रियासतों को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी। उनकी स्वतंत्रता समाप्त हो गई तथा वे अंग्रेजों की दया पर आश्रित हो गए और उन्हें आर्थिक बोझ भी वहन करना पड़ा।

विश्लेषण

इस प्रकार हम देखते हैं कि सहायक संधि की शक्ल में दिखने वाली यह एक ऐसी कुशलतापूर्ण नीति थी जिसने ब्रिटिश साम्राज्य को सुदृढ़ीकृत किया। साथ ही, उसके प्रसार में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा इसने आंतरिक एवं बाह्य दोनों संदर्भों में न सिर्फ ब्रिटिश साम्राज्य को संरक्षित किया वरन आगे संप्रभुता की पूर्ण स्थापना हेतु सहज मार्ग भी प्रशस्त किया।

डलहौजी की विलय नीति

डलहौजी एक प्रखर साम्राज्यवादी था। उसकी नीति भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार की थी। उसने कहा कि **'हमारी नीति देशी राज्यों का विलय करने की है।'** वस्तुत: लंदन में बैठे हुए निदेशक मंडल **(Board of Directors)** ने विस्तारवादी नीति पर बल देते हुए कहा कि नए करों की प्राप्ति अथवा प्रदेशों को प्राप्त करने का कोई अवसर न छोड़ा जाए।

- डलहौजी ने इस नीति का पालन करते हुए ब्रिटिश भारत के मानचित्र को ही परिवर्तित कर दिया इसके काल में ही साम्राज्य की प्रसार प्रक्रिया काफी हद तक एक पूर्णता को प्राप्त करती है।
- इस साम्राज्य विस्तार के लिए उसने कई प्रकार की नीतियां अपनाई जैसे युद्ध द्वारा विलय, शांतिपूर्ण विलय जिसमें उसने कुशासन के आधार पर राज्यों का विलय और **व्यपगत** या **हड़प नीति** के आधार पर विलय, जिसमें हड़प नीति या व्यपगत सिद्धांत सर्वाधिक चर्चित रहा।

युद्धों में महत्त्वपूर्ण विजय, 1849 ई. में पंजाब विजय। पंजाब की विजय इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह एक तरीके से अंतिम बड़ा स्वतंत्र राज्य था जिसे ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया गया। वैदेशिक मोर्चे पर **डलहौजी** के समय **द्वितीय आंग्ल-बर्मा युद्ध** हुआ जिसमें अंग्रेजों ने **लोअर बर्मा** क्षेत्र पर विजय प्राप्त की।

- **पद, पेंशन आदि समाप्त कर प्रभाव स्थापित** करने के उद्देश्य से **1853 ई.** में **पेशवा बाजीराव द्वितीय** की मृत्यु के बाद उनके गोद लिए गए पुत्र **नाना साहब (धोधू पंत)** को उत्तराधिकारी मानने से इनकार कर दिया व पेंशन भी बंद कर दी।
- **कर्नाटक के नवाब** के संदर्भ में भी ऐसा ही किया गया। 1853 में कर्नाटक के नवाब की मृत्यु पर मद्रास सरकार के सुझाव पर उसके उत्तराधिकारी को मान्यता नहीं प्रदान की गयी।
- डलहौजी की योजना मुगल सम्राट की उपाधि को समाप्त करने की थी, परंतु उसकी बातों को **बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स** ने अस्वीकार कर दिया।

कुशासन के आरोप के आधार पर 1856 ई. में अवध के ब्रिटिश रेजीडेंट (प्रतिनिधि) **आउट्रम की रिपोर्ट** को आधार बनाते हुए **कुशासन** के नाम पर **अवध का विलय** कर लिया गया।

व्यपगत का सिद्धांत

डलहौजी के पूर्व भी **गोद निषेध सिद्धांत** के आधार पर कुछ राज्यों पर प्रभाव स्थापित करने के उदाहरण मिलते हैं। इस संबंध में डलहौजी की भूमिका यह रही है कि उसने इस नीति को एक व्यवस्थित नियम में बांधने का काम तो किया साथ ही, तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप उसका कुशलतापूर्ण उपयोग भी किया।

- इस नियम का प्रमुख आधार था पुत्र विहीन कोई भी ब्रिटिश प्रभाव वाला राज्य, बिना ब्रिटिश अनुमति के गोद नहीं ले सकता था, साथ ही, बिना अनुमति गोद लिया हुआ पुत्र शासन का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता।
- इस समय यह नीति उन राज्यों के संदर्भ में लागू की गई जो राज्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों ने निर्मित किये थे, स्वतंत्र राज्यों पर यह नीति लागू नहीं होती थी।
- इस नीति को ही आधार बनाकर **सतारा (1848 ई.), जैतपुर, संभलपुर (1849 ई.), झांसी (1853 ई.), नागपुर** आदि को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया गया।

समीक्षा

हड़प नीति के तहत डलहौजी द्वारा विभिन्न श्रेणियों में मनमाने तरीके से राज्यों का बंटवारा करना तथा पैतृक वारिस न होने की स्थिति में उनके राज्यों को हड़प लेना पूर्णतया अनुचित था। अंग्रेज भारत की सर्वोच्च सत्ता नहीं थे। इन्होंने दीवानी अधिकार भी मुगल सम्राट से ही प्राप्त किया था।

अत: यह कहना कि कंपनी सर्वोच्च शक्ति थे अतार्किक है। वस्तुत: ब्रिटिश साम्राज्यवादी थे और एक साधन के रूप में उन्होंने गोद प्रथा को आधार बनाया।

ब्रिटिश साम्राज्य पर सकारात्मक प्रभाव

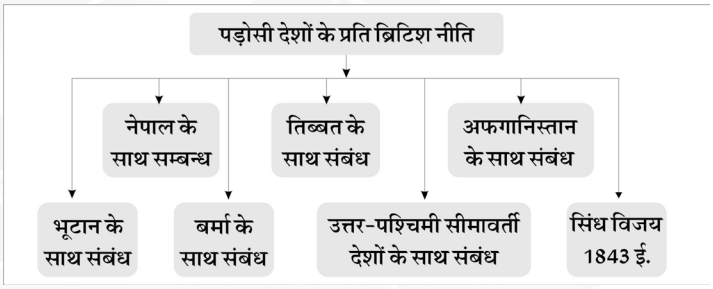
डलहौजी की हड़प नीति से ब्रिटिश साम्राज्यवाद का आधार मजबूत हुआ। भारतीय भू-भाग का एक बड़ा हिस्सा ब्रिटिश नियंत्रण में आ गया। बिना युद्ध के ही डलहौजी ने भारतीय मानचित्र पर ब्रिटिश झंडे का विस्तार किया।

- आर्थिक संसाधनों पर अंग्रेजों का नियंत्रण बढ़ा। वस्तुत: साम्राज्य विस्तार के साथ ही, एक विशाल बाजार की प्राप्ति हुई जो अंग्रेजों की मुक्त व्यापार की नीति से संचालित था।
- दरअसल **डलहौजी** का काल **मुक्त व्यापार** के सिद्धांत की एवं ब्रिटिश साम्राज्यवाद की प्रखर दोपहरी का काल था। डलहौजी के समय तक इंग्लैंड में चल रही औद्योगिक क्रांति अपने उच्च स्तर पर थी।
- इस नीति में ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं की बिक्री के लिए भारत को बाजार के तौर पर देखा। इसी क्रम में **विलय और विस्तार** की नीति अपनाई गई और डलहौजी ने हड़प नीति के माध्यम से बहुत कम समय में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार किया।

नकारात्मक प्रभाव

डलहौजी की पूरी साम्राज्यवादी नीति से भारतीय राज्यों में असंतोष पैदा हुआ। वस्तुत: राज्यों के विलय से शासक एवं जनता असंतुष्ट हुई। फलत: ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह भी हुए। इसे 1857 के विद्रोह के संदर्भ में समझा जा सकता है। जहां ब्रिटिश सरकार को कड़ी चुनौती का सामना करना पड़ा।

पड़ोसी देशों के प्रति ब्रिटिश नीति
(British Policy to Neighbouring Countries)



अंग्रेजों की विदेश नीति ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हितों की संरक्षक थी। एक तरफ संचार के आधुनिक साधनों के प्रयोग ने भारत को राजनीतिक एवं प्रशासनिक रूप से एक सूत्र में आबद्ध कर दिया। इसके साथ ही देश की रक्षा एवं अन्य कार्यों के निमित्त सरकार एवं प्रशासन की पहुँच देश के दूरदराज एवं सीमावर्ती क्षेत्रों में आसान हो गयी। इसके फलस्वरूप सीमावर्ती क्षेत्रों में झड़पें होने लगीं।

- वहीं दूसरी तरफ ब्रिटिश सरकार का एक प्रमुख उद्देश्य यह था कि वह एशिया एवं अफ्रीका में भारतीय साम्राज्य की सुरक्षा सुनिश्चित करे, ब्रिटेन के वाणिज्यिक एवं आर्थिक हितों का विस्तार करे तथा ब्रिटेन की प्रतिद्वंद्वी अन्य साम्राज्यवादी शक्तियों से अपने उपनिवेशों तथा अपने हितों की रक्षा

करें तथा उन्हें अक्षुण्ण बनाए रखे।
- इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासकों ने भारत के सीमा क्षेत्र से बाहर अनेक विजय प्राप्त की तथा अपने साम्राज्य का विस्तार किया, किन्तु इस क्रम में उसकी तत्कालीन अन्य साम्राज्यवादी ताकतों यथा- रूस एवं फ्रांस से झड़पें भी हुयीं।

भूटान के साथ संबंध

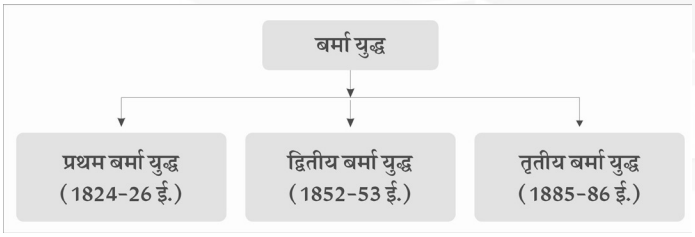
1816 ई. में **असम के अधिग्रहण** से भूटान भारत का पड़ोसी राज्य बन गया था।
- भूटानियों द्वारा समय-समय पर **असम** एवं **बंगाल** के सीमावर्ती क्षेत्रों में की जाने वाली लूटपाट एवं 1863-64 ई. में **लॉर्ड एल्गिन** के प्रतिनिधि से **दुर्व्यवहार** एवं उस पर थोपी गयी शर्तें, जिसके कारण अंग्रेजों को असम के सभी महत्त्वपूर्ण दर्रे भूटानियों को सौंपने पड़े, जो दोनों के मध्य झगड़े का प्रमुख कारण थे।
- बाद में अंग्रेजों ने इन दर्रों पर पुनः अधिकार कर लिया तथा भूटानियों को भत्ता देना बंद कर दिया।

नेपाल के साथ संबंध

- नेपाल के साथ विवाद के कारण 1814 में अंग्रेजों एवं नेपालियों के मध्य **गोरखा युद्ध** नामक भीषण युद्ध हुआ, जिसका अंत **सुगौली की संधि** से हुआ। इस संधि के अनुसार नेपाल ने अपने यहां **ब्रिटिश प्रतिनिधि (रेजीडेंट)** रखना स्वीकार कर लिया।
- **नेपाल** ने **कुमांऊ** एवं **गढ़वाल** जिले अंग्रेजों को सौंप दिये तथा तराई क्षेत्र पर दावा छोड़ दिया साथ ही सिक्किम भी अंग्रेजों को सौंप दिया।
- सुगौली की संधि से अंग्रेजों को कई लाभ हुए अब ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार हिमालय तक हो गया तथा मध्य एशिया में व्यापार के लिए उसे अच्छी व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त हुई और अंग्रेजों को कई महत्त्वपूर्ण पर्यटन स्थल एवं पहाड़ी सैरगाह मिल गए। जैसे **शिमला, नैनीताल** तथा **मसूरी** एवं **ब्रिटिश भारतीय सेना** को **बहादुर** एवं **लड़ाकू** जाति के **गोरखा** सैनिक भी मिलने लगे।

बर्मा के साथ संबंध

ब्रिटिश सरकार की विस्तारवादी नीतियों के परिणामस्वरूप जंगली संसाधनों की चाह, ब्रिटिश वस्तुओं के लिए बाजार की प्राप्ति तथा बर्मा एवं शेष दक्षिण-पूर्व एशिया में फ्रांसीसी महत्त्वाकांक्षाओं पर रोक लगाने के प्रयासों ने अंग्रेजों एवं बर्मा के मध्य तीन युद्धों को जन्म दिया।
- इन युद्धों में बर्मा की पराजय हुई और अंततः उसे ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया।



प्रथम बर्मा युद्ध (1824-26 ई.)- सन् 1822 ई. में बर्मा के **सेनापति महाबुंदेला** ने असम पर अधिकार कर लिया तदुपरांत **मणिपुर** को जीत लिया। जब उसने **कछार** राज्य को भी हस्तगत करना चाहा तो **लॉर्ड एमहर्स्ट** ने इसका विरोध किया। इस प्रकार बर्मा सरकार तथा अंग्रेजों के मध्य टकराव प्रारंभ हुआ।
- प्रथम बर्मा युद्ध की शुरूआत 24 फरवरी, 1824 ई. को हुई, जब बर्मा पर आक्रमण करने के लिए अंग्रेजों ने दो तरफ से सेना भेजी।
- पहली सेना उत्तर-पूर्व के स्थल मार्ग से **सर आर्चीबोल्ड केम्पबेल** के नेतृत्व में, दूसरी सेना समुद्री मार्ग से।
- मई, 1824 ई. में अंग्रेजों ने रंगून जीत लिया तथा फिर असम को भी हस्तगत कर लिया। **बर्मा सेनापति महाबुदेंला** अंग्रजों से युद्ध करते हुए मारा गया।
- 24 फरवरी, 1826 ई. को **अंग्रेजों** एवं **बर्मियों** के मध्य **याण्डबू की संधि** हुयी, जिसके अनुसार बर्मा सरकार ने अंग्रेजों को 1 करोड़ रुपये युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में दिये, **अराकान** और **टर्मासिरिम** के प्रांत अंग्रेजों को दे दिए, **असम, कछार** और **जैंतिया** पर अपना दावा छोड़ दिया, **मणिपुर को स्वतंत्र राज्य के रूप में मान्यता दे दी**, ब्रिटेन के साथ एक व्यापारिक संधि करना स्वीकार किया तथा आवा में एक अंग्रेज रेजीडेंट रखना स्वीकार कर लिया।
- इस संधि से अंग्रेजों को बहुत लाभ हुआ। उत्तर-पूर्व में उन्हें पर्याप्त भूमि मिल गयी तथा भविष्य में प्रसार के लिए बर्मा में उन्हें सुदृढ़ आधार प्राप्त हो गया।

द्वितीय बर्मा युद्ध (1852-53 ई.)- ब्रिटिश व्यापारी ऊपरी बर्मा के जंगलों पर अधिकार करना चाहते थे तथा वे बर्मा सरकार को व्यापारिक कर देने के पक्ष में भी नहीं थे और नए राजा के द्वारा पुरानी संधि की शर्तों को पालन करने से इंकार करने पर डलहौजी ने **लैम्बर्ट** के नेतृत्व में जहाजों का **बेड़ा रंगून** भेज दिया।
- लैम्बर्ट ने रंगून पहुंचकर अंग्रेज व्यापारियों की समस्याओं को बर्मा सरकार के सम्मुख उठाया तथा रंगून के **बर्मा गवर्नर** को हटाने की मांग की।
- साथ ही, उसने बर्मा के एक जहाज पर भी अधिकार कर लिया।
- इन घटनाओं के कारण अंग्रेजों एवं बर्मियों के मध्य युद्ध प्रारंभ हो गया। बर्मा की हार हुई और डलहौजी ने अपनी पूर्व योजना के अनुसार **लोवर बर्मा** को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

तृतीय बर्मा युद्ध (1885-86 ई.)- इस समय रंगून एवं निचले बर्मा के अंग्रेज व्यापारियों ने बर्मा के शासक **थीबो** पर सौतेला व्यवहार करने का आरोप लगाया। उसने **टिम्बर** कंपनी पर भारी जुर्माना लगा दिया था।
- अंत में **लॉर्ड डफरिन** ने बर्मा पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया तथा 1885 ई. में बर्मा को विजित कर (ऊपरी बर्मा को) ब्रिटिश साम्राज्य में विलय कर लिया गया।
- लेकिन बर्मा को अधिग्रहित करने के कुछ समय पश्चात् ही वहाँ अंग्रेजों के विरुद्ध **गुरिल्ला युद्ध** प्रारंभ हो गए, जिसके परिणामस्वरूप 1935 में बर्मा को भारत से पृथक कर दिया गया।
- **द्वितीय विश्व युद्ध** के समय **यू आंग सेन** के नेतृत्त्व में बर्मा का स्वतंत्रता आंदोलन अत्यंत तीव्र हो गया। अंततः बर्मा के स्वतंत्रता संग्राम को सफलता मिली तथा **4 जनवरी, 1948 ई.** को बर्मा आजाद हो गया।

तिब्बत के साथ संबंध

तिब्बत चीन के प्रतीकात्मक अधिपत्य में बौद्ध भिक्षुओं (लामाओ) द्वारा धर्मराज्य के रूप में शासित होता रहा था। तिब्बत पर चीन का अधिपत्य अप्रभावी था तथा यहां रूसी प्रभाव में धीरे-धीरे वृद्धि कर रहा था। इसको रोकने के लिए **यंगहस्बैंड** ने **ल्हासा** पर आक्रमण कर दिया (अगस्त, 1940 ई.) तथा दलाई लामा भारत की ओर रवाना हुए।
- **यंगहस्बैंड** ने तिब्बत के अधिकारियों के सम्मुख एक प्रस्ताव पेश किया, जिसके अनुसार तिब्बत, हानि की प्रतिपूर्ति के रूप में अंग्रेजों को 75 लाख रूपए देगा। यह रकम 1 लाख रुपए प्रतिवर्ष करके अदा की जाएगी, प्रतिपूर्ति की सुरक्षा (Security) के रूप में भारत सरकार **चुम्बी घाटी** (भूटान एवं सिक्किम के बीच का क्षेत्र) को 75 वर्ष तक अपने अधिकार में रखेगी, तिब्बत, सिक्किम की सीमाओं का सम्मान करेगा, **यातुंग, ग्यान्त्से** तथा **गंगटोक** के व्यापार बाजार को तिब्बत अंग्रेज व्यापारियों के लिए

खोल देगा।

- **तिब्बत, रेलवे, रोड, टेलीग्राफ** इत्यादि के क्षेत्र में किसी अन्य विदेशी राज्य को कोई रियायत नहीं देगा तथा उसकी विदेश नीति पर कुछ हद तक ब्रिटेन का अधिकार रहेगा।

उत्तर-पश्चिमी सीमावर्ती देशों के साथ संबंध

1849 ई. के पश्चात् अंग्रेजों की उत्तर-पश्चिमी सीमा नीति **लॉर्ड लारेंस** की **'हस्तक्षेप न करने'** के सिद्धांत पर आधारित रही। किन्तु 1876 ई. में **लिटन** के आने पर **कुशल अकर्मण्यता** की नीति समाप्त हो गयी तथा **अग्रगामी नीति** का अनुसरण होने लगा।

- इस समय अंग्रेजी नीति-निर्माताओं को एक वैज्ञानिक सीमा की महत्ता का एहसास होने लगा। विशेष रूप से द्वितीय अफगान युद्ध तथा अफगान क्षेत्रों को अधिग्रहित करने के पश्चात् इस धारणा को और बल मिला।
- **लॉर्ड लैंसडाउन** (जो कि 1888-94 ई तक वायसराय रहा) ने लिटन की अग्रगामी नीति का और विस्तार किया और अंतत: **डूरंड समझौते** से अफगानिस्तान एवं अंग्रेजी साम्राज्य के बीच सीमा समस्या का समाधान हो गया।

लॉर्ड कर्जन ने सीमा नीति के संबंध में वापसी तथा केंद्रीकरण की नीति अपनायी। नियमित अंग्रेजी सेना को कबाइली प्रदेशों में स्थित चौकियों से हटा लिया गया तथा कबाइली प्रदेश की रक्षा का दायित्व अंग्रेज अधिकारियों द्वारा प्रशिक्षित कबाइली सेना को सौंप दिया।

- कर्जन ने कबाइलियों को शांति स्थापित करने के लिए भी प्रोत्साहित किया। उसने भारत सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण में उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत नामक एक नए प्रांत का गठन किया।
- कुल मिलाकर कर्जन की नीतियों से शांतिपूर्ण उत्तर-पश्चिमी सीमा की स्थापना हुई। लेकिन उत्तर-पश्चिम सीमा में शांति स्थापना के पश्चात् भी कबाइलियों के उपद्रव की छिटपुट घटनाएँ होती रहीं। जनवरी, 1932 ई. में इस प्रांत को **गवर्नर के प्रांत** की स्थिति दे दी गयी। 1947 ई. में विभाजन के पश्चात् यह प्रांत **पाकिस्तान** में सम्मिलित हो गया।

अफगानिस्तान के साथ संबंध

आकलैंड , जो कि 1836 ई. में गवर्नर -जनरल बनकर भारत आए, वे अग्रगामी नीति के समर्थक थे। अफगानिस्तान का अमीर (शासक) **दोस्त मुहम्मद** ने मित्रता के लिए अंग्रेजों के सम्मुख यह शर्त रखी थी कि अंग्रेज अपने राजनीतिक प्रभाव का प्रयोग करके **रणजीत सिंह** से पेशावर उसे वापस दिला दें। लेकिन आकलैंड ने दोस्त मुहम्मद के इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इसके पश्चात् दोस्त मुहम्मद ने रूस एवं फारस की ओर रुख किया तथा इनसे सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया।

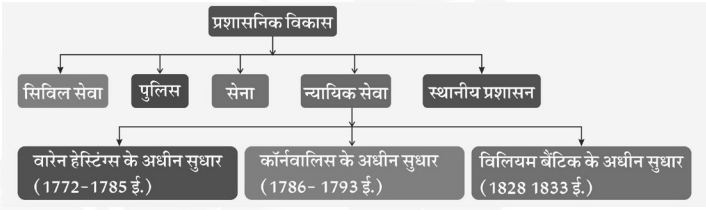
- दोस्त मुहम्मद के इस प्रयास से अंग्रेज सरकार अग्रगामी नीति अपनाने की ओर अग्रसर हुयी तथा उन्होंने **रणजीत सिंह** एवं **शाहशुजा** के साथ मिलकर **जून, 1838 ई. में त्रिदलीय संधि** पर हस्ताक्षर किए, जिसके तहत **शाहशुजा** को अफगान का शासक नियुक्त किया गया।
- लेकिन शीघ्र ही पूरी स्थित तेजी से बदल गयी। अंग्रेजों द्वारा फारस की खाड़ी में भेजे गए सैन्य अभियान से फारस का शासक अत्यंत भयभीत हो गया। इसी के कारण **प्रथम अफगान युद्ध (1839-42 ई.)** हुआ।
- अंग्रेजों की वास्तविक मंशा अफगानिस्तान पर प्रभुत्व जमाने की थी। दोस्त मुहम्मद ने आत्मसमर्पण (1840 ई.) कर दिया और **शाहशुजा को अफगानिस्तान का अमीर** घोषित कर दिया गया। अंग्रेजी सेना के वापस लौटते ही **अफगानों ने विद्रोह** कर दिया।

अंतत: दोस्त मुहम्मद से समझौता करके शीघ्र ही **काबुल** को खाली कर दिया तथा दोस्त मुहम्मद को अफगानिस्तान के स्वतंत्र शासक के रूप में मान्यता दे दी। **जॉन लारेंस** ने अफगानिस्तान के संबंध में कुशल अकर्मण्यता की नीति अपनायी। यह नीति प्रथम अफगान युद्ध में हुए अंग्रेजों के सर्वनाश का सीधा परिणाम थी। जॉन लॉरेंस की इस नीति के दो मुख्य उद्देश्य थे-

- पहला, सीमा में शांति भंग नहीं होनी चाहिए तथा
- दूसरा, देश के गृहयुद्ध में किसी भी उम्मीदवार का समर्थन नहीं किया जाना चाहिए।

उत्तराधिकार युद्ध के पश्चात् जब **शेर अली** अफगानिस्तान का शासक बना तो लारेंस ने उससे मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। 1876 ई. में लिटन के वायसराय बनकर आने पर अफगानिस्तान के संबंध में अपनायी गयी नीति में निश्चयपूर्वक परिवर्तन आया। **नयी नीति गौरवपूर्ण पार्थक्य** की थी, जिसमें वैज्ञानिक सीमाओं और प्रभाव क्षेत्रों को बनाए रखने पर बल दिया गया था। प्रथम विश्व युद्ध एवं रूस की क्रांति (1917 ई.) के पश्चात्, अफगान पूर्ण स्वतंत्रता की मांग करने लगे और अंग्रेजों के विरुद्ध खुले युद्ध की घोषणा कर दी। 1921 ई. में एक **शांति संधि** संपन्न हुयी, जिसके द्वारा अफगानिस्तान द्व ारा अपने सभी विदेशी मामले स्वतंत्रतापूर्वक चलाने के अधिकार को स्वीकार कर लिया गया।

प्रशासनिक विकास
(Administrative Development)



सिविल सेवा

भारतीय राजस्व को सुगमता से प्राप्त करने और औपनिवेशिक हितों की पूर्ति के लिए प्रशासनिक संरचना का निर्माण हुआ।

- **लॉर्ड कॉर्नवालिस पहला गवर्नर जनरल** था, जिसने भारत में इन सेवाओं को प्रारंभ किया तथा उनका गठन किया।
- **कॉर्नवालिस** ने भ्रष्टाचार को रोकने के लिए वेतन में वृद्धि, निजी व्यापार पर अधिकारियों द्वारा उपहार आदि लेने पर पूर्ण प्रतिबंध, वरिष्ठता के आधार पर तरक्की दिए जाने का प्रावधान किया।
- **लॉर्ड वेलेजली (1798-1805 ई.)** ने प्रशासन के नए अधिकारियों को प्रशिक्षण देने हेतु **फोर्ट विलियम कॉलेज** की स्थापना की।
- वर्ष 1806 में **कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स** ने वेलेजली के इस कॉलेज की मान्यता रद्द कर दी तथा इसके स्थान पर इंग्लैंड के **हैलीबरी (Haileybury)** में नव नियुक्त अधिकारियों के प्रशिक्षण हेतु **ईस्ट इंडिया कॉलेज** की स्थापना की गयी।
- यद्यपि **1833 के चार्टर एक्ट** द्वारा कंपनी के पदों हेतु भारतीयों के लिए भी प्रवेश के द्वार खोल दिए गए किन्तु वास्तव में कभी भी इस प्रावधान का पालन नहीं किया गया।
- **1853 ई.** के अधिनियम के तहत सिविल सेवा में प्रतियोगिता परीक्षा का प्रावधान किया गया, पर यह सिर्फ ब्रिटेन में होता था। इसमें अधिकतम आयु बहुत कम (1853 में 23 वर्ष) रखी गई थी। [1859 में 22 वर्ष, 1866 में 21 वर्ष, 1877 में 19 वर्ष (लिटन के समय)]।

- 1857 के पश्चात्, 1858 में **साम्राज्ञी विक्टोरिया** की घोषणा में यह आश्वासन दिया गया कि सरकार सिविल सेवाओं में नियुक्ति के लिए रंग के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करेगी तथा सभी भारतीय स्वतंत्रतापूर्वक सभी उच्च प्रशासनिक पदों को प्राप्त करने में सक्षम होंगे। किन्तु इस घोषणा के पश्चात् भी सभी उच्च प्रशासनिक पद केवल अंग्रेजों के लिए ही सुरक्षित रहे। 1893 में भारत एवं ब्रिटेन दोनों जगह परीक्षा लेने का प्रावधान किया गया।

सिविल सेवा से संबंधित कुछ आयोग

- ***एचीसन कमीशन (1886 ई.)***- प्रांतीय सिविल सेवा की सिफारिश की।
- **इसलिंगटन कमीशन/रॉयल कमीशन (1912 ई.)**
- ***ली कमीशन (1924 ई.)***- लोक सेवा आयोग की स्थापना की सिफारिश। (इस सिफारिश पर 1925 ई. में लोक सेवा आयोग की स्थापना हुई।)

पुलिस

पुलिस ब्रिटिश शासन का तीसरा स्तंभ थी। उसका सृजन करने वाला भी **कॉर्नवालिस** ही था। उसने जमींदारों को पुलिस कार्यों से मुक्त कर दिया और कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए एक नियमित पुलिस दल की स्थापना की। इसलिए थानों की पुरानी व्यवस्था के मामले में भारत ब्रिटेन से आगे हो गया। उस समय तक ब्रिटेन में पुलिस व्यवस्था विकसित नहीं हुई थी।

- कार्नवालिस ने **थानों की व्यवस्था** स्थापित की। हर थाने का प्रधान दरोगा था जो भारतीय होता था। बाद में, पुलिस के जिला सुपरिटेंडेंट (अधीक्षक) का पद बनाया गया। सुपरिटेंडेंट जिले में पुलिस संगठन का प्रधान हो गया।
- **गाँवों में पुलिस** की जिम्मेदारियों को चौकीदार निभाते थे जिनका भरण-पोषण गाँव वाले करते थे। पुलिस धीरे-धीरे डकैती जैसे प्रमुख अपराधों को कम करने में सफल हो गयी। पुलिस ने विदेशी नियंत्रण के विरुद्ध बड़े पैमाने पर षड्यंत्रों को भी रोका और जब राष्ट्रीय आंदोलन का उदय हुआ तब पुलिस का इस्तेमाल उसे दबाने के लिए किया गया।
- लोगों के साथ व्यवहार में भारतीय पुलिस ने असहानुभूतिपूर्ण रुख अपनाया। संसद की एक समिति ने 1813 ई. को अपनी एक रिपोर्ट में बताया कि **'पुलिस ने शांतिप्रिय निवासियों'** को उसी तरह लूटा मारा जैसे डकैत करते थे जबकि डकैतों को दबाने के लिए उसका आयोजन किया गया था।

सेना

भारत में ब्रिटिश राज के दूसरे महत्त्वपूर्ण स्तंभ के रूप में सेना थी। उसने तीन महत्त्वपूर्ण कार्य किए;

- वह भारतीय शक्तियों को जीतने के लिए औजार बनी।
- उसने विदेशी प्रतिद्वंद्वियों से भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा की और सदैव वर्तमान तथा आंतरिक विद्रोह के खतरे में ब्रिटिश प्रभुसत्ता को बचाए रखा।
- एशिया और अफ्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा का भी यही प्रमुख हथियार थी।

कंपनी की अधिकांश सेना भारतीय सिपाहियों की थी जिन्हें मुख्य रूप से उन क्षेत्रों से भर्ती किया गया था जो अभी उत्तर प्रदेश और बिहार में हैं। उदाहरण के लिए 1857 ई. में कंपनी की फौज में 3,11,400 सैनिक थे जिसमें से 2,65,900 भारतीय थे। कॉर्नवालिस के जमाने में उच्चस्तर पद केवल अंग्रेजों के लिए होते थे। 1856 ई. में सेना में केवल तीन ऐसे भारतीय थे जिनको 300 रुपये प्रति माह वेतन मिलता था और सबसे ऊंचा भारतीय अफसर एक सूबेदार था।

बड़ी संख्या में भारतीय सैनिकों को काम पर लगाना पड़ता था क्योंकि ब्रिटिश सैनिक अपेक्षाकृत अधिक खर्चीले थे। इसके अलावा, ब्रिटेन की जनसंख्या इतनी कम थी कि वह शायद भारत को जीतने के लिए बड़ी संख्या में सैनिक नहीं दे सकती थी। संतुलन के लिए फौज के सारे अफसर अंग्रेज रखे जाते थे और भारतीय सैनिकों को नियंत्रण में रखने के लिए ब्रिटिश सैनिकों को एक निश्चित संख्या में रखा जाता था।

अब इस पर बड़ा आश्चर्य होता है कि मुट्ठी भर विदेशी ऐसी फौज के जरिए भारत को जीतने और नियंत्रित करने में सफल हो सके, जिसमें भारतीयों का ही बहुमत था। ऐसा दो कारणों से संभव हुआ;

- एक ओर उस समय देश में **आधुनिक राष्ट्रीयता का अभाव** था। बिहार या अवध के किसी सैनिक ने न यह सोचा और ना ही वह यह सोच सकता था कि **मराठों या पंजाबियों** को हराने में कंपनी की सहायता कर वह **भारत विरोधी** हो रहा है।
- दूसरी ओर, भारतीय सैनिक की यह बड़ी पुरानी परंपरा रही थी कि वह जिससे वेतन पाए उसकी निष्ठापूर्वक सेवा करे। इसे आमतौर से **'नमकहलाली'** कहा जाता था।

दूसरे शब्दों में, भारतीय सैनिक भाड़े का एक बढ़िया सिपाही था और कंपनी एक अच्छी वेतनदाता थी। उसने अपने सैनिकों को नियमित रूप से और अच्छा वेतन दिया। यह एक ऐसी चीज थी जो भारतीय शासक और सरदार उस समय नहीं कर रहे थे।

संबंधित प्रमुख आयोग

- **पिल आयोग (1857 ई.** के विद्रोह के बाद की परिस्थितियों में 1859 ई. में गठित)।
- **स्कीन आयोग (1925 ई.)**
- **कर्जन (1899-1905 ई.)** के समय तत्कालीन सेनापति किचनर से विवाद चर्चित रहा।

न्यायिक सेवा

प्रारंभ में न्याय व्यवस्था जमींदारों के अधीन थी तथा न्याय का कार्य उनकी इच्छा पर निर्भर था।

वारेन हेस्टिंग्स के अधीन सुधार (1772-1785 ई.)

न्याय सुधारों की दिशा में **वारेन हेस्टिंग्स** द्वारा किए गए प्रयास अत्यधिक सफल रहे। उसने मुगल शासकों की न्यायिक प्रणाली को अपनाने का प्रयास किया। इससे पूर्व न्याय व्यवस्था अत्यंत अस्पष्ट एवं असंतोषजनक थी। वारेन हेस्टिंग्स ने न्याय व्यवस्था को दुरूस्त करने के लिए निम्न कदम उठाए-

- प्रत्येक जिले में एक जिला दीवानी अदालत व एक जिला फौजदारी अदालत स्थापित की गयी।
- **जिला दीवानी अदालत** में न्याय का कार्य कलेक्टर के अधीन होता था तथा यहाँ दीवानी मामलों की सुनवाई की जाती थी। इन अदालतों में हिंदुओं के लिए हिंदू विधि तथा मुसलमानों के लिए मुस्लिम विधि लागू होती थी। इन अदालतों में 500 रुपये तक के मुकद्दमें की सुनवाई हो सकती थी।
- **जिला दीवानी अदालत** के ऊपर सदर दीवानी अदालत होती थी, जहाँ जिला दीवानी अदालत के फैसले के विरुद्ध अपील की जा सकती थी।
- **सदर दीवानी अदालत में अध्यक्ष,** सर्वोच्च परिषद् के प्रधान तथा अन्य सदस्य होते थे। इनकी सहायता के लिए भारतीय अधिकारी होते थे।
- जिला फौजदारी अदालत में फौजदारी मामलों की सुनवायी की जाती थी। यह अदालत एक भारतीय अधिकारी के अधीन होती थी तथा कलेक्टर के सामान्य नियंत्रण में होती थी। इस अदालत में मुस्लिम कानून लागू होता था तथा न्याय की कार्यवाही खुली अदालत में की जाती थी। संपत्ति की जब्ती तथा मृत्युदंड के लिए **मुर्शिदाबाद** स्थित **सदर निजामत अदालत** से

स्वीकृति मिलना आवश्यक था।

- **जिला निजामत अदालत** के विरुद्ध सदर निजामत अदालत में अपील की जा सकती थी। इसका अध्यक्ष एक उप निजाम होता था तथा **एक मुख्य मुफ्ती, एक मुख्य काजी** तथा **तीन मौलवी** उसकी सहायता करते थे।

कॉर्नवालिस के अधीन सुधार (1786-1793 ई.)

जिला फौजदारी न्यायालय समाप्त कर दिए गए तथा इनके स्थान पर चार भ्रमण ाकारी न्यायालयों (Circuit Court) की स्थापना **कलकत्ता, ढाका, मुर्शिदाबाद** एवं **पटना** में की गई।

इन भ्रमणकारी न्यायालयों के न्यायाधीश यूरोपीय होते थे तथा ये दीवानी एवं फौजदारी दोनों प्रकार के मामलों की सुनवाई कर सकते थे।

सदर निजामत अदालत को कलकत्ता स्थानांतरित कर दिया गया। यह अदालत गवर्नर जनरल तथा उसके पार्षदों के अधीन कार्य करती थी। इनकी सहायता के लिए मुख्य **काजी** तथा **मुख्य मुफ्ती** होते थे।

जिला कलेक्टरों से न्यायिक तथा फौजदारी शक्तियाँ ले ली गईं। जिला दीवानी अदालतों को अब **जिला** या **शहर अदालत** के नाम से जाना जाने लगा। इन जिला अदालतों की सभी न्यायिक शक्तियां, जिला न्यायाधीशों को दे दी गईं। कलेक्टर के पास अब केवल **कर संबंधी** अधिकार शेष रह गए।

कॉर्नवालिस संहिता

लॉर्ड कॉर्नवालिस ने अपने न्यायिक सुधारों को अंतिम रूप देकर उन्हें 1793 ई. में एक संहिता (Code) के रूप में प्रस्तुत किया, जिसे **कॉर्नवालिस संहिता** के नाम से जाना जाता है। यह संहिता मुख्यतया **'शक्तियों के पृथक्करण' (Separation of Powers)** के सिद्धांत पर आधारित थी। इस संहिता द्वारा कॉर्नवालिस ने-

- कर तथा न्याय प्रशासनों को पृथक कर दिया।
- यूरोपियों के मामलों को भी अदालतों के अधीन कर दिया।
- सरकारी अधिकारियों को सरकारी कार्यों के लिए दीवानी अदालतों के सम्मुख जवाबदेह बना दिया।
- कानून के विशिष्टता का सिद्धांत (Principle of Sovereignity of Law) स्थापित किया।

विलियम बैंटिक के अधीन सुधार (1828-1833 ई.)

कॉर्नवालिस द्वारा स्थापित **चार प्रांतीय अपीलीय** तथा **भ्रमणकारी न्यायालय** समाप्त कर दिए गए तथा इनका कार्य **कलेक्टरों** तथा **दंडनायकों** को दे दिया गया, जो राजस्व तथा भ्रमणकारी आयुक्तों (Revenue and Circuit Commissioners) के अधीन होते थे।

दिल्ली तथा **आधुनिक उत्तर प्रदेश** (Upper Provinces) के लोगों की सुविधा के लिए इलाहाबाद में एक पृथक सदर दीवानी अदालत तथा एक सदर निजामत अदालत की स्थापना की गयी। अब यहां के निवासियों को अपील के लिए **कलकत्ता** नहीं जाना पड़ता था।

इस समय न्यायालयों की भाषा **फारसी** थी। अब न्यायालयों में फारसी के स्थान पर स्थानीय भाषाओं के प्रयोग की अनुमति दे दी गई, जबकि सुप्रीम कोर्ट में **फारसी** के स्थान पर **अंग्रेजी** का प्रयोग किया जाने लगा।

अन्य तथ्य

- 1859-61 ई. के बीच दंड विधि, सिविल कार्य विधि, दंड प्रक्रिया विधि आदि कई अधिनियम पारित किए गए।
- **1861 ई.** में **तीनों प्रेसिडेंसियों (कलकत्ता, बम्बई, मद्रास)** में हाई कोर्ट की स्थापना।
- **1882 ई.** में गवर्नर **जनरल रिपन** के समय **इल्बर्ट बिल** आया, जिसके तहत भारतीय एवं यूरोपीयों को दंड प्रक्रिया में समान रूप से लाने का प्रावधान था, किन्तु यूरोपीयों द्वारा भारी विरोध के कारण इसे वापस ले लिया गया।
- 1935 के अधिनियम के तहत 1935 में ही एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गई।

स्थानीय प्रशासन

वर्तमान भारत के शहरी स्थानीय शासन से जुड़ी संस्थाएं ब्रिटिश शासनकाल के दौरान अस्तित्व में आई और विकसित हुई।

- **1687 ई.** में भारत में पहले **नगर निगम** की स्थापना मद्रास तत्पश्चात **1726 ई. में बंबई** और **कलकत्ता** में हुई।

लॉर्ड मेयो (1870 ई.) के वित्तीय विकेन्द्रीकरण से संबंधित प्रस्ताव द्वारा स्थानीय स्वशासन संस्थाओं का विकास हुआ। विकेन्द्रीकरण के मुद्दे पर **रॉयल कमीशन** की नियुक्ति **1905 ई.** में की गयी, जिसने 1909 ई. में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

लॉर्ड रिपन के 1882 ई. के प्रस्ताव को स्थानीय स्वशासन का **'मैग्नकार्टा'** माना गया। **लॉर्ड रिपन को स्थानीय स्वशासन का जनक माना जाता है।** इसके समय में कई स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं को गठन किया गया एवं अधिकार दिए गए।

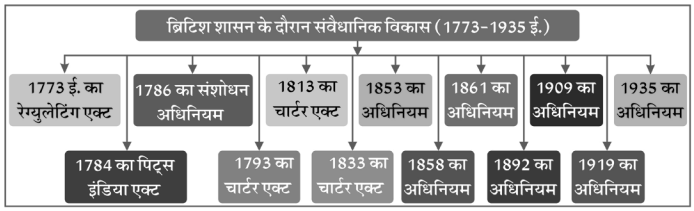
1919 ई. के भारत सरकार अधिनियम के द्वारा स्थानीय स्वायत्त शासन एक हस्तांतरित विषय बन गया तथा प्रत्येक प्रांत को अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुसार स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं के विकास की अनुमति मिल गयी। केन्द्र सरकार ने इस विषय पर प्रांतीय सरकारों को निर्देश देना बंद कर दिया।

ब्रिटिश शासन के दौरान संवैधानिक विकास (1773-1935 ई.)
(Constitutional Development During British Rule (1773-1935)

बंगाल में कंपनी ने राजनैतिक शक्ति प्राप्त करते हुए **द्वैध शासन** की स्थापना की। इस द्वैध शासन के दोष बंगाल में स्पष्ट रूप से दिखने लगे और कंपनी की वित्तीय स्थिति भी कमजोर हुई इसलिए द्वैध शासन में कंपनी के कर्मचारी भ्रष्टाचार के जरिए निजी लाभ कमा रहे थे। अत: कंपनी ने बंगाल में द्वैध शासन की समाप्ति कर **1772 ई.** में बंगाल पर प्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित किया।

मैसूर-मराठा युद्ध के दौरान कंपनी को अतिरिक्त धनराशि भी व्यय करनी पड़ी। अत: कंपनी ने ब्रिटिश सरकार से ऋण की मांग की। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश सरकार को कंपनी पर नियंत्रण स्थापित करने का अवसर मिला।

1767 ई. में ही सरकार ने कंपनी को बाध्य किया कि वह 4 लाख पाउंड ब्रिटिश सरकार को दे। इसी क्रम में कंपनी पर नियंत्रण करने वाले विभिन्न एक्ट बनाए गए जो कि निम्नलिखित हैं-



1773 ई. का रेग्यूलेटिंग एक्ट

कंपनी पर संसदीय नियंत्रण की स्थापना

- 1773 के अधिनियम से पहली बार ब्रिटिश मंत्रिमंडल का, जो कि ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी होता था, कंपनी के मामले में नियंत्रण स्थापित हुआ।

कंपनी के संविधान में बदलाव

- कंपनी को चलाने की दो प्रकार की संस्थाएँ थीं-
  - कोर्ट ऑफ प्रोप्राइटर्स (निवेशकों का समूह)
  - कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स (संख्या 24), 4 वर्ष के लिए निर्वाचित- (एक चौथाई सदस्य 1 वर्ष पश्चात् सेवानिवृत्त)

गवर्नर की जगह पर गवर्नर जनरल

- अब बंगाल का गवर्नर, **गवर्नर जनरल** कहा जाने लगा।
- क्लाइव-बंगाल का पहला गवर्नर, बंगाल का अंतिम गवर्नर **वॉरेन हेस्टिंग्स**, प्रथम गवर्नर जनरल-**वॉरेन हेस्टिंग्स (1773- 1785 ई.)**]।
- गवर्नर जनरल की परिषद् में 4 सदस्य थे- **(1) बॉरवेल (2) क्लेवरिंग (3) फ्रांसिस (4) मॉनसन।**

एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना

- इस अधिनियम के तहत 1774 में **कलकत्ता** में एक **सर्वोच्च न्यायालय** की स्थापना की गई, जिसमें एक;
- मुख्य न्यायाधीश तथा तीन अन्य न्यायाधीश थे।
- मुख्य न्यायाधीश-**एलिजा इम्पे अन्य न्यायाधीश- हाइट, चैम्बर्स, लिमैस्टर।**

1784 का पिट्स इंडिया एक्ट

संसदीय नियंत्रण और बढ़ा

- 1784 के पिट्स इंडिया एक्ट द्वारा प्रस्तुत अधिनियम से कंपनी के मामलों में संसद का नियंत्रण और व्यापक हो गया।
- इसके लिए **'बोर्ड ऑफ कंट्रोल'** की स्थापना की गई।
- इस संस्था में 6 सदस्य थे, जिसकी नियुक्ति ब्रिटिश संसद द्वारा होती थी तथा इसका अध्यक्ष ब्रिटिश मंत्रिमंडल का सदस्य होता था। **गवर्नर जनरल के अधिकारों में वृद्धि।**
- सलाहकारी समिति में अब 4 की जगह 3 सदस्य हुए।
- 1773 के एक्ट में गवर्नर जनरल को निर्णायक मत तो प्राप्त था, पर **1784** के अधिनियम से वह अब तीन में से सिर्फ एक सदस्य की सहायता लेकर किसी प्रस्ताव को पारित करवा सकता था। इस प्रकार अब वह समिति के विरुद्ध निर्णय ले सकता था।

1786 का संशोधन अधिनियम

- यह मुख्यत: **कॉर्नवालिस** के संदर्भ में लाया गया, जिसके तहत उसे गवर्नर जनरल के साथ मुख्य सेनापति माना गया।
- विशेष परिस्थितियों में उसे परिषद के निर्णयों को रद्द करने का भी अधिकार मिला।

1793 का चार्टर एक्ट

- कंपनी का व्यापारिक अधिकार अगले 20 वर्षों के लिए बढ़ा।

गवर्नर जनरल के अधिकारों में वृद्धि

- 1786 के संशोधन अधिनियम की पुष्टि की गई, जिसके तहत गवर्नर जनरल को परिषद के निर्णयों को रद्द करने का अधिकार मिला था।
- बंगाल के गवर्नर जनरल का **बंबई** एवं **मद्रास प्रेसिडेंसियों** पर अधिकार स्पष्ट कर दिया गया। (हालांकि पहले ही 1773 के अधिनियम से बंगाल प्रेसिडेंसियों को बंबई और मद्रास प्रेसिडेंसी से अधिक महत्त्व प्राप्त था)।

1813 का चार्टर एक्ट

- 1813 में कंपनी के चार्टर की अवधि समाप्त होनी थी। कंपनी के व्यापारिक अधिकारों को बढ़ाया जाए या नहीं इस बात को लेकर विवाद था।
- इन परिस्थितियों में एक ओर कंपनी का भारत में विस्तार इतना अधिक हो गया कि उसके लिए यह संभव नहीं था कि यह व्यापारिक तथा राजनैतिक अधिकारी के रूप में कार्य कर सके।
- दूसरी ओर यूरोप में **नेपोलियन** की नीति के कारण अंग्रेजों के लिए व्यापार संभव नहीं था। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए ब्रिटिश संसद द्वारा **1813** का **चार्टर एक्ट** लाया गया। कंपनी को अगले 20 वर्षों के लिए चार्टर मिला।

कंपनी के व्यापारिक एकाधिकार की समाप्ति

- हालाँकि अभी भी चाय के व्यापार एवं चीन के साथ व्यापार का एकाधिकार बना रहा।
- यह नीति मुक्त व्यापार नीति के संदर्भ में आई जिसके तहत ब्रिटिश औद्योगीकरण

के संदर्भ में अधिक से अधिक कच्चा माल एवं व्यापार के लिए कंपनियों की भागीदारी आवश्यक थी।

शिक्षा के संदर्भ में

- पहली बार 1813 के अधिनियम के तहत यह प्रावधान किया गया कि कंपनी शिक्षा पर एक लाख रुपए खर्च करेगी।

ईसाई मिशनरियों के संदर्भ में

- इस अधिनियम के तहत ईसाई मिशनरियों को भारत आने की छूट दी गई।

1833 का चार्टर एक्ट

- पुन: अगले 20 वर्षों के लिए चार्टर बढ़ाया गया (1793, 1813 में भी 20 वर्षों के लिए बढ़ाया गया)
- चाय के व्यापार तथा चीन के साथ व्यापार पर भी एकाधिकार समाप्त।
- 1813 के एक्ट में ही कंपनी के व्यापारिक एकाधिकार को समाप्त कर दिया गया था पर **चाय एवं चीन के साथ व्यापार** पर एकाधिकार बना रहा था।
- 1833 के अधिनियम से इन दोनों एकाधिकारों की समाप्ति हुई। इस प्रकार व्यापारिक एकाधिकार पूर्णत: समाप्त हो गए। कंपनी को अब सिर्फ **राजनैतिक** कार्य ही करने थे।

बोर्ड ऑफ कंट्रोल के अध्यक्ष के संदर्भ में

- 1833 के अधिनियम के तहत अब **बोर्ड ऑफ कंट्रोल** के अध्यक्ष को भारत से संबंधित मामलों का मंत्री बनाया गया। (बोर्ड ऑफ कंट्रोल की स्थापना 1784 ई. के अधिनियम के तहत हुई।
- इसमें 6 सदस्य थे, जिनकी नियुक्ति ब्रिटिश संसद द्वारा तथा इसका अध्यक्ष ब्रिटिश मंत्रिमंडल का एक सदस्य होता था)

गवर्नर जनरल के संदर्भ में

- 1833 के अधिनियम से **बंगाल का गवर्नर जनरल भारत का गवर्नर जनरल** बन गया। 1773 के अधिनियम से बंगाल का गवर्नर, बंगाल का गवर्नर जनरल बन गया था।
- **1833** से भारत का गवर्नर जनरल तथा **1858 ई.** से भारत का वायसराय हो गया।
- अब गवर्नर जनरल की कानून बनाने की शक्ति भी बढ़ा दी गई।
- गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद में चौथे सदस्य के रूप में एक विधि सदस्य की नियुक्ति की गयी। हालांकि इसे अभी मत देने का अधिकार नहीं मिला। (1773 के अधिनियम में कार्यकारिणी में 4 सदस्य, 1784 में घटाकर 3 सदस्य, 1833 में विधि सदस्य के रूप में पुन: 4 सदस्य, पर मताधिकार नहीं, 1853 में विधि सदस्य को भी पूर्ण सदस्य की मान्यता अर्थात् मताधिकार भी मिला, विधि सदस्य के रूप में **लॉर्ड मैकाले** नियुक्त।
- एक **विधि आयोग** की नियुक्ति।

दासता की समाप्ति का प्रावधान

- **1833** के अधिनियम से दासता की समाप्ति का प्रावधान किया गया, हालाँकि इसे **लॉर्ड एलनबरो** के समय **1843 ई.** में लागू किया गया।

1853 का अधिनियम

बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के सदस्यों की संख्या 24 से 18 की गई

- 1853 के अधिनियम से कंपनी की संचालक संस्था बोर्ड ऑफ डायरेक्टर के सदस्यों की संख्या **24 से 18** कर दी गई। **(1773 ई. के अधिनियम के समय सदस्यों की संख्या 24 थी)**

प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर प्रशासनिक नियुक्ति

- 1853 के अधिनियम से प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति के लिए एक प्रतियोगिता परीक्षा के आयोजन का प्रावधान किया गया।

विधि सदस्य को पूर्ण सदस्य की मान्यता

- 1853 के अधिनियम से 1833 के अधिनियम के तहत नियुक्ति **चौथे सदस्य** के रूप में शामिल किए गए विधि सदस्य को अब **मत देने का अधिकार** भी मिला।
- इस प्रकार अब यह गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद का पूर्ण सदस्य हो गया।

1858 का अधिनियम

- सामान्यत: इसे भारत सरकार अधिनियम कहा गया पर इसे 'भारत के शासन को अच्छा बनाने के अधिनियम के नाम से प्रस्तुत किया गया।'

भारत से कंपनी शासन की समाप्ति

- 1858 के अधिनियम से भारत में कंपनी शासन की समाप्ति हुई और अब शासन सीधे **ब्रिटिश क्राउन** द्वारा संचालित होने लगा।

ब्रिटेन में परिवर्तन

- भारत सचिव पद–इस अधिनियम के तहत एक भारत सचिव का पद सृजित किया गया।
- प्रथम भारत सचिव **लॉर्ड स्टेनली था।** कांग्रेस की स्थापना के समय भारत सचिव–**लॉर्ड रेंडोल्फ चर्चिल था**।
- यह भारत सचिव ब्रिटिश मंत्रिमंडल का सदस्य होता था तथा ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी होता था।
- भारत सचिव की सहायता के लिए **'एक भारतीय परिषद' (Council of India)** का गठन किया गया। इसमें **15 सदस्य** होते थे।
- **भारत सचिव के ऑफिस** का व्यय **'होम चार्जेज'** या गृह शुल्क के रूप में भारतीय राजस्व से ही चुकाया जाता था।

भारत में परिवर्तन

- **वायसराय**– अब गवर्नर जनरल **ब्रिटिश क्राउन** के **प्रतिनिधि** के रूप में वायसराय कहा जाने लगा।

1861 का अधिनियम

पुन: एक विधि सदस्य की नियुक्ति

- 1861 के भारत परिषद अधिनियम से गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में पाँचवें सदस्य के रूप में **पुन: एक विधि सदस्य** की नियुक्ति की गई।

वायसराय को अतिरिक्त सदस्य की नियुक्ति का अधिकार

- 1861 के अधिनियम से वायसराय को अपनी कार्यकारी परिषद में **कम से कम 6** एवं **अधिक से अधिक 12** सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार मिला।

विभागीय प्रणाली/कैबिनेट सिस्टम की शुरूआत

- **1861 के अधिनियम** से पहली बार विभागीय प्रणाली शुरू हुई, जिसके तहत कार्यकारिणी के विभिन्न सदस्य भिन्न-भिन्न विभागों को देखते थे।

वायसराय को अध्यादेश जारी करने का अधिकार

- 1861 के अधिनियम के तहत ही वायसराय को **अध्यादेश** जारी करने का अधिकार मिला जो **6 महीने** के लिए वैध था।
- **मद्रास** और **बांबे प्रेसीडेंसी** को पुनः कानून बनाने एवं संशोधन करने का अधिकार मिला।

1892 का अधिनियम

- वायसराय को अतिरिक्त सदस्यों की संख्या में और वृद्धि का अधिकार।
- अब कम से कम 10 एवं अधिक से अधिक 16 तक वृद्धि कर सकता था। **(1861 के तहत कम से कम 6 एवं अधिक से अधिक 12 की वृद्धि का अधिकार)**

पहली बार निर्वाचित पद्धति सीमित रूप से स्वीकार

- 1892 के अधिनियम से ही पहली बार केंद्रीय विधान मंडलों के संबंध में **निर्वाचन या चुनाव पद्धति** को **सीमित रूप** से स्वीकार किया गया। हालाँकि अभी भी निर्वाचन के लिए **'मनोनीत'** शब्द का ही प्रयोग होता था।

सदस्यों के संदर्भ में

- 1892 के तहत सदस्यों को विभिन्न मामलों पर विचार रखने एवं प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया, पर पूरक प्रश्न पूछने और **बजट पर मत** देने का अधिकार नहीं दिया गया।
- **1909** में पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार, तथा **1919** में बजट पर मत व्यक्त करने का अधिकार मिला।

प्रतिनिधित्व नहीं तो कर नहीं का नारा

- 1892 के अधिनियम के संदर्भ में ही भारतीयों द्वारा यह नारा दिया गया था। (अमरीकी क्रांति के दौरान **स्टाम्प एक्ट** के विरोध में 1765 में अमेरिकियों ने **ब्रिटिश एक्ट** के विरोध में नारा दिया था। हालाँकि यह नारा **ब्रिटिश लोकतांत्रिक आंदोलन** की ही देन है, जब 17वीं सदी में लोकतंत्र के विकास के दौरान इस बात की मांग की गई)।

1909 का अधिनियम

- **मार्ले-मिण्टो सुधार** के तहत पहली बार औपचारिक रूप से विधानमंडलों में चुनाव का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया।
- **1892 ई.** में सीमित रूप से **चुनाव सिद्धांत** का प्रारंभ हुआ था।

विधान मंडलों का आकार एवं शक्ति में वृद्धि

- 1909 के अधिनियम के तहत **केंद्रीय एवं प्रांतीय** विधान मंडलों का आकार एवं शक्तियाँ बढ़ाई गई।

सदस्यों को पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार

- **1909** के अधिनियम से विधान मंडलों के सदस्य सार्वजनिक विषयों पर पूरक प्रश्न पूछ सकते थे, हालाँकि अभी भी इन्हें **बजट पर मताधिकार** नहीं मिला।

पृथक निर्वाचन पद्धति की शुरूआत

- 1909 के अधिनियम द्वारा पहली बार **मुस्लिमों** के लिए **आरक्षित सीट (Reserve Seat)** के रूप में पृथक निर्वाचन पद्धति की शुरूआत की गई। (निर्वाचन प्रक्रिया में मुस्लिमों की विशेष सुविधा हेतु आयु अर्हता भी कम रखी गई)

समीक्षा

वस्तुतः 1909 के सुधारों का प्रमुख उद्देश्य **नरमपंथियों** को गुमराह कर **राष्ट्रवादी दल** में **विभेद** पैदा करना तथा सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली के माध्यम से राष्ट्रीय एकता को नष्ट करना था।

- ब्रिटिश सरकार इस अधिनियम के माध्यम से **उदारवादियों** एवं **मुसलमानों** को एक दूसरे के विरोध में खड़ा कर **राष्ट्रवाद के तूफान** को रोकना चाहती थी, क्योंकि सरकार एवं मुस्लिम नेताओं द्वारा संपन्न किसी भी द्विपक्षीय वार्ता का मुख्य विषय पृथक निर्वाचन प्रणाली ही रहा। साथ ही, मुसलमानों का एक छोटा वर्ग ही इससे लाभान्वित हो सका। संभवतः यही कारण था कि भारतीयों के स्वशासन की मांग को नजरअंदाज किया गया।
- **जन प्रतिनिधित्व प्रणाली** एक प्रकार की बहुत सी छन्नियों में से छानने की क्रिया बन गयी। कुछ लोग स्थानीय निकायों का चुनाव करते थे, ये सदस्य चुनाव मंडलों का चुनाव करते थे और ये चुनाव मंडल प्रांतीय परिषदों के सदस्यों का चुनाव करते थे और यही प्रांतीय परिषदों के सदस्य केंद्रीय परिषद् के सदस्यों का चुनाव करते थे।
- सुधारों को कार्यान्वित करते हुए बहुत सी गड़बड़ियाँ उत्पन्न हो गयीं। संसदीय प्रणाली तो, दे दी गयी परन्तु उत्तरदायित्व नहीं दिया गया, जिससे सरकार की विवेकहीन तथा उत्तरदायी प्रक्रिया की आलोचना की जाने लगी।
- यद्यपि इस अधिनियम द्वारा चुनाव प्रणाली के सिद्धांत को भारत में सर्वप्रथम मान्यता मिली, गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद में पहली बार भारतीयों को प्रतिनिधित्व मिला तथा केंद्रीय एवं प्रांतीय विधान परिषदों के सदस्यों को कुछ सीमित अधिकार प्रदान किये गए किन्तु अधिनियम की औसत उपलब्धियां नगण्य ही रहीं।
- **1909 के सुधारों से** जनता को केवल **'नाममात्र'** सुधार ही प्राप्त हुए, वास्तविक रूप से कुछ नहीं मिला। इससे प्रतिनिधित्त्व तो मिला पर शक्ति नहीं। शासन का उत्तरदायित्व और शक्ति अन्य वर्ग को सौंप दी गई। ऐसी स्थिति पैदा हो गयी कि **विधानमंडल तथा कार्यकारिणी** के बीच कड़वाहट बढ़ गयी तथा भारतीयों और सरकार के संबंध और बदतर हो गए।
- 1909 के सुधारों से जनता ने कुछ और ही चाहा था उन्हें कुछ और ही मिला। भारतीयों ने स्वशासन की मांग की तथा उन्हें **'हितवादी निरंकुशता'** सौंप दी गयी। संभवतः यही कारण था कि राष्ट्रपिता **महात्मा गाँधी** ने **मार्ले-मिंटो** सुधारों को देश के सर्वनाश के रूप में देखा।

अगस्त घोषणा

- **16 मई, 1918 ई.** के भारत सरकार के इस प्रस्ताव में 20 अगस्त, 1917 की घोषणा के संदर्भ में सभी प्रश्नों की समीक्षा की गयी और कहा गया कि स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं पर कम-से-कम नियंत्रण हो तथा उन्हें गलतियों से सबक लेने का अवसर प्रदान किया जाए।
- विकेंद्रीकरण आयोग द्वारा दिये गए सुझावों को उन्होंने पृष्ठांकित किया एवं कर लगाने के मामले में नगरपालिकाओं को अधिक अधिकार दे दिये गए।
- ग्राम पंचायतों को केवल **स्थानीय संस्थाओं का प्रतीक** बनकर ही नहीं रहना चाहिए अपितु इन्हें ग्रामीण जीवन के आधुनिक व सर्वांगीण विकास का प्रयास भी करना चाहिए।
- प्रस्ताव में कहा गया कि जहां तक हो सके स्थानीय संस्थाओं को प्रतिनिधि

संस्थाओं का स्वरूप दिए जाए तथा किसी भी क्षेत्र में उनका अधिकार वास्तविक हो, नाममात्र का नहीं।

1919 का अधिनियम

- यह अधिनियम **मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड** सुधार की घोषणाओं के तहत आया।
- सर्वप्रथम अगस्त, 1917 ई. में **भारत सचिव मांटेग्यू** की घोषणा में भारत में उत्तरदायी शासन की बात की गई थी।
- **इस बात को 1919 के प्रावधानों में भी स्थान दिया गया।**

केंद्र स्तर पर परिवर्तन

- गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में **तीन भारतीय सदस्यों** की नियुक्ति हुई।
- विषयों को **केंद्र सूची** एवं **राज्य सूची** में बांटा गया। (1935 के अधिनियम के तहत केंद्र सूची, राज्य सूची एवं समवर्ती सूची में बाँटा गया)।

केंद्र में द्विसदनीय व्यवस्था का आरंभ

- राज्य परिषद् (Council of State, ऊपरी सदन)
- केंद्रीय विधान मंडल और संघीय सभा (Council of Assembly)।
- पहले सिर्फ एक सदन था, जिसका नाम **साम्राज्यिक विधान परिषद (Imperial Legislative Council)** था।

प्रांत/राज्य स्तर पर परिवर्तन

- नाम- अब **प्रांतीय परिषद, विधान परिषद** कहे जाने लगे।

प्रांतों में द्वैध शासन की शुरूआत

- 1919 के अधिनियम के तहत **प्रांतों** में **द्वैध शासन व्यवस्था** लागू की गई।
- इसमें शासन के विषय को **आरक्षित** एवं **हस्तांतरित** दो विषयों में बाँटा गया।
- आरक्षित विषय के तहत मुख्यत: राजस्व से संबंधित विषय थे, जिसका संचालन **गवर्नर जनरल** द्वारा मनोनीत **प्रांतीय मंत्रिमंडल** के सदस्यों द्वारा होता था।
- ये सदस्य **विधान मंडल** के प्रति उत्तरदायी नहीं होते थे।
- हस्तांतरित विषय के तहत **शिक्षा, स्वास्थ्य** आदि आता था, जिसका संचालन **प्रांतीय मंत्रिमंडल** के निर्वाचित भारतीय सदस्यों द्वारा होता था। ये विधान मंडल के प्रति भी उत्तरदायी थे।

सांप्रदायिक निर्वाचन पद्धति का विस्तार

- 1919 ई. के अधिनियम के तहत साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति का विस्तार करते हुए **सिखों, ईसाइयों** और **आंग्ल-भारतीयों (Anglo-Indians)** को भी शामिल कर लिया गया।
- **लोक सेवा आयोग** की स्थापना **(1925 ई.)** का प्रावधान किया गया।

समीक्षा

1919 का अधिनियम भारतीय संवैधानिक विकास के इतिहास में प्रमुख स्थान है जिसके तहत प्रांतीय विधान सभाओं के सदस्यों के लिए सर्वप्रथम व्यवस्था की गयी।

- जिसके द्वारा वे प्रश्न के साथ पूरक प्रश्न भी पूछ सकते थे।
- वे **आम जनता** की शिकायतों को दूर करने के प्रस्तावों पर विचार विमर्श कर सकते थे और जनता से संबंधित अत्यंत महत्त्वपूर्ण विषयों के लिए सदन स्थगित करने का नोटिस भी दे सकते थे। बजट पर न सिर्फ बहस बल्कि उस पर मत विभाजन भी करा सकते थे।
- इस अधिनियम से देश के मतदाताओं को मत देने की प्रणाली का व्यवहारिक बोध हुआ। साथ ही, **प्रांतीय स्वशासन** तथा **उत्तरदायी शासन प्रणाली** की व्यवस्था की गई इसके अतिरिक्त केंद्र ने **द्विसदनीय व्यवस्थापिका, केंद्रीय कार्यकारी परिषद** में भारतीयों को अधिक प्रतिनिधित्व, भारत मंत्री के **वेतन** एवं **भत्तों** को ब्रिटिश राजस्व से देने तथा भारतीय उच्चायुक्त की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी।

इन उपलब्धियों के अतिरिक्त इस अधिनियम की अपनी कुछ कमियां भी थीं, क्योंकि मताधिकार सीमित था और केंद्रीय विषयों का विभाजन अस्पष्ट एवं अव्यवहारिक था।

गवर्नर-जनरल और भारत के वायसराय

- ***बंगाल का गवर्नर-जनरल (1773-1833):*** जब ईस्ट इंडिया कंपनी भारत आई तो उसने **'बंगाल के गवर्नर'** (Governor of Bengal) पद के माध्यम से बंगाल पर अपना नियंत्रण स्थापित किया। बंगाल के पहले गवर्नर **'रॉबर्ट क्लाइव'** (Robert Clive) थे।
  - अन्य प्रेसीडेंसी, बॉम्बे एवं मद्रास के पास अपने स्वयं के गवर्नर थे।
  - हालांकि रेग्युलेरिंग एक्ट-1773 के पारित होने के बाद 'बंगाल के गवर्नर' पद का नाम बदलकर 'बंगाल का गवर्नर-जनरल' रख दिया गया। बंगाल के पहले गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्स (Warren Hastings) थे।
  - इस अधिनियम (रेग्युलेरिंग एक्ट-1773) के माध्यम से बॉम्बे एवं मद्रास के गवर्नर ने बंगाल के गवर्नर-जनरल के अधीन कार्य किया।
- ***भारत का गवर्नर-जनरल (1833-58):*** चार्टर एक्ट 1833 द्वारा बंगाल के गवर्नर-जनरल (Governor-General of Bengal) का का पदनाम पुन: बदलकर 'भारत का गवर्नर-जनरल' (Governor-General of India) कर दिया गया। भारत के पहले गवर्नर-जनरल विलियम बैंटिक (William Bentick) थे।
  - यह पद मुख्य रूप से प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए था और इसे ईस्ट इंडिया कंपनी के कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स को रिपोर्ट करना था।
- ***वायसराय (1858-1947):*** वर्ष 1957 के विद्रोह के बाद कंपनी के शासन को समाप्त कर दिया गया और भारत ब्रिटिश ताज के सीधे नियंत्रण में आ गया।
  - भारत सरकार अधिनियम 1858 (Government of India Act 1858) पारित हुआ जिसने भारत के गवर्नर जनरल का नाम बदलकर 'भारत का वायसराय' कर दिया।
  - वायसराय को सीधे ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त किया गया था।
  - भारत के पहले वायसराय लॉर्ड कैनिंग (Lord Canning) थे।
- भारत के महत्वपूर्ण गवर्नर-जनरल एवं वायसराय तथा उनसे संबंधित महत्वपूर्ण घटनाएँ।

गवर्नर-जनरल एवं वायसराय	*शासनकाल के दौरान की महत्वपूर्ण घटनाएँ*
वारेन हेस्टिंग्स (1774-1785)	• रेगुलेटिंग एक्ट-1773 • पिट्स इंडिया एक्ट-1784 • वर्ष 1774 का रोहिल्ला युद्ध • वर्ष 1775-82 तक प्रथम मराठा युद्ध और वर्ष 1782 में सालबाई की संधि • वर्ष 1780-84 में दूसरा मैसूर युद्ध
लॉर्ड कार्नवालिस (1786-1793)	• तीसरा मैसूर युद्ध (1790-92) और श्रीरंगपट्टम की संधि (1792) • कॉर्नवॉलिस कोड (1793) • बंगाल का स्थायी बंदोबस्त, 1793
लॉर्ड वेलेजली (1798-1805)	• सहायक संधि प्रणाली का परिचय (1798) • चतुर्थ मैसूर युद्ध (1799) • द्वितीय मराठा युद्ध (1803-06)
लॉर्ड मिंटो (1807-1813)	• रणजीत सिंह के साथ अमृतसर की संधि (1809)

लॉर्ड हेस्टिंग्स (1813–1823)	• एंग्लो-नेपाल युद्ध (1814–16) और सुगौली की संधि, 1816 • द्वितीय मराठा युद्ध (1817–19) और मराठा परिसंघ का विघटन • रैयतवाड़ी प्रणाली की स्थापना (1820)
लॉर्ड एमहर्स्ट (1823–1828)	• प्रथम बर्मा युद्ध (1824–1826)
लॉर्ड विलियम बेंटिक (1828–1835)	• सती प्रथा का उन्मूलन (1829) • 1833 का चार्टर एक्ट
लॉर्ड ऑकलैंड (1836–1842)	• प्रथम अफगान युद्ध (1838–42)
लॉर्ड हार्डिंग (1844–1848)	• प्रथम आंग्ल-सिख युद्ध (1845–46) और लाहौर की संधि (1846) • कन्या भ्रूण हत्या उन्मूलन जैसे सामाजिकसुधार
लॉर्ड डलहौजी (1848–1856)	• द्वितीय आंग्ल-सिख युद्ध (1848–49) • लोअर बर्मा का अधिग्रहण (1852) • व्यपगत के सिद्धांत (Doctrine of Lapse) का परिचय • वुड डिस्पैच (1854) • वर्ष 1853 में बॉम्बे और ठाणे को जोड़ने वाली पहली रेलवे लाइन बिछाई गई • लोक निर्माण विभाग (PWD) की स्थापना।
लॉर्ड कैनिंग (1856–1862)	• वर्ष 1857 का विद्रोह • वर्ष 1857 में कलकत्ता, मद्रास और बॉम्बे में तीन विश्वविद्यालयों की स्थापना • ईस्ट इंडिया कंपनी का उन्मूलन और भारत सरकार अधिनियम, 1858 (Government of India Act, 1858) द्वारा ब्रिटिश क्राउन का प्रत्यक्ष नियंत्रण • 1861 का भारतीय परिषद अधिनियम
लॉर्ड जॉन लॉरेंस (1964–1868)	• भूटान युद्ध (1865) • कलकत्ता, बॉम्बे और मद्रास में उच्च न्यायालयों की स्थापना (1865)
लॉर्ड लिटन (1876–1880)	• वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट (1878) • शस्त्र अधिनियम (1878) • दूसरा अफगान युद्ध (1878–80) • क्वीन विक्टोरिया ने 'कैसर-ए-हिंद' या भारत की साम्राज्ञी की उपाधि धारण की।
लॉर्ड रिपन (1880–1884)	• वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट का निरसन (1882) • पहला कारखाना अधिनियम (1881) • स्थानीय स्वशासन पर सरकार का संकल्प (1882) • इलबर्ट बिल विवाद (1883–84) • शिक्षा पर हंटर आयोग (1882)
लॉर्ड डफरिन (1884–1888)	• तीसरा बर्मा युद्ध (1885–86) • भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना (1885)
लॉर्ड लैंसडाउन (1888–1894)	• कारखाना अधिनियम (1891) • भारतीय परिषद अधिनियम (1892) • डूरंड आयोग की स्थापना (1893)
लॉर्ड कर्जन (1899–1905)	• पुलिस आयोग की नियुक्ति (1902) • विश्वविद्यालय आयोग की नियुक्ति (1902) • भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम (1904) • बंगाल का विभाजन (1905)

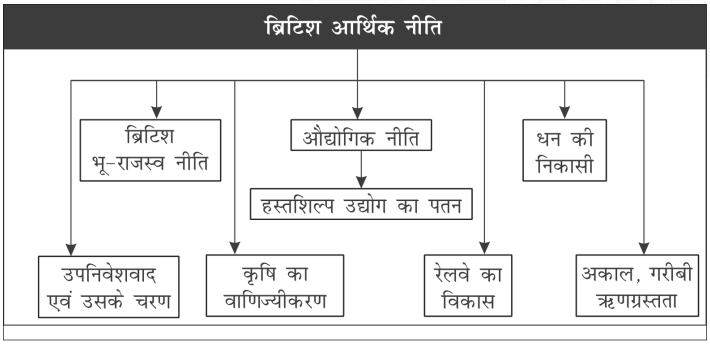
लॉर्ड मिंटो II (1905–1910)	• स्वदेशी आंदोलन (1905–1911) • सूरत अधिवेशन में कांग्रेस का विभाजन (1907) • मुस्लिम लीग की स्थापना (1906) • मॉर्ले-मिंटो सुधार (1909)
लॉर्ड हार्डिंग II (1910–1916)	• बंगाल विभाजन रद्द करना (1911) • कलकत्ता से दिल्ली राजधानी स्थानांतरण (1911) • हिंदू महासभा की स्थापना (1915)
लॉर्ड चेम्सफोर्ड (1916–1921)	• लखनऊ संधि (1916) • चंपारण सत्याग्रह (1917) • मॉन्टेग्यू की अगस्त घोषणा (1917) • भारत सरकार अधिनियम (1919) • रौलट एक्ट (1919) • जलियाँवाला बाग हत्याकांड (1919) • असहयोग और खिलाफत आंदोलन की शुरूआत
लॉर्ड रीडिंग (1921–1925)	• चौरी-चौरा की घटना (1922) • असहयोग आंदोलन का वापस लेना (1922) • स्वराज पार्टी की स्थापना (1923) • काकोरी ट्रेन डकैती (1925)
लॉर्ड इरविन (1926–1931)	• साइमन कमीशन का भारत आगमन (1927) • हरकोर्ट बटलर भारतीय राज्य आयोग (1927) • नेहरू रिपोर्ट (1928) • दीपावली घोषणा (1929) • कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन (पूर्ण स्वराज संकल्प) 1929 • दांडी मार्च और सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930) • पहला गोलमेज सम्मेलन (1930) • गांधी-इरविन पैक्ट (1931)
लॉर्ड विलिंगडन (1931–1934)	• सांप्रदायिक अधिनिर्णय (1932) • दूसरा और तीसरा गोलमेज सम्मेलन (1932) • पूना पैक्ट (1932) • भारत सरकार अधिनियम-1935
लॉर्ड लिनलिथगो (1934–1937) तथा (1938–1943)	• द्वितीय विश्व युद्ध (1939) के शुरू होने के बाद कांग्रेस के मंत्रियों का इस्तीफा • त्रिपुरी संकट और फॉरवर्ड ब्लाक का गठन (1939) • मुस्लिम लीग का लाहौर संकल्प (मुसलमानों के लिए एक अलग राज्य की मांग) 1940 • अगस्त प्रस्ताव (1940) • भारतीय राष्ट्रीय सेना का गठन (1941) • क्रिप्स मिशन (1942) • भारत छोड़ो आंदोलन (1942)
लॉर्ड वैवेल (1943–1947)	• सी. राजगोपालाचारी का सीआर फॉर्मूला (1944) • वैवेल योजना और शिमला सम्मेलन (1946) • बैबिनेट मिशन (1946) • प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस (1946) • क्लीमेंट एटली द्वारा भारत में ब्रिटिश शासन की समाप्ति की घोषणा (1947)
लॉर्ड माउंटबेटन (1947–1948)	• जून थर्ड प्लान (1947) • रेडक्लिफ आयोग (1947) • भारत को स्वतंत्रता (15 अगस्त 1947)
चक्रवर्ती राजगोपालाचारी (1948–1950)	• भारत के अंतिम गवर्नर-जनरल और प्रथम भारतीय गवर्नर जनरल थे। • वर्ष 1950 में स्थायी रूप से यह पद (गवर्नर-जनरल) समाप्त कर दिया गया।

ब्रिटिश आर्थिक नीतियाँ
(British Economic Policies)

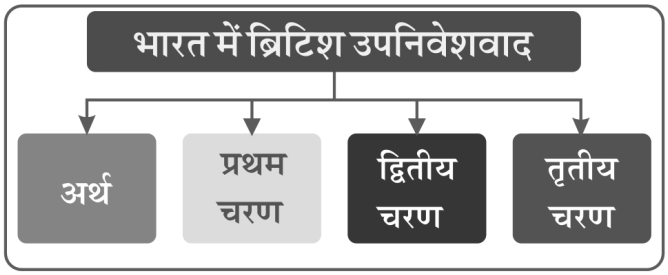
ब्रिटिश पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था
(Indian Economy before British)

भारत के आर्थिक इतिहास में ब्रिटिश शासन की स्थापना से व्यापक परिवर्तनों का दौर प्रारंभ हुआ। इन परिवर्तनों के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था एक **आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था से औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था** के रूप में रूपांतरित हुई।

- ब्रिटिश प्रभाव से पूर्व की भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप मूलत: कृषि प्रधान था परन्तु अर्थव्यवस्था के अन्य संदर्भों में जैसे- उद्योग, व्यापार, वाणिज्य आदि में समुचित विकास की स्थिति थी।
- **मुगलकाल** के विकसित अवस्था में ग्रामीण क्षेत्र में जहां कृषि एवं स्थानीय उद्योग समृद्ध एवं आत्मनिर्भर अवस्था में थे वहीं नगरीय क्षेत्रों में नगरीकरण की प्रक्रिया का समन्वित विकास जारी था।
- यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के आगमन से भारत के विदेश व्यापार में नए परिवर्तन आए, परन्तु व्यापारिक संतुलन भारत के पक्ष में ही रहा।
- **भारतीय अर्थव्यवस्था** पर ब्रिटिश प्रभाव मुगल शासक औरंगजेब की मृत्यु के बाद सहज ही परिलक्षित होने लगा था।
- उत्तरवर्ती मुगल शासकों द्वारा तत्कालीन यूरोपीय व्यापारियों को दी गई उदारतापूर्वक रियायतों ने स्वदेशी व्यापारियों के हितों को नुकसान पहुँचाया। साथ ही, व्यापार और वाणिज्यिक व्यवस्था भी कमजोर पड़ती गई, ऐसी स्थिति में यहाँ की घरेलू अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था।
- अंग्रजों ने **प्लासी (1757 ई.)** और **बक्सर (1764 ई.)** के युद्धों के बाद बंगाल की समृद्धि पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। फलत: भारतीय अर्थव्यवस्था अधिशेष तथा आत्मनिर्भरतामूलक अर्थव्यवस्था से औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गई।
- प्लासी के युद्ध के बाद बंगाल के अंतर्देशीय व्यापार में अंग्रेजों की भागीदारी बढ़ गई। कंपनी के कर्मचारियों ने व्यापार के लिए प्रतिबंधित वस्तुओं जैसे-**नमक, सुपारी और तंबाकू** के व्यापार पर भी अधिकार कर लिया।
- **बंगाल विजय से पूर्व,** अंग्रेजी सरकार ने अपने **कपड़ा उद्योग** के संरक्षण के लिए विविध प्रयास किए। इनमें भारत से आने वाले सूती कपड़ों के आयात पर आयात कर, भारतीय **रेशमी** एवं **छपे** या **रंगे** हुए वस्त्रों के प्रयोग पर इंग्लैंड में प्रतिबंध आदि प्रमुख हैं।
- भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करने के पीछे ब्रिटिश सरकार का मुख्य उद्देश्य अपने उद्योगों के लिए कच्चा व सस्ता माल प्राप्त करना और अपने उत्पादों को भारतीय बाजार में ऊँची कीमतों पर बेचना था।



भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद
(British Colonialism in India)



उपनिवेशवाद एक ऐसी संरचना होती है जिसके माध्यम से किसी भी देश का **आर्थिक शोषण** तथा **उत्पीड़न** होता है। इस संरचना के अंतर्गत कई प्रकार के **विचारों, अभिव्यक्तियों** और **नीतियों** का समावेश किया जा सकता है। यही उपनिवेशवादी संरचना वास्तव में उपनिवेशवादी नीति का **निर्णायक तत्व** होता है।

- उपनिवेशवाद का मूल तत्व **'आर्थिक शोषण'** में निहित होता है लेकिन किसी उपनिवेश पर **राजनीतिक कब्जा** बनाए रखने की दृष्टि से इसका भी अपना महत्व होता है।
- भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद मुख्यत: **तीन चरणों** से गुजरा। ये विभिन्न चरण भारत के आर्थिक अधिशेष को हड़पने के विभिन्न उपायों पर आधारित थे।
- **रजनीपाम दत्त** ने अपनी कृति **'इंडिया टुडे'** में भारतीय औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का अच्छा चित्रण किया है। इसमें उन्होंने **कार्ल मार्क्स** के भारत में ब्रिटिश **उपनिवेशवाद** और **आर्थिक शोषण** के जिन चरणों वाले सिद्धांत को आधार बनाया है, वे निम्नवत् हैं-
- ***वाणिज्यिक चरण***- **1757 ई. से 1813 ई.**।
- ***औद्योगिक मुक्त व्यापार***-**1813 ई. से 1860 ई.**।
- ***वित्तीय पूँजीवाद***- **1860 ई.** के बाद की अवस्था।

आरंभिक चरण अर्थात् **17वीं** और **18वीं** शताब्दी में ब्रिटिश उपनिवेशवाद का मुख्य उद्देश्य भारत के साथ व्यापार करने के बहाने उसे लूटना ही था। आगे चलकर 19वीं शताब्दी में भारत का प्रयोग ब्रिटेन में बनी हुई औद्योगिक वस्तुओं के लिए मुख्य बाजार के रूप में किया गया।

- **19वीं शताब्दी** के उत्तरार्ध में और **20वीं शताब्दी** के पूर्वार्ध में भारत स्थित **ब्रिटिश उद्योगपतियों** द्वारा देश में पूँजी-विनियोग की प्रक्रिया आरंभ की गई। इसे भारतीय श्रमिकों का बड़े पैमाने पर शोषण का आरंभ कहा जा सकता है।

उपनिवेशवाद का प्रथम चरण: वाणिज्यिक चरण
(1757-1813 ई.)

इंग्लैंड की **'ईस्ट इंडिया कंपनी'** ने प्लासी के युद्ध के बाद बंगाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। इसी समय से भारत में **ब्रिटिश उपनिवेशवाद** की स्थापना मानी जाती है अर्थात् **1757 ई.** से **19वीं शताब्दी** के आरंभ तक जब मुगलों का पतन हो रहा था, इधर ब्रिटिश **ईस्ट इंडिया कंपनी** की साम्राज्यवादी मानसिकता स्पष्टत: परिलक्षित होने लगी थी।

- उपनिवेशवाद के प्रथम चरण में अंग्रेजों का ध्यान **'आर्थिक लूट'** पर ही

केंद्रित रहा। कंपनी भारत के साथ व्यापार पर अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहती थी जिससे कि उसके साथ प्रतिस्पर्धा करने वाला कोई अन्य ब्रिटिश अथवा यूरोपीय व्यापारी या व्यापारिक कंपनी न हो।

- यूरोप के अन्य राष्ट्रों को भारत से दूर रखने के लिए कंपनी को फ्राँसीसियों तथा डचों के साथ लड़ाइयाँ लड़नी पडी। आरंभ में **बंबई, कलकत्ता** और **मद्रास** के जिन समुद्री क्षेत्रों पर कंपनी का नियंत्रण था, वहाँ की जनता पर कंपनी ने **स्थानीय कर** लगाने शुरू कर दिए और अपने **खजाने** को बढ़ाने की कोशिश की।
- शीघ्र ही कंपनी की यह अभिलाषा भी पूर्ण हो गई और **प्लासी के युद्ध** के बाद **बंगाल, बिहार** और **दक्षिण भारत** के कुछ हिस्से कंपनी के अधीन आ गए।
- परिणामत: जीते गए क्षेत्रों की सरकारी आय पर कंपनी का पूरा नियंत्रण स्थापित हो गया। **जमींदारों, नवाबों** और **स्थानीय शासकों** की जमा पूँजी हड़पने में यह नियंत्रण अत्यधिक कारगर सिद्ध हुआ।
- राष्ट्रीय धन का एकमात्र स्रोत **कृषि** रह गया और अधिकतर जनसंख्या कृषि पर निर्भर रहने लगी। यहाँ न सिर्फ **लगान की राशि** प्रत्येक वर्ष बढ़ती रही बल्कि उसे बेरहमी से वसूल भी किया जाता था। इसके अलावा जहाँ मुगल शासन में **कर** और **लगान** की रकम भारत में ही खर्च होकर वापस लोगों तक पहुँच जाती थी जिससे व्यापार और उद्योग फलते-फूलते रहते थे। वहीं कंपनी द्वारा वसूल किए गए कर और लगान की राशि, **वस्तुओं** और **कीमती धातुओं** के माध्यम से **इंग्लैंड** और **यूरोप** को निर्यात कर दी जाती थी। भारत की लूट इंग्लैंड में पूँजी संचय का अप्रत्यक्ष स्रोत थी जिसने इंग्लैंड में **'औद्योगिक क्रांति'** लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- ब्रिटेन की राष्ट्रीय आय का लगभग 2% हिस्सा भारत से प्राप्त होने वाली आय थी।
- ब्रिटिश उपनिवेशवाद के इस चरण की एक विशेषता यह थी कि कंपनी ने **न्यायिक व्यवस्था, प्रशासन, संचार, कृषि** एवं **औद्योगिक व्यवस्था** में किसी तरह का कोई मूल परिवर्तन नहीं किया। यदि कोई कुछ परिवर्तन किए भी गए थे तो उनका उद्देश्य केवल लगान को अत्यधिक प्रभावशाली ढंग से इकट्ठा करना था।
- समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद के इस वाणिज्यिक चरण के परिणाम **आम जनता** के लिए अत्यंत भयावह रहे।

उपनिवेशवाद का द्वितीय चरण: औद्योगिक मुक्त व्यापार (1813-60 ई.)

सन् 1813 से, भारत के व्यापार से कंपनी का एकाधिकार समाप्त हो गया और यहीं से औद्योगिक पूँजीवाद द्वारा भारत के शोषण का नया रूप सामने आया। यही कारण है कि भारत के साम्राज्यवादी शोषण के इतिहास में **1813 ई.** के वर्ष को महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

- ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के पश्चात् कई समस्याएँ उत्पन्न हुई। इनमें सबसे प्रमुख समस्या थी कारखानों में बने माल के लिए बाजार उपलब्ध कराना।
- सस्ती लागत पर तैयार **ब्रिटेन के कपड़ों** को भारतीय बाजारों में भेजा जाने लगा। ये कपड़े मिल में तैयार होते थे।
- इसलिए हाथ से बने भारतीय कपड़ों से सस्ते होते थे। परिणामस्वरूप, अंग्रेजी कपड़ों की सस्ती कीमतों के आगे भारतीय कपड़े टिक नहीं सके। फलत: भारतीय वस्त्र उद्योग कमजोर होने लगा।
- ब्रिटेन को आवश्यकतानुसार कच्चा माल उपलब्ध करवाने की दृष्टि से उपनिवेशवाद की इस व्यवस्था का अपना अलग ही महत्त्व था। इसका लक्ष्य भारत को ब्रिटेन के एक **अधीनस्थ बाजार** के रूप में विकसित करना था जिससे इसका आसानी से शोषण किया जा सके।
- भारत को **औद्योगिक पूँजीवाद (Industrial Capitalism)** के अनुकूल बनाने के लिए स्थानीय शिल्प उद्योगों को नष्ट कर, एक कृषि-प्रधान देश के रूप में परिवर्तित करना अंग्रेजों की एक सोची-समझी रणनीति का हिस्सा था।
- चूँकि अंग्रेज लोग आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन लाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने सर्वप्रथम भूमि व्यवस्था में प्रयोग करने शुरू किए।
- **स्थायी बंदोबस्त (Permanent Settlement)** द्वारा जमींदारों को **भूमि का मालिक** बनाए जाने के पीछे मुख्य उद्देश्य अपने लिए एक समर्थक वर्ग का निर्माण करना था।
- जहाँ एक ओर स्थायी बंदोबस्त अंग्रेजों की दूरगामी नीति का हिस्सा था, वहीं दूसरी ओर **रैय्यतवाड़ी व्यवस्था** भारत के किसानों के शोषण की चरम अवस्था थी।
- ब्रिटिश नौकरशाही ने खाद्यान्नों के स्थान पर वाणिज्यिक फसलों की उपज बढ़ाने के लिए बड़े किसानों को प्रोत्साहित किया।
- परिणामस्वरूप, देश में **अनाज की कमी** तथा **खाद्यान्न के मूल्यों** में वृद्धि हुई।
- औद्योगिक मुक्त व्यापार की इस अवस्था में जहाँ एक ओर भारत में तैयार माल के निर्यात के स्थान पर कच्चे माल के निर्यात में तेजी आई, वहीं दूसरी ओर इंग्लैंड से सूती कपड़ों के आयात में वृद्धि हुई।
- भारत से **कच्चे माल** के निर्यात तथा **ब्रिटिश कारखानों** में उत्पादित माल के आयात तथा इसके आंतरिक विक्रय के लिए देश में परिवहन साधनों के विकास की आवश्यकता थी। इस दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य **रेलवे का विकास** माना गया।
- रेलवे के विकास का द्वितीय प्रमुख कारण **ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा** हेतु सेना को दूर-दराज के क्षेत्रों तक पहुँचाना भी था, ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति होने वाले किसी भी विद्रोह को बिना किसी विलंब के कुचला जा सके।
- यह हमारा भ्रम ही है कि **तत्कालीन रेलवे विकास** को हम **भारत की प्रगति** से जोड़कर देखते हैं।

उपनिवेशवाद का तृतीय चरण: वित्तीय पूँजीवाद (1860 ई. के पश्चात्)

उपनिवेशवाद का यह चरण, प्रथम दो चरणों की ही तार्किक परिणति थी जिसके अंतर्गत उन चरणों की शोषण प्रक्रिया तो जारी रही किंतु उसके स्वरूप में परिवर्तन आ गया।

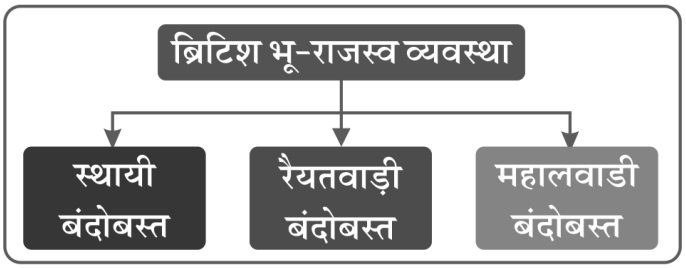
- इसके प्रेरक तत्वों में **1857 ई.** के विद्रोह की भूमिका उल्लेखनीय है जिसने अंग्रेजों को शोषण प्रक्रिया के स्वरूप में बदलाव करने के लिए मजबूर किया क्योंकि विद्रोह के दौरान अंग्रेजों को भारतीय जनता में उनके प्रति **संचित विद्रोह** का भलीभाँति आभास हो गया था।
- **दूसरा प्रमुख कारण अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य** में होने वाले बदलाव थे, जिसके अंतर्गत यूरोप के बढ़ते औद्योगीकरण के कारण वहाँ **'कच्चे माल की प्राप्ति व बाजार उपलब्धता'** के लिए प्रतिस्पर्धा थी।
- इसके अतिरिक्त इंग्लैंड में **औद्योगिक क्रांति** के फलस्वरूप वृहद पूँजी का सृजन हो गया था जिसके निवेश हेतु भारत एक अच्छा विकल्प था क्योंकि यहाँ श्रम की निम्न दरों के साथ ही **'दोहन रहित क्षमता'** पर्याप्त रूप से उपलब्ध थी।
- अत: इन सभी कारणों ने भारत में उपनिवेशवाद के एक **नवीन चरण** को जन्म दिया, जिसे वित्तीय **पूँजीवाद की संज्ञा** दी जाती है।
- वित्तीय पूँजीवाद की प्रक्रिया के तहत इंग्लैण्ड ने तत्कालीन भारत सरकार के **सार्वजनिक ऋण** में अपना एक महत्वपूर्ण भाग बना लिया।

- इसी प्रक्रिया का दूसरा पहलू था **रेलवे उद्योग** जिसके लिए ब्रिटिश निवेशकों को **5% ब्याज** की गारंटी प्रदान की जाती थी। ब्रिटिश निवेशकों ने इस चरण के दौरान निवेश के लिए जिन क्षेत्रों को चुना उनमें **वित्त बाजार** प्रमुख भूमिका में था इसके तहत बैंको तथा बीमा कंपनियों की स्थापना की गई। निवेश के अन्य क्षेत्रों में **चाय, कॉफी, रबड़ के बागान, जूट उद्योग** तथा **जहाजरानी** प्रमुख थे।
- सबसे रोचक पहलू इस वित्तीय पूँजीवाद के दौरान यह रहा कि ब्रिटिश ने उन उद्योगों **(सूती वस्त्र, इस्पात)** में निवेश नहीं किया जो कि आगे चलकर ब्रिटिश कंपनियों से प्रतिस्पर्धा करते।
- वित्तीय पूँजीवाद के **दुष्प्रभावों** ने भारतीय अर्थव्यवस्था को पहले से अधिक खोखला बना दिया। इस दौरान भारतीयों को **सार्वजनिक ऋण** पर ब्याज की अदायगी करनी पड़ी, जिससे पूँजी निर्माण व निवेश की प्रक्रिया कमजोर हो गई।
- **स्वदेशी उद्योगों** तथा **कृषि के विकास** को इस विदेशी वित्तीय पूँजीवाद ने पनपने नहीं दिया। इसी क्रम में भारतीय अर्थव्यवस्था क्रमशः पंगु होते-होते अंततः ब्रिटिश अर्थव्यवस्था से संलग्न एक औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था मात्र बनकर रह गई।
- इस प्रकार के आर्थिक शोषण की **राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों** ने आलोचना की, परिणामतः जन असंतोष मुखर हुआ और राष्ट्रीय आंदोलन की नींव पड़ी।

भारत में ब्रिटिश भू-राजस्व व्यवस्था (British Land Revenue System in India)

जब ब्रिटिश कंपनी को **बंगाल की दीवानी** प्राप्त हुई, तब कंपनी के सामने बंगाल में **भू-राजस्व व्यवस्था** के निर्धारण का प्रश्न उत्पन्न हुआ।

- आरंभ में **लॉर्ड क्लाइव** ने भारतीय अधिकारियों के माध्यम से ही भू-राजस्व की वसूली जारी रखी तथा भू-राजस्व व्यवस्था में परंपरागत ढाँचे को ही बरकरार रखा।
- भू-राजस्व की अधिकतम वसूली पर कंपनी शुरू से ही बल देती थी।
- इसके पीछे कंपनी का उद्देश्य भू-राजस्व संग्रह से प्राप्त एक बड़ी रकम का व्यापारिक वस्तुओं की खरीद में निवेश करना था।
- इसके अतिरिक्त सैनिक एवं अन्य प्रकार के खर्च को भी पूरा करने के लिए कंपनी भारतीय अधिकारियों के माध्यम से ही **भू-राजस्व की वसूली** करती रही।
- भू-राजस्व की वसूली की देख-रेख ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा ही की जाती थी। किन्तु, इस व्यवस्था का दुष्परिणाम यह रहा कि इस प्रकार की **दोहरी व्यवस्था** ने एक प्रकार के भ्रष्टाचार को जन्म दिया तथा किसानों का भरपूर शोषण हुआ।
- **1769-70 ई.** के भयंकर अकाल को अंग्रेजों की इसी राजस्व नीति के परिणाम के रूप में देखा जाता है।
- 1772 ई. तक क्लाइव की व्यवस्था चलती रही। इसके बाद **वारेन हेस्टिंग्स** के समय **बंगाल का प्रशासन** प्रत्यक्ष रूप में कंपनी के अंतर्गत आ गया। **वारेन हेस्टिंग्स** ने भू-राजस्व सुधार के लिए अनेक कदम उठाये।
- उसने पूर्वकाल में घटित सभी प्रकार के भ्रष्टाचार के लिए बंगाल के **दीवान रजा खान** को उत्तरदायी ठहराकर उसे अपदस्थ कर दिया।
- **वारेन हेस्टिंग्स** ने भारतीय अधिकारियों को हटाकर भू-राजस्व की वसूली को ब्रिटिश अधिकारियों के माध्यम से आगे बढ़ाया। इसका कारण यह रहा कि इसी समय कंपनी को भी एक बड़ी रकम की आवश्यकता थी। इसकी पूर्ति के लिए वारेन हेस्टिंग्स ने **1772 ई.** में एक नयी पद्धति की शुरुआत की, जिसे **फार्मिंग पद्धति (Farming System)** कहा जाता है।
- इस पद्धति के तहत **भू-राजस्व की वसूली ठेके पर नीलामी** द्वारा की जाने लगी। आरंभ में यह योजना **5 वर्षों के लिए** लायी गई थी तथा इसमें **जमींदारों** को अलग रखा गया था, क्योंकि वारेन हेस्टिंग्स ऐसा मानता था कि इसमें जमींदारों को सम्मिलित किये जाने का अर्थ होगा- सरकार का भू-राजस्व की एक बड़ी रकम से वंचित हो जाना।
- चूँकि जमींदारों का ग्रामीण क्षेत्रों में वर्चस्व था और वे भू-राजस्व के विशेषज्ञ थे, अतः उनके सहयोग के बिना यह योजना सफल नहीं हो सकी। यही कारण रहा कि **1776 ई. में वारेन हेस्टिंग्स** ने पंचवर्षीय योजना को रद्द कर एक वर्ष की योजना लागू की तथा इसमें जमींदारों को प्राथमिकता दी गई।
- इस प्रकार, वारेन हेस्टिंग्स प्रयोग की प्रक्रिया से ही गुजरता रहा। दूसरी ओर, **फार्मिंग पद्धति (Farming System)** से किसानों पर भू-राजस्व का **अधिभार** अत्यधिक बढ़ गया था। अतः कृषि अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हुई।
- इसी समय **ब्रिटेन अपना अमेरिकी उपनिवेश** खो चुका था। अतः वह भारतीय उपनिवेश के आधार को मजबूत करने का प्रयास कर रहा था।
- इन्हीं परिस्थितियों में बंगाल के **गर्वनर जनरल के रूप में कॉर्नवालिस** का आगमन हुआ।
- **लॉर्ड कॉर्नवालिस** ने यह अनुभव किया कि कृषि अर्थव्यवस्था में गिरावट के कारण कंपनी की रकम में उतार-चढ़ाव आ रहा था। बंगाल से निर्यात की जाने वाली दो प्रमुख वस्तुएँ थीं **सूती वस्त्र व रेशम**।
- इन वस्तुओं के कृषि उत्पाद से संबंधित होने के कारण और दूसरे कृषि अर्थव्यवस्था में गिरावट के कारण कंपनी का **निर्यात प्रभावित** होना स्वाभाविक ही था।



स्थायी बंदोबस्त (1793) Permanent Settlement

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए **भारत में धन** की आवश्यकता थी। वस्तुतः **वस्तुओं की खरीद, सैन्य सामग्री एवं किलों के निर्माण** तथा **अधिकारियों के वेतन भत्ते** आदि के लिए धनराशि की जरूरत थी और इस धन प्राप्ति का सर्वप्रमुख स्रोत **"भू-राजस्व"** था।

- यही वजह है कि ब्रिटिश ने प्रशासनिक-आर्थिक सुधारों में परिवर्तन भूराजस्व को ध्यान में रखकर किया और भू-राजस्व की राशि अधिकतम प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न नीतियाँ अपनाई। इन नीतियों में ऊपरी स्तर पर चाहे जो अंतर दिखता हो, किन्तु सबका लक्ष्य एक ही था अधिकतम भूराजस्व प्राप्त करना। इन भिन्न-भिन्न नीतियों के अपनाए जाने का कारण ब्रिटिश आवश्यकताएँ, स्थानीय परिस्थितियाँ एवं यूरोपीय विचारधारा थी।
- **1765 ई. में इलाहाबाद की संधि** के माध्यम से **बंगाल में दीवानी** अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् अंग्रेजों ने भू-राजस्व प्राप्त करना शुरू किया। इसी क्रम में भू-राजस्व राशि में वृद्धि की गई, जहां 1763-64 ई. में 64 लाख रुपये वसूले गए तो 1790 ई. में 2 करोड़ 68 लाख रुपये. वसूले गए। भू-राजस्व में यह वृद्धि ब्रिटिश की बढ़ती आवश्यकताओं को दर्शाती है।

- **कॉर्नवालिस ने 1793** में **'स्थायी बंदोबस्त'** को लागू किया। वस्तुत: भू-राजस्व राशि की प्राप्ति की अनिश्चितता को दूर करने के लिए स्थायी बंदोबस्त लागू किया गया। इसे लागू करने के क्रम में कॉर्नवालिस के समक्ष कुछ समस्याएँ भी आई, जैसे-
  - समझौता किससे हो, जमींदार या किसान से।
  - भू-राजस्व की राशि क्या हो?
  - लगान संबंधी समझौता कितने समय के लिए हो, 10 वर्षों के लिए या स्थायी।

गवर्नर जनरल के विचारों और उनके परामर्शदाताओं विशेषकर **जॉन शोर** तथा **चार्ल्स ग्रांट** में विरोधाभास था। अंतत: **कार्नवालिस** इस संदर्भ में जॉन शोर के विचारों से सहमत हुआ और जमींदारों से लगान संबंधी समझौता कर **1790 में वसूली** गई 2 करोड़ 68 लाख राशि को लगान के रूप में निर्धारित किया और इसे **1793 में स्थायी रूप** से लागू कर दिया गया।

उद्देश्य

- एक निश्चित भू-राजस्व की प्राप्ति करना अर्थात् स्थायी आय प्राप्त करना।
- प्रशासनिक कठिनाईयों से मुक्त रहना चूँकि कंपनी के अधिकारियों के पास अनुभव की कमी थी।
- एक ऐसे समर्थक वर्ग का निर्माण करना जिसके हित ब्रिटिश हितों से जुड़े हों, जो जन प्रतिक्रिया पर अंकुश लगा सके।
- **भारतीय पूँजीपति जमींदार वर्ग** को भूमि में पूंजी निवेश के लिए प्रोत्साहित करना, जिससे कि व्यापार वाणिज्य में अंग्रेजों को भारतीयों से प्रतिस्पर्धा का सामना न करना पड़े।
- कृषि का विकास करना।

विशेषताएँ

- जमींदारों को भूमि का स्वामी मान लिया गया और जब तक वे सरकार को लगान देते रहेंगे, तब तक भूमि पर उनका **वंशानुगत अधिकार** बना रहेगा।
- जमींदारों को भू-राजस्व वसूली का **1/11 हिस्सा** तथा **सरकार को 10/11 हिस्सा** मिलना निर्धारित किया गया। किसानों का भूमि से परंपरागत अधिकार समाप्त कर दिया गया। साथ ही, उन्हें **सामुदायिक संपत्ति** जैसे-**चारागाह, वनभूमि, तालाब** के उपयोग से वंचित कर दिया गया।
- जमींदारों पर नियंत्रण हेतु एक **सूर्यास्त कानून** बनाया गया जिसके तहत एक निर्धारित **तिथि के सूर्यास्त** तक जमींदारों को एक **निश्चित राशि** सरकार को देने के लिए कहा गया। अन्यथा उन्हें जमींदारी अधिकार से वंचित कर उसकी **नीलामी** कर दी जाएगी। इस तरह भूमि को क्रय-विक्रय के योग्य बना दिया गया।

स्थायी बंदोबस्त के दुष्प्रभाव

ब्रिटिश संदर्भ में- भू-राजस्व की **राशि निश्चित** और **स्थायी** हो जाने से ब्रिटिश की आय तो निश्चित हो गई किंतु उनकी बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति करने में यह व्यवस्था सहायक नहीं हुई।

- जमींदार वर्ग ने किसानों का अत्यधिक शोषण किया। फलत: कृषक असंतोष उभरा और इससे **किसान विद्रोहों** का सामना भी **अंग्रेजों** को करना पड़ा।

भारतीयों के संदर्भ में

- किसानों के हितों को किसी प्रकार की **सुरक्षा** नहीं दी गई। फलत: उन्हें दोहरे शोषण की मार झेलनी पड़ी। जहां एक तरफ भूमि पर से उनके **परंपरागत अधिकार** समाप्त कर दिए गए तो दूसरी तरफ उन्हें जमींदारों की दया पर छोड़ दिया गया।
- किसानों का अत्यधिक शोषण हुआ। वस्तुत: इस व्यवस्था में उपज के तीन भागीदार थे- **ब्रिटिश सरकार, जमींदार** एवं **किसान,** जिसमें सरकार एवं जमींदार की आय तो निश्चित हो गई किंतु किसानों की आय अनिश्चित रही और उन्हें जमींदारों की इच्छा पर छोड़ दिया गया। इस तरह किसानों के असीमित शोषण का दौर शुरू हुआ।
- जमींदारों की रिपोर्ट भी ब्रिटिश सरकार के समक्ष **रैय्यतों** के समान हो गई। **सूर्यास्त कानून** के संदर्भ में इसे समझा जा सकता है। वस्तुत: इस कानून के तहत जमींदार को जमींदारी अधिकार से वंचित किया जा सकता था। अत: **स्थायी बंदोबस्त से उपसामंतीकरण** का विकास हुआ।
- शोषण पर आधारित एक नई संरचना का विकास हुआ, जिसमें ऊपर के स्तर पर जमींदार और निचले स्तर पर किसान मौजूद थे। इस तरह ऊपर के स्तर पर सामंतवाद और निचले स्तर पर कृषक दासता मौजूद थी।
- कृषि का विकास नहीं हो पाया, **पूंजीविहीन कृषक** कृषि सुधार करने लायक नहीं था तो दूसरी तरफ जमींदारों को कृषि सुधार में रुचि नहीं थी। इस दृष्टि से यह कोई बुद्धिमतापूर्ण कदम साबित नहीं हुआ।

रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त (1820)

स्थायी बंदोबस्त के पश्चात, ब्रिटिश सरकार ने भू-राजस्व की एक नई पद्धति अपनाई, जिसे **रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त** कहा जाता है। मद्रास के तत्कालीन **गवर्नर (1820-27) टॉमस मुनरो** द्वारा 1820 में प्रारंभ की गई इस व्यवस्था को **मद्रास, बंबई** एवं **असम** के कुछ भागों में लागू किया गया। बंबई में इस व्यवस्था को लागू करने में बंबई के तत्कालीन गवर्नर **(1819-27) एल्फिन्सटन** ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

- भू-राजस्व की इस व्यवस्था में सरकार ने रैय्यतों अर्थात् किसानों से सीधा बंदोबस्त किया। अन्य रैयतों को भूमि के **मालिकाना हक** तथा **कब्जादारी अधिकार** दे दिए गए तथा वे सीधे या व्यक्तिगत रूप से स्वयं सरकार को लगान अदा करने के लिए उत्तरदायी थे।
- इस व्यवस्था ने **किसानों के भू-स्वामित्व** की स्थापना की। इस प्रथा में जमींदारों के स्थान पर किसानों को **भूमि का स्वामी** बना दिया गया। इस प्रणाली के अंतर्गत रैय्यतों से अलग-अलग समझौता कर लिया जाता था तथा भू-राजस्व का निर्धारण वास्तविक उपज की मात्रा पर न करके भूमि के क्षेत्रफल के आधार पर किया जाता था।
- सरकार द्वारा इस व्यवस्था को लागू करने का उद्देश्य, **बिचौलियों (जमींदारों)** के वर्ग को समाप्त करना था, क्योंकि स्थायी बंदोबस्त में निश्चित राशि से अधिक वसूल की गई सारी रकम जमींदारों द्वारा हड़प ली जाती थी तथा सरकार की आय में कोई वृद्धि नहीं होती थी।
- अत: आय में वृद्धि करने के लिए सरकार ने इस व्यवस्था को लागू किया ताकि वह बिचौलियों द्वारा रखी जाने वाली राशि को खुद प्राप्त कर सके।
- दूसरे शब्दों में इस व्यवस्था द्वारा सरकार स्थायी बंदोबस्त के दोषों को दूर करना चाहती थी। इस व्यवस्था के अंतर्गत **51% भूमि** आई।
- कंपनी के अधिकारी भी इस व्यवस्था को लागू करने के पक्ष में थे क्योंकि उनका मानना था कि **दक्षिण** और **दक्षिण-पश्चिम भारत** में इतने बड़े जमींदार नहीं हैं कि उनसे स्थायी बंदोबस्त किया जा सके। इसलिए इन क्षेत्रों में **रैय्यतवाड़ी व्यवस्था** ही सबसे उपयुक्त है।
- हालांकि इस व्यवस्था के बारे में यह तर्क दिया गया कि यह व्यवस्था **भारतीय कृषकों** एवं **भारतीय कृषि** के अनुरूप है किन्तु वास्तविकता

इससे बिल्कुल भिन्न थी। व्यवहारिक रूप में यह व्यवस्था **जमींदारी व्यवस्था** से किसी भी प्रकार **कम** हानिकारक नहीं थी।

- इसने **ग्रामीण समाज** की सामूहिक स्वामित्व की अवधारणा को समाप्त कर दिया तथा जमींदारों का स्थान स्वयं **ब्रिटिश सरकार** ने ले लिया। सरकार ने अधिकाधिक राजस्व वसूलने के लिए मनमाने ढंग से भू-राजस्व का निर्धारण किया तथा किसानों को बलपूर्वक खेत जोतने को बाध्य किया। रैय्यतवाड़ी व्यवस्था के अन्य दोष भी थे। इस व्यवस्था के तहत किसान का भूमि पर तब तक ही स्वामित्व रहता था, जब तक कि वह लगान की राशि सरकार को निश्चित समय के भीतर अदा करता रहे अन्यथा उसे भूमि से बेदखल कर दिया जाता था।
- अधिकांश क्षेत्रों में लगान की दर अधिक थी, अत: **प्राकृतिक विपदा** या अन्य किसी भी प्रकार की कठिनाई आने पर किसान **लगान अदा नहीं** कर पाता था तथा उसे अपनी भूमि से हाथ धोना पड़ता था।
- इसके अलावा किसानों को लगान वसूलने वाले कर्मचारियों के दुर्व्यवहार का सामना भी करना पड़ता था।

महालवाड़ी बंदोबस्त (1822) Mahalwari System

लॉर्ड हेस्टिंग्स के काल में ब्रिटिश सरकार ने भू-राजस्व की वसूली के लिए भू-राजस्व व्यवस्था का संशोधित रूप लागू किया, जिसे **महालवाड़ी बंदोबस्त** कहा गया। यह व्यवस्था **मध्य प्रांत, यू.पी. (आगरा)** एवं **पंजाब** में लागू की गई तथा इस व्यवस्था के अंतर्गत 30 प्रतिशत भूमि आई।

- इस व्यवस्था में भू-राजस्व का बंदोबस्त एक पूरे गाँव या महाल में जमींदारों या उन प्रयासों के साथ किया गया, जो सामूहिक रूप से पूरे गांव या **महाल के प्रमुख** होने का दावा करते थे।
- यद्यपि सैद्धांतिक रूप से भूमि पूरे **गाँव** या **महाल** की मानी जाती थी किन्तु व्यवहारिक रूप में किसान महाल की भूमि को आपस में विभाजित कर लेते थे तथा लगान, महाल के प्रमुख के पास जमा कर देते थे। तदुपरांत ये महाल प्रमुख, लगान को सरकार के पास जमा करते थे।
- **मुखिया** या **महाल प्रमुख** को यह अधिकार था कि वह लगान अदा न करने वाले किसान को उसकी भूमि से बेदखल कर सकता था। इस व्यवस्था में लगान का निर्धारण महाल या संपूर्ण गाँव के उत्पादन के आधार पर किया जाता था।
- **महालवाड़ी बंदोबस्त** का सबसे प्रमुख दोष यह था कि इसने महाल के **मुखिया** या **प्रधान** को अत्यधिक शक्तिशाली बना दिया। किसानों को भूमि से बेदखल कर देने के अधिकार से उनकी शक्ति अत्यधिक बढ़ गई तथा यदाकदा मुखियाओं द्वारा इस अधिकार का दुरुपयोग किया जाने लगा।
- इस व्यवस्था का दूसरा दोष यह था कि इससे **सरकार एवं किसानों** के बीच प्रत्यक्ष संबंध बिल्कुल समाप्त हो गए।
- इस प्रकार अंग्रेजों द्वारा भारत में **भू-राजस्व** वसूलने की विभिन्न पद्धतियों को अपनाया गया। इन पद्धतियों को अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग समय पर लागू किया गया।
- किन्तु इन सभी प्रयासों के पीछे अंग्रेजों का मूल उद्देश्य अधिक से अधिक भू-राजस्व को प्राप्त कर अपनी आय में वृद्धि करना था तथा किसानों की भलाई से उनका कोई संबंध नहीं था। इसके कारण धीरे-धीरे **भारतीय कृषक वर्ग कंगाल** होने लगा तथा भारतीय कृषि बर्बाद हो गई।

कृषि का वाणिज्यीकरण
(Commercialization of Agriculture)

कृषि के **वाणिज्यीकरण** का अर्थ है कृषि का **बाजारोन्मुख होना** या **किसानों की बाजार में भागीदारी**। इस प्रक्रिया में कृषि का उद्देश्य होता है कुछ विशेष किस्म की फसलों को उगाना तथा उसकी बिक्री करना।

- फसलों के चुनाव का **मुख्य आधार** उसके निर्यात से संबंधित होता है।
- भारतीय संदर्भ में कृषि का **वाणिज्यीकरण** एक **स्वाभाविक प्रक्रिया** नहीं थी वरन् काफी हद तक ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था की एक थोपी गई प्रक्रिया थी।
- ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के प्रभाव-स्वरूप निरंतर भारतीय आत्मनिर्भर व्यवस्था समाप्त हो रही थी और कृषि को **वाणिज्यीकरण** को इसी संदर्भ में देखा जा सकता है।

कृषि के वाणिज्यीकरण के कारण

भारत में कृषि के वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया में **बाह्य एवं आंतरिक** दबाव थे। यह प्रक्रिया **18वीं सदी** के मध्य से प्रारंभ हुई थी जो ब्रिटिश औद्योगिक क्रांति से जुड़ी हुई है। विशेष रूप से वहाँ के उद्योगों के लिए कच्चे माल की आवश्यकताओं के अनुरूप भारत में कृषि के वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया विकसित की गई।

- उदाहरणार्थ जब **1860** में **अमेरिकी गृहयुद्ध** के कारण **ब्रिटेन में कपास** आना बंद हो गया तो **भारत में कपास उत्पादन** पर जोर दिया गया। इसके अतिरिक्त अन्य कारणों, जैसे- **1869** में **स्वेज नहर** का खुलना आदि से भी भारत में कृषि के वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया विस्तारित हुई क्योंकि अब सहजता से, सस्ते में कच्चे माल को ले जाया जा सकता था।
- कृषि के वाणिज्यीकरण के आंतरिक कारणों में राजस्व की नकद वसूली से मौद्रिक अर्थव्यवस्था विकसित हुई तथा पूर्व में वस्तु विनिमय प्रणाली प्रचलित थी, अत: नकदी फसलों के उत्पादन के द्वारा भी नकदी भुगतान संभव था जिसके कारण किसानों को ऋणों की अदायगी नकद में करनी पड़ती थी, इससे भी किसानों की रुचि **नकदी फसलों के उत्पादन** की ओर बढ़ी।
- ब्रिटिश शासन ने भारतीय आंचलिक परिस्थितियों को समझते हुए वहाँ के परिवेश के अनुरूप अधिक से अधिक लाभ कमाने के लिए **नकदी फसल उत्पादन** को बढ़ावा दिया जैसे- **बंबई प्रेसीडेंसी में काली मिट्टी क्षेत्र (कपास उत्पादन), बंगाल (जूट), संयुक्त प्रांत (ईख)** आदि।
- **यातायात** एवं **संचार** साधनों के विकास जैसे **रेल, डाकतार व्यवस्था** आदि के विकास ने भी **19वीं सदी** के मध्य ने कृषि के वाणिज्यीकरण को बढ़ावा दिया।

कृषि के वाणिज्यीकरण के मुख्य चरण

1857 के पूर्व भारत में कृषि के वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया कोई स्वाभाविक प्रक्रिया नहीं थी वरन् किसानों को बलात् रूप से इसके साथ जोड़ा गया था, अत: ब्रिटिश नीतियों के अनुरूप इसका स्वरूप निर्धारित होता है। प्रथम चरण में विभिन्न फसलों के आधार पर इस बात को देखा जा सकता है जैसे-

- ब्रिटेन ने **अफीम की खेती** भारत में प्रारंभ करवाई और इसका प्रयोग चीनी व्यापार संतुलन को पूरा करने के लिए किया गया।
- अफीम की खेती भारत में **सरकारी नियंत्रण** में करवाई जाती थी और ब्रिटेन को इसका काफी लाभ भी हुआ।
- **चीन के साथ** दो अफीम युद्धों के पश्चात् अफीम की खेती में कमी आई पर **19वीं सदी** के पूर्वार्ध में ब्रिटेन के व्यापार में अफीम की महत्वपूर्ण भूमिका रही।
- वहीं **नील का प्रयोग** मुख्यत: ब्रिटेन के **वस्त्र उद्योग** में रंगाई के लिए होता था। पहले यह **वेस्टइंडीज** आदि क्षेत्रों से ब्रिटेन में मंगाया जाता था पर उन क्षेत्रों पर **नेपोलियन** का प्रभाव स्थापित होने के बाद भारत में इसकी खेती प्रारंभ करवाई गई।

- **बंगाल क्षेत्र** की जलवायु इसके लिए अनुकूल थी। अत: **बागानी व्यवस्था** के तहत **नील की खेती 19वीं सदी** के प्रारंभ में विस्तारित हुई।
- 1850 के दशक में कृत्रिम रंगों के आगमन, **बंगाल में नील विद्रोह (1859-60 ई.)** आदि के कारण नील की खेती कम हो गई।
- इन दो फसलों के अतिरिक्त प्रथम चरण में **रेशम** एवं **गन्ना** की भी खेती करवाई गई, पर यह प्रमुख वाणिज्यिक फसल नहीं बन पाई इसका मुख्य कारण था- **रेशम के साथ पूंजी का अभाव** तथा **गन्ना के संदर्भ में 1850 के दशक में चुकंदर का प्रयोग,** गन्ना के विकल्प के रूप में बेचना।
- हालाँकि स्थानीय मांग के अनुरूप इन दोनों का सीमित विकास होता रहा।
- **1857 के पश्चात्** ब्रिटिश औद्योगिक आवश्यकताओं के कारण भारत में **कपास की खेती** प्रारंभ हुई, पहले **लंकाशायर, मैनचेस्टर** आदि **सूती वस्त्र केंद्रों** के लिए **अमेरिका से कपास निर्यात** होता था पर **अमेरिकी गृहयुद्ध** के समय से यह अवरूद्ध हो गया, तत्पश्चात नए क्षेत्रों की तलाश हुई।
- परिणामत: भारत के **दक्कन क्षेत्र** में जो **काली मिट्टी** के कारण **कपास उत्पादन** के लिए उपयुक्त था वहाँ कपास की व्यापक स्तर पर वाणिज्यिक खेती प्रारंभ हुई। कृषि के वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया में कपास उत्पादन सर्वाधिक उल्लेखनीय है।
- इसके अलावा **बंगाल क्षेत्र** के भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप ब्रिटिश औद्योगिक मांगों के कारण यहाँ **जूट की खेती** प्रारंभ करवाई गई। **जूट में** बड़े स्तर पर **विदेशी पूँजी** का निवेश हुआ।

नकारात्मक प्रभाव

कृषि के वाणिज्यीकरण का **नकारात्मक प्रभाव** भारत की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था पर पड़ा, जिससे अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्र **कृषि, उद्योग, व्यापार** आदि किसी न किसी रूप में प्रभावित हुए और चूँकि यह प्रक्रिया औपनिवेशिक नीतियों द्वारा संचालित थी इस कारण जब बाजार अर्थव्यवस्था के विकास से प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हुई तब उस स्थिति में भारतीय ठहर नहीं पाए।

- **कृषि के वाणिज्यीकरण** का किसानों पर **प्रत्यक्ष** प्रभाव पड़ा। वास्तविक लाभ किसानों को न मिलकर बिचौलियों को मिला जिससे **किसान ऋणग्रस्तता** के शिकार हो गए तथा **खाद्यान्न की कमी** एवं **अकाल का सामना** करना पड़ा। उद्योग पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। **कृषि क्षेत्र** एवं **कुटीर उद्योग क्षेत्र** की एकता समाप्त हुई। इसके परिणामस्वरूप **वि-औद्योगीकरण** की प्रक्रिया तीव्र हो गई।

सकारात्मक प्रभाव

कृषि के वाणिज्यीकरण के सकारात्मक पहलुओं में **भारतीय अर्थव्यवस्था** का **एकीकरण** शुरू हुआ भले ही यह **आंतरिक अर्थव्यवस्था** पर सीमित स्तर पर था। परंतु **विश्व अर्थव्यवस्था** पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा।

- जिसके फलस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था में **पूंजीवादी परिवर्तन** (वस्तु विनिमय के स्थान पर मौद्रिक अर्थव्यवस्था का विकास) हुआ तथा भारत के कुछ क्षेत्र एक विकसित **कृषि क्षेत्र में विकसित** हुए।
- फसलों के स्तर पर नए परिवर्तन आए तथा **कुछ नई फसलों का आगमन** हुआ तथा कई फसलों का उत्पादन बढ़ा अर्थात सीमित स्तर पर कृषि क्षेत्र में **नवीन प्रौद्योगिकी** का आगमन हुआ।

विऔद्योगीकरण : परंपरागत उद्योगों का पतन
(Deindustrialization: Ruination of Traditional Industries)

सामान्य शब्दों में **वि-औद्योगीकरण** का अर्थ है **औद्योगीकरण की प्रक्रिया का अवरूद्ध होना** या पतन हो जाना। वस्तुत: भारत में **ब्रिटिश शासन की स्थापना** से यहाँ के परंपरागत उद्योगों का पतन हुआ जिसे **वि-औद्योगीकरण की प्रक्रिया** के रूप में जाना जाता है।

- यह प्रक्रिया मूलत: **हस्तशिल्पों के पतन** से संबंधित है जिसके कारण रोजगार अवसरों में कमी हुई तत्पश्चात कृषि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ा। अंतत: अर्थव्यवस्था के असंतुलन के रूप में कई विकृतियां सामने आईं।
- **वि-औद्योगीकरण** कोई नई बात नहीं है, **इंग्लैंड एवं अन्य यूरोपीय देशों** में भी औद्योगिक क्रांति के समय हस्तशिल्प उद्योगों का पतन हुआ। परंतु उसके साथ ही उसकी क्षतिपूर्ति के लिए रोजगार एवं संवृद्धि के अवसरों में वृद्धि हुई एवं आधुनिक उद्योगों का विकास हुआ पर भारतीय संदर्भ में ब्रिटिश आर्थिक नीतियां **एकाधिकारवाद** को बढ़ावा देते हुए लागू की गई जिसके कारण औद्योगिक क्रांति के परिवेश में न सिर्फ परंपरागत **हस्तशिल्प का पतन** हुआ वरन **आधुनिक उद्योगों का विकास** भी नहीं हो पाया। जिसके परिणामस्वरूप भारत में इस प्रक्रिया से अर्थव्यवस्था पर दूरगामी रूप से विकृत प्रभाव पड़ा।
- ब्रिटिश शासन की स्थापना से पूर्व भारतीय उद्योगों की स्थिति समृद्ध थी। **भारतीय शिल्पों** को दो भागों में देखा जा सकता है जैसे **शहरी शिल्प- उच्च कौशल का प्रदर्शन, विश्व की प्रमुख प्रसिद्ध वस्तुएँ- धातु की बनी वस्तुएं, मिट्टी के कलात्मक बर्तन, कालीन, लकड़ी के सामान** आदि और **ग्रामीण शिल्प- सामान्य कौशल, स्थानीय जरूरतों के अनुरूप, वस्तु विनिमय पद्धति द्वारा संचालित, प्रमुख वस्तुएँ - मिट्टी के बर्तन, आभूषण, कपड़े** आदि।
- **ढाका का मलमल, कश्मीरी-शॉल** तथा अन्य कई क्षेत्रों में भी वहाँ के प्रसिद्ध उत्पादों की स्थानीय एवं अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर बहुत मांग थी।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि **ब्रिटिश पूर्व भारतीय उद्योग समुन्नत अवस्था** में था तथा अपनी **व्यापक मांग** के कारण ही यह व्यापार संतुलन को भारत के पक्ष में रखे हुए था।

वि-औद्योगीकरण के कारण

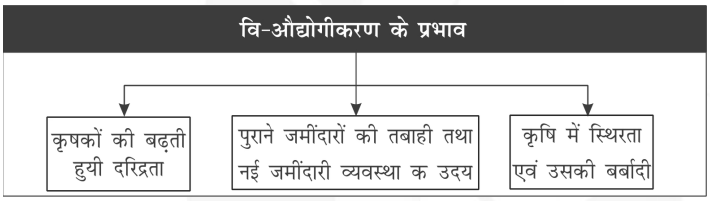
ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की स्थापना के फलस्वरूप आए विभिन्न परिवर्तनों से परंपरागत उद्योगों के पतन के कारणों को देखा जा सकता है। जैसे राजनीतिक कारणों में **देशी रजवाड़ों की दयनीय स्थिति** और **ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के साथ देशी रजवाड़ों की स्थिति** खराब थी जिससे हस्तशिल्पों को प्रश्रय मिलना बंद हुआ और विशेष प्रकार के उत्पादों की मांग कम हो गई, परिणामत: हस्तशिल्पों को एक बड़े भाग का पतन हो गया और ब्रिटिश शासन की विभिन्न नीतियों के **(1813 का एक्ट)** कारण तथा राजकीय हस्तक्षेप से ब्रिटिश उद्योग तो समुन्नत हुए पर भारतीय परंपरागत उद्योग भी कमजोर पड़ते चले गए जबकि आर्थिक कारणों में प्रथम कृषि का व्यवसायीकरण से परंपरागत **उद्योगों** एवं **कृषि क्षेत्र** का तादात्म्य टूटा और उद्योग क्षेत्र में भारतीय कच्चे मालों पर नियंत्रण एवं निर्देशन का कार्य ब्रिटेन द्वारा किया जाने लगा।

- वहीं **ब्रिटिश उद्योगों** के प्रति **राजकीय संरक्षण** तथा **भारतीय उद्योगों को संरक्षण** का अभाव बना रहा। दस्तकारों का विभिन्न तरीकों से शोषण शुरू हुआ। जैसे- ददनी प्रथा- इस प्रथा के तहत पेशगी की रकम देकर उत्पाद निर्मित करवाए जाते थे और इस दौरान अधिक मुनाफा को आधार बनाने से **दस्तकारी कौशल का पतन** हुआ। व्यापार क्षेत्र पर भी कृषि के वाणिज्यीकरण का प्रभाव पड़ा। ब्रिटेन की एकतरफा व्यापार की नीति के तहत ब्रिटेन ने अपनी प्रशुल्क नीति को समय-समय पर इस तरह से बदलाव किया कि वह भारत का उपयोग एक कच्चे माल के निर्यातक एवं निर्मित मालों के आयातक के रूप में कर सके।
- उदाहरणार्थ- **1700 ई.** में **छपे एवं रंगे वस्त्रों** पर **15% शुल्क** अतिरिक्त रूप से लगाया गया तथा **1720** में भारतीय सूती वस्त्रों के आयात को

ब्रिटेन में प्रतिबंधित कर दिया गया और परंपरा से चले आ रहे विभिन्न श्रेणियों एवं **भारतीय व्यापार संघों का पतन** भी दस्तकारी उद्योगों के पतन का कारण बना।

- इस पतन की प्रक्रिया में **रेलवे की भी भूमिका** रही क्योंकि इसके कारण दूर-दराज के क्षेत्रों में औपनिवेशिक शासन का प्रभाव पड़ा और अंदरूनी हिस्सों से कच्चा माल आने लगा तथा सुदूर क्षेत्रों तक ब्रिटिश निर्मित वस्तुएं पहुँचने लगीं।
- अब देशी हस्तशिल्पियों को कच्चा माल महंगी कीमतों पर मिलने लगा और वे स्वाभाविक रूप से प्रतियोगिता में पिछड़ गए। इस संदर्भ में कहा गया है कि अलग-थलग रहने वाले गांव के कवच को **इस्पात की रेल** ने भेद दिया और उसकी **प्राण शक्ति** को छिन्न-भिन्न कर दिया।
- पाश्चात्य विचारों के प्रभाव से **यूरोपीय आदर्शों** एवं **फैशन का प्रसार** होना भी महत्वपूर्ण है क्योंकि **ब्रिटिश सामाजिक** एवं **शैक्षणिक नीतियों** से भारत में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हुआ, जिसकी रुचि **ब्रिटिश वस्तुओं** के प्रति थी।
- पुराने शासक वर्गों आदि ने भी स्वयं को इस वर्ग से जोड़ लिया। चूंकि क्रयशक्ति इसी वर्ग के पास थी अत: इनकी रुचि का बदलना भी **भारतीय दस्तकारी उद्योग के पतन** का कारण बना।

वि-औद्योगीकरण के प्रभाव



वि-औद्योगीकरण का एक और नकारात्मक प्रभाव था- भारत के अनेक शहरों का पतन तथा भारतीय शिल्पियों का **गाँवों की ओर पलायन**।

- अंग्रेजों की शोषणकारी तथा भेदभावपूर्ण नीतियों के कारण बहुत से भारतीय दस्तकारों ने अपने परंपरागत व्यवसाय को त्याग दिया तथा वे गांवों में जाकर खेती करने लगे। (उदाहरणार्थ- **बंगाल में कंपनी शासन** के दौरान दस्तकारों एवं शिल्पकारों को बहुत कम दरों पर काम करने तथा अपने उत्पाद अत्यंत कम मूल्यों पर बेचने हेतु विवश किया गया)। इससे भूमि पर दबाव बढ़ा।
- **अंग्रेज सरकार** की कृषि विरोधी नीतियों के कारण यह क्षेत्र पहले से ही संकटग्रस्त था और भूमि पर दबाव बढ़ने के कारण **ग्रामीण अर्थव्यवस्था** बिल्कुल चरमरा गयी।
- भारत एक संपूर्ण **निर्यातक देश** से संपूर्ण **आयातक देश** बन गया।

कृषकों की बढ़ती हुयी दरिद्रता

ब्रिटिश सरकार की रुचि केवल लगान में वृद्धि करने तथा उसका अधिकाधिक हिस्सा प्राप्त करने में थी। इसी लालच की वजह से अंग्रेजों ने देश के कई हिस्सों में भूमि की **स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था** लागू कर दी।

- इस व्यवस्था में सरकार की मांग तो स्थिर थी किंतु लगान जो जमींदार, किसान से लेता था वह परिवर्तनशील था। अतएव कालांतर में लगान की दरों में अत्यधिक वृद्धि कर दी गयी।
- **लगान अदा** न करने पर किसानों को उनकी भूमि से बेदखल कर दिया जाता था। इससे किसान भूमि पर अपने **पुश्तैनी अधिकारों** से वंचित हो जाते थे।
- सरकार द्वारा **जमीन की उर्वरता** बढ़ाने के लिए अत्यंत कम धन खर्च किया जाता था। जमींदार, जिन्हें किसानों को भूमि से बेदखल करने का अधिकार था अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते थे तथा लगान में अपने हिस्से को बढ़ाने के लिए किसानों को बेगार **(बलपूर्वक कार्य)** करने हेतु विवश करते थे।
- कृषि में अधिक धन लगाने हेतु सरकार की ओर से कृषकों को किसी तरह का प्रोत्साहन भी नहीं दिया जाता था। कृषकों पर लगान का बोझ अधिक हो जाने पर वे **सूदखोरों से ऋण** लेने पर बाध्य हो जाते थे। सूदखोर, जो अधिकांशतया गांव के **अनाज व्यापारी** होते थे, काफी ऊँची दरों पर किसानों को ऋण देते थे तथा ऋण चुकाने हेतु उन्हें अपने उत्पाद **(अनाज)** को निम्न दरों पर बेचने हेतु मजबूर करते थे।
- इन शक्तिशाली सूदखोरों के **प्रशासन** एवं **न्यायालय** से अच्छे संबंध होते थे, जिसका उपयोग वे अपने विरुद्ध होने वाले मुकद्दमों के लिए करते थे।
- इस प्रकार किसानों के ऊपर सरकार, जमींदार एवं सूदखोरों का तिहरा बोझ होता था।
- **अकाल** एवं **अन्य प्राकृतिक आपदाओं** के समय कृषकों की समस्याएँ और भी बढ़ जाती थीं। अत: **ब्रिटिश शासन की नीतियों** से भारतीय कृषि पर अत्यंत **नकारात्मक प्रभाव** पड़ा तथा कृषकों की दरिद्रता अत्यंत बढ़ गयी।

पुराने जमींदारों की तबाही तथा नई जमींदारी व्यवस्था का उदय

वर्ष 1815 ई. के अंत तक **बंगाल** की कुल भूमि का लगभग **50%** दूसरे हाथों में स्थानांतरित किया जा चुका था। इन नए हाथों में भूमि के जाने से जमींदारों के एक नए वर्ग का उदय हुआ तथा नए भू-संबंधों का विकास हुआ।

- जमींदारों के इस नए वर्ग के पास **सीमित शक्तियां** एवं **अत्यल्प संसाधन** थे तथा भूमि पर कब्जे के कारण यह वर्ग अस्तित्व में आया था। लगान व्यवस्था में बिचौलियों के बढ़ने से प्रत्यक्ष जमींदारी का लोप हो गया तथा किसानों पर बोझ और ज्यादा बढ़ गया। भूमि की मांग बढ़ने से इसकी कीमतों में वृद्धि हुई तथा किसानों की क्रय शक्ति से यह और दूर होने लगी।
- जमींदारों एवं किसानों के मध्य कोई परंपरागत समझौता न होने से इन जमींदारों ने कृषि के विकास के लिए न किसी प्रकार का निवेश किया और न ही उस कार्य में कोई रूचि ली।
- इन जमींदारों का हित **ब्रिटिश शासन** के चलते रहने में ही था और इसीलिए इन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में अंग्रेजों का साथ दिया।

कृषि में स्थिरता एवं उसकी बर्बादी

कृषकों के पास न ही **कृषि के साधन** थे और न ही **कृषि में निवेश करने के लिए धन**।

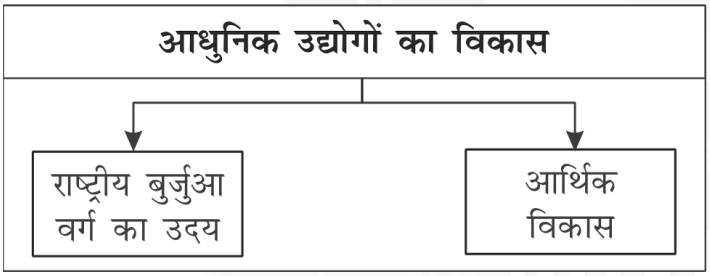
- जमींदारों का गाँवों से कोई संबंध नहीं था तथा सरकार द्वारा **कृषि तकनीक** एवं **कृषि से संबंधित शिक्षा** पर व्यय किया जाने वाला धन अत्यल्प था।
- इन सभी कारणों से भारतीय कृषि का धीरे-धीरे पतन होने लगा तथा उसकी उत्पादकता बहुत कम हो गई।

आधुनिक उद्योगों का सीमित विकास
(Limited development of Modern Industries)

- भारतीय उद्योगों के प्रति **ब्रिटिश नीति** का मुख्य आधार अधिकाधिक **औपनिवेशिक लाभ** हेतु भारत को सिर्फ कच्चे माल के स्रोत एवं बाजार के रूप में प्रयुक्त करना था।
- इसी कारण से यहाँ परंपरागत **हस्त-शिल्प उद्योगों** का पतन तो हुआ लेकिन उसकी क्षतिपूर्ति में **आधुनिक उद्योगों का विकास** नहीं हुआ।
- ब्रिटिश नीतियों द्वारा औद्योगीकरण की प्रक्रिया हतोत्साहित हुई, जो **ब्रिटिश पूंजी निवेश** हुआ उसका स्वरूप भी ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों से ही परिचालित था।

- **19वीं शताब्दी** के उत्तरार्द्ध में भारत में बड़े पैमाने पर आधुनिक **उद्योगों की स्थापना** की गयी, जिसके फलस्वरूप देश में मशीनी युग प्रारंभ हुआ।
- भारत में **पहली सूती वस्त्र मिल 1853 ई.** में **कावसजी नानाभाई** ने **बंबई** में स्थापित की।
- इसी प्रकार भारत की **पहली जूट मिल 1855 ई.** में **रिशरा (बंगाल)** में स्थापित की गयी। लेकिन इस समय तक अधिकांश आधुनिक उद्योगों का स्वामित्व एवं प्रबंधन विदेशियों के हाथों में ही था।
- भारत में मुनाफे की व्यापक संभावनाएं जैसे- **सस्ते श्रम की उपलब्धता, कच्चे** एवं **तैयार माल की उपलब्धता**, भारत एवं उसके पड़ोसी देशों के बाजारों की उपलब्धता, पूँजी निवेश की अनुकूल दशाएं, **नौकरशाही** द्वारा **उद्योगपतियों** को समर्थन देने की दृढ़ इच्छाशक्ति तथा कुछ वस्तुओं, जैसे- **चाय, जूट** एवं **मैंगनीज** के आयात के लाभप्रद अवसरों के कारण भारत में तेजी से विदेशी पूँजी का प्रवाह हुआ।
- भारत में देशी स्वामित्व वाले मुख्य क्षेत्र थे- **सूती वस्त्र** एवं **जूट मिलें,** जो **19वीं शताब्दी** में अस्तित्व में आयी, जबकि **20वीं शताब्दी** में **चीनी, सीमेंट** इत्यादि क्षेत्रों में भारतीय स्वामित्व वाले उद्योगों की अनेक समस्यायें थीं, जैसे- **साख की समस्या, सरकार द्वारा प्रशुल्क संरक्षण** का अभाव, विदेशी उद्योगों से असमान प्रतिस्पर्धा तथा ब्रिटिश उद्योगपतियों का दृढ़ विरोध- जो कि **वित्तीय** एवं **तकनीकी संरचना** के क्षेत्र में अत्यधिक समृद्ध थे।
- उपनिवेशी कारकों ने भी कुछ **संरचनात्मक** एवं **संस्थात्मक परिवर्तन** किए। भारत में औद्योगीकरण की इस प्रक्रिया में कुछ प्रमुख उद्योगों का तेजी से विकास हुआ लेकिन कुछ अन्य क्षेत्र उपेक्षित रह गये।
- इसी प्रकार **उद्योगों की स्थापना** में भी देश के कुछ प्रमुख क्षेत्रों को ज्यादा महत्व दिया गया, जबकि अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा की गयी।
- इससे **क्षेत्रीय असमानता में वृद्धि** हुयी। क्षेत्रीय असमानता के कारण राष्ट्रीय अखंडता को धक्का लगा। तकनीकी शिक्षा को संरक्षण न दिये जाने के कारण उद्योगों को तकनीकी रूप से **दक्ष मानवशक्ति** के अभाव का सामना करना पड़ा।
- सामाजिक तौर पर, एक औद्योगिक **पूंजीवादी वर्ग** तथा **एक श्रमिक वर्ग** का अभ्युदय इस चरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी।

आधुनिक उद्योगों का विकास



राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का उदय

भारतीय व्यापारियों, बैंकरों तथा साहूकारों ने भारत में छोटे सहयोगी के रूप में **अंग्रेजी व्यापारियों**, के वित्त से काफी धन कमाया था। अंग्रेजों की **साम्राज्यीय शोषण की नीति** में उनकी भूमिका ठीक बैठती थी।

- भारतीय साहूकारों ने ऋण के बोझ से दबे किसानों को ऋण दिए और सरकार के **भू-राजस्व संग्रहण** में सहायता की।
- इसी प्रकार भारतीय व्यापारियों ने **अंग्रेजी माल** को भारत के दूर-दराज के क्षेत्रों में पहुंचाया तथा भारतीय कृषि उत्पादों के **निर्यात के आंदोलन** में मदद की।
- किंतु इस **साम्राज्यीय व्यवस्था** से स्वस्थ और **स्वतंत्र औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग** के विकास में रुकावट आयी तथा इसका विकास **जापान** तथा **जर्मनी** जैसे स्वतंत्र देशों से भिन्न था।

आर्थिक निकास

भारतीय उत्पाद का वह हिस्सा, जो **जनता के उपभोग** के लिये उपलब्ध नहीं था तथा राजनीतिक कारणों से जिसका प्रवाह **इंग्लैंड की ओर** हो रहा था, जिसके बदले में भारत को कुछ नहीं प्राप्त होता था, उसे **'आर्थिक निकास'** की संज्ञा दी गयी।

- **दादा भाई नौराजी** ने अपनी पुस्तक **'पॉवर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया'** में सर्वप्रथम आर्थिक विकास की अवधारणा प्रस्तुत की।
- आर्थिक निकास के प्रमुख तत्त्व निम्न थे-
  - अंग्रेज प्रशासनिक एवं सैनिक अधिकारियों के वेतन एवं भत्ते।
  - भारत द्वारा विदेशों से लिए गए ऋणों के ब्याज,
  - नागरिक एवं सैन्य विभाग के लिए **ब्रिटेन के भंडारों** से खरीदी गयी वस्तुयें,
  - **नौवहन कंपनियों** की गयी अदायगी तथा **विदेशी बैंकों** तथा **बीमा कंपनियाँ** को दिया गया **धन, गृह व्यय** एवं **ईस्ट इंडिया कंपनी** के भागीदारों का लाभांश।
- भारतीय धन के इंग्लैंड को निकास से देश में **पूंजी का निर्माण** एवं **संग्रहण** नहीं हो सका, जबकि इसी धन से इंग्लैंड में औद्योगिक विकास के साधन तथा गति बहुत बढ़ गयी।
- ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को, इस धन से जो लाभांश प्राप्त होता था, उसे पुनः पूंजी के रूप में भारत में लगा दिया जाता था और इस प्रकार भारत का शोषण निरंतर होता रहा।
- इस धन के निकास से **भारत में रोजगार** तथा **आय की संभावनाओं** पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

वि-औद्योगीकरण के स्वरूप संबंधी विवाद

ब्रिटिश शासन के प्रभावों से हुए भारत में वि-औद्योगीकरण के स्वरूप को ब्रिटिश एवं भारतीय इतिहासकारों ने अपनी-अपनी तरह से विश्लेषित किया है।

- ब्रिटिश इतिहासकारों में इसके **आरंभकर्ता डेनियल थोर्नर** हैं, इनका मानना है कि हस्तशिल्प उद्योगों का विनाश भारत में पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली एवं आधुनिक उद्योगों के विकास का स्वाभाविक परिणाम था। साथ ही, परंपरागत उद्योगों के पतन के लिए अंग्रेजी नीतियां नहीं वरन् भारतीय राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था की कमजोरियाँ, अविकसित परिवहन एवं संचार व्यवस्था आदि जिम्मेदार थी।
- इसी तरह के मिलते-जुलते विचार **मॉरिस डी मॉरिस, मैक्फर्सन** आदि ब्रिटिश इतिहासकारों ने रखे हैं।
- इनके विचारों का विरोध **भारतीय विद्वानों** ने किया, जिनमें **अमिय बागची, जे. कृष्णमूर्ति** आदि प्रमुख हैं।
- इनका मानना है कि भारत में पूँजीवादी ढाँचे की स्थापना के विकास के बिना ही परंपरागत ढाँचे को तोड़ दिया गया तथा इसकी क्षतिपूर्ति के लिए आधुनिक उद्योगों की स्थापना नहीं की गई और **हस्तशिल्प उद्योगों** में रोजगार अवसरों में जितनी कमी हुई, उतने अवसरों की वृद्धि सीमित रूप से हुए औद्योगिक विकास द्वारा नहीं हुई।
- कुछ अन्य विचारकों ने भी इस बात का समर्थन किया है। मार्क्स के अनुसार, **सूती वस्त्रों के घरों में सूती वस्त्र की बाढ़** ला दी गई। बैंटिक का कहना है, "सूती वस्त्र बुनकरों के कंकाल भारतीय मैदानों को बदरंग कर रहे हैं।"

ब्रिटिश भारत में औपनिवेशिक नीतियाँ
(Colonial Policies in British India)

भारत में आधुनिक शिक्षा का विकास

शिक्षा नीति के विकास का प्रारंभिक इतिहास
(Early History of Development of Education Policy)

18वीं सदी के मध्य से ब्रिटिश शासन की स्थापना की प्रक्रिया प्रारंभ हुई और धीरे-धीरे भारतीय सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवेश में भी इनकी भूमिका की शुरूआत हुई। इस भूमिका के पीछे मूल उद्देश्य **अंग्रेजी शासन व्यवस्था को व्यवस्थित** एवं विस्तारित करना था। ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में आधुनिक शिक्षा का आरंभ अंग्रेजों द्वारा किया गया। इस क्रम में **ईसाई मिशनरी, ब्रिटिश सरकार** और **प्रगतिशील भारतीय** उत्तरदायी थे।

- **ईस्ट इंडिया कंपनी** एक व्यापारिक कंपनी थी जिसने लाभ कमाने में अधिक तथा शिक्षा के विकास में बहुत कम दिलचस्पी ली। हालांकि इस समय कुछ व्यक्तिगत प्रयास किए गए। इसी क्रम में तत्कालीन **गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स** जो प्राच्यवादी था। **1781 ई. में अरबी और फारसी** के अध्ययन के लिए **कलकत्ता मदरसा की स्थापना** की।
- **1784 में एशियाटिक सोसायटी की स्थापना** की गई इस संस्था का मूल उद्देश्य भारतीय भाषा के ग्रंथों का अंग्रेजी अनुवाद करना था। जैसे- **विलियम जोंस** ने **'अभिज्ञान शाकुंतलम्'** का अनुवाद किया।
- इस संस्था पर भी प्राच्यवादी प्रभाव था। बनारस के **ब्रिटिश रेजिडेन्ट जोनाथन डंकन** के प्रयत्नों के फलस्वरूप **बनारस में 1791 ई.** में एक **संस्कृत कॉलेज** खोला गया जिसका उद्देश्य हिन्दुओं के धर्म, साहित्य और कानून का अध्ययन और प्रसार करना था।
- **कलकत्ता मदरसा** और **संस्कृत कॉलेज** दोनों संस्थाओं की स्थापना का उद्देश्य मुख्य रूप से **कंपनी के शासन** की सहायता के लिए योग्य भारतीयों की नियुक्ति के लिए किया गया था।
- इस प्रकार हम देख सकते हैं कि **18वीं सदी** के अंतिम दो दशकों में अंग्रेजों की भारत में जो शिक्षा के प्रति रुचि प्रारंभ हुई उस पर प्राच्यवादी प्रभाव है।
- जिसके तहत भारतीय **भाषा एवं संस्कृति** को समझने का प्रयास किया गया। इसी प्रक्रिया में **1800 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई,** जिसका उद्देश्य अंग्रेज अधिकारियों को भारतीय भाषाओं का ज्ञान कराना था।
- **19वीं सदी** के प्रारंभ में अंग्रेजों का रुख **अंग्रेजी शिक्षा** के प्रचार-प्रसार की ओर होता है। इस क्रम में प्राथमिक नाम **चार्ल्स ग्रांट** का आता है जिन्हें भारत में **अंग्रेजी शिक्षा का जन्मदाता** भी कहा जाता है।
- इन्होंने अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु आरंभिक प्रयास किए। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार में ईसाई मिशनरियों की उल्लेखनीय भूमिका रही व इनका प्रारंभिक कार्यक्षेत्र **बंगाल** एवं **मद्रास प्रेसीडेंसी** क्षेत्र था।
- **बंगाल** में **सिरामपुर** क्षेत्र की डच मिशनरियों ने भी शिक्षा प्रसार के कार्य किए इनमें **विलियम केरी, लॉर्ड मार्शमैन** आदि प्रमुख व्यक्ति थे। इनके द्वारा मूलत: धार्मिक शिक्षा ही प्रसारित हुई।
- 1813 के **चार्टर एक्ट** से ईसाई मिशनरियों को आगमन एवं प्रसार की छूट मिल गई परिणामत: अब व्यापक स्तर पर इनकी गतिविधियाँ प्रसारित होने लगीं। इसी एक्ट के तहत शिक्षा पर खर्च हेतु **प्रति वर्ष एक लाख रुपये का प्रावधान भी किया गया।**
- इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में एक तुच्छ प्रयास किया गया। इस धन का उपयोग **'साहित्य के पुनरुद्धार** और **उन्नति के लिए'** भारत में स्थानीय विद्वानों को प्रोत्साहन देने के लिए और कंपनी शासित क्षेत्रों के निवासियों में विज्ञान के प्रति सोच को उन्नति करने के लिये निर्धारित किया गया।
- कंपनी को अपने **प्रशासनिक** आवश्यकताओं के लिए ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता थी जो **शास्त्रीय** और **स्थानीय भाषाओं** का जानकार हों। इस रूप में वह राजनीतिक और कानूनी आवश्यकता की पूर्ति कर सके।
- इसके अतिरिक्त शिक्षा **भारतीय जनता** को **ब्रिटिश शासन** के प्रति सोच बदलने के लिए प्रेरित करेगी।
- **1817** में **राजा राममोहन राय** एवं **डेविड हेयर** के प्रयासों से **हिन्दू कॉलेज** की स्थापना हुई। इस कॉलेज को एक प्रकार से पाश्चात्य पद्धति पर उच्च शिक्षा देने का पहला प्रयास कहा जाता है।
- इस प्रकार **1830 के दशक** के प्रारम्भ तक **अंग्रेजी शिक्षा** का भी एक सीमा तक प्रचार-प्रसार हो गया।

प्राच्य-आंग्ल विवाद
(Oriental-Anglo Dispute)

अब तक भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों पद्धतियों पर शिक्षा का प्रचार-प्रसार जारी था, पर **1830 के दशक** में आगे की शिक्षा नीति को लेकर बने **लोक शिक्षा समिति** के सदस्यों के बीच दो गुट बन गए। एक **गुट प्राच्यविदों का था जिसमें प्रिंसेप, विल्सन आदि थे दूसरा गुट आंग्लविदों का था जिसमें मैकाले का** समर्थन था। 10 सदस्यीय आयोग में दोनों गुटों के बराबर होने के कारण प्राय: गतिरोध बना रहता था जिसके कारण समिति ठीक ढंग से कार्य नहीं कर पाती थी। दोनों गुट अपने-अपने तर्कों के माध्यम से शिक्षा के प्रसार की बात करते थे। विवाद के दो मुद्दे थे।

- **पहला** यह कि शिक्षा का माध्यम क्या होना चाहिए भारतीय भाषा या अंग्रेजी भाषा,
- **दूसरा** यह कि अध्ययन का विषय क्या होना चाहिए परंपरागत या पाश्चात्य?

प्राच्यवादी (Orientalist)

प्राच्यवादियों का मानना था कि भारत में पाश्चात्य **विज्ञान** एवं **ज्ञान** का प्रसार भारतीय भाषाओं के माध्यम से किया जाना चाहिए। प्राच्यवादी **विज्ञान की शिक्षा** एवं उसके विकास का विरोधी नहीं थे पर उनका मानना था कि भारतीयों को **यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान** को उसी भाषा में पढ़ाया जाना चाहिए जिससे वे परिचित हैं और उपयोगी पाश्चात्य विषयों को **संस्कृत** और **अरबी फारसी** में अनुवाद किया जाए।

- अपने उद्देश्यों को आगे बढ़ाते हुए प्राच्यवादियों ने **स्कूलों की स्थापना, भारत में छापाखाना** एवं **प्रकाशन कार्य** आरंभ किया तथा **पुस्तकों पत्रिकाओं, समाचार पत्रों** तथा **संपर्क** के अन्य साधनों को विकसित किया और भारत में प्रथम बार वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं का निर्माण किया।
- इस प्रकार ब्रिटिश प्राच्यवादी विचारक भारतीय संस्कृति के आधुनिकीकरण में सहयोगी बने। प्राच्यवादी विदेशी व भारतीय तत्वों के समीक्षा द्वारा परिवर्तन के समर्थक थे जिसमें भारतीय अपने जीवन मूल्यों के आधार पर स्वयं को परिवर्तित कर सके इसी आधार पर उनका मानना था कि परिवर्तन की यह प्रेरणा केवल पश्चिमी देशों से ही नहीं वरन् प्राचीन भारतीय अध्ययनों द्वारा भी दी जा सकती थी।
- प्राच्यवादियों का सर्वाधिक दीर्घकलिक योगदान यह रहा कि भारतीयों में अपने प्राचीन स्वर्ण युग के पुनर्जागरण के विचारों से **आत्मसम्मान** और

आत्मविश्वास जागृत हुआ, उनमें ऐतिहासिक जागरुकता का विकास और सामुदायिक भावना का उदय हुआ। ऐसा माना जाता है कि प्राच्यवादियों के उद्देश्य के पीछे एक बड़ी कूटनीतिक चाल थी।

- इस प्रक्रिया के माध्यम से **भारतीय जनता** से सम्पर्क स्थापित कर उन्हें स्वाभाविक रूप से अधीनस्थ बनाने में समर्थ हो सकते थे।
- साथ ही **संस्कृत, फारसी, अरबी साहित्य** में शिक्षा देकर भारतीयों की पूर्ववत जातियों एवं धर्मों में विभाजित रखा जा सकता था जो कंपनी शासन और ब्रिटिश साम्राज्य के हित में था।

आंग्लवादी (Anglicist)

दूसरी विचारधारा आंग्लवादियों की थी जो **वाइट मैन बर्डन थ्योरी** या असभ्यों को सभ्य बनाने के सिद्धान्त पर आधारित थी। इस मत का सबसे बड़ा **समर्थक लॉर्ड मैकाले** था जो 1834 में **गवर्नर जनरल** की कौंसिल के विधि सदस्य के रूप में भारत आया।

- वह पाश्चात्य **भाषा एवं संस्कृति** की सर्वश्रेष्ठता पर गर्व करता था और उसने आधारहीन तरीके से भारतीय भाषा एवं संस्कृति की निंदा की।
- उसने शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी भाषा का समर्थन किया और कहा कि भारतीय भाषाओं में **साहित्यिक एवं वैज्ञानिक ज्ञान कोष** का अभाव है।
- इसी परिप्रेक्ष्य में उसने भारतीय भाषा एवं साहित्य की निकृष्टता दिखाने के लिए कहा कि "यूरोप के एक अच्छे पुस्तकालय की एक आलमारी का एक कक्ष, भारत और अरब की समस्त साहित्य से अधिक मूल्यवान है।"
- मैकाले भारतीय परिवेश में अंग्रेजी शिक्षा पर बल दे रहा था और उसका मानना था कि अंग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम होना चाहिए।
- वास्तव में **मैकाले** के इस दृष्टिकोण के पीछे एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य छिपा हुआ था। अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से वह भारत में पूर्णत: पश्चिमी मानदंड स्थापित करना चाहता था और पाश्चात्य् विचारों का प्रसार करना चाहता था।
- एक अन्य महत्त्वपूर्ण उद्देश्य यह था कि मैकाले भारतीयों की एक ऐसी श्रेणी उत्पन्न करना चाहता था जो **"रक्त और रंग"** से भारतीय हों परन्तु अपनी **प्रवृत्ति, विचार, नैतिक मानदण्ड, बुद्धिमता** से अंग्रेज हों।
- अत: **ब्राउन रंग** के अंग्रेज बनाना चाहता था जिसके माध्यम से प्रशासनिक एवं आर्थिक कार्यों की पूर्ति की जाए।
- इस तरह मैकाले एवं आंग्लवादियों ने **पश्चिमी शिक्षा** और **अंग्रेजी भाषा** पर बल दिया
- मैकाले द्वारा तैयार किए गए प्रस्तावों को **लॉर्ड विलियम बेंटिक ने 7 मार्च, 1835** को स्वीकृत प्रदान की और भविष्य में कंपनी की सरकार, यूरोपीय साहित्य को अंग्रेजी माध्यम द्वारा उन्नत करने का प्रयत्न किया।
- इस तरह **प्राच्य-आंग्ल विवाद** में **आंग्लवादियों की जीत** हुई और भारत में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति की स्थापना हुई।
- अब समस्या यह थी कि यह **शिक्षा समाज** के सभी वर्ग को दी जाए या किसी एक वर्ग विशेष को। इस परिप्रेक्ष्य में मैकाले का मानना था कि जन साधारण को शिक्षित करना न तो उचित है और न ही सीमित साधनों में संभव।
- वह केवल समाज के उच्च वर्ग को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षित करने का समर्थन था और इस वर्ग से छन-छन कर शिक्षा का प्रभाव जनसाधारण तक पहुँच जाएगा।
- **मैकाले** का यह सिद्धान्त **विप्रवेशन सिद्धान्त (Infiltration Theory)** के नाम से जाना जाता है।
- ऐसा माना जाता है कि इस संदर्भ में एक छुपा उद्देश्य ईसाई मिशनरियों का भी था। जिनका यह मानना था कि अगर **सवर्ण हिन्दुओं को ईसाई धर्म में दीक्षित** कर दिया जाए तो धीरे-धीरे व्यापक तौर पर ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार हो जाएगा।

चार्ल्स वुड घोषणा-पत्र 1854
(Charles Wood Despatch -1854)

चार्ल्स वुड तत्कालीन सरकार में **बोर्ड ऑफ कंट्रोल** के अध्यक्ष थे। वह अंग्रेज जाति और उसकी संस्थाओं की श्रेष्ठता में पूर्ण विश्वास करते थे। 1854 से पूर्व उच्च शिक्षा के विकास की गति धीमी रही। **स्त्री शिक्षा** की ओर भी ध्यान नहीं दिया गया। इन्हीं संदर्भों को ध्यान में रखते हुए **1854 में चार्ल्स वुड** की अध्यक्षता में अखिल भारतीय आधार पर एक समिति गठित की गई।

- इस समिति द्वारा दिये गए सुझाव को **'वुड घोषणा पत्र'** के नाम से जाना जाता है। यह एक वृहद घोषणा-पत्र जिसमें **100 अनुच्छेद** थे और इसमें शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा के सुधार की योजनाओं पर विस्तार से चर्चा की गई थी। प्राय: इसे **'भारतीय शिक्षा का मैग्नाकार्टा'** कहा जाता है।
- इस घोषणा-पत्र को भारत में आधुनिक शिक्षा के इतिहास में ऐतिहासिक घटना के रूप में जाना जाता है। यह एक व्यापक कार्यक्रम था। इस घोषणा-पत्र में **'विप्रवेशन सिद्धांत'** या **अधोमुखी निस्यंदन सिद्धांत** को नकार दिया गया।
- घोषणा-पत्र का मुख्य उद्देश्य पाश्चात्य् शिक्षा का प्रसार करना अर्थात् सरकार **कला, विज्ञान, दर्शन** और **साहित्य** का प्रसार करे इस बात पर बल दिया गया।
- शिक्षा के माध्यम के विषय में यह निश्चित किया गया कि उच्च शिक्षा के लिए सबसे **उत्तम माध्यम अंग्रेजी** है लेकिन देशी भाषाओं को अन्य स्तरों पर शिक्षा के लिए प्रोत्साहित किया जाए क्योंकि देशी भाषाओं के माध्यम से ही पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान सर्वसाधारण तक पहुँचाया जा सकता है।
- इसी आधार पर **ग्राम स्तर पर देशी भाषा** से संचालित **प्राथमिक पाठशालाएं** स्थापित करने और उनके ऊपर जिला स्तर पर **एंग्लो-वर्नाकुलर** (Anglo-Vernacular) **हाई स्कूल** और **कॉलेज** खोलने का प्रस्ताव दिया गया।
- एक अन्य प्रस्ताव जिसमें **लंदन विश्वविद्यालय** के आधार पर **कलकत्ता, बंबई** एवं **मद्रास** में **तीन विश्वविद्यालय** स्थापित किए जाएँ जिनमें **कुलपति उप-कुलपति, सीनेट** एवं **विधि सदस्यों** की व्यवस्था की जाए।
- इस घोषणा-पत्र में व्यवसायिक **शिक्षा में महत्त्व** और तकनीकी विद्यालयों की स्थापना पर बल दिया गया साथ ही **महिला शिक्षा का समर्थन** भी किया गया।
- **वुड के घोषणा-पत्र** में अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए प्रत्येक प्रांत में प्रशिक्षण संस्थान के निर्माण पर भी बल दिया गया। वुड घोषणा-पत्र की सिफारिशों को लागू करते हुए **1855 में बंबई, मद्रास, बंगाल, पंजाब** एवं **उत्तर-पश्चिमी प्रांतों** में एवं अन्य नये प्रांतों में भी लोक शिक्षा विभाग का सृजन किया गया।
- वरिष्ठ पदों को पूरा करने के लिए **1897 ई. में इंडियन एजुकेशन सर्विस** का गठन किया गया। **1858 में कलकत्ता, बंबई** और **मद्रास** विश्वविद्यालयों की स्थापना की गयी।
- **तकनीकी शिक्षा** को महत्त्व देते हुए **1856 में रुड़की** एवं **कलकत्ता** में तकनीकी महाविद्यालय खोले गए।
- 1854 से प्राथमिक शिक्षा के बजाय माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा पर बल दिया गया। **बैंटिक** के प्रयत्नों द्वारा कुछ महिला पाठशालाओं की स्थापना भी की गई।
- हालांकि इस अधिकार पत्र में व्यापक साक्षरता के आदर्श को स्वीकार नहीं किया गया था। **प्राथमिक शिक्षा की अनदेखी** की गयी, शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर नहीं प्रदान किए गए।
- तकनीकी शिक्षा और महिला शिक्षा का प्रसार बहुत ही सूक्ष्म स्तर पर हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि **वुड का घोषणा पत्र** भारत के कल्याण की भावना से प्रेरित न होकर हितों के संरक्षण की भावना से प्रेरित था।

हंटर शिक्षा आयोग (1882-83)
Hunter Education Commission (1882-83)

1882 से लॉर्ड रिपन ने **डब्ल्यू.डब्ल्यू हंटर की अध्यक्षता** में एक शिक्षा आयोग नियुक्त किया, जिसे **'हंटर आयोग'** के नाम से जाना जाता है। इस आयोग का गठन **1854** के वुड घोषणा पत्र के पश्चात् हुआ। यह आयोग वुड घोषणा पत्र की प्रगति की समीक्षा करने हेतु किया गया।

प्रस्ताव में यह भी कहा गया है कि आयोग यह सुझाव दे कि भारत में प्राथमिक शिक्षा का कैसे सुधार और विस्तार किया जा सकता है? यह आयोग प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की समीक्षा तक ही सीमित था न कि विश्वविद्यालयों के कार्यों की समीक्षा तक। आयोग द्वारा समीक्षा करने के पश्चात् निम्नलिखित सुझाव दिये गए-

- सरकार को **प्राथमिक शिक्षा के सुधार** और **विकास की ओर** विशेष ध्यान देना चाहिए। आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि प्राथमिक शिक्षा स्थानीय भाषा और उपयोगी विषयों पर होनी चाहिए।
- आयोग ने माध्यमिक शिक्षा को दो भागों में विभाजित किया एक में उसने साहित्यिक शिक्षा तथा दूसरे में व्यवहारिक शिक्षा। आयोग का मानना था कि साहित्यिक शिक्षा विश्वविद्यालयों में प्रवेश के लिए दी जानी चाहिए वहीं व्यवहारिक शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों को व्यावसायिक तथा व्यापारिक गतिविधियों के लिए तैयार करना चाहिए।
- आयोग द्वारा **निजी शिक्षा** के प्रोत्साहन की बात की गयी तथा यह भी कहा गया कि सरकार को माध्यमिक और उच्च शिक्षा के क्षेत्र से हट जाना चाहिए।
- आयोग ने **महिला शिक्षा** के पर्याप्त प्रबंध न होने पर खेद प्रकट किया तथा इसे बढ़ावा देने की बात की गयी।

सरकार द्वारा आयोग के सुझावों को मान लिया गया। इसके पश्चात् आने वाले 20 वर्षों में माध्यमिक और उच्च शिक्षा का अभूतपूर्व विकास हुआ। अब पाश्चात्य् शिक्षा के अतिरिक्त भारतीय तथा प्राच्य भाषाओं के शिक्षण में विशेष रुचि दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त **1882 में पंजाब विश्वविद्यालय** और **1887 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय** की स्थापना की गयी।

लॉर्ड कर्जन की शिक्षा नीति और विश्वविद्यालय आयोग-1902
(Education Policy of Lord Curzon and University Commission-1902)

लॉर्ड कर्जन अपने प्रशासन को सुधारने के स्वाभाविक जोश में भारतीय शिक्षा को भी सुधारने का प्रयत्न किया।

- उसने **मैकाले की नीति** की आलोचना की तथा यह कहा कि यह देशी भाषाओं के विरुद्ध एक पक्षपात था।
- उसने द्वितीय स्तर के अध्यापक वर्ग और परीक्षाओं पर बल न देने वाली शिक्षा की आलोचना की। लेकिन इसके पीछे उसके राजनीतिक उद्देश्य थे और केवल आंशिक रूप से शैक्षणिक दरअसल **प्रेस का विकास**, शिक्षित भारतीयों द्वारा पत्रकारिता को महत्त्व देना, बढ़ता हुआ आम राजनीतिक असंतोष तथा **कांग्रेस की स्थापना** जैसी घटनाएं **कर्जन के आगमन** से पूर्व घटित हुईं।
- अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के माध्यम से भारतीयों का परिचय पश्चिम से हुआ। कई ब्रिटिश प्रशासक राजनीतिक असंतोष तथा आंदोलन के लिए आधुनिक शिक्षा प्रणाली को उत्तरदायी मान रहे थे।
- अत: यह महसूस किया गया कि शिक्षा पर कठोर सरकारी नियंत्रण हो। इन्हीं परिस्थितियों को ध्यान में रखकर **कर्जन ने सितम्बर, 1901 में शिमला में** समस्त भारत के उच्चतम शिक्षा और विश्वविद्यालय के अधिकारियों का सम्मेलन बुलाया और **1902 में सर थॉमस रैले की अध्यक्षता में एक विश्वविद्यालय आयोग का गठन किया।**
- इस आयोग का मुख्य कार्य **विश्वविद्यालयों की स्थिति** का अनुमान लगाना और **संविधान** तथा **कार्यक्षमता** के विषय में सुझाव देना था। यह **आयोग केवल उच्च शिक्षा और विश्वविद्यालय तक ही सीमित था।**
- **रैले कमीशन** के आधार पर **1904** में भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम में विश्वविद्यालय प्रशासन के पुनर्गठन, महाविद्यालयों का विश्वविद्यालयों द्वारा कठोर नियंत्रण पर जोर दिया गया।
- विश्वविद्यालय के उपसदस्यों की संख्या **50 से कम और 100 से अधिक** नहीं होनी चाहिए, उपसदस्य मुख्य रूप से सरकार द्वारा मनोनीत होना चाहिए और इनका **कार्यकाल 6 वर्ष तक** के लिए ही होना चाहिए।
- विश्वविद्यालयों पर सरकार के नियंत्रण की बात की गयी। सरकार का विश्वविद्यालयों पर नियंत्रण बढ़ा दिया गया। अब सरकार को **सीनेट द्वारा पारित प्रस्तावों** पर विशेषाधिकार दे दिया गया। **सरकार स्वयं नियम** बना सकती थी, **सीनेट द्वारा पारित** नियमों में परिवर्तन अथवा संशोधन कर सकती थी।
- इस अधिनियम का विधान परिषद के अंदर और बाहर राष्ट्रवादी तत्वों द्वारा कटु आलोचना की गयी। इससे विश्वविद्यालयों की स्वतंत्रता समाप्त हुई और उच्च शिक्षा के विकास में बाधा पहुँची।

सैडलर आयोग-1917
(Saddler Commission -1917)

1917 में कलकत्ता विश्वविद्यालय की संभावनाओं के अध्ययन तथा रिपोर्ट के लिए एक आयोग का गठन किया गया। **लीड्स विश्वविद्यालय** के **कुलपति डॉ. सैडलर** को इसका अध्यक्ष बनाया गया। इस आयोग में दो भारतीय **डॉ. आशुतोष मुखर्जी** तथा **जियाउद्दीन अहमद** भी सदस्य थे।

- इस आयोग ने **1904 के अधिनियम** की कड़ी निंदा की। इस आयोग को **कलकत्ता विश्वविद्यालय** के प्राथमिक से विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा पर अपनी रिपोर्ट देने को कहा गया था।
- इस आयोग ने अनेक सिफारिशें कीं। आयोग ने स्कूल की **शिक्षा को 12 वर्ष** का होने का सुझाव दिया और उत्तर माध्यमिक परीक्षा के पश्चात् विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करना चाहिए अत: उत्तर माध्यमिक परीक्षा को माध्यमिक और विश्वविद्यालय शिक्षा के बीच विभाजक रेखा माना गया।
- **स्नातक की शिक्षा** तीन वर्ष की होनी चाहिए। विश्वविद्यालय के नियमों को बनाने में कठोरता नहीं होनी चाहिए। **कलकत्ता विश्वविद्यालय** के भार को कम करने के उद्देश्य से ढाका में विश्वविद्यालय खोलने का सुझाव दिया और इसी प्रकार अन्य विश्वविद्यालय केन्द्र बनें यह प्रयत्न होना चाहिए।
- महिला शिक्षा पर विशेष बल देते हुए **कलकत्ता विश्वविद्यालय** में महिलाओं की शिक्षा के लिए विशेष **बोर्ड** स्थापित करने का सुझाव दिया। **डॉ. सैडलर** आयोग द्वारा यह भी सुझाव दिया गया कि विश्वविद्यालय व्यवहारिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में पाठ्यक्रम का प्रबंध करें।
- **1916** से **1921** में बीच अनेक नये विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। इनमें **बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, मैसूर, पटना, अलीगढ़, लखनऊ उस्मानिया विश्वविद्यालय** अस्तित्व में आए।

हार्टोग समिति-1929
(Hartog Committee -1929)

मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार में शिक्षा को प्रांतों में लोगों द्वारा निर्वाचित मंत्रीं के नियंत्रण में दे दिया गया। केन्द्र सरकार ने शिक्षा में रुचि लेना बंद करने के साथ ही केन्द्रीय अनुदान भी बंद कर दिया। इसके बावजूद शिक्षा संस्थाओं की संख्या में तेजी से विस्तार हुआ शिक्षित लोगों की संख्या बढ़ने से अनिवार्य रूप से ही शिक्षा के स्तर में कमी आई। इसी को ध्यान में रखते हुए **1929 में हार्टोग की अध्यक्षता** में एक समिति गठित की गयी।

- **हार्टोग समिति** ने प्राथमिक शिक्षा के राष्ट्रीय महत्त्व पर बल दिया तथा सुधार और एकीकरण की नीति अपनाने का सुझाव दिया। समिति ने कहा ग्रामीण प्रवृत्ति के विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय शिक्षा से रोक कर उन्हें व्यावसायिक और औद्योगिक शिक्षा कार्यों को समझना चाहिए।
- समिति ने विश्वविद्यालयों की दुर्बलताओं की ओर ध्यान आकर्षित किया और यह कहा कि जो विद्यार्थी उच्च शिक्षा को प्राप्त करने योग्य हों उन्हीं को प्रवेश देकर अच्छी शिक्षा दी जाए।

मौलिक शिक्षा या वर्धा योजना (Fundamental Education or Wardha Scheme)

1935 के भारत सरकार अधिनियम के अनुसार प्रांतों को स्वायत्तता दे दी गई और इसी के तहत लोकप्रिय मंत्रिमंडल **1937** से कार्य करने लगा। **1937 में महात्मा गाँधी** द्वारा अपने सप्ताहिक पत्र **'हरिजन'** में लेखों की एक शृंखला प्रकाशित की गयी। उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिकता शिक्षा को **कुटीर उद्योग** से जोड़कर व्यावसायिक शिक्षा की ओर ध्यान आकृष्ट किया।

- **"राष्ट्रीय शिक्षा का"** पहला सम्मेलन **अक्टूबर, 1937** में वर्धा में आयोजित किया गया। इसमें मौलिक अथवा **आधार शिक्षण** अथवा **वर्धा योजना** की संज्ञा दी गई।
- **डॉ. जाकिर हुसैन** की अध्यक्षता में पाठ्यक्रम तैयार करने के लिए एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने कई शिल्पों के लिए पाठ्यक्रम तैयार किया।
- इसने **अध्यापकों के प्रशिक्षण, पर्यवेक्षण** तथा **प्रशासन** का सुझाव भी दिया। इस शिक्षा योजना का मूलभूत सिद्धांत **'हस्त उत्पादन कार्य'** था। जिससे शिक्षकों के वेतन का प्रबंध हो जाता था।
- इस शिक्षा योजना के अंतर्गत विद्यार्थी को मातृभाषा में सात वर्ष तक अध्ययन करना था। **1947** के पश्चात् सरकार ने इस कार्य को अपने हाथ में ले लिया।

सार्जेंट योजना-1944 (Sargent Plan-1944)

1944 में **केंद्रीय शिक्षा मंत्रणा मंडल** (Central Advisory Board of Education) ने राष्ट्रीय शिक्षा योजना तैयार की जिसे **'सार्जेंट योजना'** कहा जाता है। इस योजना के अनुसार प्राथमिक विद्यालय तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यालयों की स्थापना की बात की गयी है। 6 से 11 वर्ष के बच्चों के लिए व्यापक, नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा दिये जाने की योजना थी। इसके अतिरिक्त 11 से 17 वर्ष तक के लिए छ: वर्ष और शिक्षा की व्यवस्था थी।

- ये उच्च विद्यालय दो प्रकार के होने थे। **पहला विद्या विषयक** और **दूसरा प्राविधिक** और **व्यावसायिक शिक्षा** के लिए भी प्रावधान किया गया। इस प्रकार इस योजना में 40 वर्ष में देश में शिक्षा के पुनर्निर्माण का कार्य होने की बात की गयी थी।

पाश्चात्य् शिक्षा का प्रभाव (Influence of Western Education)

पाश्चात्य् शिक्षा का भारत के लोगों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। जिसका सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव दिखाई पड़ता है। जहाँ तक **सकारात्मक प्रभाव** की बात की जाए तो अंग्रेजी भाषा में अनुवादित ग्रंथों के अध्ययन से भारतीय समाज का ज्ञानवर्द्धन हुआ और उन्हें **लोकतंत्र, स्वतंत्रता, समानता** और **बंधुत्व** आदि विश्व जनित दृष्टिकोण का ज्ञान हुआ। भारतीयों को **पश्चिमी विद्वानों, स्पेंसर, डार्विन, लॉक, रसेल, स्मिथ** आदि को पढ़ने का अवसर मिला जिससे वे लोकतंत्रात्मक सिद्धांतों से प्रेरित होकर प्रक्रियावादी सामंतवादी संस्थाओं एवं परंपराओं के विरुद्ध उठ खड़े हुए। भारत में एक शिक्षित मध्यम वर्ग के उदय को प्रोत्साहन मिला पाश्चात्य् शिक्षा से भारतीय समाज में एक बुद्धजीवी वर्ग भी तैयार हुआ जिसने **19वीं सदी** के प्रारम्भ में विभिन्न सामाजिक धार्मिक राजनीतिक एवं आर्थिक सुधारों की आवश्यकता महसूस की जैसे- **सतीप्रथा, बालविवाह, विधवा विवाह** आदि से संबंधित सुधार। कहीं न कहीं इससे प्रेरित था। शिक्षित भारतीयों ने **रिकार्डो, मार्क्स, लिस्ट के अर्थशास्त्र** संबंधी सिद्धांतों का अध्ययन किया। उनमें आर्थिक समस्याओं के स्वरूप की पहचान करने की समझ बढ़ी। इसी संदर्भ में औपनिवेशिक शासन की आर्थिक नीति की चर्चा हुई और **दादा भाई नौरोजी** द्वारा धन के निष्कासन का सिद्धांत दिया गया।

- पत्रकारिता प्रेस आदि को भी बढ़ावा मिला। अंग्रेजी शिक्षा ने विभिन्न प्रांतों में लोगों को एक भाषा के माध्यम से जोड़ने के साथ ही पूरे विश्व से जोड़ दिया जो भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के अनेक कारणों में से एक कारण यह भी बना।

पाश्चात्य शिक्षा का भारतीयों पर **नकारात्मक प्रभाव** भी पड़ा। पाश्चात्य शिक्षा के **ब्रिटिश शासन का गौरव गान** किया गया ब्रिटिश शासन और उसकी महानता पर बल दिया गया जिसके कारण एक लम्बे समय तक राष्ट्रीयता का वास्तविक स्वरूप विकसित नहीं हो पाया इसके द्वारा पाश्चात्य् विचारों का अंधानुकरण किया गया जिससे कुछ नवयुवकों पर उसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा उन्होंने पुराने भारतीयों आदर्शों एवं मान्यताओं को तुच्छ समझकर उसका बहिष्कार किया यहाँ तक कि भारतीय परंपरागत शिक्षा प्रणाली की अच्छाइयों को भी तिरष्कृत किया गया।

- पाश्चात्य् शिक्षा के कारण शिक्षित भारतीयों एवं सामान्य जन में विभेद बढ़ा परिणामस्वरूप भाषाई एवं सांस्कृतिक अलगाव बढ़ते चले गए। **अंग्रेजी शिक्षा नीति** में आमजन के लिए शिक्षा की उपेक्षा की गयी (जैसे **अधोमुख निस्पंदन सिद्धांत** द्वारा)। पाश्चात्य शिक्षा में **वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा, रोजगार परक शिक्षा** एवं **स्त्री शिक्षा** की अवहेलना की गयी।
- इस प्रकार से भारतीय समाज पर पाश्चात्य शिक्षा के अनेक नकारात्मक प्रभावों को देखा गया।

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में अंग्रेजी शिक्षा का योगदान (Contribution of Modern Education in the Development of Indian Nationalism)

पक्ष में तर्क (Logic in Favour)

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में अंग्रेजी शिक्षा के योगदान को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं एक तरफ जहाँ ब्रिटिश विचारकों ने स्वयं को प्रगतिशील साबित करने के लिए अंग्रेजी शिक्षा एवं विचारों के महत्त्व को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया है वहीं राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भारतीय राष्ट्रवाद के विकास के लिए यहाँ के आंतरिक तत्वों पर जोर दिया है। इस विवाद की शुरूआत तब होती है जब पाश्चात्य् विचारक यह मत रखते हैं कि यदि अंग्रेजी शिक्षा नहीं रही होती तो भारतीय राष्ट्रवाद का विकास नहीं हो पाता।

- अपने मत के पक्ष में ये विचारक पाश्चात्य् विचारों की **बौद्धिकता, तार्किकता** को आधार बनाते हैं तथा अंग्रेजी शिक्षा के सिर्फ सकारात्मक प्रभाव की बात करते हैं जैसे- भारतीयों का ज्ञानवर्धन हुआ, **विश्वजनित लोकतंत्र, समानता, स्वतंत्रता, बंधुता** आदि विचार आए तथा **सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक** क्षेत्रों में सुधारों की आवश्यकता हेतु सचेष्ट हुए।

विपक्ष में तर्क (Logic in Opposition)

राष्ट्रवादी विचारकों का यह मानना है कि भारत में राष्ट्रवाद का विकास सिर्फ आधुनिक शिक्षा मात्र की उपज नहीं बल्कि इसके पीछे निम्नलिखित तत्त्व थे-

- पाश्चात्य शिक्षा भारतीय **राष्ट्रवाद को बढ़ाने के लिए** नहीं बल्कि **ब्रिटेन के प्रति** सम्मान का भाव जगृत करने के लिए था।
- भारतीय राष्ट्रवाद का उदय **ब्रिटेन** एवं **भारतीयों के हितों** के टकराव से उत्पन्न हुआ था।

- आधुनिक विचारों का प्रसार तो मुख्यत: भारतीय भाषाओं एवं साहित्य के माध्यम से हुआ सबसे अधिक तो **भारतीय प्रेस** के माध्यम से हुआ।
- वास्तव में समूचे ब्रिटिश काल में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की संख्या नगण्य थी। (लगभग 1 से 2 प्रतिशत)
- वस्तुत: **राष्ट्रीय आंदोलन की विकास धारा** तभी जनतांत्रिक हुई जब उसमें जनता के सभी वर्गों की भागीदारी बढ़ गई। यह जनसाधारण न तो अंग्रेजी शिक्षा एवं विचारों से अवगत था बल्कि यह **अनपढ़** था।
- लेकिन धीरे-धीरे राष्ट्रवादी आंदोलन के प्रभाव से अपने **सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक** एवं **सांस्कृतिक** हितों को आवश्यक समझने लगा था।

उपरोक्त विश्लेषण के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रवाद के विकास के पीछे औपनिवेशिक **शासन के चरित्र** एवं उसकी नीतियों की निर्णायक भूमिका रही है। भारतीय राष्ट्रवाद का विकास भी भारतीय परिवेश, भाषा एवं संस्कृति के आधार पर संभव हुआ जैसा कि कई अन्य देशों में भी वहां की अपनी भाषा में ही राष्ट्रवाद का विकास हुआ।

जहाँ तक अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव की बात है, तो इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अंग्रेजी शिक्षा ने सीमित स्तर पर ही सही एक ऐसे बुद्धिजीवी वर्ग को भी जन्म दिया जो परिवर्तनकारी विचारों को आत्मसात करने में सक्षम था। **विदेशी दासता की चुभन** भी इसी वर्ग के राष्ट्रवादी विचाराधारा से प्रभावित लोगों ने सबसे पहले महसूस की। परिणामत: आगे चलकर इस वर्ग से राष्ट्रीयता के विकास का प्रारम्भिक नेतृत्व भी संभव हो पाया।

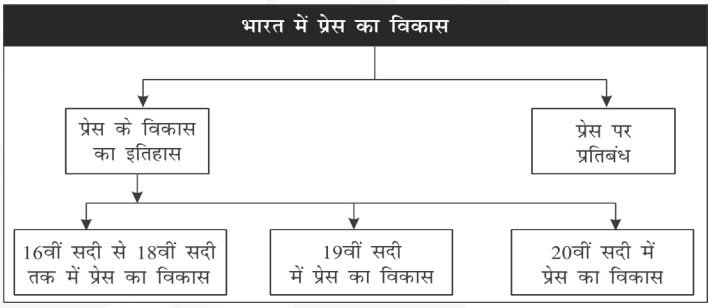
अंग्रेजों की शिक्षा नीति का मूल्यांकन
(Evaluation of British Education Policy)

- यह सही है कि अंग्रेजी सरकार ने भारत में आधुनिक शिक्षा के प्रसार व उन्नयन हेतु कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाये। परन्तु, इस संबंध में लोकोपकारी भारतीयों के प्रयास ज्यादा सराहनीय थे। सरकार ने निम्न कारणों के प्रभाव से **आधुनिक शिक्षा को समृद्ध** करने का प्रयास किया-
  - भारत में प्रबुद्ध नागरिकों द्वारा आधुनिक शिक्षा के प्रसार हेतु आंदोलन किए जा रहे थे साथ ही **ईसाई मिशनरी** एवं **मानवतावादी नौकरशाह** भी आधुनिक शिक्षा का प्रसार करना चाहते थे।
  - प्रशासन के निम्न स्तरीय पदों हेतु भारतीयों की आपूर्ति को सुनिश्चित करने की योजना तथा **इंग्लैण्ड के व्यापारिक हितों** को पूरा करने की आवश्यकता थी। इसलिए सरकार ने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाए जाने पर ज्यादा जोर दिया।
  - सरकार पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार द्वारा भारतीयों को **अंग्रेजी रंग में रंगना** चाहती थी, ताकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद को स्थायित्व मिल सके। सरकार को मालूम था कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय, ब्रिटिश विजेताओं तथा उनके प्रशासन का गुणगान करेंगे।
  - सरकार को यह उम्मीद थी कि शिक्षित भारतीय इंग्लैण्ड में निर्मित वस्तुओं की मांग को बढ़ाने में सहायक होंगे।
- भारतीय परंपरागत शिक्षा द्वारा प्रशासनिक कार्यों का संपादन संभव नहीं था। फलत: प्रशासनिक भारतीय कर्मचारियों की मांग कम होने लगी। इस समस्या के समाधान की दिशा में सरकार ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का विकास करने पर विशेष बल दिया।
- सरकार द्वारा जनसाधारण की शिक्षा की उपेक्षा करने से देश में निरक्षरता की दर में तेजी से वृद्धि हुई। **1911** में निरक्षरता का 84 प्रतिशत था जो 1921 में बढ़कर 92 प्रतिशत हो गया। निरक्षरता की इस बढ़ती दर ने **मुट्ठीभर शिक्षित भारतीयों** एवं जनसाधारण के बीच भाषायी एवं सांस्कृतिक खाई को विस्तृत कर दिया जो काफी चिंताजनक थी।
- शिक्षा व्यवस्था को महंगा किए जाने से यह आम भारतीयों की पहुँच से दूर हो गई तथा **उच्च** एवं **धनी वर्ग** तथा **शहरों में निवास** करने वाले लोगों का इस पर एकाधिकार हो गया।
- अंग्रेज सरकार द्वारा स्त्रियों को आधुनिक शिक्षा से दूर रखा गया। ब्रिटिश सरकार ने स्त्री शिक्षा की पूर्णरूपेण उपेक्षा की, क्योंकि- (i) सरकार समाज के रूढ़िवादी तबके को नाराज नहीं करना चाहती थी तथा (ii) तात्कालीन उपनिवेशी शासन के लिये यह किसी प्रकार से फायदेमंद नहीं था।
- सरकार द्वारा वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा की भी उपेक्षा की गयी। सरकार ने **1857** के अंत तक देश में केवल तीन चिकित्सा महाविद्यालय **(कलकत्ता, बंबई एवं मद्रास)** स्थापित किए। साथ ही **अभियांत्रिकी महाविद्यालय** की स्थापना का उद्देश्य यूरोपीय व यूरेशियाई लोगों को **इंजीनियरिंग की शिक्षा** देना था।

प्रेस

भारत में प्रेस के विकास का इतिहास
(History of Development of Press in India)

समाचार पत्रों का कार्य सरकार की नीतियों को आम जन तक पहुँचाना तथा जनता की आवश्यकता और सरकार की नीतियों पर लोगों की प्रतिक्रिया से सरकार को अवगत कराना है। इसी प्रकार विदेशी एवं देशी समाचार को लोगों तक पहुँचाना है।



16वीं सदी से 18वीं सदी तक
(From 16th Century of till 18th Century)

आधुनिक भारत में समाचार पत्रों के विकास के इतिहास की पृष्ठभूमि 16वीं सदी के मध्य से तैयार हो रही थी, जब पुर्तगालियों द्वारा प्रिंटिंग प्रेस की शुरूआत की गई। 1557 में **गोवा के पादरियों** ने **पहली पुस्तक भारत** में छापी। 1648 में **ईस्ट इंडिया कंपनी** ने **बंबई में एक मुद्रणालय** लगाया, लेकिन इसमें लगभग 100 वर्षों तक कोई समाचार पत्र नहीं छपा, क्योंकि कंपनी के कर्मचारी चाहते थे कि उनके कुकृत्य तथा निजी व्यापार के समाचार लंदन तक नहीं पहुँचें।

- आगे चलकर 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रेस का व्यवस्थित विकास प्रारंभ हुआ, जिसके तहत् **1776 ई. में विलियम बोल्ट** द्वारा एक समाचार-पत्र का प्रकाशन किया गया, पर यह कुछ समय तक ही प्रकाशित हो पाया।
- **ऑगस्टस हिक्की** ने **1780 ई.** में **'द बंगाल गजट'** नाम से अंग्रेजी का **प्रथम समाचार पत्र** प्रकाशित किया। **गवर्नर जनरल** तथा **मुख्य न्यायाधीश** की निष्पक्ष आलोचना के कारण उसका मुद्रणालय जब्त कर लिया गया।
- इसके पश्चात् 1784 में **'कलकत्ता गजट'** 1785 में **'बंगाल जनरल'** तथा **'ओरियंटल मैगजीन'** आयी। 1786 में **'कलकत्ता क्रॉनिकल'** इत्यादि अनेक समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ।

- 1784 में प्रकाशित **'कलकत्ता गजट'** सरकार के अधिकारिक प्रवक्ता की तरह था। इसके अतिरिक्त **'बंबई गजट'**, **'हेराल्ड'** और मद्रास में **'मद्रास गजट'**, **'मद्रास कैरियर'** आदि समाचार-पत्र प्रकाशित होने लगे।
- इन समाचार पत्रों की विशेषता यह थी कि ये एक-दूसरे के पूरक थे।
- दूसरे, अभी इनमें आपसी प्रतिस्पर्धा प्रारंभ नहीं हुई थी।
- तीसरे, विभिन्न समाचार-पत्र भिन्न-भिन्न दिन प्रकाशित होते थे।
- चौथे, उसके समाचार पत्र सप्ताहिक होते थे। इन समाचार पत्रों का क्षेत्र भी सीमित होता था और इनका क्षेत्र केवल कंपनी के अधिकारियों, व्यापारियों तथा मिशनरियों तक ही सीमित था।
- अंग्रेजी समाचार पत्रों में भारतीय हितों के पोषण तथा संरक्षण का अभाव था, परंतु पाठकों के मनोरंजन का ध्यान अवश्य रखा जाता था जबकि इसके विपरीत भारतीय भाषाओं में प्रकाशित पत्रों में भारतीयों के सार्वजनिक समस्याओं का उल्लेख किया जाता था।

19वीं शताब्दी में प्रेस का विकास
(Development of Press in 19th Century)

गंगाधर भट्टाचार्य ने **1816 ई.** में **'बंगाल गजट'** नाम से ही अंग्रेजी में पत्र निकाला जो किसी भारतीय द्वारा अंग्रेजी में निकाला गया पहला समाचार पत्र था। **मार्शमैन** ने अप्रैल, **1818** में बंगाली में **'दिग्दर्शन'** नामक मासिक पत्रिका निकाली और इसी वर्ष काशीसेन के संपादन में **'समाचार दर्पण'** का प्रकाशन आरंभ हुआ। 1818 में **जेम्स बर्किंघम** नामक अंग्रेज ने **'कलकत्ता जर्नल'** (Calcutta Journal) में कंपनी सरकार की आलोचना की जिसके कारण उस पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

- बर्किंघम का पत्रकारिता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसने प्रेस को जनता का प्रतिबिम्ब बताया और प्रेस का वर्तमान स्वरूप उन्होंने ही दिया।
- प्रेस को आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाने, जाँच-पड़ताल करके समाचार देने तथा नेतृत्व की ओर प्रवृत्त किया। कंपनी ने उन्हें **1823** में इंग्लैंड वापस भेज दिया।
- 1826 में **जुगल किशोर** द्वारा हिंदी का प्रथम समाचार पत्र **'उदन्त मार्तंड'** का प्रकाशन किया गया। **क्रिस्टोफर दास** को भारतीय पत्रकारिता का राजकुमार कहा जाता है, क्योंकि इन्होंने समाचार पत्रों के प्रारंभिक विकास में उल्लेखनीय भूमिका निभाई।
- **राजा राममोहन राय** को राष्ट्रीय प्रेस की स्थापना का श्रेय दिया जाता है। इन्होंने अंग्रेजी में **'ब्रह्मनिकल मैगजीन'**, बंग्ला में **'संवाद कौमुदी'** और फारसी में **'मिरात-उल-अखबार'** निकाला।
- 19वीं शताब्दी में 1857 के पश्चात् समाचार पत्रों की संख्या में भारी वृद्धि देखी गयी। एंग्लो इंडियनों द्वारा संपादित प्रमुख पत्र **'टाइम्स ऑफ इंडिया'** 1838, 1875 में स्टेट्समैन, तथा इंग्लिशमैन कलकत्ता से, मद्रासमेल मद्रास से, पायनियर 1865 में इलाहाबाद से और लाहौर से 1876 से **'सिविल एंड मिलिटरी गजट'** प्रकाशित होने लगे थे।
- इनमें **इंग्लिशमैन** सबसे रूढ़िवादी एवं प्रतिक्रियावादी समाचार पत्र था। समय-समय पर यह पत्र आवश्यकतानुसार सरकार एवं कांग्रेस दोनों की आलोचना करते थे परंतु **पायनियर सरकार** समर्थक और भारतीयों का आलोचक था।
- विभिन्न समाचार-पत्र विभिन्न हितों तथा विचारों का प्रतिनिधित्व करते थे।
- भारतीयों द्वारा इस दौरान अनेक समाचार-पत्रों और मैगजीन को प्रकाशित किया गया। 1858 में **ईश्वर चंद्र विद्यासागर** द्वारा **'सोम प्रकाश'** का बंगाली साप्ताहिक के रूप में आरंभ किया गया। इसका दृष्टिकोण राष्ट्रवादी था।
- **सोमप्रकाश** ने **नील आंदोलन** का जोरदार समर्थन किया था। 1861 में **देवेन्द्रनाथ टैगोर** तथा **मनमोहन घोष** ने **इंडियन मिरर** का प्रकाशन शुरू किया। यह उत्तरी भारत का किसी भारतीय द्वारा प्रकाशित होने वाला एकमात्र समाचार पत्र था।
- **1868** में **मोतीलाल** द्वारा अंग्रेजी-बंगाली साप्ताहिक के रूप में **'अमृत बाजार पत्रिका'** का संपादन शुरू किया जो **1891** से दैनिक समाचार-पत्र के रूप में प्रकाशित होने लगा।
- गौरतलब है कि **1878** में **वर्नाकुलर प्रेस एक्ट** से बचने के लिए रातों-रात यह पत्र अंग्रेजी में प्रकाशित होने लगा था।
- **1879** में **सुरेंद्रनाथ बनर्जी** अंग्रेजी में प्रकाशित **'बंगाली'** पत्र को सफल बनाया। यह एक उदारवादी दृष्टिकोण का समाचार-पत्र था, जो राजनीतिक विचारधारा का प्रभावशाली प्रदर्शन करता था।
- बंगाल से प्रकाशित होने वाले पत्रों में **बंगवासी** तथा **संजीवनी** प्रमुख पत्र थे। 1867 में बनारस से **भारतेंदु हरिशचन्द्र** ने **'कविवचन सुधा'** का प्रकाश किया। इसके अतिरिक्त मासिक पत्रिका **'हरिशचन्द्र मैगजीन'** का प्रकाशन 1872 में शुरू किया।
- 1877 में इलाहाबाद से **बालकृष्ण भट्ट** का **'हिंदी प्रदीप'** प्रकाशित हुआ।
- राष्ट्रीय आंदोलन के विस्तृत होने के साथ ही कांग्रेस में उग्र दल का उदय हो रहा था। इसका प्रभाव **प्रेस के विकास** एवं समाचार पत्रों पर पड़ना स्वभाविक है।
- **बाल गंगाधर तिलक** ने **1881** में **बंबई** में अंग्रेजी में **'मराठा'** और मराठी में **'केसरी'** का प्रकाशन आरंभ किया।
- तिलक ने इन पत्रों में राष्ट्रीय भावना एवं उग्र राष्ट्रवाद को फैलाने तथा जनता तक उसके विचारों को पहुंचाने में महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावकारी भूमिका निभायी।
- **मद्रास** से 1878 में अंग्रेजी में प्रकाशित **'हिन्दू'** एक साप्ताहिक पत्र था जो 1881 से दैनिक में परिवर्तित हो गया।

20वीं शताब्दी में प्रेस का विकास
(Development of Press in 20th Century)

20वीं शताब्दी में राष्ट्रीय आंदोलन के साथ-साथ समाचार-पत्रों की संख्या में वृद्धि हुई। 1913 में **फिरोजशाह मेहता** ने **'बॉम्बे क्रॉनिकल'** का प्रकाशन आरंभ किया। **'युगांतर'** और **'वंदेमातरम्'** के माध्यम से बंगाल में उग्र राष्ट्रवाद फैलाने का काम **अरविंद घोष** और **बारिंद्र घोष** ने किया। **एनी बेंसेट** ने **मद्रास स्टैंडर्ड** का नाम **'न्यू इंडिया'** करके **होमरूल का नारा** जनता तक जोर-शोर से पहुँचाया। **श्रीनिवास शास्त्री** द्वारा **1918** में **'सर्वेंट ऑफ इंडिया'** का प्रकाशन शुरू हुआ। इस पत्र ने भारत की विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण और समाधान के लिए सुझाव प्रस्तुत किए गए।

- **महात्मा गाँधी** न केवल कुशल एवं प्रभावशाली नेता थे वरन् प्रभावशाली पत्रकार भी थे। उन्होंने **'यंग इंडिया'** तथा **'हरिजन'** के माध्यम से न केवल अपने विचारों का प्रचार किया बल्कि सरकार को अपने विचारों तथा राजनैतिक कार्यक्रमों से अवगत कराया और भारत की आम जनता को एक बड़े आंदोलन के लिए जागृत किया।
- गाँधीजी संपादकों को निर्भीकतापूर्वक अपने विचार व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे। उनके इस प्रोत्साहन से देश के हर कोने से पत्र निकलना प्रारंभ हो गए।
- **मोतीलाल नेहरू** ने 1919 में अंग्रेजी दैनिक **'इंडिपेंडेंस'** का प्रकाशन शुरू किया। हिंदी समाचार-पत्र **'आज'** की स्थापना **शिवप्रसाद गुप्त** ने की।
- 1922 में **के.एम. पन्निकर** ने अंग्रेजी दैनिक **'हिंदुस्तान टाइम्स'** का

प्रकाशन प्रारंभ किया। 20वीं सदी के दूसरे दशक में साम्यवादी-समाजवादी विचार से संबंधित पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ।

- इनमें **'न्यू स्पार्क'** अंग्रेजी साप्ताहिक और **मराठी, एम एन लोखांडे** द्वारा सम्पादित **'दीनबंधु'**, **एस.ए.डांगे** द्वारा **'सोशलिस्ट'** और **शशिपाद बनर्जी** द्वारा **'भारत श्रमजीवी'** प्रमुख है।
- 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में उर्दू पत्रकारिता का भी विकास हुआ। **मौलाना अबुल कलाम** ने 1912 में **'अल हिलाल'** तथा 1913 में **'अल बिलाग'** का प्रकाशन **कलकत्ता** से शुरू किया।
- **मोहम्मद अली** ने **कामरेड** (अंग्रेजी में) तथा **हमदर्द** (उर्दू में) का प्रकाशन प्रारंभ किया। 1913 में **'गदर'** का प्रकाशन सैन-फ्रांसिस्को से प्रारंभ हुआ यह गदर पार्टी का मुखपत्र था।
- प्रारंभ में यह **हिंदी, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती** तथा एक अंक पश्तो में प्रकाशित हुआ।
- बाद में, 1914 में पंजाबी में भी इसका प्रकाशन आरंभ हुआ। विदेशों में रह रहे भारतीयों के मन में देश-प्रेम जगाने का श्रेय यदि गदर को दिया जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।
- 1935 तक चार समाचार एजेंसियों की स्थापना भी हो चुकी थी, इनमें- **'रायटर', 'एसोसिएट प्रेस ऑफ इंडिया'** (ए.पी.आई.), **'फ्री प्रेस न्यूज सर्विस'** तथा **यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया** थी।

ब्रिटिश भारत में प्रेस पर प्रतिबंध (Ban on Press in British India)

ब्रिटिश सरकार द्वारा समाचार-पत्रों के विरुद्ध पास किए गए विभिन्न अधिनियमों तथा प्रेस द्वारा इन प्रतिबंधों के विरुद्ध संघर्ष के इतिहास का संक्षिप्त उल्लेख किए बिना समाचार-पत्रों का इतिहास अधूरा रह जाएगा।

- आरंभिक वर्षों में समाचार पत्रों-पत्रिकाओं का उद्देश्य **यूरोपीय** अथवा **एंग्लो-इंडियन** लोगों का मनोरंजन करना था। समाचार-पत्र प्रेस संबंधी कानून के अभाव में **ईस्ट इंडिया कंपनी** के अधिकारियों की दया पर निर्भर रहते थे।
- कंपनी के अधिकारी यह नहीं चाहते थे कि वे समाचार-पत्र, जिसमें उनके कुकर्मों का उल्लेख होता था किसी प्रकार लंदन पहुँच जाएं। सरकार के विरुद्ध काम करने वाले पत्रकारों को वापस लंदन भेज दिया जाता था, लेकिन भारतीयों के साथ ऐसा नहीं किया जा सकता था।
- इसी को ध्यान में रखते हुए कंपनी सरकार ने विभिन्न प्रेस नियंत्रण अधिनियमों द्वारा नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश की।
- **प्रेस नियंत्रण अधिनियम 1799** के द्वारा **लॉर्ड वेलेजली** ने सभी समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लगा दिया था। इसके द्वारा समाचार पत्र के संपादक, **मुद्रक** तथा **स्वामी का नाम** स्पष्ट रूप से प्रकाशित करना अनिवार्य कर दिया गया था।
- प्रकाशक को प्रकाशित किए जाने वाले समाचार को पास कराने के लिए सरकारी सचिव को देना पड़ता था। 1807 में अधिनियम के तहत् पुस्तकें, पत्रिकाएँ तथा पम्प्लेट भी आ गए थे।
- सचिव प्रेस प्रतिबंध के संदर्भ में **लॉर्ड हेस्टिंग्स** ने नियमावली को आसान बनाया और देश में प्रगतिशील और उदारवादी विचार लागू किए।
- **1818 में (प्री-सेंसर)** पूर्व-प्रवेक्षण को समाप्त कर दिया गया, परंतु सामान्य नियम बनाकर उन विषयों की चर्चा पर रोक लगा दी गयी, जिसके कारण सरकार के अधिकार एवं जनहित को किसी भी रूप में क्षति पहुंचने की आशंका हो।
- **1823 के अनुज्ञप्ति नियम (The Lincensing Regulations of 1823)** द्वारा तत्कालिक कार्यवाहक **गवर्नर जनरल एडम्स** ने भारतीय प्रेस पर पूर्ण प्रतिबंध लागू किया। बिना लाइसेंस प्रकाशन करने पर चार सौ रुपये जुर्माना या कारावास का दंड दिया जा सकता था।
- मजिस्ट्रेट को मुद्रणालय जब्त करने का भी अधिकार था। यह नियम मुख्य रूप से भारतीय भाषाओं तथा भारतीयों द्वारा संपादित एवं उनके स्वामित्व वाले पत्रों के लिए था। इसके कारण **राजा राममोहन राय** को अपनी पत्रिका **'मिरात-उल-अखबार'** का प्रकाशन बंद करना पड़ गया था।
- **लॉर्ड विलियम बैंटिक** ने समाचार पत्रों के प्रति उदार नीति अपनायी। वह भारतीयों के साथ न्यायोचित व्यवहार के लिए प्रसिद्ध है। **लॉर्ड मैकाले** भी समाचार पत्रों की स्वतंत्रता का समर्थक था।
- मार्च, 1835 में बैंटिक को अस्वस्थता के कारण त्याग पत्र देना पड़ा। तत्पश्चात् 1823 के कुत्सित नियमों को रद्द करने का श्रेय कार्यवाहक गवर्नर जनरल **चार्ल्स मेटकॉफ (1835-36) को जाता है। इसीलिए चार्ल्स मेटकॉफ को भारतीय समाचार पत्रों का 'मुक्तिदाता' के रूप में** जाना जाता है।
- **1857 के विद्रोह** के परिणामस्वरूप आपात स्थिति से निपटने हेतु **लाइसेंसिंग अधिनियम-1857** बनाया गया। इसके तहत् बिना **लाइसेंस मुद्रणालय** स्थापित नहीं किया जा सकता था। साथ ही, किसी भी पुस्तक या पत्र का प्रकाशन बीच में रोका जा सकता था। यह अधिनियम एक वर्ष के लिए लागू रहा।
- **1867 का पंजीकरण अधिनियम** का उद्देश्य मुद्रणालयों तथा समाचार पत्रों को नियमित करना था, उन पर रोक लगाना नहीं। इसके द्वारा मुद्रक, प्रकाशक तथा **मुद्रणालय** के स्थान का नाम प्रकाशित करना आवश्यक कर दिया।
- यदि पुस्तक प्रकाशित की जाती है तो एक प्रति सरकार को देनी पड़ती थी। बहावी आंदोलन के समय राजद्रोही लेखों पर प्रतिबंध लगा दिया गया था तथा भारतीय **दंड संहिता (IPC) की धारा 124 में 124A**, जोड़ दी गयी, जिसके तहत् राजद्रोहियों को आजीवन निर्वासन अथवा जुर्माने का दण्ड दिया जा सकता था।
- बहुत समय तक प्रेस भारत में शक्तिशाली तत्व नहीं था। सरकार सामान्य रूप से प्रेस के प्रति सहनशीलता की नीति अपनाए हुई थी। समाचार-पत्रों का वितरण केवल अंग्रेजों तथा कुछ भारतीयों तक ही सीमित था, परंतु **लिटन के काल** तक आते-आते यह स्थिति बदल गयी।
- इस समय मध्यम वर्ग सक्रिय हो गया था। पत्रकारों की संख्या में वृद्धि हुई। इन पत्रकारों ने अपने पत्रों के माध्यम से जनता पर व्यापक प्रभाव डाला। भारतीय भाषाओं के पत्रों के बढ़ते प्रभाव तथा भारतीयों के असंतोष के बीच **लॉर्ड लिटन वायसराय** बने।
- भारतीय हितों की विरुद्ध कार्य करने के कारण इन पत्रों में लिटन की आलोचना की गई। इन्हीं परिस्थितियों में उसने **1878** में देशी भाषा समाचार पत्र अधिनियम **(वर्नाकुलर प्रेस एक्ट)** पास किया।
- **वर्नाकुलर प्रेस एक्ट** का लक्ष्य समाचार पत्रों की स्वतंत्रता को आघात पहुँचाना था। इसके साथ ही, इसकी आवश्यकता इसलिए भी पड़ी, क्योंकि उस समय **अंग्रेजी समाचार पत्रों** की तुलना में **भाषाई समाचार पत्रों** का वितरण कहीं अधिक था।
- इस अधिनियम को मुँह बंद करने वाला अधिनियम कहा गया। इस अधिनियम का सबसे घिनौना पक्ष यह था कि इसमें देशी भाषा तथा अंग्रेजी भाषा के समाचार-पत्रों में विभेद किया गया था और तथाकथित अपराधी को अपील करने का अधिकार भी नहीं था।
- इसके अधीन **'सोमप्रकाश'**, **'भारत मिहिर'**, **'ढांका प्रकाश'**, **'सहचर'** आदि अनेक समाचार पत्रों के विरुद्ध मामले दर्ज किए गए।

- **अमृत बाजार पत्रिका** ने रातों-रात अपनी भाषा बंगाली से अंग्रेजी में बदल लिया। **1882 में लॉर्ड रिपन** द्वारा 1878 के विवादास्पद अधिनियम को रद्द कर दिया गया।

20वीं शताब्दी में प्रेस पर प्रतिबंध
(Ban on Press in 20th Century)

20वीं शताब्दी के प्रारंभ में राष्ट्रीय आंदोलन तीव्र गति से आगे बढ़ रहा था। कांग्रेस के विभाजन तथा क्रांतिकारी घटनाओं में वृद्धि से सरकार का दमन चक्र भी बढ़ा। सरकार के विरुद्ध बढ़ती हुई भावनाओं तथा कटु आलोचनाओं को रोकने तथा राजनीति में उग्र दल के उदय एवं विकास से उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिए **1908 में समाचार-पत्र अधिनियम** पास किया गया। इसमें यह प्रावधान था कि जिस समाचार-पत्र के प्रकाशन से **हिंसा एवं हत्या** की प्रेरणा मिले, ऐसे मुद्रणालयों तथा उनकी संपत्ति को जब्त किया जा सकता है। इस अधिनियम में यह भी कहा गया कि कि 15 दिन के अंदर **उच्च न्यायालय** में अपील की जा सकती थी।

- **इंडियन प्रेस एक्ट-1910** के अधीन समाचार पत्र के प्रकाशक से कम से कम 500 रुपये तथा अधिक से अधिक 2000 रुपये की पंजीकरण जमानत लेने का स्थानीय सरकार को अधिकार था।
- पंजीकरण के साथ-साथ जमानत रद्द भी की जा सकती थी। प्रकाशक दोबारा पंजीकरण कराना चाहता हो तो उसे इस अधिनियम के तहत् 10000 रुपए जमानत के रूप में देने पड़ेंगे, परंतु यदि समाचार-पत्र आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित करता है तो सरकार उसका पंजीकरण रद्द करके उसके मुद्रणालय, **समाचार-पत्र, पुस्तक** की सभी प्रतियों को जब्त कर सकती थी।
- पीड़ित पक्ष दो महीने के अंदर विशेष न्यायाधिकरण **(स्पेशल ट्रिब्यूनल)** के पास अपील भेज सकता था। विश्व युद्ध के दौरान राजनीतिक आंदोलन तथा स्वतंत्र आलोचना पर रोक लगाने के लिए भारत सुरक्षा अधिनियम लागू कर दिया गया।
- 1921 में **सर तेज बहादुर सप्रू** की अध्यक्षता में नियुक्ति **प्रेस कमेटी** की सिफारिश के आधार पर 1908 तथा 1910 के अधिनियम से संबंधित नियमों को रद्द कर दिया गया।
- **इंडियन प्रेस इमरजेंसी एक्ट 1931** द्वारा **1910 के प्रेस** संबंधी अधिनियम को पुन: लागू किया गया, जिसका उद्देश्य **महात्मा गाँधी** द्वारा आरंभ किए गए **सविनय अवज्ञा आंदोलन** को दबाना था।
- इसके तहत् प्रांतीय सरकार को विशेष शक्तियों से लैस कर दिया गया। इसमें सरकार द्वारा शब्द, संकेत अथवा आकृति द्वारा हत्या या किसी अपराध के लिए प्रेरणा देने अथवा ऐसे किसी अपराध की प्रशंसा करने पर दंड दिया जा सकता था। इसी एक्ट का विस्तृत रूप **1932** में लागू **क्रिमिनल एमेंडमेंट** था।
- दूसरे विश्व युद्ध में भारत सुरक्षा नियमों के अधीन **प्री-सेंसरशिप** पुन: लागू कर दिया गया। **प्रेस इमरजेंसी एक्ट** तथा **ऑफिशियल सीक्रेट एक्ट** को संशोधित कर दिया गया तथा कुछ समय तक तो कांग्रेस संबंधी समाचार प्रकाशित करना भी अवैध घोषित कर दिया गया।
- युद्ध के अंत में सरकार को प्राप्त हुई ये शक्तियां समाप्त कर दी गयीं। 1947 में समाचार-पत्र जांच समिति की स्थापना का उद्देश्य समाचार-पत्रों से संबंधित कानून की समीक्षा कर सुझाव पेश करना था।
- भारतीय प्रेस के प्रति सरकार के दृष्टिकोण तथा समय-समय पर लगाए गए प्रतिबंधों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय प्रेस का इतिहास संघर्षों से पूर्ण है।
- प्रेस के विकास में अनेक कठिनाइयाँ आईं, परंतु विभिन्न अड़चनों के बावजूद समाचार-पत्रों की संख्या में वृद्धि हुई और भारतीयों को विभिन्न विषयों में शिक्षित करने में प्रेस को सफलता मिली।
- यह सफलता पत्रकारों के दृढ़ निश्चय के कारण संभव हुई थी। परिस्थितियाँ कठोर थीं परंतु उन्होंने अपने को अधिक दृढ़ सिद्ध किया।

भारतीय राष्ट्रवाद में प्रेस की भूमिका एवं प्रभाव
(Role & Effect of Press in Indian Nationalism)

राष्ट्रीय भावना के उदय एवं विकास में तथा राष्ट्रीय आंदोलन के प्रत्येक पहलू के विषय में चाहे वह आर्थिक हो या सामाजिक, सांस्कृतिक हो या राजनीतिक, प्रेस की भूमिका उल्लेखनीय रही है। प्रेस ने जनता को आवश्यक राजनीतिक शिक्षा दी। प्रेस के ही माध्यम से विभिन्न राजनीतिक नेताओं ने अपने विचारों को आम लोगों तक फैलाने में सफलता प्राप्त की। सरकार की वास्तविक नीति को, उसकी दोहरी चालों को, उनके द्वारा भारतीयों के शोषण को सबके समक्ष रखने वाला तथा सरकार की कटु आलोचना को जनता तक पहुँचाने वाला माध्यम प्रेस ही था। विभिन्न नेताओं द्वारा प्रेस की स्थापना तथा समाचार-पत्रों का संपादन इसका सूचक है कि प्रेस को एक महत्त्वपूर्ण संस्था माना जाता था। जनता के बीच प्रेस की रचनात्मक भूमिका को समझते हुए उसे राष्ट्रीय आंदोलन का एक अभिन्न अंग बना लिया गया था। प्रेस ने सभी ज्वलंत समस्याओं को प्रभावशाली रूप से प्रकाशित किया। उस युग का मुख्य उद्देश्य जनजागरण था। इस उद्देश्य की प्राप्ति में प्रेस की भूमिका सक्रिय तथा उल्लेखनीय रही। हालांकि, विदेशी सत्ता से त्रस्त जनता को संमार्ग दिखाने और साम्राज्यवाद के विरोध में निर्भीक स्वर उठाने का कार्य सरल नहीं था।

- भारतीय समाचार-पत्रों ने लोगों को **राजनीतिक शिक्षा** देने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया था। काफी समाचार-पत्र सरकार की तीखी आलोचना करने लगे थे।
- समाचार-पत्रों का यह रुख कांग्रेस की नीति से भिन्न था। इस समय कांग्रेस सरकार के प्रति **भक्ति-भावना** रखती थी तथा **नरम नीति** की हिमायती थी। कांग्रेस को एक सशक्त राजनीतिक संस्था बनाने में प्रेस की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी।
- पूरे वर्ष हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में कांग्रेस के अधिवेशनों में पेश किए गए प्रस्तावों तथा मांगों पर चर्चा होती रहती थी। इन मांगों को बार-बार दोहराकर सरकार तथा जनता को प्रेस प्रभावित करता रहता था। इससे राष्ट्रीय चेतना का प्रचार द्रुत गति से होने लगा था।
- अंग्रेजों द्वारा भारत का जो आर्थिक शोषण हो रहा था उसके विरुद्ध इस काल के प्रेस ने भी आवाज उठाई थी। समाज सुधार तथा समाज के उद्धार से सामाजिक दशा में उन्नति की आशा भी की गई थी तथा प्रेस विभिन्न सामाजिक समस्याओं के विषय पर पर्याप्त चर्चा किया करता था।
- उदाहरणार्थ, सामाजिक रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, अंधविश्वास तथा अंग्रेजी सभ्यता के प्रभाव को लेकर हिंदी **'प्रदीप'** में **बालकृष्ण भट्ट** का व्यंग्यात्मक लेख लिया जा सकता है।
- सरकार की विदेश नीति पर भी प्रेस में पर्याप्त चर्चा होती थी। भारतीयों द्वारा संपादित समाचार-पत्रों का जो दृष्टिकोण ब्रिटिश शासन के प्रति था उसी से उनका सरकार की विदेश नीति के प्रति भी दृष्टिकोण प्रभावित हुआ था। बर्मा युद्ध, सरकार की **सिक्किम** तथा **तिब्बत** के प्रति नीति, **अफगानिस्तान** के साथ युद्ध, **तुर्की** के प्रति नीति, **दक्षिण अफ्रीका** की घटनाओं **(बोअर युद्ध)**, **रूसी-जापानी युद्ध** का वर्णन तथा इन पर अपने विचारों को व्यक्त करते हुए सरकारी नीति की आलोचना खुले रूप में की जाती थी।

- **दक्षिण अफ्रीका में गाँधी** के प्रयासों का भी भारतीय प्रेस में उल्लेख किया गया था तथा अपनी सुरक्षा के लिए उन्हें शस्त्र उठाने की सलाह दी गई थी। **बोअर युद्ध** में भारतीय प्रेस ने अत्यधिक रुचि दिखाई और अंग्रेजों के विरुद्ध **बोअर विजय** से भारतीय अत्यधिक प्रसन्न हुए थे।
- **बंगाली प्रेस** खासतौर पर इसमें खुश था। अंत में अंग्रेजों की **विजय** तथा **बोअरों की पराजय** पर भारतीय भाषाई समाचार पत्रों ने अपना दु:ख व्यक्त किया। उनको भय था कि इस विजय के पश्चात् अंग्रेज भारत पर और अत्याचार करेंगे।
- बढ़ते हुए राष्ट्रीय आंदोलन के हर चरण को उसके प्रत्येक पहलू एवं राजनीतिक गतिविधियों को प्रेस ने प्रमुखता दी। देश के स्वतंत्रता-आंदोलन तथा राष्ट्र निर्माण में प्रेस की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही, जिसका विस्तृत उल्लेख इस लेख से संभव नहीं है।
- राष्ट्रीय आंदोलन को लोकप्रिय बनाने, उसको विकसित करने, जनता को लोकतांत्रिक संस्थाओं से अवगत कराने, सरकार की नीतियों की समीक्षा कर जनता को प्रभावित करने, जनमत के निर्माण तथा विभिन्न दलों के विचारों से भारतवासियों को परिचित कराने, देश के विभिन्न भागों में सामाजिक वर्गों के बीच व्यापक विचारों का आदान-प्रदान कराने, प्रादेशिक लोगों के मध्य एक मानसिक संबंध स्थापित कराने, राष्ट्रीय स्तर के सम्मेलनों **(राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि)** को सफल बनाने, प्रादेशिक संस्कृतियों तथा साहित्य का विकास करने, विभिन्न कुरीतियों **(जैसे जाति प्रथा, बाल-विवाह, छुआछूत)** को दूर करने, जनतांत्रिक पुनर्निर्माण के कार्यक्रम से लोगों को अवगत कराने, संसार में होने वाली घटनाओं से भारतवासियों को परिचित कराने और उन पर अपनी विचारधारा निर्मित करने तथा जनता के विचारों से सरकार को अवगत कराने का महत्त्वपूर्ण एवं कठिन कार्य उस काल के प्रेस ने अत्यंत कुशलता तथा सफलता से पूरा किया था।
- **लॉर्ड कर्जन की बंगाल विभाजन** की योजना तथा बाद में बंगाल विभाजन (1905) ने भारतीय समाचार-पत्रों को नया जीवन दिया तथा सरकार की नीति की आलोचना का एक नया एवं महत्त्वपूर्ण मसाला तैयार कर दिया।
- सभी भारतीय समाचार-पत्रों में बंगाल विभाजन की योजना की कटु आलोचना की गई। फिर भी विरोध एवं लोकमत की उपेक्षा करते हुए **लॉर्ड कर्जन** ने बंगाल का विभाजन करके सरकार तथा समाचार-पत्रों को स्पष्ट तथा खुले संघर्ष का अवसर दिया।
- **कर्जन की नीति** की प्राय: सभी पत्रों ने तीव्र आलोचना की। उदाहरण के लिए **'केसरी'** के माध्यम से तिलक ने और **'युगांतर'** तथा **'वंदेमातरम'** के माध्यम से घोष बंधुओं ने 1905 के बंगाल विभाजन का विरोध किया तथा **स्वदेशी** एवं **बॉयकाट** का समर्थन करने का प्रयास किया।
- इसके अतिरिक्त नव-चेतना का लाभ उठाकर अंग्रेजी साप्ताहिक **'इंडियन सोशल रिफॉर्मर'** के माध्यम से समाज-सुधार का प्रचार किया गया।
- **1911 में बंगाल विभाजन** को समाप्त कर दिया गया और पुन: बंगाल एक प्रांत बना। इस घटना से समाचार-पत्रों में आत्मविश्वास की भावना आई।
- भारतीय समाचार-पत्रों ने यह सिद्ध कर दिया कि वे एक बड़ी सीमा तक जनमत का प्रतिनिधित्व करते थे।
- **प्रथम विश्व युद्ध** के बाद राष्ट्रीय आंदोलन में **महात्मा गाँधी** के भाग लेने के परिणामस्वरूप आंदोलन में नई गति आई।
- आम लोगों ने इस आंदोलन में भाग लेना आरंभ किया। यह युग (1919-47) भारत के राष्ट्रीय जीवन का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण युग था।
- इस समय में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित अनेक आंदोलन एवं घटनाएँ घटी थीं। इस काल में राष्ट्रीय आंदोलन को लोकप्रिय बनाने में भारतीयों द्वारा संपादित पत्रों का योगदान बहुमूल्य रहा है। विशेष रूप से भारतीय भाषाओं के समाचार-पत्रों का।
- इन पत्रों के संपादक तथा आम जनता के मध्य भावनात्मक एकता एवं सहानुभूति थी। वे आम जनता की समस्याओं और भावनाओं को भली-भाँति समझते थे तथा उसका प्रतिनिधित्व करते थे।

भारत से प्रकाशित समाचार पत्र: एक नजर में

समाचार पत्र	*संस्थापक / संपादक*	*वर्ष*	*स्थान*	*भाषा*
टाइम्स ऑफ इण्डिया	रावर्ट नाइट	1861	बम्बई	अंग्रेजी
स्टेट्स मैन	रावर्ट नाइट	1878	कलकत्ता	अंग्रेजी
इंग्लिश मेल	रावर्ट नाइट	–	कलकत्ता	अंग्रेजी
मद्रास मेल	रावर्ट नाइट	–	मद्रास	अंग्रेजी
पायनियर	रावर्ट नाइट	1876	इलाहाबाद	अंग्रेजी
सिविल एण्ड मिलिटरी गजट	रावर्ट नाइट	1876	लाहौर	अंग्रेजी
अमृत बाजार पत्रिका	मोतीलाल घोष	1868	कलकत्ता	बंगला, अंग्रेजी
सोम प्रकाश	ईश्वरचंद विद्यासागर	1859	कलकत्ता	बंगला
बगवासी	जोगिन्दर नाथ बोस	1881	कलकत्ता	बंगला
द हिन्दू	वीर राघवाचारी, जी.एस. अय्यर	1878	मद्रास	अंग्रेजी
केसरी, मराठा	तिलक (प्रारम्भ में आगरकर के सहयोग से)	1881	बम्बई	मराठी, अंग्रेजी
नेटिव ओपिनियन	बी.एन. मांडलिक	1864	बम्बई	अंग्रेजी
बंगाली	सुरेन्द्रनाथ बनर्जी	1879	कलकत्ता	अंग्रेजी
भारत मित्र	बाल मुकुन्द गुप्त	–	कलकत्ता	हिन्दी

हिन्दोस्तान	मदन मोहन मालवीय, प्रताप नारायण मिश्र	–	कालाकांकर (उ.प्र.)	हिन्दी
बम्बई दर्पण	बाल शास्त्री	1832	बम्बई	मराठी
बस स्टैंडर्ड, कॉमन वील	एनी बेसेंट	1914	–	अंग्रेजी
कवि वचन सुधा	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	1867	उत्तर प्रदेश	हिन्दी
हरिश्चन्द्र मैगजीन	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	1872	उत्तर प्रदेश	हिन्दी
हिंदुस्तान स्टैंडर्ड	सच्चिदानंद सिन्हा	1899	–	अंग्रेजी
ज्ञान प्रदायिनी	नवीन चंद्र राय	1866	–	हिन्दी
हिंदी प्रदीप	बालकृष्ण भट्ट	1877	उत्तर प्रदेश	हिन्दी
इंडियन रिव्यू	जी.ए. नटेसन	–	मद्रास	अंग्रेजी
मॉडर्न रिव्यू	रामानन्द चटर्जी	–	कलकत्ता	अंग्रेजी
यंग इण्डिया	महात्मा गांधी	8 अक्टूबर 1919	अहमदाबाद	अंग्रेजी
नव जीवन	महात्मा गांधी	7 अक्टूबर, 1919	अहमदाबाद	हिन्दी, गुजराती
हरिजन	महात्मा गांधी	11 फरवरी, 1933	पूना	हिन्दी, गुजराती
इंडिपेंडेंस	मोती लाल नेहरू	1919	–	अंग्रेजी
आज	शिव प्रसाद गुप्त	–	–	हिन्दी
हिन्दुस्तान टाइम्स	के.एम. पन्निकर	1920	दिल्ली	अंग्रेजी
नेशनल हेराल्ड	जवाहरलाल नेहरू	1938	दिल्ली	अंग्रेजी
उदन्त मार्तण्ड	जुगल किशोर	1826	कानपुर	हिन्दी (प्रथम)
द ट्रिब्यून	सर दयाल सिंह मजीठिया	1877	चंडीगढ़	अंग्रेजी
अल हिलाल	मौलाना अबुल कलाम आजाद	1912	कलकत्ता	उर्दू
अल बिलाग	मौलाना अबुल कलाम आजाद	1913	कलकत्ता	उर्दू
कामरेड	मोहम्मद अली	1911	–	अंग्रेजी
हमदर्द	मोहम्मद अली	1911	–	उर्दू
प्रताप	गणेश शंकर विद्यार्थी	1910	कानपुर	हिन्दी
गदर	गदर पार्टी	1913	सैन फ्रांसिस्को	अंग्रेजी, पंजाबी
हिन्दू पैट्रियाट	हरिश्चन्द्र मुखर्जी	1855	–	अंग्रेजी

समाचार एजेंसी	*स्थापना वर्ष*	*समाचार एजेंसी*	*स्थापना वर्ष*
रायटर	–	फ्री प्रेस न्यूज सर्विस यू.पी.आई. (युनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डिया)	1927
ए.पी.आई. (एसोसिएट प्रेस ऑफ इण्डिया)	1905	यू.पी.आई. (युनाइटेड प्रेस ऑफ इण्डिया)	1934-35

रेलवे (Railway)

ब्रिटिश भारत में औपनिवेशिक हितों को ध्यान में रखते हुए संचार माध्यमों पर विशेष बल दिया गया। इसी क्रम में रेलवे प्रणाली के विकास को भी महत्त्वपूर्ण माना गया, जिससे देश भर से **कच्चे माल को, बंदरगाह तक** पहुंचाने और ब्रिटिश वस्तुओं का देश के प्रत्येक भाग में पहुंचने में काफी तीव्रता आयी।

- साथ ही, सैनिकों को भी अतिशीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता था। इन्हीं को ध्यान में रखते हुए **रेलवे के विकास** पर विशेष बल दिया गया।
- **1849 ई. में भारत सचिव ने ईस्ट इंडिया रेलवे कंपनी** तथा **ग्रेट इंडिया कंपनी** तथा **ग्रेट इंडिया पेनंसुलर रेलवे कंपनी** के साथ पहले रेलवे कारखाने पर हस्ताक्षर किया गया।
- भारतीय रेल के विकास को मुख्यत: पाँच चरणों में बांटा जा सकता है-

1. प्राचीन गारंटी प्रणाली, 1849-69 ई.;
2. राज्य निर्माण एवं स्वामित्व, 1869-82 ई.;
3. विकसित गारंटी प्रणाली, 1882-1924 ई.;
4. राष्ट्रीयकरण, 1924-48 ई. तथा
5. एकीकरण एवं वर्गीकरण, 1948-52 ई.।

रेलवे का विकास

प्रथम चरण (1849-69 ई.)

प्रारंभ में, 1854 में, तीन प्रायोगिक रेल लाइनें डाली गयी।

- पूर्वी रेल, **कलकत्ता** से **रानीगंज** (120 मील),

- विशाल भारतीय प्रायद्वीपीय रेल, **बंबई** से **थाणे**(32 मील) तथा,
- मद्रास रेल, **मद्रास** से **अकोणम** (30 मील)।

लेकिन भारतीय रेल का निर्माण सही अर्थों में **1853 ई. में लॉर्ड डलहौजी** के मेमो के बाद हुआ। इस प्रक्रिया में तेजी **1857 के विद्रोह** के बाद आई, जब ब्रिटिश सरकार को तीव्र यातायात एवं संचार के साधनों की आवश्यकता महसूस हुई।

- इस दिशा में बड़े स्तर पर निजी पूँजी का निवेश नहीं हो रहा था। अत: कंपनी ने इसमें कंपनियों की पूंजी निवेश का फैसला किया, जिनकी पूंजी पर सरकार द्वारा **ब्याज की गारंटी** दी गयी।
- **1859 ई.** के अंत तक **5000 मील रेल लाइन** बिछाने के लिए इस प्रकार की आठ कंपनियों से अनुबंध पर हस्ताक्षर किए।
- इन परिस्थितियों में सरकार ने पूँजी की स्वीकृति दी तथा इस पर **5% ब्याज की गारंटी** दी। इस कार्य के लिए मुफ्त भूमि उपलब्ध करवाई गयी। इसके एवज में कंपनियों ने आय का अधिशेष सरकार के साथ बांटने का अधिकार दिया गया।
- 25 साल के बाद शर्तों के मुताबिक ये रेल लाइनें सरकार को बेची जानी थीं। इस बीच इसके कार्यों एवं खर्चों पर सरकार का नियंत्रण रहना था।
- इस व्यवस्था के दो अत्यंत विवादास्पद पहलू थे- पहला प्राइवेट कंपनियों का इन रेल लाइनों पर स्वामित्व तथा दूसरा इनकी पूँजी पर सरकार द्वारा एक न्यूनतम आय की गारंटी।

द्वितीय चरण (1869-82 ई.)

द्वितीय चरण में गृह एवं भारतीय सरकारों ने राज्य द्वारा निर्माण की योजना स्वीकार की। अपने **1869 ई.** के मेमो में **जॉन लॉरेंस** ने राज्य द्वारा रेलों का निर्माण तथा स्वामित्व पर बल दिया।

- हालांकि इस दिशा में प्रगति तीव्र नहीं थी। इस प्रकार **1869-91 ई.** के बीच सरकारी एजेंसियों द्वारा कुल **3297 मील लाइन** और जोड़ी गई।
- लेकिन निर्माण एवं प्रशासन में **सरकारी एजेंसियां** कंपनियों से बेहतर सिद्ध हुई।
- प्राचीन गारंटी प्रणाली रेलों में सबसे पहले **1879 ई.** में, पूर्वी रेल को खरीदा गया। जहां तक नई लाइनों का प्रश्न है, **1869 ई** के वर्षों बाद तक वादे पूरे नहीं किए जा सके।
- **1879 ई.** के अंत तक कई कंपनियों द्वारा **6128 मील रेल लाइन** बिछाई जा चुकी थी, जबकि राज्य द्वारा मात्र **2175 मील लाइन** बिछाई गई थी।

तृतीय चरण (1882-1924 ई.)

वर्तमान कंपनियों द्वारा आवश्यक रेलवे लाइन बिछाने के लिए आवश्यक पूंजी देने से इंकार करने के बाद केंद्रीय सरकार को अन्य स्रोतों से धन इकट्ठा करना पड़ा जिसका नुकसान प्रांतीय सरकारों को उठाना पड़ा। अत: एक विकसित गारंटी प्रणाली **1882-1924 ई.** के बीच चलाई गई।

- **सरकारी** एवं **गैर सरकारी** दोनों एजेंसियों ने निर्माण का कार्य भार संभाला, सरकार ने केवल **सामरिक दृष्टि** से महत्त्वपूर्ण लाइनों या **सूखा राहत** कार्यों तथा अन्य अत्यावश्यक कार्यों के लिए जरूरी लाइनों पर अपना ध्यान केंद्रित किया।
- इसके अतिरिक्त **भारतीय राज्यों, जिला बोर्डों** तथा अन्य स्थानीय प्राधिकारों को अपने क्षेत्रों में रेलवे लाइनें बिछाने तथा उसका संचालन करने के लिए **वित्तीय सहायता** प्रदान करने हेतु प्रोत्साहित किया गया।
- मार्च, 1923 तक भारत में रेल लाइनों की लंबाई **37,618 मील** थी जिसके **66%** से अधिक पर सरकार, सरकारी एजेंसियों तथा भारतीय राज्यों का स्वामित्व था, हालांकि अधिकतर रेलवे लाइनों की व्यवस्था **प्राइवेट कंपनियों** के हाथ में थी।
- सिर्फ **तीन मुख्य रेलवे** उत्तर **पश्चिम, पूर्वी बंगाल** तथा **अवध** एवं **रोहिलखंड (रुहेलखंड)** और दो छोटी लाइनें, **(जोरहाट तथा अदन रेलवे)**, सरकार के सीधे नियंत्रण तथा व्यवस्था के अंतर्गत थी, बाकी कंपनियों के अधीन थी।
- **सन् 1900 ई.** में पहली बार रेलवे से कुछ मुनाफा हुआ। बाद के वर्षों में यह काफी तेजी से बढ़ा। **सन् 1918-19** में रेलवे की कुल आमदनी **10 मिलियन पौंड** थी।
- रेलवे के संपूर्ण संगठन तथा कार्य की परीक्षा के लिए **1901 ई. में थॉमस रॉबर्टसन** को विशेष आयुक्त बनाया गया। उसने **1903 ई.** में बड़े पैमाने पर परिवर्तन की सिफारिश की तथा **एक रेलवे बोर्ड** बनाए जाने का सुझाव दिया, जिसका एक अध्यक्ष, **दो सदस्य** तथा **एक सचिव** होगा।
- औपचारिक तौर पर इस बोर्ड का गठन **मार्च, 1905 ई.** में किया गया तथा इसे सरकार का अधीनस्थ बनाया गया था।
- **सन् 1907** में राज्य सचिव **जॉन मार्ले** ने रेलवे के वित्तीय तथा प्रशासनिक ढाँचे की जाँच पड़ताल के लिए **सर जेम्स मैके** के नेतृत्व में एक समिति का गठन किया।
- इसने महसूस किया कि **रेलवे बोर्ड** का गठन जिस उद्देश्य से किया गया था, उसे यह ठीक से पूरा नहीं कर रहा है। बोर्ड तथा सरकार के बीच तनाव था तथा बोर्ड के गठन में ही गड़बड़ी थी।
- **रेलवे बोर्ड,** जिसका गठन **1901 ई.** में हुआ जिसे 1905 में लॉर्ड कर्जन के समय औपचारिक रूप दिया गया। 1909 ई. में इसमें सुधार किया गया तथा फिर 1914 ई. में पुनर्सुधार किया गया।
- यह ठीक तरह से काम नहीं कर रहा था। शुरू में इसके **अध्यक्ष** तथा **सदस्य रेलवे क्षेत्र** के अनुभव और ज्ञान वाले व्यक्ति थे।
- इसमें 1914 में पुन: सुधार किया गया जब वित्तीय एवं वाणिज्यिक अनुभव का एक व्यक्ति इसका सदस्य बनाया गया।
- यह स्थिति **1920 ई.** में बदल दी गयी जब यह फैसला किया गया कि सभी तीनों सदस्यों को रेलवे क्षेत्र का अनुभव होना चाहिए।
- **सन् 1921 ई.** के बाद, जब सरकार ने राज्यों के रेलवे पर प्रत्यक्ष नियंत्रण कर लिया, इसने सभी अधिकार **रेलवे बोर्ड** को सौंप दिए।
- रेलवे की नीतियों, वित्त तथा प्रशासन के सभी प्रश्नों पर गौर करने के लिए **1920 ई.** में राज्य सचिव ने **सर विलियम एक्वर्थ** की अध्यक्षता में **ईस्ट इंडिया रेलवे कमेटी** की स्थापना की। इसे **एक्वर्थ कमेटी** के नाम से भी जाना जाता है, जिसके **10 सदस्य** थे तथा इनमें से तीन भारतीय थे- **बी. एस. श्रीनिवासन शास्त्री (राज्य परिषद के सदस्य)**, **सर राजेन्द्र नाथ मुखर्जी (कलकत्ता के उद्योगपति)** तथा **पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास (बंबई के उद्योगपति)**।
- समिति ने राज्य द्वारा व्यवस्था का सुझाव दिया तथा इस समिति के सुझाव ही बाद में **रेलवे विकास** का आधार बने।
- समिति के सुझावों में से एक था-रेलवे मुख्य आयुक्त की नियुक्ति। उसने **रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष** का स्थान लिया तथा वह रेलवे की नीतियों एवं तकनीकी पहलुओं के लिए अकेला जिम्मेदार था।
- रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष की तरह वह अपने सहयोगियों द्वारा किसी मसले पर अलग-अलग नहीं किया जा सकता था। इस पद पर पहली नियुक्ति **1923 ई.** में **सी.डी.एम. हिंडले** की हुई।
- **एक्वर्थ समिति** ने रेल वित्त को सामान्य वित्त से अलग करने पर भी विचार किया। इसने सुझाव दिया कि पहले इसकी जाँच रेलवे वित्त समिति तथा **केंद्रीय विधायी सभा** द्वारा की जानी चाहिए।
- बाद में दोनों ने इसे अलग किए जाने के पक्ष में फैसला लिया तथा **1924-25 ई.** से **रेलवे बजट सामान्य बजट** से अलग कर दिया गया।

चौथा चरण (1924-48 ई.)

सन् 1932-33 में रेलवे संचालन के सभी पहलुओं की जांच के लिए **पी.ए. पोप** की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया।

- इंजनों का व्यापक प्रयोग, गैर लाभकारी बोगियों को हटा देना, अलग-अलग रेलवे के स्रोतों को एक साथ जोड़ना, बिना टिकट यात्रा, आय बढ़ाने के तरीके आदि के सुझाव इस रिपोर्ट के मुख्य सुझाव थे।
- रेलवे की आय बढ़ाने तथा रेलवे वित्त को सुगठित करने के उद्देश्य से **1936 ई.** में **सर रॉल्फ वेजवुड** के अधीन **इंडियन रेलवे इनक्वायरी कमेटी** का गठन किया गया।
- इसकी रिपोर्ट **जून, 1937 ई.** में **रेलवे बोर्ड** को दी गयी, जिसने इसके कुछ सुझावों को लागू करने का फैसला किया।
- अंतत: सरकार ने **1947 ई. में के.सी. नियोगी** की अध्यक्षता में एक **रेलवे इनक्वायरी कमेटी** का गठन किया।
- देश की तत्कालीन अस्त-व्यस्त तथा अनिश्चित स्थिति के कारण यह कमेटी जल्द ही समाप्त कर दी गयी।

पांचवा चरण (1948-52 ई.)

देश के विभाजन के कारण पश्चिम में उत्तर पश्चिम रेलवे के भाग तथा पूर्व में **बंगाल** और **असम रेलवे** पाकिस्तान में चले गए।

- **जोधपुर रेलवे के सिंध खंड** के साथ पाकिस्तान को **6958 मील रेलवे लाइन** सौंप दी गयी।
- उत्तर-पश्चिम रेलवे का भारत में बचा हुआ भाग **पूर्वी पंजाब रेलवे** कहलाया।
- **बंगाल-असम रेलवे** की बड़ी लाइन पूर्वी भारतीय रेलवे के साथ जोड़ दी गयी, जबकि इसकी छोटी लाइन अलग **असम रेलवे** कहलाई।

परिणाम

सकारात्मक परिणाम

रेलवे के विकास के परिणामस्वरूप भारत पहले की तुलना में अब अधिक सुसंगठित राजनीतिक इकाई के रूप में उभरा और प्रशासनिक दृष्टि से सेना एवं सामान्य प्रशासन की दक्षता में भी वृद्धि हुई तो सत्ता का भी **राजनीतिक एकीकरण** हुआ।

- एक-दूसरे से मिलने और विचारों के आदान-प्रदान से एक-दूसरे की भाषा **रहन-सहन रीति-रिवाज** एवं भावनाओं की समझ बढ़ी। इस तरह सामाजिक गतिशीलता बढ़ी। फलत: **राष्ट्रीय चेतना के विकास** को बढ़ावा मिला।
- विभिन्न स्थानों पर वस्तुओं की पहुंचने की सुविधा होने से वस्तुओं की कीमतों में पाए जाने वाले क्षेत्रीय अंतर भी कम हुए।
- यात्री परिवहन सुविधा बढ़ने से श्रम की गतिशीलता बढ़ी। फलत: रोजगार के अवसर बढ़े।

नकारात्मक परिणाम

- रेलवे भारत में **धन निकासी** का सशक्त माध्यम बना। लाभांश की **गारंटी** एवं **ब्याज** के भुगतान के कारण बड़ी मात्रा में **भारतीय पूँजी इंग्लैंड** गई।
- अत: भारत में पूंजी का अभाव हुआ। इससे भारत की निर्धनता बढ़ी।
- रेलवे ने भारत से कच्चे माल की निकासी को तीव्र किया और दूसरा भारत के क्षेत्रों में ब्रिटिश निर्मित वस्तुएं पहुंचाकर, भारत के **हस्तशिल्प उद्योगों के पतन** में अर्थात वि-औद्योगीकरण में भूमिका निभाई। इस तरह लोगों को बेरोजगार होना पड़ा और कृषि पर बोझ बढ़ा।
- रेलमार्ग बनने से पहले भारत से **गेहूँ का निर्यात** नहीं होता था परंतु **1886 ई.** तक **इंग्लैंड** की कुल गेहूं **की मांग का 33%** भारत ही पूरा करने लगा। इस दृष्टि से खाद्यान्न की निकासी हुई और **अकाल की स्थिति** पैदा हुई।
- रेलवे की **माल-भाड़ा दरें** भेदभाव मूलक रखी गई थी। वस्तुत: भारतीयों के लिए यह प्रतिकूल थी।

कुल मिलाकर रेलवे जिस गति से ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों को पूरा किया और ब्रिटेन के आर्थिक -औद्योगिक लाभ को सुनिश्चित किया उसी गति से भारत से धन की निकासी हुई और भारत का निर्धनीकरण हुआ। इस तरह रेलवे से मिले लाभों की तुलना में भारतीयों का आर्थिक शोषण कहीं ज्यादा हुआ है।

धन की निकासी (Drain of Wealth)

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि उपर्युक्त सभी व्यवस्थाओं के मूल में कंपनी की वाणिज्यवादी प्रकृति व्याप्त थी। धन की निकासी की अवधारणा वाणिज्यवादी सोच के क्रम में विकसित हुई।

- अन्य शब्दों में, वाणिज्यवादी व्यवस्था के अंतर्गत धन की निकासी उस स्थिति को कहा जाता है जब प्रतिकूल व्यापार संतुलन के कारण किसी देश से **सोने, चाँदी** जैसी **कीमती धातुएँ** देश से बाहर चली जाएँ। माना यह जाता है कि प्लासी की लड़ाई से 50 वर्ष पहले तक ब्रिटिश कंपनी द्वारा भारतीय वस्तुओं की खरीद के लिए दो करोड़ रुपये की कीमती धातु लाई गई थी।
- ब्रिटिश सरकार द्वारा कंपनी के इस कदम की आलोचना की गई थी किंतु **कर्नाटक युद्धों** एवं **प्लासी** तथा **बक्सर के युद्धों** के पश्चात स्थिति में नाटकीय परिवर्तन आया।
- **बंगाल की दीवानी** ब्रिटिश कंपनी को प्राप्त होने के साथ कंपनी ने अपने निवेश की समस्या को सुलझा लिया।
- अब आंतरिक व्यापार से प्राप्त रकम, **बंगाल की लूट** से प्राप्त धन तथा **बंगाल की दीवानी** से प्राप्त धन के योग के एक भाग का निवेश भारतीय वस्तुओं की खरीद के लिए होने लगा।
- ऐसे में धन की निकासी की समस्या उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। अन्य शब्दों में, भारत ने ब्रिटेन को जो निर्यात किया उसके बदले भारत को कोई आर्थिक, भौतिक अथवा वित्तीय लाभ प्राप्त नहीं हुआ।
- इस प्रकार, **बंगाल की दीवानी** से प्राप्त राजस्व का एक भाग वस्तुओं के रूप में भारत से ब्रिटेन हस्तांतरित होता रहा। इसे ब्रिटेन के पक्ष में भारत से **धन का हस्तांतरण** कहा जा सकता है।
- यह प्रक्रिया **1813 ई.** तक चलती रहीं, किंतु **1813 ई.** के चार्टर के तहत कंपनी का राजस्व खाता तथा कंपनी का व्यापारिक खाता अलग-अलग हो गया। इस परिवर्तन के आधार पर ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि **18वीं सदी** के अंत में लगभग **4 मिलियन पौंड स्टर्लिंग रकम** भारत से ब्रिटेन की ओर हस्तांतरित हुई।
- इस प्रकार भारत के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि **1813 ई.** तक **कंपनी की नीति** मुख्यत: वाणिज्यवादी उद्देश्य से परिचालित रही, जिसका बल इस बात पर रहा कि उपनिवेश **मातृदेश के हित** की दृष्टि से महत्व रखते हैं।
- **1813 ई. के चार्टर के** तहत भारत का **रास्ता ब्रिटिश** वस्तुओं के लिए खोल दिया गया तथा भारत में कंपनी का व्यापारिक एकाधिकार समाप्त कर दिया गया। इसे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन के रूप में देखा जा सकता है।
- स्थिति उस समय और भी चिंताजनक रही, जब **ब्रिटेन** तथा **यूरोप** में भी कंपनी के द्वारा भारत से निर्यात किए जाने वाले तैयार माल को हतोत्साहित किया जाने लगा।
- परिणाम यह निकला कि अब कंपनी के समक्ष अपने **शेयर धारकों** को देने के लिए रकम की समस्या उत्पन्न हो गई।

- आरंभ में कंपनी ने **नील** और **कपास** का निर्यात कर इस समस्या को सुलझाने का प्रयास किया, किंतु **भारतीय नील** और **कपास सस्ते श्रम** के कारण कम लागत में तैयार अमेरिकी उत्पादों के सामने नहीं टिक सके। अत: कई निर्यात एजेंसियों को घाटा उठाना पड़ा।
- यही कारण रहा कि कंपनी ने विकल्प के रूप में भारत में **अफीम के उत्पादन** पर बल दिया। फिर बड़ी मात्रा में **अफीम भारत से चीन को निर्यात** किया जाने लगा।
- अफीम का निर्यात चीनी लोगों के स्वास्थ्य के लिए जितना **घातक** था उतना ही कंपनी के व्यावसायिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक था। **अफीम व्यापार** का विरोध किए जाने पर भी ब्रिटिश कंपनी ने **चीन** पर जबरन यह **घातक जहर** थोप दिया।
- **ब्रिटेन, भारत से चीन को अफीम** का निर्यात करता और बदले में वहाँ से **रेशम** और **चाय** की उगाही करता और मुनाफा कमाता।
- इस प्रकार, भारत से निर्यात तो जारी रहा किंतु बदले में उस अनुपात में आयात नहीं हो पाया।
- अपने परिवर्तित स्वरूप के साथ **1858 ई.** के पश्चात भी यह समस्या बनी रही। 1858 ई. में भारत का प्रशासन **ब्रिटिश क्राउन (British Crown)** ने अपने हाथों में ले लिया। इस परिवर्तन के प्रावधानों के तहत भारत के प्रशासन के लिए भारत सचिव के पद का सृजन किया गया।
- **भारत सचिव** तथा **उसकी परिषद** का खर्च भारतीय खाते में डाल दिया गया। **1857 ई. के विद्रोह** को दबाने में जो रकम खर्च हुई थी, उसे भी भारतीय खाते में डाला गया।
- इससे भी अधिक ध्यान देने योग्य बात यह है कि भारतीय सरकार एक निश्चित रकम प्रतिवर्ष **गृह-व्यय** के रूप में ब्रिटेन भेजती थी।
- व्यय की इस रकम में कई मदें शामिल होती थीं, यथा- **रेलवे पर प्रत्याभूत ब्याज, सरकारी कर्ज पर ब्याज,** भारत के लिए ब्रिटेन में की जाने वाली **सैनिक सामग्रियों की खरीद, भारत से सेवानिवृत्त ब्रिटिश अधिकारियों के पेंशन** की रकम इत्यादि।
- इस प्रकार गृह-व्यय की राशि की गणना धन की निकासी के रूप में की जाती थी।
- उल्लेखनीय है कि **19वीं सदी** में धन के अपवाह में केवल गृह-व्यय ही शामिल नहीं था वरन् इसमें से बचाकर ब्रिटेन भेजा जाता था तथा निजी ब्रिटिश व्यापारियों का वह मुनाफा जो भारत से ब्रिटेन भेजा जाता था शामिल था।
- फिर जब **सन् 1870 के दशक** में ब्रिटिश **पौंड स्टर्लिंग** की तुलना में रुपए का अवमूल्यन हुआ तो इसके साथ ही निकासी किए गए धन की वास्तविक राशि में पहले की अपेक्षा और अधिक वृद्धि हो गई।
- गृह-व्यय अधिक हो जाने के कारण इसकी राशि को पूरा करने के लिए भारत में निर्यात अधिशेष बरकरार रखा गया। **गृह-व्यय की राशि** अदा करने के लिए एक विशेष तरीका अपनाया गया।
- उदाहरणार्थ, **भारत सचिव लंदन में कौंसिल बिल** जारी करता था तथा इस **कौंसिल बिल** के खरीददार वे व्यापारी होते थे जो भारतीय वस्तुओं के भावी खरीददार भी थे।
- इस खरीद के बदले भारत सचिव को **पौंड स्टर्लिंग** प्राप्त होता जिससे वह गृह-व्यय की राशि की व्यवस्था करता था।
- इसके बाद वे भारतीय खाते से रुपया निकालकर उसका उपयोग भारतीय वस्तुओं की खरीद के लिए करते।
- इसके बाद भारत में काम करने वाले ब्रिटिश अधिकारी ही नहीं, बल्कि भारत में व्यापार करने वाले निजी ब्रिटिश व्यापारी भी अपने लाभ को ब्रिटेन भेजने के लिए **कौंसिल बिल** की खरीददारी करते। लंदन में उन्हें इन कौंसिल बिलों के बदले में **पौंड स्टर्लिंग** प्राप्त हो जाता था।
- **गृह-व्यय** के रूप में भारत द्वारा प्रतिवर्ष ब्रिटेन भेजी जाने वाली राशि के कारण भुगतान संतुलन भारत के पक्ष में नहीं था।
- यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि शेष विश्व के साथ व्यापार में संतुलन भारत के पक्ष में बना रहा। चूँकि निर्यात अधिशेष उस संपूर्ण रकम को पूरा नहीं कर पाता, इसलिए उसकी पूर्ति हेतु भारत को अतिरिक्त राशि **कर्ज के रूप** में प्राप्त करनी होती थी।
- फलत: भारत पर गृह-व्यय का अधिभार और भी बढ़ जाता। इस तरह, आर्थिक संबंधों को लेकर एक ऐसा जाल बनता जा रहा था जिसमें भारत ब्रिटेन के साथ बँधता जा रहा था।
- **दादाभाई नौरोजी** व **आर.सी. दत्त** जैसे राष्ट्रवादी चिंतकों ने धन की निकासी की कटु आलोचना की और इसे उन्होंने भारत के दरिद्रीकरण का एक कारण माना।
- दूसरी ओर, **मारिसन** जैसे ब्रिटिश पक्षधर विद्वान निकासी की स्थिति को अस्वीकार करते हैं। उनके द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया कि गृह-व्यय की राशि बहुत अधिक नहीं थी और फिर यह रकम भारत के विकास के लिए जरूरी था।
- उन्होंने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया कि अंग्रेजों ने भारत में अच्छी सरकार दी तथा यहाँ **यातायात और संचार व्यवस्था** एवं **उद्योगों का विकास** किया और फिर ब्रिटेन ने बहुत कम ब्याज पर **अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार** से एक बड़ी रकम भारत को उपलब्ध करवायी।
- जहाँ तक **राष्ट्रवादी चिंतकों** की बात है तो उनका कहना है कि भारत को उस पूँजी की जरूरत ही नहीं थी जो अंग्रेजों ने उस समय उसे उपलब्ध कराई।
- दूसरे, यदि भारत में स्वयं **पूँजी का संचय** हुआ होता तो फिर उसे कर्ज लेने की जरूरत ही क्यों पड़ती।
- आगे धन की निकासी की व्याख्या करते हुए इन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भारत उस लाभ से भी वंचित रहा गया जो उस रकम के निवेश से उसे प्राप्त होता।
- साथ ही, धन के निकासी ने निवेश को अन्य तरीकों से भी प्रभावित किया।
- उपर्युक्त विवेचन की समीक्षा करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि राष्ट्रवादी आलोचना की भी कुछ अपनी सीमाएँ थीं।
- उदाहरण के लिए- **दादाभाई नौरोजी** जैसे **राष्ट्रवादी चिंतकों** ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भारत से जिस धन की निकासी हुई वह महज धन नहीं था, बल्कि पूँजी थी।
- दूसरे, उन्होंने भारत में कार्यरत् ब्रिटिश अधिकारियों को भारत के आर्थिक दोहन के लिए उत्तरदायी माना।
- लेकिन फिर भी यह कहा जा सकता है कि हमारे राष्ट्रवादी चिंतकों ने औपनिवेशक अर्थतंत्र की **क्रमबद्ध आलोचना** कर ब्रिटिश शासन के वास्तविक चरित्र को उजागर किया।
- अत: भावी जागरुकता की दृष्टि से उनका चिंतन सराहनीय माना जाना चाहिए।

अंग्रेजों की अकाल नीति (Famine Policy of Britishers)

भारत के संदर्भ में **ब्रिटिश नीति** एवं उसके प्रभाव की व्याख्या **ब्रिटिश पक्षधर विद्वानों** ने एकदम अलग तरीके से की है।

- उनके अनुसार, ब्रिटिश नीति का उद्देश्य था- सभी क्षेत्रों में व्यावसायीकरण को बढ़ावा देना। उनके विचार से ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारत में **सिंचाई परियोजनाओं** का विकास हुआ तथा कृषि के व्यावसायीकरण को बढ़ावा मिला जिससे कृषि का व्यापक प्रसार हुआ तथा अधिक से अधिक लोगों को अनाज मिलने लगा।

- लेकिन, सूक्ष्म मूल्यांकन करने पर ब्रिटिश विद्वानों के दावों की सीमा स्पष्ट हो जाती हैं वास्तव में, ब्रिटिश पक्षधर इतिहासकार **'श्वेतों के अधिभार सिद्धांत' (White Man's Burden Theory)** का औचित्य सिद्ध करना चाहते थे।
- परंतु, ध्यान से देखने पर यह ज्ञात होता है कि ब्रिटिश आर्थिक नीति का एक अपरिहार्य परिणाम था-**दुर्भिक्ष** अर्थात् **अकाल**।
- **सन् 1765 ई.** से लेकर **1855 ई.** तक भारत में **12 बार** अकाल पड़ा तथा उसे चार बार **खाद्यान्न का भीषण** अभाव झेलना पड़ा।
- सर्वप्रथम **बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी** के अंतर्गत द्वैध-शासन (Diarchy) की स्थापना के साथ ही 1770 ई. के दशक में भीषण अकाल पड़ा।
- सन् 1784 ई. में उत्तरी भारत में फिर एक बार अकाल पड़ा तथा सन् **1792 ई.** में **मद्रास में भीषण अकाल** की स्थिति उत्पन्न हो गई।
- यदि हम इस काल में अकाल के कारणों का विश्लेषण करते हैं तो अकाल के बदलते हुए स्वरूप को रेखांकित करना बहुत ही सरल हो जाता है।
- स्पष्टत: ब्रिटिश शासन से पूर्व होने वाले अधिकतर अकालों के लिए **प्राकृतिक आपदा (Natural Disaster)** उत्तरदायी होती थी, परंतु **सन् 1860** के बाद इसमें कुछ नये पहलू शामिल हो गए।
- इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि इस काल में पड़ने वाले अधिकतर **अकालों एवं भुखमरी** के लिए **ब्रिटिश नीति** ही उत्तरदायी थी।
- उदाहरण के लिए, इस काल में रोजगार के अवसर कम होने के कारण लोगों की क्रय शक्ति बहुत कम हो गई तथा **अनाजों को खरीदना** उनके लिए मुश्किल हो गया।
- दूसरी ओर, इसी काल में ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार भारत से अनाज के निर्यात को प्रोत्साहन दे रही थी।
- किसानों की भुखमरी को बढ़ाने में कृषि के व्यावसायीकरण की भी बड़ी भूमिका थी। व्यावसायिक फसलों को अपनाने से मोटे अनाजों के उत्पादन को गहरा धक्का लगा जिससे भुखमरी और भी बढ़ती गई। **ब्रिटिश क्राउन (British Crown)** के अधीन रहकर भी भारत में **अकाल एवं भुखमरी** एक सामान्य-सी घटना रही।
- **सन् 1866 ई. में उड़ीसा** में भयंकर अकाल पड़ा। तत्पश्चात **1868 ई. में उत्तर भारत में अकाल** की स्थिति उत्पन्न हो गई। इससे राजपूताना एवं मध्य भारत भी प्रभावित हुआ।
- **सन् 1876-78 में मद्रास, बॉम्बे, उत्तर भारत** तथा पंजाब में भी एक बड़ा अकाल पड़ा। अत: **19वीं सदी** में औपनिवेशिक सरकार के अंतर्गत एक **अकाल नीति (Famine Policy)** का निर्धारण किया गया।
- **सर्वप्रथम उड़ीसा में अकाल** के बाद **कैम्पवेल** के अधीन एक **अकाल आयोग (Famine Commission)** का गठन हुआ।
- उसके बाद 1880 ई. के दशक में **अकाल संहिता (Famine Code)** का निर्माण हुआ। फिर तो समय-समय पर अनेक अकाल आयोगों का गठन होता रहा।
- **लॉर्ड कर्जन** के समय में **मैकडोनाल्ड आयोग** का गठन किया गया। हालाँकि अकाल संहिता में यह प्रावधान था कि यदि तीन-चौथाई फसल नष्ट हो जाए तो भू-राजस्व की राशि माफ कर दी जाए, परंतु व्यवहारत: इसका क्रियान्वयन कठिन था तथा इस माँग को पूरा करवाने के लिए किसानों को एक बड़ा संघर्ष करना पड़ता था।
- उदाहरण के लिए, **सन् 1896-97 ई. में दक्कन** के मामले में **पूना सार्वजनिक सभा** ने हस्तक्षेप किया और फिर **सन् 1918 में खेड़ा** के मामले में **महात्मा गांधी** द्वारा हस्तक्षेप किया गया।
- उपर्युक्त के अलावा, सरकार द्वारा **रैय्यतों (किसानों)** की सुरक्षा के लिए भी कुछ अधिनियम बनाये गए।
- उदाहरण के लिए इस दौरान **पश्चिमोत्तर प्रांत लगान अधिनियम, 1881 ई.; मध्य प्रांत काश्तकारी विधेयक, 1883; बंगाल एवं पंजाब के काश्तकारी कानून, 1885 ई.** तथा **अवध लगान अधिनियम, 1886** पारित हुए।
- बहरहाल, यह कहा जा सकता है कि इन सुधार अधिनियमों का वास्तविक उद्देश्य किसानों का कल्याण करना कम, बल्कि राजनीतिक **असंतोष की धार** को कम करना अधिक था। साथ ही, उनका उद्देश्य किसानों में यह भ्रम फैलाना था कि सरकार उनकी भलाई के लिए काम कर रही है।

अकाल नीति/आयोग

- ***कर्नल बेयर्ड समिति (1860 ई.)***- कोई निश्चित कार्य नहीं।
- ***कैम्पवेल समिति (1860 ई.) प्रमुख सिफारिशें***- सरकार को राहत कार्य का भार स्वयंसेवी संस्थाओं पर न छोड़कर स्वयं भी करना चाहिए।

स्ट्रेची आयोग (1880 ई.) सिफारिशें-

- अकाल की संभावना के पूर्व प्रभावी व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराना,
- असमर्थ व्यक्ति को भोजन उपलब्ध कराना,
- लगान एवं अन्य करों में कमी हो,
- अनाज एकत्र करने की व्यवस्था हो,
- एक अकाल कोष बनें जिसमें प्रतिवर्ष एक करोड़ रूपए जमा हों।

मैकडोनाल्ड आयोग (1899-1900 ई.)-

- सरकार अस्थायी जलप्रबंध (कुँआ आदि) की व्यवस्था करें।
- कृषि स्थिति सुधारने के लिए सिंचाई एवं परिवहन पर बल दें।
- अकाल ग्रस्त क्षेत्र को एक **'अकाल आयुक्त'** के नेतृत्व में रखा जाए।

औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की राष्ट्रवादी आलोचना (Nationalist Criticism of Colonial Economy)

19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बुद्धिजीवियों ने ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीतियों का समर्थन किया क्योंकि उनका मानना था कि ब्रिटिश सरकार अत्याधुनिक तकनीक एवं पूँजीवादी आर्थिक संगठन द्वारा देश का आधुनिकीकरण कर रही है। लेकिन 1860 के पश्चात भारतीयों में राजनीतिक चेतना का तेजी से प्रसार हुआ तथा ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीतियों का वास्तविक स्वरूप उनके सम्मुख अनावृत्त होने लगा।

- भारत के कुछ राष्ट्रवादी नेताओं ने भी इसी समय साम्राज्यवादी सरकार की आर्थिक शोषण की नीतियों को सार्वजनिक किया तथा लोगों के सामने यह स्पष्ट किया कि अंग्रेज सरकार एक सुविचारित योजना के तहत भारत को लूटने की प्रक्रिया में संलग्न है, इन राष्ट्रवादी आर्थिक विश्लेषकों में **दादा भाई नौरोजी 'ग्रांड ओल्ड मैन ऑफ इंडिया'** का नाम सबसे प्रमुख है।
- सर्वप्रथम इन्होंने ही ब्रिटिश शासन की आर्थिक नीतियों का विश्लेषण किया तथा अपनी पुस्तक **'पावर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया'** में धन के निकास का सिद्धांत प्रस्तुत किया। **दादा भाई नौरोजी** के अतिरिक्त **जस्टिस महादेव गोविंद रानाडे, रोमेश चंद्र दत्त (द इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया)**, **गोपाल कृष्ण गोखले जी सुब्रह्मण्यम अय्यर** तथा **पृथ्वीशचंद्र राय** भी भारत के प्रमुख आर्थिक विश्लेषकों में से थे।
- इन राष्ट्रवादी आर्थिक विश्लेषकों ने अपने अध्ययनों से यह सिद्ध किया कि किस प्रकार अनाज एवं कच्चे माल के रूप में **भारत का धन इंग्लैंड** भेजा जाता है, और फिर किस प्रकार वह विनिर्मित उत्पादों का रूप लेकर भारतीय बाजार पर कब्जा करता है।
- इसके अनुसार, भारतीय धन इंग्लैंड पहुंचकर वापस भारत आता है तथा पुन:

उसे यहाँ पूँजी के रूप में लगा दिया जाता है। इस प्रकार देश के **शोषण का दुष्चक्र** बन चुका है।

- इन प्रारंभिक राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों ने सरकार के इस अन्यायपूर्ण शोषण के विरूद्ध भारतीय बुद्धिजीवियों को संगठित करने का प्रयत्न किया तथा भारतीय अर्थव्यवस्था को उपनिवेशी दासता से विमुक्त करने की मांग उठायी।
- इन्होंने सरकार से मांग की कि भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप भारतीय हितों के अनुरूप तय किया जाए, जिससे देश का **समग्र एवं आधुनिक** ढंग से विकास हो सके।
- इन राष्ट्रवादियों का मत था कि भारतीय अर्थव्यवस्था को स्वतंत्र रूप से विकसित किया जाना चाहिए। इन प्रारंभिक राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार, **ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियों** के कारण भारत **निर्धन से और निर्धन** बनता जा रहा है।
- भारत की निर्धनता मानव निर्मित है तथा इसका स्पष्टीकरण करके इसे दूर किया जा सकता है। इस निर्धनता के कारण पूँजी का संचय एवं निर्माण नहीं हो रहा है तथा लोगों का जीवन स्तर बहुत निम्न हो गया है।
- इस प्रकार, इन्होंने निर्धनता को एक राष्ट्रीय मुद्दा बना दिया। इससे समाज के सभी वर्ग के लोगों को यह सोचने पर विवश होना पड़ा कि उनकी समस्त आर्थिक समस्याएं उपनिवेशी शासन की देन है।
- भारत के इन प्रारंभिक राष्ट्रवादी चिंतकों ने भारत के औद्योगिकीकरण और विकास का भी तुलनात्मक अध्ययन किया।
- तत्पश्चात् उन्होंने स्पष्ट किया कि भारत का औद्योगीकरण भारतीय धन पर ही आधारित है न कि ब्रिटेन के धन पर।
- इसकी व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया कि **जो धन भारत से बाहर** जाता है, उसी धन को ब्रिटिश उद्योगपति पुन: यहाँ लगा देते हैं और उसी से मुनाफा कमाते हैं।
- इस प्रकार भारत का जो तथाकथित औद्योगीकरण हो रहा है उसका आधार **भारतीय धन** एवं **संसाधन** ही है न कि विदेशी धन।
- इस प्रक्रिया में भारत के धन पर निरंतर इंग्लैंड की पकड़ दिनों दिन मजबूत होती जा रही है। इन आलोचकों के अनुसार, भारत में विदेशी पूँजी निवेश के प्रभाव अत्यंत घातक हैं क्योंकि इससे **राजनीतिकरण** तथा **विदेशी निवेशकों** के हितों का पोषण होता है तथा **भारत में विदेशी शासन की निरंतरता** को गति मिलती है।
- इन राष्ट्रवादी आलोचकों ने ब्रिटिश सरकार के इस वक्तव्य का तर्कपूर्ण खंडन किया कि भारत में विदेशी व्यापार के **विकास** एवं **रेलवे** की स्थापना से देश की प्रगति हुई है।
- उन्होंने तर्क दिया कि भारत का विदेशी व्यापार देश के बिल्कुल प्रतिकूल है। इस व्यापार ने भारत को कृषिगत वस्तुओं एवं कच्चे माल का निर्यातक तथा तैयार माल का आयातक बना दिया है।
- इन आलोचकों ने तर्क दिया कि अंग्रेजों ने रेलवे का विकास अपने वाणिज्यिक हितों को पूरा करने के उद्देश्य से किया है न कि भारत को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के लिए, रेलवे के विकास से भारत की औद्योगिक जरूरतों में समन्वय भी नहीं हो पा रहा है।
- अंग्रेजों द्वारा **रेलवे के विकास** का उद्देश्य, भारत के दूर-दराज के क्षेत्रों में कच्चे माल का दोहन एवं विनिर्मित सामान को उन क्षेत्रों में पहुँचाने की अभिलाषा है।
- इससे भी अधिक **इस्पात उद्योग** को बढ़ाने एवं **मशीनीकरण** करने का कार्य भी उपनिवेशी हितों को ध्यान में रखकर किया गया है।
- **जी.बी. जोशी** ने तर्क दिया कि **रेलवे के विकास** को, ब्रिटेन के उद्योगों द्वारा भारत के दिए गए अनुदान के रूप में देखा जाना चाहिए।
- राष्ट्रवादी आलोचकों ने अंग्रेजों पर आरोप लगाया कि उनके द्वारा अपनाई गई **एकमार्गी व्यापार नीतियां,** भारत के हस्तशिल्प उद्योग का सर्वनाश कर रही हैं तथा इससे अपरिपक्व, असमान एवं भेदभावपूर्ण प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हो रही है।
- वित्तीय क्षेत्र में दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि कर के अत्यधिक बोझ से गरीब दबा हुआ है तथा **ब्रिटिश पूंजीपति** एवं **नौकरशाह** मालामाल हो रहे हैं।
- उन्होंने, भू-राजस्व में कमी करने, **नमक कर का उन्मूलन** करने, **उच्च मध्यवर्गीय** लोगों पर **आयकर** लगाने तथा इस वर्ग द्वारा उपभोग की जा रही वस्तुओं पर उत्पाद कर आरोपित करने की मांग सरकार से की।
- इन आलोचकों ने तर्क दिया कि सरकारी व्यय का उद्देश्य उपनिवेशी हितों की पूर्ति करना है, जबकि **विकास** एवं **कल्याण** जैसे मुद्दे बिल्कुल उपेक्षित कर दिए गए हैं।
- इन विद्वानों ने विदेशी पूंजी का अधिक दुरुपयोग और कम उपयोग की ओर संकेत किया और यह स्पष्ट किया कि उपनिवेशी शासन जान-बूझकर देश को कम विकास की ओर ले जा रहा है।
- राष्ट्रवादी अनुमानों के अनुसार, उस समय देश से आर्थिक निकास निम्नानुसार था-
  - देश के कुल भू-राजस्व से अधिक।
  - कुल सरकारी राजस्व का आधा।
  - कुल बचत का एक तिहाई (वर्तमान समय के अनुसार यह कुल राष्ट्रीय उत्पाद का लगभग 8% था।)
- निकास का सिद्धांत जिसके अनुसार एक देश, दूसरे देश का धन अपने यहां ले जाता है, यह कृषि प्रधान देश के लिए अत्यंत कष्टकारी है क्योंकि ऐसे देश में कृषक के लिए यह उसके रोज के अनुभव की विषयवस्तु बन जाती है।
- इन राष्ट्रवादी विद्वानों द्वारा आर्थिक निकास का सिद्धांत प्रस्तुत करने से देश के समक्ष साम्राज्यवादी शासकों की वास्तविक **मंशा उजागर** हो गई तथा इस धारणा का खोखलापन सार्वजनिक हो गया कि विदेशी शासन, भारत के हित में है।
- इस प्रकार इस **मिथक की नैतिक अवधारणा** का पर्दाफाश हो गया। इस सिद्धांत ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि भारत निर्धन है क्योंकि यह उपनिवेशी हितों के अनुरूप शासित किया जा रहा है।
- इन विद्वानों का यह आंदोलन, अंग्रेजी शासन के लिए एक प्रकार की चुनौती तथा **राष्ट्रीय आंदोलन के उदारवादी काल (1885-1905)** में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार था। यह काल **राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन** का **शैशवकाल** था।
- **19वीं शताब्दी** के अंत तक राष्ट्रवादियों ने यह मांग प्रारंभ कर दी थी कि उन्हें राजनीतिक शक्तियों में हिस्सेदारी तथा कुछ अन्य अधिकार दिए जाए।
- **20वीं शताब्दी** के प्रथम दशक में उन्होंने **इंग्लैंड या अन्य राष्ट्रों** की तरह स्वशासन की मांग कर दी। इन राष्ट्रवादियों में **दादाभाई नौरोजी अग्रणी** थे।

भारतीय उद्योगपति एवं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (Indian Industrialists and Indian National Congress)

भारतीय पूँजीपति वर्ग और कांग्रेस

भारतीय पूंजीपति वर्ग विदेशी पूंजी की दमनकारी आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत जन्मा, लेकिन मुक्त आर्थिक वातावरण की अनुपस्थिति में यह वर्ग विकसित नहीं हो सका। किन्तु प्रथम विश्व युद्ध में जब ब्रिटिश अधिकारी वर्ग संकट के दौर से गुजरा तो भारतीय पूंजीपति वर्ग ताकतवर हो गया और उसकी यह प्रगति द्वितीय विश्वयुद्ध तक जारी रही।

- **भारतीय पूंजीपति वर्ग** और **राष्ट्रीय आंदोलन** की वाहक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का काफी नजदीकी संबंध रहा और अनेक पूंजीपतियों ने कांग्रेस के भीतर अच्छी खासी पहचान बना ली।
- जहां **जमना लाल बजाज, सेमुअलएंटो, लाला शंकर लाल** आदि ने सामान्य कांग्रेसियों की तरह यातनाएं सही वहीं **घनश्याम दास बिड़ला, अंबालाल साराभाई** जैसे पूंजीपतियों ने बाहर रहकर कांग्रेस को वित्तीय सहायता दी।
- इसके अलावा **ठाकुर दास** आदि पूंजीपति या तो तटस्थ रहे या आंदोलन विरोधी।
- वास्तव में एक सहयोगी के रूप में पूंजीपतियों की कांग्रेस और राष्ट्रीय आंदोलन में अहम् भूमिका रही।
- सरकार द्वारा संरक्षण की मांग ठुकराए जाने पर उन्होंने **स्वदेशी का नारा** दिया जिससे भारतीय पूंजीपतियों को वह संरक्षण मिला जो विदेशी सरकार उन्हें नहीं दे सकी थी।
- **1900-14 ई.** के बीच **सूती कपड़े का उत्पादन** दो गुना हो गया।
- **1905-15 ई.** तक भारत में **पेट्रोलियम, मैंगनीज, अभ्रक, लौह इस्पात** एवं अन्य उद्योग स्थापित हो गए और **1914 ई. में विश्वयुद्ध** आरंभ होने से भारतीय उद्योगों को आगे बढ़ने का मौका मिला क्योंकि विदेशी उद्योग युद्ध में व्यस्त रहने के कारण भारतीय मंडी में सामान की पर्याप्त आपूर्ति नहीं कर सकते थे।
- **1915 ई.** के बाद, भारत में ब्रिटिश औद्योगिक पूंजी के बजाए वित्तीय पूंजी का शासन स्थापित हुआ और भारतीय पूंजीपतियों ने अपने शक्तिशाली दबाव समूह बनाए।
- **1914 से 1947 ई.** के काल में भारतीय पूंजीपति वर्ग का तेजी से आर्थिक विकास हुआ, जिससे न केवल वे शक्तिशाली बने बल्कि उनमें आत्मविश्वास भी बढ़ा।
- भारत में यूरोपीय संहिता का प्रतिनिधित्व काफी संगठित ढंग से हो रहा था जिसे देखते हुए **जी.डी. बिडला** और **ठाकुरदास** के प्रयासों से भारतीय पूंजीपतियों ने औपनिवेशिक सत्ता के सामने अपनी मांग सफलतापूर्वक पेश करने हेतु **1927 ई. में भारतीय वाणिज्य उद्योग महासंघ (फिक्की)** का गठन किया, जिसमें देश के व्यापारियों और उद्योगपतियों का प्रतिनिधित्व था शीघ्र ही भारतीय पूंजिपतियों ने अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में साम्राज्यवादी नीतियों का विरोध करना शुरू कर दिया।
- यहां तक कि असमान उत्पादकता वाले देश के बीच व्यापार के बारे में विनिमय असंतुलन की बात भी उठाई गई और **फिक्की के नेताओं** ने महसूस किया कि उन्हें राजनीति में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए किन्तु पूंजीपति वर्ग ऐसे संघर्ष के पक्ष में था, जो संवैधानिक तरीकों पर आधारित हो।
- **1938 ई.** से **भारतीय पूंजीपतियों** एवं **कांग्रेस नेतृत्व** के निर्णायक घटकों के बीच बेहतर समझदारी के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे थे।
- कांग्रेस मंत्रिमंडलों की **स्वदेशी रुझान** वाले भंडारों से खरीद करने की नीति से व्यापारियों को लाभ हो रहा था और पूंजीपतियों के साथ कांग्रेस के संबंध घनिष्ठ हो रहे थे।
- यह सही है कि कांग्रेस **पूंजीपतियों** और **व्यापारियों** से चंदा ले रही थी फिर भी इसके एवज में **कांग्रेस ने कभी भी अपने सिद्धांतों से हटकर पूंजीपतियों से कोई समझौता नहीं किया।**

निष्कर्ष

भारतीय पूंजीपति वर्ग समाजवाद विरोधी और **बुर्जुआ** तो था किन्तु साम्राज्यवाद का समर्थक नहीं था क्योंकि इससे आर्थिक हितों को खतरा था। इसी कारण से वह राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल हो गया और 1920 ई. के बाद उसने लगातार सक्रिय भूमिका निभाई और अपने हितों को आम जनता के हितों के साथ जोड़कर देखा।

ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह
(Revolt Against British Empire)

1857 का विद्रोह (Revolt of 1857)

1857 विद्रोह का कारण

19वीं शताब्दी में भारतीय इतिहास की सबसे प्रमुख घटना **1857 ई. का विद्रोह (विप्लव)** या **क्रांति** है। यह विद्रोह कंपनी की साम्राज्य विस्तार एवं आर्थिक शोषण की घृणित नीतियों के विरुद्ध जनता के दिलों में संचित असंतोष एवं विदेशी सत्ता के प्रति घृणा का परिणाम था। भारतीयों का रोष विभिन्न स्थानों पर सैनिक विद्रोहों अथवा जन विद्रोहों के रूप में समय-समय पर दिखाई देता रहा, अंतत: यह असंतोष एक **प्रचण्ड जन विद्रोह** के रूप में **1857** में फूट पड़ा। इस विद्रोह ने ब्रिटिश शासन की जड़ों को हिला दिया। साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने इस विद्रोह को **'सामंती असंतोष की अभिव्यक्ति'** मात्र कहा है परन्तु वास्तव में **प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक** तथा **धार्मिक क्षेत्रों** में अंग्रेजों की नीतियों ने जिस असंतोष को जन्म दिया, उसी की अभिव्यक्ति **1857 ई. के विद्रोह** के रूप में परिलक्षित हुई। विद्रोह का प्रारंभ सिपाही असंतोष के रूप में हुआ, किंतु शीघ्र ही विद्रोह का क्षेत्र अति व्यापक हो गया और इसमें भारत के लोगों की व्यापक भागीदारी हुई। 1857 ई. के विद्रोह में अनेक राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सैनिक कारणों ने सहयोग दिया। इस विद्रोह के निम्नलिखित प्रमुख कारण थे-

राजनैतिक कारण (Political Causes)

ईस्ट-इंडिया कंपनी की देशी राज्यों को समाप्त करके उसका विलयन करने की नीति का विपरीत प्रभाव हुआ। कंपनी ने **प्लासी युद्ध** के बाद से ही अपने राजनीतिक प्रभुत्व को बढ़ाने का हरसंभव प्रयास किया। परंतु **लॉर्ड वेलेजली ने सहायक संधि** और **लॉर्ड डलहौजी** ने व्यपगत सिद्धांत के माध्यम से विस्तारवादी नीति को अपनाया।

- **लॉर्ड वेलेजली** के अधीन सहायक संधि का मूल उद्देश्य, भारतीय रियासतों पर नियंत्रण तथा **शनै:-शनै:** उनके अस्तित्व की समाप्ति पर आधारित था।
- इसी प्रकार **लॉर्ड डलहौजी का 'व्यपगत का सिद्धांत' (Doctrine of Lapse)** इसी उद्देश्य का विकसित स्वरूप था, जिसके द्वारा **दत्तक पुत्र लेने के अधिकार** को छीन कर **सतारा, जैतपुर, सम्भलपुर, बघाट, उदयपुर, झाँसी** और **नागपुर** आदि रियासतों को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया।
- इसके अलावा अवध को प्रशासनिक कुप्रबंध के आधार पर ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया। **लॉर्ड डलहौजी** ने **मुगल सम्राट की उपाधि** को खत्म करने का निश्चय किया तथा **बहादुर शाह** के **सबसे बड़े पुत्र जवानबख्त** को **युवराज** मानने से इंकार कर दिया।
- इसी प्रकार **पेशवा बाजीराव द्वितीय** के **दत्तक पुत्र नाना साहब की पेंशन** समाप्त कर दी गयी। **तंजौर** और **कर्नाटक** के नवाबों की उपाधियां भी समाप्त कर दी गयीं।
- **ब्रिटिश नीति पैक्स 'ब्रिटानिक'** के फलस्वरूप **पिण्डारी, ठग** तथा अन्य सैनिकों को भारतीय रियासतों की सेना से हटा लिया गया, जिससे इन्होंने विद्रोहियों का साथ दिया।

प्रशासनिक कारण (Administrative Causes)

देशी राज्यों के इस प्रकार विलय का लोगों के जीवन पर सीधा असर पड़ा। व्यापार तथा उद्योग में लगे हुए लोग, जो दरबारियों की जरूरतों को पूरा करते थे, बेरोजगार हो गए। **प्रतिभावान लेखक, कलाकार** आदि जो दरबार में आश्रय पाते थे, **रातों-रात असहाय** हो गए। साथ ही, इन राज्यों में भारी सैनिकों की संख्या जो अपनी जीविका के लिए इन पर निर्भर थे उन्हें बर्खास्त कर दिया गया। थोड़े बहुत ही कपंनी के अधीन नौकरी पर रखे, लेकिन वे इस कार्य से प्रसन्न नहीं थे। इन परिस्थितियों में यहाँ लोग अपने क्षेत्र की स्वतंत्रता तथा अपने **राजा को पुन: गद्दी** पर बैठाने के लिए लड़ रहे थे। इन राज्यों में लोगों को यह लगा कि उनके साथ अन्याय हुआ है इसलिए यहां विद्रोह ने अति गंभीर रूप धारण कर लिया।

- कंपनी सरकार की प्रशासकीय नीति भी असंतोष का कारण बनी। **गवर्नर जनरलों** द्वारा किए गए सुधार कार्य लुभावने प्रतीत होने के बावजूद व्यावहारिक दृष्टि से कष्टप्रद थे।
- न्यायिक व्यवस्था अत्यंत दोषपूर्ण थी। इसमें धन और समय का अपव्यय होता था। इसी प्रकार, लगान-व्यवस्था भी असंतोषजनक व कष्टप्रद थी। **स्थाई बंदोबस्त, रैय्यतवाड़ी** और **महालवाड़ी** के रूप में भू-राजस्व प्रणाली में किए गए सुधार का उद्देश्य एवं परिणाम किसानों पर लगान का बोझ बढ़ाना था।
- इसके अलावा कंपनी सरकारी नौकरी देने में **भेदभाव की नीति** बरतती थी, साथ ही साथ भारतीय सरकारी सेवकों के साथ **घृणापूर्ण** एवं **अपमानजनक व्यवहार** किया जाता था। इन सभी कारणों की वजह से भारतीयों में रोष उत्पन्न हुआ, जिससे **विद्रोह को बल** मिला।

आर्थिक कारण (Economic Causes)

कंपनी द्वारा भारतीयों का **आर्थिक शोषण** भी **विद्रोह का एक प्रमुख** कारण बना। भारत आते ही अंग्रेजों ने यहां **कुटीर उद्योगों को नष्ट** करना एवं **भारतीयों का शोषण करना** आरंभ कर दिया। अंग्रेजों की **'मुक्त व्यापार नीति'** एवं इंग्लैंड में बने हुए वस्त्रों को कम मूल्य पर बेचने से **भारत का कुटीर वस्त्र-उद्योग** समाप्त हो गया। भारतीय व्यापार-वाणिज्य पर भी कंपनी का एकाधिकार स्थापित हो गया।

- इस प्रकार अंग्रेज सरकार की आर्थिक नीतियों का दुष्प्रभाव **भारत के कृषकों, कारीगरों, दस्तकारों** एवं **जमींदारों** पर पड़ा, उनकी अवस्था दयनीय हो गयी, अनेक **भूमिपति दरिद्र** बन गए। सिर्फ बम्बई में **'ईनाम कमीशन'** द्वारा **20,000 जागीरें जब्त** कर ली गयीं।
- वस्तुत: भारत के आर्थिक शोषण ने समाज के सभी वर्गों को प्रभावित किया तथा उनमें असंतोष की भावना भर दी।

सामाजिक एवं धार्मिक कारण (Social and Religious Causes)

जातिभेद की भावना से प्रेरित अंग्रेज, भारतीयों को हेय दृष्टि से देखते थे। वे यहाँ के निवासियों को **बर्बर, कट्टर, निर्दयी** और **बेईमान** समझते थे।

- उनका विश्वास था कि भारतीयों को ईसाई बना कर उन्हें सभ्य बनाया जा सकता है। **भारतीयों को ईसाई बनाने के लिए** पदोन्नति जैसा प्रलोभन दिया जाता था।
- ईसाई धर्म प्रचारकों को पर्याप्त सुविधाएँ दी जाने लगीं। ईसाई मिशनरियाँ **हिन्दू देवी-देवताओं का उपहास** उड़ाती और **मूर्ति पूजा** को बुरा मानती थीं। इस धर्म परिवर्तन का जोरदार विरोध किया गया।
- **अंग्रेजों ने 1850** में धार्मिक अयोग्यता अधिनियम पारित किया। इसके अनुसार धार्मिक परिवर्तन से **पुत्र अपने पिता की संपत्ति** से वंचित नहीं किया जा सकता था।

- इसका मुख्य उद्देश्य **ईसाई बनने वालों को लाभ** पहुंचाना था। भारतीयों ने इसका विरोध किया। इसके अलावा **सती** एवं **बाल विवाह** जैसी प्रथाओं का हटाया जाना, **1856 का विधवा पुनर्विवाह कानून, रेलवे** एवं **तार** का विस्तार पश्चिमी शिक्षा का प्रसार आदि से भारतीय रूढ़िवादी समाज चिंतित हो उठा। वह कभी भी अपने रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप बर्दाश्त नहीं कर सकता था।

सैनिक कारण (Military Causes)

1857 के विद्रोह का सूत्रपात सैनिकों ने किया था। सैनिकों में ब्रिटिश नीति के खिलाफ व्यापक रोष व्याप्त था। **बंगाल की सेना** में यह रोष काफी ज्यादा था।

- इस सेना के अधिकांश सिपाही **अवध** तथा **उत्तर पश्चिमी प्रांतों** के उच्च जाति वर्ग से संबंधित थे।
- इसी कारण वे अनुशासन को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। सैनिकों ने **जनरल सर्विस इनलिस्टमेंट अधिनियम** के अंतर्गत **समुद्रपार सेवा** करने से मनाही कर दी थी।
- इसी प्रकार **1844** में **चार बंगाल रेजिमेंटों** ने अतिरिक्त भत्ता नहीं मिलने पर सिंध में जाने से इंकार कर दिया था। इस स्थिति से निपटने के लिए **1856 में लॉर्ड कैनिंग** की सरकार ने **सेना भर्ती अधिनियम** पारित किया।
- इसके अनुसार सभी सैनिकों को जहाँ भी आवश्यता होगी, वे वहीं कार्य करेंगे। यह अधिनियम बहुत ही अप्रिय सिद्ध हुआ, खास कर यह देखते हुए कि **1839-42 तक अफगानिस्तान में सेवा** कर रहे सैनिकों को भारतीय समाज ने **'जात बाहर'** घोषित कर दिया था।
- इसी प्रकार **1854 में डाकघर अधिनियम** के पारित होने से सैनिकों की **निःशुल्क डाक सुविधा** समाप्त कर दी गयी।
- इसके अतिरिक्त भारतीय और यूरोपीय सैनिक का अनुपात दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। सैनिकों का वितरण भी दोषपूर्ण था।
- इन सब कारणों ने सैनिकों के मन में ब्रिटिश शासन के प्रति रोष भर दिया। वे अवसर की प्रतीक्षा में थे, जो **चर्बी वाले कारतूसों** ने उन्हें दे दिया।
- **1856 में ब्राउनवैस बंदूक** की जगह **नई एनफील्ड रायफल** के प्रयोग का निर्णय लिया गया जिसमें लगे कारतूसों को मुंह से खींचकर लगाया जाता था। **1857 में बंगाल सेना** में यह अफवाह फैल गयी कि **चर्बी वाले कारतूस** में **गाय** और **सूअर की चर्बी** लगी है।
- अतः सैनिकों में रोष व्याप्त हो गया कि **चर्बी वाले कारतूसों का प्रयोग** उनके धर्म को भ्रष्ट करने के लिए किया गया है।

अंग्रेजों के प्रति अविश्वास की भावना (Feeling of Mistrust towards the British)

अंग्रेजों से पहले **तुर्क एवं मुगल** भी भारत आए और यहीं के होकर रह गए। परंतु अंग्रेज ऐसा नहीं कर पाए। उनका एकमात्र उद्देश्य भारत पर शासन करना और इसे **लूट-खसोट** कर धन कमाना था।

- उन्होंने भारतीय समाज से संपर्क कायम नहीं किया और अपने-आप को अलग वर्ग के रूप में बनाए रखा। इससे भारतीयों के मन में एक अविश्वास की भावना का संचार हुआ, जो **विद्रोह का कारण** बना।

विद्रोह का तात्कालिक कारण (Immediate Cause of Rebellion)

1857 ई. के विद्रोह के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ पहले से ही मौजूद थीं, बस एक ऐसी घटना की जरूरत थी जो **चिंगारी का काम** करे। ऐसी ही परिस्थिति में कंपनी सरकार ने पुरानी **ब्राउन बैस बंदूक** की जगह **जनवरी, 1857 ई.** में नई **एनफील्ड राइफल** का प्रयोग आरम्भ किया। इस राइफल में जो कारतूस भरी जाती थी, उसे दांत से काटना पड़ता था। **बंगाल की सेना** में यह अफवाह फैल गई कि इस कारतूस में गाय और सूअर की चर्बी मिली हुई है। इससे **हिंदू-मुसलमान** सैनिकों में भयंकर रोष उत्पन्न हो गया। उनके मन में यह बात बैठ गयी कि सरकार उनका धर्म भ्रष्ट करने पर तुली हुई है।

- इस घटना ने **'उस आग को जलाया जिसके लिए लकड़ियां पहले से ही इकट्ठी हो चुकी थीं।'** लोगों ने यह कहना शुरू कर दिया कि कंपनी **औरंगजेब की भूमिका** में है और सैनिकों को शिवाजी बनना ही पड़ेगा।

विद्रोह का प्रारंभ और विस्तार (Beginning and Expansion of the Revolt)

29 मार्च, 1857 में बैरकपुर में ऐसे ही ब्रिदोह के दौरान एक सैनिक **मंगल पाण्डेय** ने अपने **एडजुडेंट की हत्या** कर दी।

- **34वीं नेटिव इन्फेंट्री** तोड़ दी गयी और अपराधियों को दण्डित किया गया।
- **10 मई, 1857** को **मेरठ छावनी** के सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। **मेरठ** का कमानदार अफसर **जनरल हेविट** के पास 2200 यूरोपीय सैनिक थे, पर वह कुछ न कर सका। **दिल्ली में बारूदखाने** के प्रभावी **अफसर विलोबी** ने अपने को असहाय पाकर बारूदखाने को उड़ा दिया और **कर्नल फिनिस** मारा गया।
- इसके पश्चात् विद्रोहियों ने **बहादुर शाह जफर** को **हिंदुस्तान का बादशाह** घोषित कर दिया। विद्रोह शीघ्र ही समस्त उत्तरी और मध्य भारत में फैल गया। **लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर, बरेली, बनारस, बिहार** के कुछ भाग, **झाँसी** एवं कुछ अन्य क्षेत्रों में विद्रोह भड़क उठा।
- **नर्मदा नदी** के दक्षिणी भाग व्यवहारतः शांत रहे। अंग्रेजों ने **20 सितंबर, 1857** को दिल्ली पर पुनः अधिकार कर लिया। **मुगल बादशाह को कैद** कर लिया और उनके **पुत्र** और **पौत्रों की हत्या** कर दी गई।
- इससे पहले लखनऊ में **बेगम हजरत महल** के नेतृत्व में **4 जून, 1857** को विद्रोह प्रारंभ हुआ, जो **मार्च, 1858** तक चलता रहा। कानपुर में **नाना साहब** ने अपने सहयोगी **तात्या टोपे** की सहायता से विद्रोह किया, जिसे **कैंपवेल** ने दबा दिया।
- **नाना साहब नेपाल** चले गए। **तात्या टोपे झाँसी** पहुँचे, जहाँ उन्होंने **लक्ष्मीबाई** के साथ मिलकर **ग्वालियर** की ओर अभियान किया।
- **जून, 1858** में **झाँसी की रानी वीरगति** को प्राप्त हुई। **तात्या टोपे** फिर बच निकले, उन्होंने मध्य भारत के जंगलों से **गोरिल्ला युद्ध** जारी रखा।
- अंततः धोखे से उन्हें पकड़ लिया गया और **फांसी** दे दी गई। बिहार के **जगदीशपुर** से **कुंवर सिंह**, बरेली से **खान बहादुर खान** ने विद्रोह का नेतृत्व किया।
- इसी प्रकार **बनारस** और **इलाहाबाद** में भी विद्रोह का प्रसार हुआ।
- उत्तर एवं मध्य भारत में जगह-जगह सिपाही विद्रोह के साथ-साथ नागरिक विद्रोह भी हुए। **किसानों, दस्तकारों, दुकानदारों, मजदूरों, छोटे जमींदारों, ग्रामीण जनता** एवं **निम्न वर्गीय जनता** ने विद्रोह का समर्थन किया। आम जनता हथियार लेकर उठ खड़ी हुई।
- इस प्रकार सभी की भागीदारी से इसने **जनविद्रोह का रूप** ले लिया। यद्यपि विद्रोहियों को जनसाधारण की सहानुभूति मिल रही थी, परंतु व्यापारी, शिक्षित वर्ग तथा भारतीय शासक वर्ग ने उनका समर्थन करने की बजाय अंग्रेजों का साथ दिया।

विद्रोह की असफलता के कारण (Causes of Failure of the Revolt)

1857 के विद्रोह ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के अस्तित्व के लिए गंभीर संकट खड़ा कर दिया था। भारतीय सिपाहियों की संख्या यूरोपीय सिपाहियों से सात गुनी थी। यह विद्रोह इतना आकस्मिक हुआ कि सरकार हैरान रह गई। **अवध तथा**

रूहेलखंड कुछ समय के लिए अंग्रेजों के हाथ से निकल गए। उत्तरी भारत में एक के बाद एक विद्रोह के परिणामस्वरूप विद्रोहियों की स्थिति मजबूत होती जा रही थी। अंग्रेजों को जहां भारतीयों का समर्थन मिल भी रहा था, वे उनकी निष्ठा की ओर से पूर्णत: निश्चित नहीं हो हो पा रहे थे।

- नए-नए स्थानों पर विद्रोह होने से उनके साधनों पर दबाव भी बहुत अधिक बढ़ गया था। उनके लिए विभिन्न भागों से संपर्क बनाए रखना भी कठिन हो गया था, क्योंकि जगह-जगह लोग **शत्रुतापूर्ण रवैया** अपना रहे थे।
- सारे संदर्भ को मद्दे नजर रखते हुए **विद्रोहियों की असफलता** तथा **अंग्रेजों की सफलता** के कारणों का विश्लेषण अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

विद्रोह का सीमित स्वरूप (Limited form of Rebellion)

1857 का विद्रोह स्थानीय स्तर पर सीमित क्षेत्र में लड़ा गया। इस विद्रोह की असफलता का एक प्रमुख कारण इसका असंगठित एवं सीमित स्वरूप था। **नर्मदा के दक्षिण के प्रदेश** विद्रोह में शामिल नहीं हुए।

- उत्तर भारत में भी सिंध और राजस्थान शांत रहे। **पंजाब को जॉन लारेंस** ने नियंत्रण में रखा। **बम्बई** (कुछ को छोड़ कर) और **मद्रास की सेनाएं दिल्ली** एवं **कलकत्ता की सेनाओं** के विपरीत राजभक्त रहीं।
- **पश्चिमी बिहार, अवध, रूहेलखंड, दिल्ली** तथा **नर्मदा** एवं **चम्बल** के मध्य के प्रदेश ही सबसे अधिक प्रभावित हुए।
- विद्रोह के पूर्व किसी भी प्रकार की **योजना या संगठन** का अभाव था। विद्रोह के दौरान संगठन बनाने की कोशिश अवश्य की गयी, परंतु ब्रिटिश प्रत्याक्रमण के सामने इन संगठनों को सुदृढ़ करना संभव नहीं हो सका।

सीमित साधन (Limited Resources)

ब्रिटिश साम्राज्य के साधन विद्रोहियों के साधनों की अपेक्षा बहुत अधिक थे। इसके साथ-साथ अंग्रेजों के पास **आधुनिकतम हथियार** थे जो विद्रोहियों के पुराने परंपागत हथियार जैसे- **बंदूक, भालों** एवं **तलवारों** से कहीं ज्यादा कारगर थे।

- अंग्रेजों ने विद्युत संचालित तार का प्रयोग भी बखूबी किया। इस कारण वे इस योग्य बन पाए कि देश के विभिन्न भागों से सूचना पा सकें तथा उसका विनिमय कर परिस्थिति के अनुसार अपनी कार्यपद्धति में परिवर्तन कर सकें।
- **विद्युत तार व्यवस्था** द्वारा कंपनी विद्रोहियों की गतिविधियों से अवगत रही। सूचनाओं के तुरंत प्राप्त होने पर सामूहिक योजना बनाई जाती और **विद्रोह को दमन** कर दिया जाता। अत: विद्युत तार ने इस विद्रोह को दबाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।
- इसकी प्रशंसा में यह कहा गया कि बिना इसके मुख्य सेनापति अपनी सेना की आधी शक्ति खो बैठेंगे। इसने तो सेनापति के दाहिने हाथ से भी अधिक सेवा की।
- अंग्रेजी साम्राज्य के **विशाल साधनों तथा सामूहिक शक्ति** की उच्चता की ओर देखें तो यह कहा जा सकता था कि यदि विद्रोही अंग्रेजों को समुद्र में अथवा **तटीय प्रदेशों** में भी खदेड़ देते तो भी वे भारत को अपनी **श्रेष्ठ शक्ति** द्वारा जीत लेते।

स्पष्ट उद्देश्य का अभाव (Lack of Clear Purpose)

1857 के विद्रोह का स्वरूप मुख्यत: **सामंतवादी** था, जिसमें राष्ट्रवाद के कुछ तत्व विद्यमान थे, जो विद्रोहियों को एक सूत्र में जोड़ती थी, वह थी **विदेशी हुकूमत** के प्रति घृणा। लेकिन उनके पास न तो कोई राजनीतिक दृष्टि थी और न भविष्य का कोई **साफ नक्शा**।

- विद्रोहियों को उपनिवेशवाद के स्वरूप के बारे में जानकारी नहीं थी। उनके पास **प्रगतिशील कार्यक्रम, एकल उद्देश्य, राजनीतिक विचारधारा** या **भविष्य का समाज** तथा **अर्थव्यवस्था की संकल्पना** का सर्वथा अभाव था।
- विद्रोही प्रगति के बजाय पिछड़े युग में प्रवेश करना चाहते थे, जिससे वह समाज के **प्रगतिशील, मध्यम** तथा **शिक्षित वर्ग** का समर्थन नहीं जुटा पाए।

योग्य नेतृत्व और संगठन का अभाव (Lack of Qualified Leadership and Organization)

1857 का विद्रोह बिना किसी पूर्व निश्चित योजना, संगठन और नेतृत्व के अभाव में विद्रोह अकस्मात शुरू हो गया। विद्रोहियों में संगठन की भावना नहीं थी। योग्य नेतृत्व का भी अभाव था।

- **82 वर्षीय मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर** प्रशासनिक मामलों में कमजोर था। उसके द्वारा विभिन्न सरदारों का आह्वान करना काफी नहीं था।
- **झांसी की रानी, कुंवर सिंह, मौलवी अहमदुल्ला** ने कुशलता और वीरतापूर्वक युद्ध किया, लेकिन विद्रोह को समन्वित करके नेतृत्व प्रदान करने का कोई प्रयास नहीं किया।
- वास्तव में विद्रोह के दौरान कोई ऐसा नेता सामने नहीं आया, जो इसका संचालन कर सके। दिल्ली पर अधिकार कर लेने के पश्चात् यहाँ एक परिषद् का गठन अवश्य किया गया, परंतु उचित दिशा और साधन नहीं मिल पाए तथा **धन, अनुभव** और **भविष्य की सरकार की रूपरेखा** भी नहीं थी।
- दूसरी ओर **लारेंस बंधु, निकोलसन, आउट्रम, हेवलॉक, एडवर्डस** जैसे योग्य, **प्रतिष्ठित** एवं **अनुभवी** सेनापतियों के सामने विद्रोही नहीं टिक सके।

जनसमर्थन का अभाव (Lack of Public Support)

भारतीय समाज के उच्च एवं मध्यम शिक्षित वर्ग एवं धनी लोग इस विद्रोह से अलग रहे। आधुनिक शिक्षित भारतीयों ने विद्रोह को समर्थन नहीं दिया क्योंकि उनके विचार से विद्रोह का स्वरूप पिछड़ा हुआ था। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त यह वर्ग ऐसा मानता था कि देश को आधुनिकीकरण की ओर आगे बढ़ाने में अंग्रेजी शासन का होना आवश्यक है। **व्यापारी एवं बनिए** भी विद्रोहियों के खिलाफ थे, साथ ही कृषकों की बहुसंख्या ने भी विद्रोहियों का साथ नहीं दिया। बहुत से सामंत अपनी जमींदारी पर अधिकार करने के बाद क्रांति से अलग हो गए। परिणामस्वरूप, जनसमर्थन के अभाव में विद्रोह का सफल होना कठिन हो गया।

देशी राजाओं एवं सामंतों की अंग्रेजों के प्रति वफादारी (Loyalty of Native Kings and Feudal Lords to the British)

1857 ई. के विप्लव में अनेक महत्त्वपूर्ण एवं **शक्तिशाली नरेशों एवं सामंतों** ने विद्रोहियों के खिलाफ अंग्रेजों का साथ दिया। ये लोग न केवल विप्लव से अलग रहे, बल्कि अंग्रेजों के साथ मिलकर विद्रोह को दबाने का प्रयास भी किया। **सिंधिया एवं होल्कर** की सेनाओं ने तो विद्रोहियों का साथ दिया परंतु ये दोनों **नरेश कंपनी के प्रति** वफादार बने रहे। **ग्वालियर के मंत्री सर दिनकर राव, हैदराबाद के वजीर तथा भोपाल की बेगम** तथा **नेपाल का मंत्री जंगबहादुर** ने विद्रोहियों के दमन में अंग्रेजों का साथ दिया।

- यहां तक कि **बहादुरशाह** का निकटतम संबंधी **इलाहीबख्श** ने भी अंग्रेजों का साथ दिया।
- संकट के समय में **कैनिंग** ने कहा था, 'यदि सिंधिया भी विद्रोह में शामिल हो जाए तो मुझे कल ही बिस्तर गोल करना होगा'।
- **कैनिंग** ने बहुत ही बुद्धिमता से कार्य किया जब उसने भारतीय राजाओं से निश्चित प्रतिज्ञा कर समर्थन प्राप्त कर लिया। विद्रोह के पश्चात् उसने राजाओं को विशेष रूप से **पुरस्कृत** किया।

राष्ट्रीयता की भावना का अभाव (Lack of Nationality)

अंग्रेजी शासन के विरुद्ध असंतोष था फिर भी इस असंतोष को एक व्यापक राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त नहीं हो सका था। इसे लोग असंतुष्ट **राजाओं** और **जमींदारों का विद्रोहमात्र** मान रहे थे। इसलिए, न तो संपूर्ण भारत में यह फैल सका और न ही इसे सबका समर्थन प्राप्त हो सका।

विद्रोह का प्रभाव (Impact of Revolt)

यद्यपि, **1857 ई. का विद्रोह** विफल हो गया, फिर भी इसके तात्कालिक और दूरगामी परिणाम अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहे। इस विद्रोह ने ब्रिटिश शासन के प्रतिरोध की एक शानदार स्थानीय परंपरा कायम की तथा **भावी स्वतंत्रता संग्राम** में भारतीय जनता के लिए प्रेरणा का कार्य किया। इससे भारत में **ईस्ट इंडिया कंपनी** के व्यापारिक शासन का अंत हो गया और ब्रिटिश साम्राज्य का प्रत्यक्ष शासन आरंभ हुआ। यह विद्रोह **एक युग की समाप्ति और नए युग के आगमन** का द्योतक था। इसने भारतीय राजनीति, प्रशासन, सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था एवं राष्ट्रीय भावना को गहरे रूप से प्रभावित किया। इस प्रभाव को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत विवेचित किया जा सकता है।

- ***मुगल शासन की समाप्ति (End of Mughal Rule)*** - विद्रोह की विफलता का दुष्परिणाम मुगलों को भुगतना पड़ा। नाममात्र के शासक रहे **बहादुरशाह** के **उत्तराधिकारियों की हत्या** दिल्ली में **अंग्रेज कप्तान हड़सन** ने कर दी। स्वयं बहादुरशाह को गिरफ्तार कर रंगून भेज दिया गया जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार **मुगल शासन** का दुखद अंत हो गया।
- ***कंपनी शासन का अंत (End of Company Governance)*** - **1757 ई. 1857 ई. तक ईस्ट इंडिया कंपनी** ने भारत पर शासन किया। लेकिन 1857 ई. के विद्रोह ने उसकी सत्ता का अंत कर दिया। विद्रोह से फैली अव्यवस्था और अंग्रेजी हितों की सुरक्षा खतरे में पड़ते हुए देखकर ब्रिटिश सरकार ने शासन व्यवस्था अपने हाथ में ले ली।
- **नवम्बर, 1858** में ब्रिटिश संसद **ने भारत सरकार अधिनियम 1858 पारित किया।** साम्राज्ञी **विक्टोरिया** ने एक घोषणा-पत्र द्वारा कंपनी के शासन की समाप्ति कर दी। सरकार ने प्रशासन कम्पनी से लेकर **भारतीय राज्य सचिव** को सौंप दिया तथा उसकी सहायता के लिए **15 सदस्यीय मंत्रणा परिषद्** (Advisory Council) की नियुक्ति की गयी।
- इस प्रकार 1858 के घोषणा-पत्र द्वारा दोहरा नियंत्रण समाप्त कर **ब्रिटिश क्राउन** सीधे भारतीय मामलों के लिए उत्तरदायी हो गई।
- **गवर्नर जनरल कम्पनी** का न होकर ब्रिटिश राज्य के वैयक्तिक प्रतिनिधि के रूप में भारत पर शासन करने लगा। उसका अधिकार व्यापक एवं गौरवमय हो गया। उसकी सहायता के लिए भी भारत में एक कार्यकारिणी परिषद् का गठन किया गया। वस्तुत: भारतीय प्रशासन से संबद्ध सारी शक्तियां **वायसराय** के हाथों में केंद्रित कर दी गईं।
- ये सारे प्रशासनिक परिवर्तन औपचारिक मात्र थे। भारत के प्रति सरकारी नीतियों में कोई व्यापक परिवर्तन नहीं हुआ। भारत का राजनीतिक और आर्थिक शोषण करना ही ब्रिटिश सरकार का भी मुख्य लक्ष्य बना रहा।
- इस नई व्यवस्था का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि **भारत पर शासन अब इंग्लैंड** से होने लगा। इंग्लैंड के उद्योगपतियों, व्यापारियों और बैंकरों ने सरकार पर अपना प्रभाव स्थापित कर अपने लाभ की योजनाएं बनवायीं।
- फलत: शासन अधिक अनुदार और प्रतिक्रियावादी बनता गया। इसका लाभ यह हुआ कि सरकारी नीतियों के प्रतिक्रियास्वरूप भारत में राष्ट्रीय भावना बलवती होने लगी।
- ***जातिगत विभेद को बढ़ावा (Promoting Caste Discrimination)*** - 1857 ई. के विद्रोह को अनेक अंग्रेज राजनीतिज्ञों ने एक मुस्लिम विद्रोह का स्वरूप दिया था। अत: विद्रोह के पश्चात् सरकार ने **भारतीयों की एकता** को नष्ट करने के लिए तथा **मुसलमानों को दंडित** करने के उद्देश्य से काफी सख्त रवैया अपनाया। अनेक नवाबों व ताल्लुकेदारों तथा मुगलवंश के **शहजादों को मृत्युदंड** दिया गया। **मुसलमानों की संपत्ति** जब्त कर ली गयी, जबकि हिंदुओं के प्रति अंग्रेजों का रवैया उतना सख्त नहीं था।
- परिणामस्वरूप, मुसलमानों ने हिंदुओं को अंग्रेजों का हिमायती समझा और अंग्रेजों के साथ उनका भी विरोध आरंभ कर किया। **1857 के विद्रोह** में हिन्दू-मुसलमानों ने एकजुट होकर भाग लिया था।
- अत: 1857 के पश्चात् अंग्रेज सरकार ने इस संबंध को अलग करने की नीति पर विशेष ध्यान दिया। अंग्रेजों ने मुसलमानों के प्रति **घृणा की नीति** अपनाई, **मुसलमानों का दमन** करना और बड़े पैमाने पर उनकी **जमीन जायदाद जब्त** करना प्रारंभ कर दिया। इससे सांप्रदायिक तनाव को बढ़ावा मिला जो अंतत: देश के विभाजन के रूप में सामने आया।
- ***सामाजिक और आर्थिक प्रभाव (Social and Economic Impact)*** - विद्रोह के परिणामस्वरूप भारत के सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में भी बदलाव आया। इसने **भारतीय सामाजिक एकता** को समाप्त कर दिया।
- अंग्रेजी नीतियों के कारण सामंती एवं प्रतिक्रियावादी वर्ग सरकार के समर्थक बन गए और **हिंदू-मुसलमानों का विभेद** बढ़ गया। विद्रोह के बाद वर्ग-संघर्ष भी तीव्र हो गया।
- लोगों ने समझ लिया कि अंग्रेजों का प्रभाव नष्ट करने के लिए उन्हें सामंतों एवं प्रतिक्रियावादी तत्वों से निपटना होगा, जो **भारत में अंग्रेजी हितों के संरक्षक** थे।
- विद्रोह के कुछ आर्थिक परिणाम भी हुए। विद्रोह के दौरान भारत की अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी। अत: सरकार ने अपने आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए **रेलवे का विस्तार, आय का उपयोग** एवं **सिंचाई** के लिए **नहरों की व्यवस्था** की, जिनसे उत्पादन और वितरण प्रणाली को स्थायित्व प्रदान किया जा सके।
- इसके साथ-साथ भारत में औद्योगीकरण की वही प्रक्रिया अपनाई गई जो स्थानीय **उद्योग-धंधे** के लिए हानिकारक सिद्ध हुई।
- 1857 ई. के विद्रोह का आरंभ यद्यपि धार्मिक कारणों से हुआ परंतु उसका अंत स्वतंत्रता संग्राम के रूप में हुआ।
- **चर्बीयुक्त कारतूस** के प्रयोग को हिंदू और मुसलमान दोनों ने धर्म के विरुद्ध माना। इसी अफवाह ने **चिंगारी का काम** किया और पहले से मौजूद **आग ने ज्वाला** का रूप धारण कर लिया।
- यह बात सही है कि विद्रोह की शुरूआत धर्मयुद्ध के रूप में हुई थी परंतु इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि विद्रोही विदेशी सरकार से छुटकारा पाना चाहते थे।
- यद्यपि इस मत को लेकर विद्वानों में आम सहमति नहीं है, फिर भी **बेंजामिन डिजरैली** तथा **विनायक दामोदर सावरकर** ने इसे भारत का स्वतंत्रता संग्राम ही बताया है।
- विद्रोह के स्वरूप को लेकर आम सहमति भले ही न हो परंतु यह बात सुनिश्चित है कि **विद्रोही दिल्ली** में पूर्व व्यवस्था को स्थापित करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने अंतिम **सम्राट बहादुरशाह** को अपना प्रतिनिधित्व चुना।
- यह बात अलग है कि परिस्थितियां न तो **मुगल सम्राट के पक्ष** में थीं और न ही विद्रोहियों के पक्ष में, इसलिए दिल्ली में प्रतिनिधि **नरेश बहादुरशाह स्वतंत्रता संग्राम** का उपयुक्त प्रतिनिधि साबित नहीं हुआ।
- यह नीति 1870 तक स्पष्ट रूप से रही और आगे उलट दी गई तथा उच्च एवं मध्यवर्गीय मुसलमानों को **राष्ट्रवादी आंदोलन** के खिलाफ खड़ा करने की कोशिश की गई। मुस्लिमों के प्रति अपनाई गई यह नीति **'बांटो और राज करो'** की नीति का अंग थी।
- ***नरेशों व सामंतों के प्रति नीति (Policy Towards Kings and Feudals)*** - भारतीय रियासतों ने विद्रोह के तूफान को रोकने में बांध का काम किया था। अत: महारानी की घोषणा में 'क्षेत्रीय सीमा विस्तार' की नीति को समाप्त कर दिया गया।
- इसके साथ-साथ स्थानीय राजाओं के साथ **ईस्ट इंडिया कंपनी** द्वारा की गयी **संधियों एवं पाबंदियों** को संपुष्ट किया गया।
- स्थानीय राजाओं के अधिकारों, **प्रतिष्ठा एवं सम्मान** का आदर करने का वचन

भी दिया गया। इस प्रकार उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य की प्राचीर के रूप में बनाए रखने के सिद्धांत को अंग्रेजी साम्राज्य का एक मुख्य मूल तत्व बना लिया गया

- ब्रिटिश प्रजा जनों की **हत्या के दोषी** अपराधियों को छोड़ बाकी सभी अपराधियों को सामान्य राजकीय क्षमा प्रदान की गयी। जिन ताल्लुकदारों ने विद्रोह में बड़ी संख्या में भाग लिया था उनसे राजभक्ति को प्रण लेकर उनके जागीरदारों को वापस कर दिया गया।
- इस प्रकार **1 नवंबर, 1858 को लॉर्ड कैनिंग** ने रानी के जिस घोषणा पत्र का ऐलान **इलाहाबाद के दरबार** में किया, उसे भारतीय जनता का महान अधिकार पत्र **(मैग्नाकार्ट)** माना गया।
- ***भारतीयों को सरकारी सेवा में स्थान (Indians Position in Government Service)*** - 1858 की घोषणा में ऐलान किया गया कि, सभी **'चाहे वे किसी भी नस्ल** या **धार्मिक विश्वास** को मानने वाले हों, निष्पक्षता के साथ सरकारी पदों पर नियुक्त हो सकते हैं, बशर्ते वे अपनी **शिक्षा क्षमता** और **ईमानदारी** के द्वारा उन पदों के कर्त्तव्यों को उचित रूप से निभाने के योग्य हों।'
- इसी प्रतिज्ञा के फलस्वरूप **1861 में भारतीय लोक सेवा अधिनियम** बनाया गया, जिसके अनुसार प्रत्येक वर्ष **लंदन में एक प्रतियोगिता परीक्षा** आयोजित करने का फैसला किया गया, जिससे लोक सेवा में भर्ती की जा सके।
- इस महत्त्वपूर्ण कदम के बावजूद जो विस्तृत नियम इस परीक्षा के लिए बनाए गए, उनसे केवल अंग्रेजों को ही लाभ मिल सका तथा उनका वर्चस्व बना रहा।
- ***प्रेस के प्रति नीति (Policy towards the Press)*** - 1857 के विद्रोह में देशी पत्र-पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। **लॉर्ड कैनिंग** ने यह स्वीकार भी किया कि "मुझे संदेह है कि इस बात को लोग अच्छी तरह समझते हैं या जानते हैं कि नहीं भारतीयों के हृदय में प्रेस ने किस खतरनाक हद तक अंग्रेजी शासन के प्रति राजद्रोह का विष फैलाया।"
- उसका मानना था कि इस विद्रोह में देशी पत्रों ने आगे बढ़कर लोगों को जागरूक करने का कार्य किया।

अत: सरकार ने देशी पत्रों के प्रति दमन की नीति अपनाई। **1867 के पंजीकरण अधिनियम** के अंतर्गत प्रेस संबंधी स्वतंत्रता नष्ट कर दी गई। तत्पश्चात् **लॉर्ड लिटन ने 1878 में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट** को लागू किया, जिसका प्रमुख उद्देश्य **देशी समाचार पत्रों-पत्रिकाओं** पर प्रतिबंध लगाना था।

सेना का पुनर्गठन (Reorganization of Army)

इस विद्रोह में भारतीय सेना ने प्रमुख भूमिका निभाई थी वही इसके लिए उत्तरदायी थी। अत: इसका पुनर्गठन विभाजन और प्रतितोलन की नीति पर किया गया। **1861 की 'सेना सम्मिश्रण योजना'** के द्वारा कंपनी की यूरोपीय सेना, सरकार को हस्तांतरित कर दी गयी। **1858 में 'पील कमीशन'** की सिफारिश पर सेना में भारतीयों की संख्या घटा दी गयी और यूरोपीय सैनिकों की संख्या बढ़ा दी गयी। यूरोपीय सैनिकों की संख्या 40,000 से बढ़ा कर 65,000 कर दी गयी तथा भारतीय सेना की संख्या 2,38,000 से घटा कर 1,40,000 कर दी गयी। **बंगाल प्रेसिडेंसी** में यूरोपीय एवं भारतीय सेना **का अनुपात 1:2** तथा **बंबई एवं मद्रास में यह अनुपात 1:3** निश्चित किया गया।

- सेना के मुख्य पद यूरोपीयों के लिए सुरक्षित कर दिए गए। **सेना और तोपखाने** के महत्त्वपूर्ण पदों से भारतीयों को वंचित रखा गया। इसके अलावा सेना के संगठन में भी भेदभाव की नीति बरती गयी।
- भारतीयों को दो वर्गों **सैनिक व गैर सैनिक** में बांट दिया तथा **जाति, धर्म** और क्षेत्र के नाम पर **रेजीमेंटों का गठन** किया गया। **भारतीय सूबेदार से ऊंचा ओहदा** प्राप्त नहीं कर सकते थे।
- इसके साथ-साथ **अवध, बिहार, मध्य भारत** के लोगों को सेना में कम स्थान दिया जाने लगा **सिक्खों, गोरखों** आदि को बढ़ावा दिया गया।

शासक एवं शासितों के बीच संपर्क बनाना (Formation of Relation between the Ruler and the rule)

विद्रोह के पश्चात् यह अनुभव किया गया कि विद्रोह का एक मूल कारण शासकों और शासितों अर्थात् भारतीयों के बीच संपर्क का न होना था। इसी कमी को दूर करने के उद्देश्य से 1861 में पास किए गए **भारतीय परिषद अधिनियम** के तहत यह प्रावधान किया गया कि तीन भारतीयों को विधान परिषद का सदस्य नियुक्त किया जाए। ये भारतीय जनता को प्रतिनिधित्व तो नहीं करते थे, परंतु इस बात को स्वीकार किया जाना कि "भारतीयों को प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए" एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था।

- अंत में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इस विद्रोह ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में क्या योगदान दिया? इस प्रश्न का उत्तर यह मिलता है कि इस विद्रोह का प्रभाव यह हुआ कि इससे **पुराना सामंतवादी ढांचा** कमजोर हुआ।
- इसके पश्चात् सभी कमजोरियों के बावजूद **पुरानी सामंतवादी व्यवस्था** को पुन: स्थापित करने का प्रयास नहीं किया गया, बल्कि भारतीयों ने भविष्य की ओर आगे बढ़ने का प्रयास किया।
- दूसरे, एक अन्य प्रभाव यह था कि विद्रोह के दौरान भारतीयों ने अंग्रेजों के खिलाफ हिंसा का व्यापक मार्ग अपनाकर विदेशी शासन से मुक्ति का प्रयास किया, लेकिन असफलता के पश्चात् हिंसा का मार्ग नहीं अपनाया गया।
- तीसरे, विदेशी शक्ति को समाप्त करने के लिए लोगों ने जिस **वीरता व बलिदान की भावना** का परिचय दिया उसे भारतीय भूले नहीं, बल्कि सदा इनसे प्रेरणा प्राप्त करते रहे।

प्रशासनिक परिवर्तनों के उद्देश्य व परिणाम (Objectives and Consequences of Administrative Change)

धर्म के लिए संघर्ष के रूप में शुरूआत जिसका परिणामस्वतंत्रता संग्राम के रूप में और **दिल्ली नरेश** के प्रतिनिधित्व में पुरानी व्यवस्था स्थापित करने के संदर्भ की विवेचना करने पर वह परिलक्षित होता है कि **1857 के विद्रोह** से अंग्रेजों को इस बात का भली-भाँति एहसास हो चुका था कि **एक सुसंगठित जन विद्रोह** कभी भी ब्रिटिश शासन के लिए एक गंभीर चुनौती बन सकता है।

- इस विद्रोह में प्रशासन एवं जनता के मध्य संपर्क का अभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुआ। साम्राज्यवादी सरकार को यह अनुभव हो गया कि **शासन को जन सामान्य से संपर्क** बनाए रखकर ही उसे प्रशासन से जोड़ा जा सकता है।
- इसके साथ ही उन्हें अहसास हुआ कि प्रशासन भारतीयों की **सभ्यता, संस्कारों** एवं **रीति-रिवाजों** से भली-भांति अवगत होता है तो उसके लिए जनता का सहयोग अपरिहार्य है इससे प्रशासन को सुदृढ़ता तो मिलेगी ही, साथ ही 1857 जैसी घटनाओं को ज्यादा कुशलतापूर्वक हल करने में भी सहायता मिल सकेगी।
- **19वीं शताब्दी** के पूर्वार्द्ध में औद्योगिक क्रांति उत्तरोत्तर सघन होती गयी तथा उसका तेजी से प्रसार हुआ। इस अवधि में **अमेरिका, जापान** तथा यूरोपीय देश **नई औद्योगिक शक्तियों** के रूप में उभरे तथा **कच्चे माल, विनिर्मित सामान** के लिए बाजार तथा पूंजी विनिवेश के लिए उपनिवेशों में इन औद्योगिक शक्तियों के मध्य प्रतियोगिता प्रारंभ हो गयी।
- तत्कालीन समय में विभिन्न शक्तिशाली राष्ट्रों के मध्य ये कारक ही सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण थे। वित्त एवं विनिर्मित सामान के क्षेत्र में ब्रिटेन की सर्वोच्चता का अंत हो गया।
- इस समय रेलवे में ब्रिटिश पूँजी का भारी निवेश हुआ तथा ब्रिटेन द्वारा भारत सरकार को ऋण के रूप में प्रचुर मात्रा में धन दिया गया। भारत में इस

धन का निवेश मुख्यतया: **चाय बागानों, कोयला खदानों, जूट मिलों, जहाजरानी, छोटे उद्योगों** एवं **बैंकिंग** इत्यादि में किया गया।

इन सभी कारकों ने मिलकर भारत में उपनिवेशवाद का एक नया युग प्रारंभ किया। भारत में उपनिवेशी सरकार का मुख्य लक्ष्य अपनी स्थिति को सुदृढ़ एवं सुरक्षित करना था, जिससे कि वह ब्रिटेन के आर्थिक तथा वाणिज्यिक हितों की रक्षा कर सके तथा विश्व के अन्य भागों में जब भी और जहां भी संभव हो इसका विस्तार कर सके।

- विभिन्न अंग्रेजी वायसरायों तथा गवर्नर-जनरलों यथा- **लिटन, डफरिन, लैंसडाउन, एल्गिन, कर्जन** तथा अन्य सभी ने साम्राज्यवादी नियंत्रण तथा साम्राज्यादी विचारधारा को उत्तरोत्तर सुदृढ़ करने का प्रयास किया, जिसकी झलक इन प्रशासकों की नीतियों एवं वक्तव्यों से मिलती है।
- भारत में सरकारी ढांचे एवं सरकारी नीतियों में परिवर्तन का प्रभाव आधुनिक भारत में विभिन्न रूपों में परिलक्षित होता है।

विद्रोह का चरित्र या स्वरूप (Nature or Character of the Revolt)

1857 के विद्रोह के स्वरूप को लेकर **इतिहाकार एक मत** नहीं है। ज्यादातर अंग्रेजी इतिहासकार इसे सैन्य विद्रोह की संज्ञा देते हैं, जिसे जनसाधारण का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। इसके विपरीत राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने जनता की भूमिका पर अधिक बल दिया है।

- **लॉरेंस, मालेन्स, ट्रेविलियान, होम्ज, सील, मुंशी जीवनलाल, मुइनुद्दीन, दुर्गादास बंदोपाध्याय** तथा **सर सैयद अहमद खाँ** के अनुसार यह एक ऐसा सैन्य विद्रोह था, जिसे जन-साधारण का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ।
- **सर जॉन लारेंस एवं सीले** के अनुसार यह विद्रोह पूर्णतया देशभक्तियुक्त स्वार्थरहित सैनिक विद्रोह था, जिसे न कोई स्थानीय नेतृत्व और न ही जनसाधारण का समर्थन प्राप्त था।
- उनके अनुसार यह एक संस्थापित सरकार के विरुद्ध भारतीय सेना का विद्रोह था, यह विचार त्रुटिपूर्ण है। यह सर्वविदित है कि विद्रोह को आरंभ करने का श्रेय सेना को जाता है, परंतु यह सेना तक सीमित नहीं था।
- सभी सेनाओं ने विद्रोह नहीं किया। देश के कुछ हिस्सों में यथा **बिहार, अवध** आदि में इसे जनता का सहयोग प्राप्त हुआ।
- **1858-59** के अभियोगों में सैनिकों के साथ-साथ असैनिक वर्ग भी दोषी पाए गए। इससे सिद्ध होता है कि असैनिक वर्ग ने भी इस विद्रोह में हिस्सा लिया था।
- **एल. आर. रीज** ने धर्मांधों का **'ईसाइयों'** के विरुद्ध धर्म युद्ध कहा है। यह कथन भी त्रुटिपुर्ण है। माना कि दोनों दलों ने अपनी-अपनी ज्यादतियों को छिपाने के लिए धार्मिक ग्रंथों का आश्रय लिया, परंतु इससे किसी धर्म की जीत नहीं हुई।
- ईसाई जीत गए परंतु ईसाई धर्म नहीं जीता, इसी तरह **हिन्दू और मुसलमान हार** गए पर हिंदू और मुस्लिम धर्म नहीं पराजित हुआ। ईसाई धर्म प्रचारकों को भी धर्म परिवर्तन कराने में विशेष सफलता नहीं मिली।
- ईसाई अंग्रेजों के साथ भारतीय धर्म के लोगों ने भी **क्रांति के दमन** में योगदान दिया।
- **टी.आर.होम्स** ने इसे बर्बरता तथा सभ्यता के बीच का युद्ध बताया है। यह विचारधारा जातिभेद के पूर्वाग्रह से ग्रसित है। यह सर्वविदित है कि अंग्रेजों के साथ-साथ भारतीयों ने भी ज्यादतियाँ कीं परंतु अंग्रेजों की तुलना में उनके द्वारा किए गए अपराध कही कम जघन्य तथा बर्बर थे।
- ऐसी बर्बरता करने वाले समाज को कदापि सभ्य नहीं कहा जा सकता है। अत: यह तर्क भी भ्रांतिपूर्ण है। **सर जेम्स आउट्रम** तथा **डब्ल्यू टेलर** ने इस विद्रोह को **हिन्दू-मुस्लिम षड़यंत्र** का परिणाम बताया है कि उनके विचार में यह एक **मुस्लिम षड़यंत्र** था, जिससे हिन्दू शिकायतों का लाभ उठाया गया।
- इंग्लैंड में समकालीन रूढ़िवादी दल के नेता **बेंजामिन डिजरैली ने इसे एक 'राष्ट्रीय विद्रोह'** कहा है। उनके अनुसार यह विद्रोह एक आकस्मिक प्रेरणा नहीं था, अपितु एक **सचेत संयोग का परिणाम** था।
- वह एक सुनियोजित और सुसंगठित प्रयत्नों का परिणाम था। इसका कारण मात्र **चर्बी वाला कारतूस** नहीं था। ऐसे विद्रोह उचित एवं पर्याप्त कारणों के एकत्रित होने से होते हैं।
- **अशोक मेहता ने भी अपनी पुस्तक 'द ग्रेट रिबेलियन में इसे राष्ट्रीय विद्रोह कहा** है। **विनायक सावरकर** ने भी इसे सुनियोजित स्वतंत्रता संग्राम कहा है। इससे पहले के छोटे **विद्रोह 1857** में होने वाले नाटक के पूर्वाभ्यास मात्र थे।
- **डॉ. एस.एन.सेन- डॉ. आर.सी. मजूमदार विवाद** इन दो आधुनिक इतिहासकारों ने **1857 के विद्रोह** के स्वरूप को लेकर अलग-अलग विचार प्रकट किए हैं।
- मतभेद के बावजूद दोनों विद्वान इस बात से सहमत हैं कि विद्रोह पूर्ण-योजना का परिणाम नहीं था और न ही इसके पीछे कोई कुशल और सिद्धहस्त व्यक्ति था।
- **नाना साहब** का **लखनऊ** जाना, **अजीमुल्ला खाँ** का **तुर्की** तथा **क्रीमिया** में **उमर पाशा** से मिलना या **चपातियों** और **कमल के फूलों** द्वारा संदेश प्रेषित करना, किसी निश्चित योजना को प्रमाणित नहीं करते हैं।
- दोनों विद्वान इस बात पर भी सहमत हैं कि उस वक्त भारतीय राष्ट्रीयता भ्रूण ावस्था में थी।
- **डा. सेन** के मुताबिक उस वक्त भारत का भौगोलिक कथन मात्र था। विभिन्न क्षेत्र के लोगों ने कभी भी यह अनुभव नहीं किया कि वे एक ही राष्ट्र के सदस्य हैं।
- अधिकांश नेता अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए लड़ रहे थे। **बहादुर शाह** को नेतृत्व प्रदान करने पर विवश किया गया, **नाना साहब** विद्रोह के दौरान ब्रिटिशों से बात करने को तैयार थे, यदि उनकी पेंशन स्वीकार कर ली जाती।
- **अवध के तालुकेदारों** ने अपने सामंतवादी अधिकार के लिए युद्ध किया न कि राष्ट्रीय हित के लिए। अधिकांश जगहों पर इन्हें **जनता का समर्थन** भी प्राप्त नहीं हुआ।
- **डॉ. आर.सी. मजूमदार** के अनुसार, **1857 का विद्रोह** स्वतंत्रता संग्राम नहीं था।
- विद्रोह ने भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न रूप धारण किया। **पंजाब** एवं **मध्य प्रदेश** में यह मात्र एक सैनिक विद्रोह था।
- **उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश** के कुछ भागों तथा **बिहार में सैनिक विद्रोह** के पश्चात् यह एक सर्वसाधारण विद्रोह हो गया।
- इसके अलावा कुछ स्थानों पर जनता ने विद्रोह के प्रति सहानुभूति प्रकट की, पर इसमें शामिल नहीं हुई।
- **डॉ. मजूमदार** इस बात पर भी अधिक बल देते हैं कि अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने वाले केवल सैनिक ही थे, जो अपनी शिकायतों के कारण लड़ रहे थे।
- उनमें **देशप्रेम** या **स्वतंत्रता** प्राप्त करने के उद्देश्य का अभाव था। **डॉ. मजूमदार** ने अंतत: यह स्वीकार किया है कि इस विद्रोह के दूरगामी प्रभाव से राष्ट्रीयता का जन्म हुआ।
- इसके विपरीत **डॉ. सेन अमेरिकी** तथा **फ्रांसीसी क्रांति** का हवाला देते हुए कहते हैं कि यह **एक स्वतंत्रता संग्राम** ही था, क्योंकि क्रांतियाँ प्राय: एक छोटे वर्ग का कार्य होती हैं, जिसे जनता का समर्थन प्राप्त होता भी है और नहीं भी होता है।
- उनका मानना है कि यह विद्रोह एक सैनिक विद्रोह के रूप में आंरभ हुआ तथा उसने शीघ्र ही स्वतंत्रता संग्राम का रूप ले लिया तथा विद्रोहियों का

लक्ष्य विदेशी सरकार को समाप्त कर प्राचीन व्यवस्था को पुनर्स्थापित करना था।

- **डॉ. मजूमदार** इससे सहमत नहीं हैं तथा उनका विचार है कि यह तथाकथित राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम **न तो प्रथम, न ही राष्ट्रीय और न ही स्वतंत्रता संग्राम** था।

भारत में जनजातीय विद्रोह (Tribal Revolts in India)

औपनिवेशिक शासन प्रणाली की विस्तारवादी नीति एवं समस्त साधनों द्वारा धन उपार्जन की नीति के परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने आदिवासी क्षेत्रों में अतिक्रमण आरंभ किया। जिससे **जनजातीय अर्थव्यवस्था, संस्कृति, रीतिरिवाज** में व्यापक परिवर्तन होने लगा। अंग्रेजी सरकार के कायदे-कानून, जिनसे जनजातीय समुदाय प्राय: मुक्त थे, कठोर रूप से लागू किए जाने लगे। समय पर राजस्व न देने के कारण उनकी भूमि बेदखल होने लगी। **बाढ़, सूखा, महामारी** की स्थिति में भी सरकार के **रुख में नरमी** नहीं दिखाई दी। परिणामस्वरूप आदिवासियों में धीरे-धीरे असंतोष की भावना व्याप्त हुआ।

- अंग्रेजी शासन के परिणामस्वरूप जनजातीय लोग बाह्य जगत के साथ सम्पर्क में आकर वृहद् परंपरा की ओर उन्मुख होने लगे और जनजातियों का संस्कृतिकरण आरंभ हुआ।
- यहाँ तक कि अनेकों जनजातीय समूह **(गोंड)** के सम्पर्क के परिण ाामस्वरूप हिन्दू जाति व्यवस्था में स्थान पाने के लिए प्रयत्नशील होने लगी। परिणामत: इनमें से कुछ जनजातियाँ (गोंड) अपनी उच्च आर्थिक प्रस्थिति एवं जागरुकता के कारण हिन्दू जाति व्यवस्था में सम्मानजनक स्थान पा सकी जबकि कुछ अन्य जनजातियों की स्थिति हिन्दू जाति व्यवस्था की अस्पृश्य परंपरा के अन्तर्गत स्थापित हो गई।
- इस तरह एक ओर जहाँ संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के तहत जनजाति का जातिकरण हुआ वहीं ईसाई मिशनरियों ने उन्हें अनेकों प्रलोभन देकर धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरित किया।
- इस तरह अनेक घटनाओं के एक साथ घटित होने के कारण उत्पन्न समस्याएँ, औपनिवेशिक शासन की विस्तारवादी नीति, स्थानीय साधनों के दोहन की प्रक्रिया, अनेक विधानों द्वारा जनजातियों की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था पर प्रतिबंध के परिणाम से जनजातियों में असंतोष व्याप्त होने लगा जो कि आंदोलन के रूप में प्रकट हुआ।
- **आदिवासी समाज** की समस्याओं की ओर न तो तथाकथित **सभ्य समाज** और न ही सरकार का ध्यान गया। ईसाई मिशनरियाँ भी **सुधार एवं कल्याण** की आड़ में निहित स्वार्थ एवं धर्म परिवर्तन के लक्ष्य की प्राप्ति में ही अधिक संलग्न रहीं जो कि व्यापक जनान्दोलन का कारण बनीं।

वैसे तो आदिवासी आंदोलन देश के सम्पूर्ण क्षेत्र में किसी न किसी अवधि में व्याप्त रहे लेकिन **के. एस. सिंह (ट्राइबल मूवमेंट इन इंडिया)** के अनुसार क्षेत्र की दृष्टि से इन्हें तीन क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है-

- पूर्वोत्तर क्षेत्र - **नागा, मिजो, खासी**।
- मध्य क्षेत्र - **मुण्डा, भील, गोंड**।
- दक्षिणी क्षेत्र - **रमोसी, रंपा** आदि।

विद्वानों का मानना है कि चाहे ईसाई मिशनरियों अथवा संस्कृतिकरण की प्रक्रिया अथवा शिक्षा के परिणामस्वरूप जागरूकता के कारण पूर्वोत्तर एवं मध्य क्षेत्र में जनजातीय आंदोलन व्यापक रूप से प्रकट हुए किन्तु दक्षिणी क्षेत्र प्राय: अछूता रहा। अन्य शब्दों में **पूर्वोत्तर क्षेत्र, छोटानागपुर क्षेत्र, महाराष्ट्र, गुजरात** एवं **राजस्थान की भील जनजाति** आंदोलन का केन्द्र बिन्दु रही। आंदोलन के घटित होने के अनेक कारण थे।

जनजातीय विद्रोह के कारण (Causes of Tribal Revolts)

औपनिवेशिक शासन ने जनजातीय जनजीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया। इन प्रभावों में आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक-धार्मिक कारण प्रमुख रहे जिसके परिणामस्वरूप जनजातीय आंदोलन शुरू हुआ।

- ***आर्थिक तत्वों को जनजातीय*** विद्रोहों के प्रमुख कारणों में से एक माना गया है। आदिवासियों का जंगलों पर परंपरागत अधिकार था और उनके जीवन में जंगलों का महत्त्वपूर्ण स्थान था।
- औपनिवेशिक शासन में वन नीति ने वनों को सरकारी सम्पत्ति घोषित कर दिया जिससे जनजातीय आदिवासियों को वन सामग्री के उपयोग का एकछत्र राज्य समाप्त हो गया।
- इसके अतिरिक्त भू-राजस्व के नए तरीके अर्थात् नगद भुगतान की पद्धति के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर महाजनों की पकड़ मजबूत हुई और **जनजातीय भूमि से बेदखल** किए जाने लगे।
- **1793 ई०** में लागू की गयी स्थायी बन्दोबस्त व्यवस्था के कारण जनजातियों में आक्रोश था। इस व्यवस्था के कारण उन्हें पुश्तैनी जमीन से वेदखल होना पड़ा। जमींदार उनकी जमीन के मालिक बन बैठे।
- आबकारी नीति के अन्तर्गत करों की **वसूली, सूखा, बाढ़** एवं **महामारी की स्थितियों** में भी लगान वसूला जाना, **नमक कर लगाना,** 1827 में **पोस्ता की जबरन खेती** की शुरूआत और **अफीम पर कर वसूली** आदि ऐसे अनेक आर्थिक कारण थे जिन्होंने जनजातियों को विद्रोह के लिए प्रेरित किया।
- ***राजनैतिक-प्रशासनिक*** कारण भी जनजातीय विद्रोह के लिए उत्तरदायी थे। अंग्रेजों ने अपने **सामरिक** और **राजस्व** आवश्यकताओं के कारण जनजातीय क्षेत्रों में सैनिक छावनियाँ, पुलिस थाने स्थापित किये और इन क्षेत्रों में कंपनी के कानून लागू कर दिये गए।
- इन नए कानून को स्वीकार करने के लिए आदिवासी समाज तैयार नहीं था। कम्पनी के कर्मचारियों और पुलिसकर्मियों का अत्याचार और शोषण बढ़ गया। इन सब कारणों ने जनजातियों को विद्रोही बना दिया।
- ***सामाजिक और धार्मिक*** कारण भी थे जिन्होंने जनजातीय समाज को विद्रोह के लिए प्रेरित किया। **ब्रिटिश कंपनी** के कर्मचारी द्वारा आदिवासियों के सामाजिक-व्यवस्था और रीति-रिवाजों की आलोचना करना और उन्हें अंध-विश्वासी और मूर्ख कहना आदिवासी समाज को सहन नहीं हुआ।
- इसके अतिरिक्त सामाजिक कुरीतियों से संबद्ध कानून जनजातीय समाज अपने समाज के खिलाफ मानता था।
- जैसे **ओडिसा की खोंड जनजाति** ने इस कारण विद्रोह किया कि उनके समाज में प्रचलित **नरबलि प्रथा** को कंपनी शासन द्वारा रोकने का प्रयत्न किया गया।
- एक अन्य कारण ईसाई मिशनरियों द्वारा जनजातियों के क्षेत्रों में ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार के क्रम में जनजातीय संस्कृति पर प्रहार रहा जिसके कारण **मुंडा जनजाति ने विद्रोह** किया।

इस प्रकार औपनिवेशिक शासन के दौरान आर्थिक शोषण, प्रशासनिक जटिलता और सामाजिक एवं धार्मिक असंतोष ने जनजातीय विद्रोह की पृष्ठभूमि तैयार की।

प्रमुख जनजाति विद्रोह/आंदोलन (Major Tribal Revolts/Movements)

संथाल विद्रोह (Santhal Revolt)

19वीं सदी के जनजातीय विद्रोहों में सबसे महत्वपूर्ण विद्रोह **संथाल विद्रोह** था, जो 1855-56 ई. में प्रारंभ हुआ। संथाल जनजाति **भागलपुर** तथा **राजमहल** के बीच निवास करती थी। बाहरी लोगों के अन्याय तथा दमनपूर्ण व्यवहार से

उनके अंदर बेचैनी बढ़ रही थी। संथालों ने **18वीं** तथा **19वीं सदी** के आरम्भ में राजमहल पहाड़ियों के जंगलों की स्वयं सफाई की थी परन्तु अब बाहरी मैदान के जमींदार तथा साहूकार उनकी जमीन छल-बल से हड़प रहे थे।

- इसके अलावा उन्हें अपनी ही जमीन का राजस्व देना पड़ रहा था जिसका भुगतान नहीं करने पर कठोर दंड दिया जा रहा था।
- इन क्षेत्रों में रेलवे लाइन का कार्य प्रारंभ होने से भी वे आतंकित हुए थे क्योंकि अधिकांश संथालों से जबरन बेगारी कराई जा रही थी और जो मजदूरी दी जा रही थी वह बहुत कम थी।
- 1854 तक आते-आते इन आदिवासियों का असंतोष चरम पर पहुँच गया। आदिवासियों के मुखिया ने बैठकों के माध्यम से विद्रोह की योजना बनाई। **कोल विद्रोह** से प्रेरणा लेते हुए विभिन्न गाँवों में विद्रोह के संदेश भेजे गए।
- 30 जून, 1855 को **भगनीडीह** में **400 आदिवासी गाँवों** के करीब 6 हजार प्रतिनिधि इकट्ठे हुए और सभा की। इसमें एक स्वर से निर्णय लिया गया कि बाहरी लोगों को भगाने, विदेशियों का राज हमेशा के लिए खत्म कर सतयुग का राज, न्याय तथा धर्म पर अपना राज स्थापित करने के लिए खुला विद्रोह किया जाए।
- संथालों को विश्वास था कि भगवान उनके साथ है। विद्रोही आदिवासियों के दो **प्रमुख नेता सिद्धू तथा कान्हू** ने घोषणा की कि **ठाकुर जी** ने उन्हें निर्देश दिया है कि यह देश अब साहबों का नहीं है अत: आजादी के लिए हथियार उठा लो। ठाकुर जी खुद हमारी तरफ से लड़ेंगे।
- इन नेताओं ने भविष्यवाणी की कि ब्रिटिश शासन का अंत निकट है और अंग्रेज तथा उनके समर्थक गंगा के उस पार लौट जाएंगे और आपस में लड़ मरेंगे।
- बहुत जल्द ही **सिद्धू तथा कान्हू** ने करीब 60 हजार हथियारबंद संथालों को इकट्ठा कर लिया। इसके अलावा कई हजार आदिवासियों को तैयार रहने के लिए कहा गया। उनसे कहा गया कि जब नगाड़ा बजे तो हथियार उठा लेना।
- इन्होंने सर्वप्रथम निकटवर्ती शोषकों के विरुद्ध विद्रोह किया। परिणामत: दूरवर्ती शोषक भी इनकी चपेट में आ गए।
- साहूकारों को चेतावनी देकर इन्होंने कुछ दिन पश्चात् आक्रमण किया तथा उनके **मकानों एवं कचहरियों** को दस्तावेजों सहित जला दिया।
- यद्यपि वे दस्तावेजों को पढ़ नहीं सकते थे परन्तु इतना अवश्य जानते थे कि ये दस्तावेज ही उनकी गुलामी के कारण थे।
- संथालों ने मैदानी लोगों की खड़ी फसलों को जला दिया, रेल संबंधी कार्य को तहस-नहस कर दिया तथा ब्रिटिश अधिकारियों एवं इंजीनियरों के बंगलों को नष्ट कर दिया।
- संथालों ने लगभग उन सभी चीजों पर हमला किया जो **दिकू (बाहरी)** और **उपनिवेशवादी सत्ता** के शोषण के माध्यम थे।
- ब्रिटिश सरकार ने आदिवासियों के इस संगठित विद्रोह को दबाने के लिए सेना का सहारा लिया तथा **मेजर जनरल** के नेतृत्व में 10 सैन्य टुकड़ियों के माध्यम से आदिवासियों का भयंकर दमन किया।
- इन क्षेत्रों में **मार्शल लॉ** लागू किया गया तथा इनके नेताओं को पकड़ने के लिए इनाम रखे गए। 1855 में उनकी भूमि को **नॉन रेग्युलेशन जिला** घोषित कर दिया गया।
- इस विद्रोह में 15 हजार से अधिक संथाल मारे गए तथा इनके गांव के गांव उजाड़ दिए गए। **अगस्त, 1855 में सिद्धू तथा फरवरी, 1856 में कान्हू को फांसी** दे दी गई।
- किन्तु संथालों का संघर्ष पूर्णत: व्यर्थ नहीं गया क्योंकि **अतंतोगत्वा सरकार संथाल परगना** नामक एक पृथक जिला स्थापित करने के लिए विवश हुई।

मुण्डा विद्रोह (Munda Revolt)

19वीं सदी के जनजातीय विद्रोह में **1899-1900 ई.** का **मुण्डा विद्रोह** भी प्रमुख है। इसका नेतृत्व **बिरसा मुण्डा** द्वारा किया गया था। इस विद्रोह को **उलगुलान** अथवा **महान हलचल** के नाम से भी जाना जाता है। जागीरदारों के द्वारा **खुटकट्टी अधिकारों का उल्लंघन**, अनुवंधित मजदूरी की समस्या एवं बेगारी आदि कुछ इस प्रकार के कारण थे जिन्होंने **मुण्डा विद्रोह को जन्म** दिया। प्रथमत: जनजातीय सरदारों ने इस शोषण की प्रक्रिया के विरुद्ध आपत्ति जताई।

- मुण्डा विद्रोह के संबंध में एक विशिष्ट बात यह है कि विद्रोह से पहले मुण्डाओं ने **कष्टों के निवारण** के लिए **वैधानिक उपायों** का सहारा लिया।
- इस संदर्भ में उन्होंने ईसाई मिशनरियों से भी सहायता पाने की कोशिश की और जब उनकी उम्मीदें टूट गईं तभी उन्होंने विद्रोह किया।
- जनजातीय विद्रोह की प्रक्रिया में ही इस आंदोलन में भी एक राजनीतिक और सामाजिक उद्देश्य से **मसीहावादी दृष्टिकोण** को जोड़ दिया गया।
- **बिरसा मुण्डा** द्वारा प्रारम्भ किया गया आंदोलन इस प्रकार सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक आंदोलन था। **बिरसा मुण्डा** ने **सोम मुण्डा** को **धार्मिक एवं सामाजिक आंदोलन** की जिम्मेवारी दी। आंदोलन के इस चरण में **बिरसा ने शोषण मुक्त समाज** की स्थापना, मुण्डा समाज के अनुरूप एक नए धर्म की घोषणा, **हिन्दू धर्म के आदर्शों** एवं **कर्मकाण्ड, शुद्धता तथा तपस्या का प्रचार, एकेश्वरवाद में विश्वास, भूत-प्रेत की पूजा** पर रोक एवं समाज के प्रत्येक व्यक्ति में आत्म-सम्मान एवं आत्म-विश्वास भरने आदि पर बल दिया गया।
- इस आंदोलन में बिरसा ने सरकारी नियमों की अवहेलना, सरकारी कर्मचारियों की **अवज्ञा, सशस्त्र विद्रोह की योजना, मालगुजारी पर रोक, जमीन पर रैय्यतों का कब्जा, महारानी की सत्ता को चुनौती** तथा **मुण्डा की स्थापना** जैसे कार्यक्रम रखे।
- बिरसा मुण्डा ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा मिशनरी स्कूलों से प्राप्त की थी। **1893-94** में उसने वन विभाग के एक अधिकारी के विरुद्ध आंदोलन चलाया था। आगे उनका मसीहावादी दृष्टिकोण जनजातीय विद्रोह में एक महत्वपूर्ण तत्व हो गया। **नया विश्व, महाप्रलय** की उसकी भविष्यवाणी, **जनजातीय लोगों के लिए उत्प्रेरक** की तरह काम करने लगी।
- **बिरसा मुण्डा** के नेतृत्व में यह विद्रोह संगठित रूप से 1898-99 में प्रारंभ हो गया और **बिरसा ने ठेकेदारों की हत्या, जागीरदारों, राजा, हकीमों की हत्या का आह्वान** किया।
- **बिरसा को ईश्वरीय** गुणों से समाहित माना गया। उसी के नेतृत्व में आदिवासियों का धर्मान्तरण ईसाई से वैष्णव धर्म में होने लगा। 1899 की पूर्व संध्या को बिरसा के अनुयायियों ने **रांची तथा सिंहभूमि** के जिलों के **6 पुलिस थानों में तीर चलाए** एवं **चर्चों को जलाने** का प्रयास किया।
- **जनवरी, 1900** में तो मुण्डाओं ने पुलिस को ही अपने तीर का निशाना बना लिया। इसके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में कानून व्यवस्था टूट गई। किन्तु ब्रिटिश शासन जितने बड़े प्रतिरोधियों को पराजित करना इन जनजातीय लोगों के लिए संभव नहीं था।
- अंतत **सैल रकाब पहाड़ी** पर विद्रोहियों की पराजय हुई। इसके पश्चात् हिंसक विद्रोह को बलात् पूर्वक कुचल दिया गया। तीन सप्ताह पश्चात् **बिरसा मुण्डा** पकड़ा गया तथा शेष जीवन जेल में ही बिताने को मजबूर हुआ।
- हाँलाकि यह विद्रोह दबा दिया गया किन्तु **बिरसा मुण्डा** के महान नेतृत्व के कारण यह ऐतिहासिक बन गया। आने वाले युगों के लिए बिरसा मुण्डा एक आदर्श पुरुष हो गया।
- इस विद्रोह की सफलता इस बात में थी कि इसी के परिणामस्वरूप **1908**

में छोटा नागपुर रैय्यतवाड़ी कानून पारित किया गया। जिसके आधार पर **मुण्डा जनजाति बिहार** के अन्य कृषकों से एक पीढ़ी पूर्व ही अपनी परंपरागत भूमि अधिकारों को पा गए।

- विभिन्न इतिहासकारों ने बिरसा मुण्डा को विभिन्न विचारधाराओं एवं कई बातों में परस्पर भिन्न विचाराधाराओं से प्रभावित माना है, उदाहरण के लिए **पृथकतावाद, राष्ट्रवाद** और **उग्रवामपंथ** आदि किन्तु बिरसा के व्यक्तित्व में एक संपूर्ण राष्ट्रवादी परिकल्पना ही निरर्थक है क्योंकि उस समय भारत में राष्ट्रवादी भावना पूर्णत: विकसित नहीं हो पाई थी।
- किन्तु हम ऐसा कह सकते हैं कि **बिरसा मुण्डा** ने साम्राज्यवादी विरोध की वह परंपरा कायम की, जो आने वाली पीढ़ी के लिए प्रेरणास्त्रोत बन गई।

ताना भगत आंदोलन (Tana Bhagat Movement)

वर्तमान झारखण्ड राज्य एवं उसके आसपास के क्षेत्र में **बिरसा आंदोलन** के बाद **ताना भगत आंदोलन (1914-1920)** सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आदिवासी आंदोलन माना जाता है। यह आंदोलन मुख्यतया **मुण्डा जनजाति** की **पड़ोसी जनजाति ओराँव** से संबंधित है और बहुआयामी एवं दूरगामी परिणामों का परिचायक रहा है।

- इस क्षेत्र की **ओराँव जनजाति** का अपना विशिष्ट **धर्म, देवकुल, पुरोहित व्यवस्था, त्योहार** एवं **अनुष्ठान पद्धति** है।
- यद्यपि **बिहार** एवं **झारखण्ड** में भगत शब्द का प्रयोग उन लोगों के लिए किया जाता है जो भूत साधना करते हैं तथा **इन्द्रजालिक क्रियाओं** और **जादू-मंतर** में पारंगत होते हैं किन्तु **ओराँवों में भगत शब्द** का प्रयोग उन शुद्ध संस्कारों से युक्त व्यक्तियों के लिए किया जाता है जो भागवत सम्प्रदाय के भक्त होते हैं।

ताना भगत आंदोलन का स्वरूप (Form of Tana Bhagat Movement)

इस आंदोलन का आरंभ समाज आंदोलन के रूप में हुआ आंदोलन के **नेता जतरा ओराँव** ने घोषित किया कि जनकल्याण के लिए **ओराँव लोगों के सर्वोच्च देवता** ने सपने में एक नए धर्म की स्थापना का आदेश दिया है।

- **जतरा भगत** के अनुसार प्राचीन **धर्म एवं देवी देवताओं** पर विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि वे आर्थिक एवं प्राकृतिक संकटों में **मनुष्य की रक्षा** करने में असमर्थ है।
- इस नए धर्म के लोग इसे भक्ति धर्म कहने लगे तथा बार-बार इनके **भजनों में 'ताना' शब्द का प्रयोग** होने के कारण इसे कालांतर में **ताना भगत आंदोलन** कहा जाने लगा।
- धीरे-धीरे **जतरा ओराँव** के अनुयाइयों की संख्या हजारों में पहुँच गयी और देखते देखते यह आंदोलन **राँची** एवं उसके आस पास के क्षेत्रों में फैलता चला गया।

ताना भगत आंदोलन के कारण (Nature of Tana Bhagat Movement)

ताना भगत आंदोलन कई कारणों का संयुक्त परिणाम था किन्तु उसके प्रमुख कारण निम्न थे-

- गैर जनजातीय हस्तक्षेप के कारण **ओराँव जनजाति** की **स्वपहचान** की समस्या।
- आरंभ में समाज सुधार आंदोलन के रूप में यह आंदोलन शुरू हुआ आगे सरकारी दमन से उत्पन्न असंतोष के फलस्वरूप यह समाज सुधार कार्यक्रम सरकार विरोधी आंदोलन में परिवर्तित हो गया।
- पड़ोसी जातियों के संपर्क के कारण ओराँवों में संस्कृतिकरण की इच्छा का आविर्भाव हुआ।
- स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं के संपर्क के कारण स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति आंदोलन के नेताओं का झुकाव।
- पड़ोसी जनजातियों के बीच प्रतिष्ठा स्थापित करने एवं उनसे श्रेष्ठता का भाव रखने की प्रवृत्ति।

ताना भगत आंदोलन का प्रभाव (Effect of Tana Bhagat Movement)

ताना भगत आंदोलन का समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। वस्तुत: यह आंदोलन सामाजिक सांस्कृतिक सुधार आंदोलन के रूप में आरंभ हुआ किन्तु इसके प्रभाव **सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक** सभी पक्षों पर पड़ा। इस आंदोलन के प्रभावों को निम्न बिन्दुओं में समझा जा सकता है।

- ताना भगत आंदोलन के द्वारा **मांसाहार** एवं **शराब वृत्ति** पर रोक लगी जो कि जनजातीय समुदाय में व्यापक स्तर पर व्याप्त थी।
- **घुमक्कड़ पशु बलि** पर रोक लगाई गई। **भूतप्रेत, अंधविश्वासों, जादू** इत्यादि का प्रभाव कम हुआ।
- घुमक्कड़ जैसी संस्थाओं का विरोध हुआ तथा इसका प्रचलन कम हुआ।
- प्राचीन देवी देवताओं के विश्वास में कमी आई।
- संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा मिला।
- नवजागरण की प्रक्रिया का आरंभ हुआ।
- **महंगे त्योहारों** एवं संस्कारों पर काफी हद तक रोक लगाई गई।
- जमीदारों एवं अन्य बाहरी लोगों द्वारा जनजातियों के शोषण पर रोक लगी।
- आगे चलकर यह आंदोलन गाँधी के असहयोग आंदोलन के साथ जुड़कर स्वतंत्रता प्राप्ति में सहायक हुआ।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद **अंग्रेजों द्वारा छीनी** गई जमीन इन्हें वापस मिल गई।

चुआर तथा हो विद्रोह (Chuar and Ho Revolt)

बंगाल के मिदनापुर जिले की **आदिम जनजाति चुआर कंपनी** के गलत नीतियों से परेशान थी। अकाल, बढ़े हुए भूमि कर तथा अन्य आर्थिक संकटों के कारण चुआर जनजाति के लोगों ने विद्रोह कर दिया। **ढोल्का, बाराभूम दलभूम, कैलापाल** के राजाओं ने मिलकर **1768 ई.** में विद्रोह कर दिया और **18वीं शताब्दी** के अंत तक यह प्रदेश अशांत रहा।

खासी विद्रोह (Khasi Revolt)

कम्पनी ने पूर्वोत्तर के **जैन्तिया** तथा **गारो पहाडियों** के क्षेत्र पर अधिकार कर लेने के पश्चात् **ब्रह्मपुत्र घाटी** तथा **सिल्हट** को जोड़ने के लिए एक सैनिक मार्ग की योजना बनाई तथा इसके लिए बहुत से **अंग्रेज, बंगाली** तथा अन्य लोग भेजे गए।

- अंग्रेजों के इस कार्यों का **राजा तीरत सिंह** ने विरोध किया तथा **गारो खाम्पटी** तथा सिंध्यों लोगों की सहायता से विदेशी लोगों को निकालने का प्रयत्न किया।
- शीघ्र ही इस आंदोलन में अंग्रेज विरोधी एक जन आंदोलन का रूप धारण कर लिया। **1833 ई.** में इस विद्रोह को अंग्रेजों ने सैन्य शक्ति द्वारा दबा दिया गया।

भील विद्रोह (Bhil Revolt)

भील भारत की **आदिम जनजाति** है जो पश्चिमी तट के **खानदेश** में रहती थी। **1812-19** तक कम्पनी के कृषि संबंधी नियमों और नई सरकार के भय के कारण भीलों ने विद्रोह कर दिया।

- कम्पनी के अधिकारियों का मानना था कि इस विद्रोह को पेशवा **बाजीराव द्वितीय** और उनके प्रतिनिधि **त्रयम्बकजी दांगलिया** ने प्रोत्साहित किया था। अंग्रेजों ने इस विद्रोह को दबाने के लिए भारी सैन्य बल का प्रयोग किया परन्तु भील भयभीत नहीं हुए वरन् भीलों की उत्तेजना और बढ़ गयी जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि **अंग्रेज बर्मा में असफल** हो गए हैं तब 1825 में सेवरन के नेतृत्व में पुन: विद्रोह कर दिया।

- इसके पश्चात् यह विद्रोह समय-समय पर होता रहा जिससे यह कहा जा सकता है कि यह आंदोलन भी **लोकप्रिय** था।

कोल विद्रोह (Kol Revolt)

छोटा नागपुर के कोलों का विद्रोह उस समय हुआ जब उनकी भूमि उनके मुखिया मुण्डों से छीनकर बाहरी मुस्लिम और सिख कृषकों को दे दिया गया।

- **बुद्धोभगत** के नेतृत्व में यह विद्रोह इतना भयावह था कि **1831 ई.** में कोलों ने लगभग **1000 विदेशी** अथवा बाहर के लोगों को या तो जला दिया या उनकी **हत्या** कर दी।
- इस विद्रोह का विस्तार **सिंहभूमि, हजारीबाग, रांची, पलामऊ** तथा **वीरभूमि के पश्चिम क्षेत्रों** तक था।
- इस विद्रोह को अंग्रेजों ने एक दीर्घकालीन एवं विस्तृत सैन्य अभियान के पश्चात् ही खत्म किया।
- **कोलों** द्वारा **1829, 1839** तथा पुन: **1844-48** के मध्य विद्रोह किया गया। यह विद्रोह पश्चिमी तट के आस-पास हुआ।
- इस विद्रोह का कारण अंग्रेजों द्वारा उनके दुर्ग को तोड़ना था। अंग्रेजी शासन के कारण **कोलों में बेकारी** बढ़ गई थी जिस कारण उनमें असंतोष व्याप्त था। अपनी तात्कालिक परिस्थितियों से क्षुब्ध होकर कोलों द्वारा विद्रोह किया गया, परंतु अंग्रेजों द्वारा इस विद्रोह को दबा दिया गया।

रमोसी विद्रोह (Ramosi Revolt)

रमोसी पश्चिमी घाट में रहने वाली एक आदिम जनजाति थी। ये भी अंग्रेजी शासन पद्धति और उनके प्रशासन से बहुत अप्रसन्न थे। **1822 ई.** में उनके **सरदार चित्तर सिंह** ने विद्रोह कर दिया और सतारा के आस-पास का प्रदेश लूट लिया।

- **1825-26** में पुन: विद्रोह हुआ जो **1829 ई.** तक चलता रहा।
- सितम्बर, 1839 ई. में **सतारा के राजा प्रताप सिंह** को सिंहासन से हटाकर तथा **देश से निकाल देने** को लेकर समस्त प्रदेश में **आक्रोश व्याप्त** हो गया और **1840-41** तक यह **विद्रोह भीषण रूप** ले चुका था।
- **नरसिंह दत्तात्रेय पेतकर** ने बहुत से सैनिक एकत्रित कर लिए तथा **बादामी दुर्ग** को जीतकर उस पर **सतारा के राजा का ध्वज** फहरा दिया।
- इस प्रकार यह विद्रोह कई वर्षों तक निरंतर चलता रहा तत्पश्चात् भारी सैन्य शक्ति के द्वारा इस विद्रोह को दबा दिया गया।

रंपा विद्रोह (Rampa Revolt)

अतलूरी आलवी सीताराम राजू के नेतृत्व में अगस्त, 1922 से मई, 1924 के बीच **उत्तरी गोदावरी क्षेत्र रंपा** से एक जुझारू संघर्ष का प्रारंभ हुआ। यह आदिवासी बहुल क्षेत्र था। विद्रोह का नायक राजू, आंध्र प्रदेश में लोक कथाओं का पात्र बन गया।

- यह आंदोलन विभिन्न तत्वों के संयोग से विकसित हुआ और **आदिम विद्रोह** आधुनिक राष्ट्रवाद से जुड़ गया। राजू ने अपने को **'बुलेट प्रूफ'** होने का दावा किया, इसके साथ ही उसने **'कल्कि अवतार'** के भी अनिवार्य आगमन की घोषणा की।
- राजू ने गाँधीजी की प्रशंसा की, पर उसने हिंसा को भी अनिवार्य बताया। उसके नेतृत्व में आदिवासियों में अंग्रेजों और भारतीयों के बीच अंतर करने की उल्लेखनीय प्रवृत्ति दिखाई दी।
- आदिवासियों की समस्याएँ-शिकायतें वही थीं, जो इस क्षेत्र में पहले भी कई आंदोलनों का कारण बनी थीं। **सूदखोरी, वन अधिकारों पर नियंत्रण,** सरकारी कर्मचारियों द्वारा **आदिवासियों से बेगार** करवाना आदि असंतोष के मुख्य कारण थे।
- आंदोलन में **गुरिल्ला युद्ध** की कार्यनीति का सक्षमता से इस्तेमाल किया गया। इस आंदोलन का जनाधार भी व्यापक था।
- **मालाबार** विशेष **पुलिस** और **असम राइफल्स** ने दो साल में **15 लाख रुपए खर्च** करके आंदोलन का दमन किया।

जनजातीय विद्रोहों का स्वरूप (Nature of Tribal Revolts)

प्राय: सभी जनजातीय विद्रोह का स्वरूप **स्थानीय, हिंसक** और **उग्रवादी** दिखाई देता है। इन विद्रोहों का प्रभाव भी स्थानीय था तथा मुद्दे उसी से संबद्ध थे। ये विद्रोह अपने पुरातन मूल्यों एवं आदर्शों से प्रभावित थे और उन्हीं की पुनर्स्थापना करने के लिए किये गए थे। जनजातीय विद्रोहों में औपनिवेशिक शासन के प्रति समझ का तत्व नहीं दिखायी देता और उनका विरोध तात्कालिक शक्तियों जैसे- **जमींदारी व्यवस्था, पुलिस व्यवस्था** और **न्यायपालिका** आदि के विरुद्ध था। अगर विकल्प की बात की जाय तो इन विद्रोहों ने न ही किसी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का कोई विकल्प प्रस्तुत किया और न ही किसी प्रगतिशील कार्यक्रम को प्रस्तुत कर पाया। विद्रोहों में अंधविश्वास को पर्याप्त स्थान प्राप्त था।

महत्व/परिणाम (Significance/Result)

जनजातीय विद्रोहों का महत्त्व इस बात में है कि इन्होंने परंपरागत और स्थानीय विद्रोहों की परंपरा की शुरूआत की। विद्रोहों का परिणाम यह रहा कि जनजातियों में **एकता** और **संगठनात्मक प्रवृत्ति** का विकास हुआ साथ ही उपनिवेशवादी विरोधी संघर्ष के अभिव्यक्ति के रूप में भी महत्त्वपूर्ण है।

- इन विद्रोहों के परिणामस्वरूप इतिहास लेखन में **'सबाल्टर्न'** विचारधारा का विकास हुआ जिसके अंतर्गत नीचे से उभरते हुए इतिहास का अध्ययन किया जाता है।
- ये जनजातीय विद्रोह, जनविद्रोहों के एक मजबूत कड़ी के रूप में दिखाई देते हैं जिनका सम्मिलित परिणाम एवं पराकाष्ठा **1857 के विद्रोह** के रूप में देख सकते हैं।

जनजातीय विद्रोहों की असफलता के कारण (Causes of Failure of Tribal Revolts)

जनजातीय विद्रोह कम्पनी शासन के अत्याचारों एवं उनकी नीतियों के विरुद्ध सशक्त होकर उभरे किन्तु वे प्राय: सफल नहीं हो सके। इसके अनेक कारण थे। प्राय: सभी आदोलनों की शुरूआत बिना किसी पूर्व योजना के हुई और न ही सभी लोगों का इसमें सहयोग लिया गया।

- जनजातीय आंदोलन की असफलता का कारण यह भी था कि अधिकांश आंदोलनों में योग्य नेतृत्व का अभाव था।
- यद्यपि **सिद्धू, कान्हू, बिरसा मुण्डा, तेजावत, सेवरन** जैसे **सरदारों ने नेतृत्व** प्रदान किया लेकिन दूसरी तरफ अंग्रेजी सेना के **प्रशिक्षित, योग्य अधिकारियों की तुलना** में ये कही भी नहीं दिखायी देते।
- अंग्रेजों ने योजनाबद्ध तरीकों से इन सभी विद्रोहों को दबा दिया। एक और महत्त्वपूर्ण कारण था जो विद्रोहों को सफल नहीं बना सका वह युद्ध के तरीकों और उनमें प्रयोग किए जाने वाले हथियार।
- दरसल जनजातीय आंदोलनों में परंपरागत **तीर-कमान** का प्रयोग किया जाता था जो अंग्रेजों के आधुनिक हथियारों के आगे नहीं टिक सके।
- इस प्रकार सभी कारणों ने मिलकर जनजातीय आंदोलन की असफलता में अपना योगदान दिया।

किसान आंदोलन/विद्रोह (Peasant Movement/Revolt)

अंग्रेजों द्वारा भारतीय कृषि व्यवस्था में किए गए व्यापक परिवर्तन ने भारतीय कृषि

को वृहत स्तर पर प्रभावित किया जिसके परिणामस्वरूप यह कृषक समुदाय निर्धनता के श्राप से ग्रसित हो गया। उपनिवेशवाद के अधीन भारतीय कृषि की निर्धनता के निम्न प्रमुख कारण थे-

- उपनिवेशवादी आर्थिक नीतियाँ।
- भारतीय हस्तशिल्प के विनाश से भूमि पर अत्यधिक दबाव।
- नई भू-राजस्व व्यवस्था।
- उपनिवेशवादी प्रशासनिक एवं न्यायिक व्यवस्था।

ब्रिटिश शासन ने भारतीय कृषि को लगान की **ऊँची दरों, अवैध करों, भेदभावपूर्ण बेदखली** एवं **जमींदारी क्षेत्रों में बेगार** जैसी बुराइयों से त्रस्त कर दिया था। रैय्यतवाड़ी क्षेत्रों में सरकार द्वारा किसानों पर भारी कर आरोपित किया गया।

- इन विभिन्न कठिनाइयों ने किसानों को अपनी **जीविका** के एकमात्र साधन को बचाने के लिए महाजनों से ऋण लेने पर मजबूर कर दिया। महाजन अत्यंत ऊँची दरों पर ऋण देकर उन्हें **ऋण के जाल में फंसा** लेते थे। फलत: कृषक धीरे-धीरे **गरीबी का दंश झेलने** व **मजदूरी करने को विवश** हो गए।
- इन कारणों से कई कृषकों ने कृषि कार्य छोड़ दिया, **कृषि भूमि रिक्त** पड़ी रहने लगी तथा कृषि उत्पादन कम होने लगा। किसानों ने अपने अत्याचारों का विरोध भी किया तथा शीघ्र ही वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उनका **मुख्य शत्रु उपनिवेशवादी शासन** है।

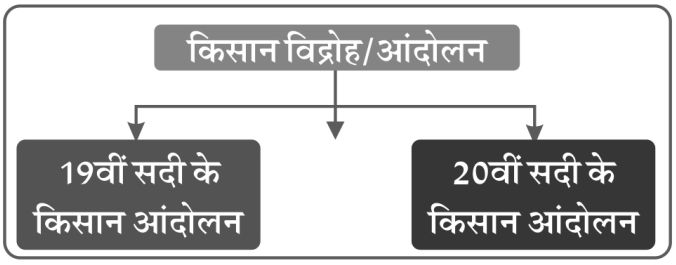
किसान विद्रोह के कारण (Causes of Peasant Revolt)

किसान विद्रोह नागरिक विद्रोहों की अपेक्षा व्यापक स्वरूप लिए हुए था। औपनिवेशिक काल में सरकार की **आर्थिक नीतियों** एवं **नई भू-राजस्व व्यवस्था** का सर्वाधिक भयंकर दुष्परिणाम अगर किसी वर्ग पर पड़ा तो वह किसान वर्ग था।

- इस काल में किसानों को कम्पनी और जमीदार दोनों के अत्याचारों का सामना करना पड़ता था।
- कम्पनी शासन की समाप्ति के पश्चात् भी स्थितियों में बहुत सुधार नहीं हुआ। **गरीबी और शोषण** से पीड़ित किसानों ने अनेक बार विद्रोह किए।
- ये विद्रोह लगभग सारे भारत में **उत्तर से लेकर दक्षिण** और **पूरब से लेकर पश्चिम तक** दिखाई देते हैं।
- अनेक कारण थे जिससे अंग्रेजी शासन के विरुद्ध किसानों का विद्रोह हुआ-
- **ब्रिटिश आर्थिक नीतियाँ** किसानों के पक्ष में नहीं थीं। उनकी प्रकृति शोषणवादी थी। किसान भू-राजस्व प्रणाली में लगान की दरें अत्यधिक होने से परेशान थे।
- **जमींदारी प्रथा** में बिचौलिए वर्ग का संस्थागत विकास हुआ। ये बिचौलिए जमींदारों के लिए कर वसूलते थे। रैय्यतवाडी व्यवस्था के अंतर्गत निर्धारित अत्यधिक उच्च लगान राशि चुकाने के लिए किसान साहूकार से कर्ज लेने पर विवश हुए इसका परिणाम यह हुआ कि किसान धीरे-धीरे इन साहूकारों के चंगुल में फँसते गए और उनकी जमीनें, फसलें, पशु आदि जमींदारों, महाजनों आदि के हाथ में चले जाते थे।
- किसानों को मजबूर होकर बेगारी करनी पड़ती। इन सब कारणों ने किसानों के मन में एक **विरोध की ज्वाला** जगा दी और वे विद्रोह के लिए तत्पर हो गए।
- **हस्तशिल्प व्यवसाय** पर ध्यान न देने के कारण भारत में लघु उद्योग तीव्र गति से अवनति की ओर अग्रसर हो गया।
- हस्तशिल्प उद्योग में लगे हुए हजारों लोग **रोजगार की तलाश में कृषि की ओर** चले गए जिसके कारण कृषि पर अत्यधिक दबाव बढ़ गया।
- **रूसी क्रांति** के बाद भारतीय राष्ट्रवादियों ने कृषि संबंधी समस्याओं की ओर ध्यान दिया और किसानों की दयनीय स्थिति तथा **शोषण के प्रति मुखर** होकर आवाज उठायी।
- **प्रथम विश्व युद्ध** के बाद आई आर्थिक मंदी ने पूरे विश्व में एक गंभीर संकट पैदा कर दी। भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। इन आर्थिक संकटों का प्रभाव किसानों पर भी पड़ा जिसके कारण किसानों का लगान बढ़ा दिया गया उनकी जमीनों को जबरन छीन लिया गया।
- इन कारणों के फलस्वरूप किसानों का असंतोष अधिक तीव्र हो गया और उन्होंने विद्रोह शुरू कर दिया।
- किसानों पर हो रहे शोषणों के विरुद्ध कई किसान संगठन अस्तित्व में आए। इन किसान संगठनों ने किसान आंदोलनों को एक निश्चित आकार प्रदान किया।
- इन संगठनों के नेतृत्व में किसानों के ऊपर हो रहे **अत्याचार** एवं **शोषण के विरुद्ध** अभियान चलाया गया।
- **लगान में कमी, कर्ज माफी,** किसानों को उनकी इच्छा के अनुसार **फसल उगाने का अधिकार** जैसे महत्त्वपूर्ण मुद्दों को उठाकर इन किसान संगठनों ने आंदोलन को प्रोत्साहित किया।

विभिन्न किसान विद्रोह/आंदोलन (Various Peasant Revolts/Movements)

अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए किसान विद्रोह को दो भागों में विभाजित करते हैं-



19वीं सदी के किसान आंदोलन (19th Century Peasant Movements)

19वीं सदी के किसान आंदोलन मुख्य रूप से बिचौलियों द्वारा **शोषण, अत्याचार, भू-राजस्व व्यवस्था** और उसमें कमियों को लेकर हुए।

- **19वीं सदी** में हुए किसान विद्रोहों का स्वरूप सुधारवादी एवं पुन: स्थापना से जुड़ा था। इस समय हुए अधिकांश किसान आंदोलन स्थानीय हितों एवं तात्कालिक समस्याओं से जुड़े हुए थे। आर्थिक शोषण इन विद्रोहों के पीछे असंतोष का प्रमुख कारण था।
- इन आंदोलनों का दृष्टिकोण व्यापक नहीं था क्योंकि ये अपने तात्कालिक शोषणकर्ता के खिलाफ एकजुट हुए अर्थात स्थानीय जमींदारों का तो विरोध किया लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य का रैय्यत बनना स्वीकार किया।
- विद्रोहों का नेतृत्व **'स्थानीय समूह'** से होता था और आंदोलनों में हिंसा और बल का व्यापक प्रयोग किया गया।
- 19वीं सदी में **ब्रिटिश सत्ता** की नीतियों के विरोध में अनेक किसान विद्रोह हुए जिनमें कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं-

रंगपुर विद्रोह (Rangpur Revolt- 1783)

ब्रह्मपुत्र घाटी के **रंगपुर क्षेत्र** में लगान में भारी वृद्धि की गयी। **1783 ई.** यहाँ के किसानों ने **जमींदार देवीसिंह** के विरुद्ध **धीरज नारायण** के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। इस **विद्रोह का दमन** भारी बल प्रयोग के द्वारा किया गया।

नील आंदोलन (Neel Movement- 1859-60)

वर्ष 1859-60 में किसानों ने संगठित होकर अंग्रेजों के विरुद्ध **प्रथम विद्रोह** किया, जिसे **नील विद्रोह** के नाम से जाना जाता है।

- किसानों की **निरक्षरता का लाभ** उठाकर **यूरोपीय बाजारों की मांग** के अनुरूप उनसे **नील की अलाभकारी खेती** करायी गयी तथा **चावल की उत्कृष्ट खेती** को बर्बाद कर दिया।
- इस हेतु **किसानों से झूठा** करार किया जाता था तथा उन्हें करार के वक्त मामूली सी रकम अग्रिम के रूप में दी जाती थी और धोखा देकर उसकी कीमत बाजार भाव से कम आंकी जाती थी।
- साथ ही किसानों को यह अधिकार भी नहीं प्राप्त था कि वे अग्रिम की रकम वापस कर इस शोषण से मुक्त हो सकें।
- बाद में **सत्ता के संरक्षण का लाभ** उठाकर **नील उत्पादकों ने तो करार लिखवाना** भी छोड़ दिया और **लठैतों के माध्यम से बलात् नील की खेती** शुरू कर दी।
- **नील आंदोलन** की शुरूआत **1859** के मध्य में बड़े नाटकीय ढंग से शुरू हुयी। एक सरकारी आदेश को समझने में भूल कर **कलारोवा के डिप्टी मजिस्ट्रेट** ने पुलिस विभाग को यह सुनिश्चित करने का आदेश दिया, जिससे किसान अपनी इच्छानुसार भूमि पर उत्पादन कर सकें।
- शीघ्र ही किसानों ने नील उत्पादन के खिलाफ अर्जियां देनी शुरू कर दीं। पर, जब क्रियान्वयन नहीं हुआ तो **दिगम्बर विश्वास** एवं **विष्णु विश्वास** के नेतृत्व में **नादिया जिले के गोविंदपुर गांव** के किसानों ने विद्रोह कर दिया।
- जब सरकार ने बलपूर्वक युक्तियां अपनाने का प्रयास किया तो किसान भी हिंसा पर उतर आये। इस घटना से प्रेरित होकर आसपास के क्षेत्रों के किसानों ने भी उत्पादकों से अग्रिम लेने, करार करने तथा **नील की खेती करने से इंकार** कर दिया।
- बाद में किसानों ने जमींदारी के अधिकारों को चुनौती देते हुए उन्हें लगान अदा करना भी बंद कर दिया। यह स्थिति पैदा होने के पश्चात् नील उत्पादकों ने किसानों के खिलाफ मुकदमे दायर करना शुरू कर दिये तथा मुकदमे लड़ने के लिए धन एकत्र करना प्रारम्भ कर दिया।
- बदले में किसानों ने भी नील उत्पादकों की सेवा में लगे लोगों का सामाजिक बहिष्कार प्रारम्भ कर दिया। इससे किसान शक्तिशाली होते गए तथा **नील उत्पादक** अकेले पड़ते गए।
- इस आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए **बंगाल के बुद्धिजीवियों** ने किसानों के समर्थन में समाचार-पत्रों में लेख लिखे, जनसभाओं का आयोजन किया गया, उनकी मांगों के संबंध में सरकार को ज्ञापन सौंपे गए।
- **हरीशचंद्र मुखर्जी** के पत्र **हिन्दू पैट्रियट** ने किसानों का पूर्ण समर्थन किया। **दीनबंधु** मित्र ने **नील दर्पण** द्वारा गरीब किसानों की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया।
- इस स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए सरकार द्वारा नील उत्पादन की समस्याओं पर सुझाव देने हेतु **1860 ई.** में **नील आयोग का गठन** किया गया। इस आयोग की सिफारिशों के आधार पर सरकार ने एक अधिसूचना जारी की, जिसके द्वारा किसानों को नील उत्पादन के लिए विवश नहीं करने संबंधित विवादों को वैधानिक तरीकों से निपटाने का आश्वासन दिया गया।
- फलत: **नील उत्पादक बंगाल** से अपने कारखाने बंद करने को विवश हो गए तथा **1860** तक यह विवाद समाप्त हो गया।

पाबना विद्रोह (Pabna Revolt-1873-76)

बंगाल में 1870 और **1880 के दशक** में जमींदारों द्वारा किसानों पर कानूनी सीमा से बहुत अधिक करारोपण किया गया। किसानों ने इसके खिलाफ बंगाल में 1873-76 के बीच एक सफल आंदोलन किया, जिसे **'पाबना विद्रोह'** के नाम से जाना जाता है।

- 1873 में **पाबना जिले के यूसुफशाही परगने** में जमींदारों की मनमानी के विरोध के लिए **'किसान-संघ'** की स्थापना की गयी। इस संघ के अधीन किसान संगठित हुए और उन्होंने **'लगान-हड़ताल'** कर दी और बढ़ी हुयी दर पर लगान देने से इन्कार कर दिया।
- संघ ने जमींदारों के खिलाफ मुकदमे दायर किए तथा इसके लिए कोष भी स्थापित किए गए।
- बड़ी तीव्रता से **पाबना** के अन्य भागों एवं **पूर्वी बंगाल** के दूसरे जिलों में भी ऐसे संघ स्थापित हो गए और जमींदारों के खिलाफ तेजी से मुकद्दमे दायर किए जाने लगे।
- यह लड़ाई किसानों द्वारा कानूनी मोर्चे पर ही लड़ी गई तथा इस दौरान नाममात्र की हिंसक वारदातें हुईं।
- दरअसल, तब तक किसान अपने कानूनी अधिकारों के प्रति काफी जागरुक हो चुके थे और कानूनी लड़ाई सीख गए थे। एकता, **संगठन** और **शांतिपूर्ण संघर्ष** के द्वारा अधिकारों की **बहाली** का तरीका उन्हें ज्ञात हो चुका था।
- प्राय: किसानों ने लाठी आदि का सहारा तभी लिया जब अदालत के आदेशों को लागू करने में बाधा उत्पन्न हुयी।
- कृषक विद्रोह का यह चरण **1885** तक चला। **बंगाल काश्तकारी कानून** बनने से पूर्व ही अधिकांश विवाद निपटा लिये गए तथा किसानों को उनकी जमींन वापस दे दी गयी।
- कई विवाद सरकारी दबाव और बीच-बचाव से हल कराए गए और कई जमींदारों ने स्वयं ही डर के कारण समझौते की पेशकश की।
- एक तरफ जमींदारों को किसानों की संगठित शक्ति से भय था तो दूसरी ओर मुकद्दमों के चक्कर में फसने में वे अपनी हानि देख रहे थे।
- सरकार ने हिंसक वारदातों में जमींदारों का पक्ष लेते हुए बड़े पैमाने पर किसानों को गिरफ्तार किया। परंतु, जहां आंदोलन शांतिपूर्ण रहा तथा किसानों ने सिर्फ कानूनी मोर्चे पर लड़ाई लड़ी वहां सरकार ने तटस्थ रुख अपनाया।
- यह आंदोलन जमींदारों के अत्याचारों के खिलाफ था।
- यह आंदोलन किसी भी स्तर पर यह उपनिवेशवाद विरोधी राजनीति से जुड़ा हुआ नहीं था।
- आंदोलनकारियों को इस आंदोलन में भी बंगाल के बुद्धिजीवियों का भरपूर सहयोग मिला। **सुरेंद्रनाथ बनर्जी, आनन्द मोहन बोस** और **द्वारकानाथ गांगुली** ने **इंडियन एसोसिएशन** के मंच से आंदोलनकारियों की मांगों का समर्थन किया।
- **बंकिमचंद्र चटर्जी** ने भी आंदोलन का समर्थन किया। राष्ट्रवादी अखबारों ने भी करों की वृद्धि को अनुचित बताते हुये स्थायी रूप से लगान निर्धारण का सुझाव दिया।
- इस आंदोलन में भी हिन्दू तथा मुसलमानों ने मिलकर संघर्ष किया यद्यपि अधिकांश किसान मुसलमान थे और अधिकांश **जमींदार हिन्दू** थे।

दक्कन विद्रोह (Deccan Revolt- 1875)

पश्चिमी भारत के **दक्कन क्षेत्र** में **रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त** के तहत किसानों पर भारी कर आरोपित किए गए, जिसने विभिन्न कृषक विद्राहों को जन्म दिया।

- इन क्षेत्रों में भी किसान करों के भारी बोझ से दबे हुए थे तथा साहूकारों के कुचक्र में फंसने को विवश थे। ये महाजन अधिकांशतया बाहरी लोग थे, जिनमें मारवाड़ी या गुजराती प्रमुख थे।
- **1864** में **अमरिकी गृह युद्ध** के समाप्त हो जाने पर **कपास की कीमतों** में भारी गिरावट आयी जिसने महाराष्ट्र के किसानों को बुरी तरह प्रभावित किया।
- **1867** में सरकार द्वारा भू-राजस्व की दरों में 50 प्रतिशत वृद्धि का निर्णय किया गया तथा फसलों की लगातार बर्बादी ने किसानों को विभिन्न

समस्याओं से ग्रसित कर दिया।

- **महाजनों-सूदखोरों** एवं किसानों के मध्य बढ़ते तनाव ने **1874** में बाहरी महाजनों के विरुद्ध सामाजिक बहिष्कार आंदोलन को जन्म दिया।
- इस आंदोलन के तहत किसानों ने महाजनों की दुकानों से खरीददारी करने तथा उनके खेतों में मजदूरी करने से इंकार कर दिया।
- **नाइयों, धोबियों** तथा **चर्मकारों** ने भी महाजनों की किसी भी प्रकार की सेवा करने से इंकार कर दिया।
- किसानों का यह सामाजिक बहिष्कार शीघ्र ही **पूना, अहमदनगर, शोलापुर** एवं **सतारा के गाँवों** में भी फैल गया।
- लेकिन यह सामाजिक बहिष्कार शीघ्र ही कृषि दंगों में परिवर्तित हो गया, जिसके फलस्वरूप किसानों ने **महाजनों** एवं **सूदखोरों के घरों** एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों पर हमले किए।
- किसानों ने उनसे ऋण सम्बन्धित **कागजात** तथा **करारनामे** लूट कर सार्वजनिक तौर पर आग लगा दी।
- सरकार ने आंदोलनकारियों के आंदोलनों को कुचलने हेतु **दमनकारी नीति** अपनायी। **1879** में दक्कन कृषक राहत अधिनियम बनने से आंदोलन पूर्णतया समाप्त हो गया।
- महाराष्ट्र के आधुनिक विचारों से प्रभावित बुद्धिजीवी वर्ग ने तर्कपूर्ण ढंग से किसानों की मांगों को सरकार के सम्मुख उठाया और आंदोलन की सफलता सुनिश्चित करने में सराहनीय योगदान दिया।

किसान आंदोलन की कमियाँ (Limitations of Peasant Movements)

- आंदोलनकारी उपनिवेशवाद के चरित्र को समझने में सक्षम नहीं थे।
- **19वीं शताब्दी** के किसानों में नई विचाराधारा का अभाव था तथा उन्होंने अपने आंदोलनों में **नए सामाजिक, आर्थिक** और **राजनीतिक कार्यक्रम** सम्मिलित नहीं किए।
- इन संघर्षों का स्वरूप यद्यपि उग्रवादी था किंतु ये परंपरागत ढाँचों पर ही अवलंबित थे।
- इनमें सकारात्मक दृष्टिकोण का अभाव था।

20वीं सदी के किसान आंदोलन (20th Century Peasant Movements)

20वीं शताब्दी के **कृषक विद्रोह,** पिछली शताब्दी के विद्रोहों से अधिक व्यापक, प्रभावी, संगठित व सफल थे। कृषक आंदोलन एवं भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के अन्योन्याश्रय संबंधों ने इस आंदोलन का आधार तैयार किया।

- राष्ट्रीय आंदोलन ने अपना संघर्ष तीव्र करने के लिए तथा सामाजिक आधार बढ़ाने की कोशिश के क्रम में किसानों से नजदीकियाँ स्थापित कीं और दूसरी ओर किसानों ने राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ने के लाभों को देखकर **तन-मन-धन** से उसे समर्थन देना प्रारम्भ कर दिया।
- 20वीं शताब्दी के किसान आंदोलन अपने स्वरूप में 19वीं शताब्दी के आंदोलनों से भिन्न थे। इन आंदोलनों का दृष्टिकोण अधिक व्यापक और विस्तृत हो गया।
- इस समय किसान आंदोलनों की मांगों में आर्थिक सुधारों के साथ-साथ राजनैतिक सुधारों की बात होने लगी।
- 20वीं सदी के किसान भी आंदोलन से जुड़ने लगे। इस समय किसान आंदोलन संगठनात्मक स्वरूप में आगे आए और प्रांतीय और राष्ट्रीय स्तर पर एक नेतृत्वकर्ता के द्वारा संचालित हुए।
- 20वीं सदी के आंदोलनों में हिंसा का तत्व गौण था तथा अब वे राजनीतिक नियमों के माध्यम जैसे- **सत्याग्रह, धरना, गिरफ्तारियाँ** आदि से संचालित होने लगे। इस समय के आंदोलन प्राय: धर्मनिरपेक्ष रहें।

चंपारन आंदोलन (Champaran Revolt-1917)

चंपारन, उत्तरी बिहार में नेपाल से सटा हुआ क्षेत्र है जहाँ ब्रिटिश काल में **नील की खेती** होती थी। यहाँ का किसान बहुत वर्षों से पीड़ित था। यहाँ 19वीं सदी के आरंभ में **गोरे बागान** मालिकों ने किसानों से एक अनुबंध करा लिया, जिसके तहत किसानों को अपनी जमीन के **3/20वें** हिस्से में नील की खेती करना अनिवार्य था। इसे **'तिनकठिया'** पद्धति के नाम से जाना जाता था।

- **19वीं सदी** के अंत में रासायनिक रंगों के कारण **नील की मांग** कम हो गयी। परिणामस्वरूप **चंपारन के यूरोपीय बागान** मालिक नील की खेती बंद करने पर मजबूर हो गए।
- किसान भी मजबूरन नील की खेती से छुटकारा पाना चाहते थे। बागान मालिकों ने किसानों को अनुबंध से मुक्त करने के लिए लगान व अन्य गैर कानूनी कर की दरों को मनमाने ढंग से बढ़ा दिया।
- अंग्रेजों की तरफ से किसानों पर खूब शोषण हो रहे थे और बागान मालिक भी **जुल्म बरपा** रहे थे। **1908** में इसके खिलाफ विरोध काफी मुखर हुआ, पर बागान मालिकों की लूट का सिलसिला चलता रहा।
- इन्हीं परिस्थितियों में **1917** में **राजकुमार शुक्ल** के बुलाने पर **गाँधी जी चम्पारन** पहुँचे। गांधी जी ने चम्पारन पहुँचने पर हजारों की भीड़ उमड़ पड़ी।
- स्थानीय प्रशासन ने उन्हें तुरंत चले जाने का आदेश दिया पर गांधी जी ने इन्कार कर दिया और किसी भी दंड को भुगतने के लिए तैयार हो गए।
- किसी अनुचित आदेश की अवज्ञा और उनका शांतिपूर्वक तरीके से प्रतिरोध वास्तव में एक नई अवधारणा थी। भारत सरकार के आदेश पर स्थानीय प्रशासन ने अपना आदेश वापस ले लिया।
- गांधी जी अपने सहयोगियों **राजेंद्र प्रसाद, ब्रजकिशोर, महादेव देसाई, कृपलानी, नरहरि पारेख** तथा बिहार के अन्य बुद्धि जीवियों के साथ लोगों के बीच साक्ष्य इकट्ठा किए।
- इस मामले की जाँच के लिए एक आयोग गठित किया गया और गांधी जी भी इसके सदस्य थे। वे आयोग को यह समझाने में सफल हुए कि **तिनकठिया पद्धति** खत्म होनी चाहिए और जो पैसा किसानों से अवैध रूप से वसूला जाता है उसके लिए उन्हें **हर्जाना** दिया जाना चाहिये।
- गांधी जी की मांगों को ध्यान में रखकर बागान मालिकों ने अवैध वसूली का **25%** वापस कर दिया। एक दशक के भीतर ही गोरे बागान मालिकों ने **चंपारन** छोड़ दिया। इस प्रकार एक सफल आंदोलन समाप्त हो गया।

खेड़ा आंदोलन (Kheda Movement-1918)

1918 में **गुजरात के खेड़ा जिले** के किसान लगान वृद्धि और शोषण से पीड़ित थे। सूखे के कारण फसल नष्ट हो गई थी। फिर भी सरकार किसानों से **मालगुजारी वसूल** रही थी। किसानों की यह मांग थी कि मालगुजारी माफ किया जाए पर सरकार उनकी मांग को नहीं मान रही थी। **'सर्वेंट ऑफ इंडिया सोसायटी'** के सदस्यों, **विठ्ठलभाई पटेल** और **गाँधी जी** ने पूरे जांच-पड़ताल के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि किसानों की मांग जायज है और पूरा लगान माफ होना चाहिए।

- इस आंदोलन में **'गुजरात सभा'** ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई उस समय गांधी जी इसके **अध्यक्ष** थे। गांधी जी ने यह देखा कि जब याचिकाओं और अपील का कोई असर नहीं हुआ तब उन्होंने किसानों से आह्वान किया कि लगान मत दो और सरकार की दमनकारी नीति का कठोरतापूर्वक संघर्ष करो।
- इस आंदोलन में गाँधी जी के साथ युवा वकील **वल्लभ भाई पटेल, इंदुलाल याज्ञनिक** तथा अन्य युवाओं ने गांवों का दौरा किया और किसानों से संघर्ष की अपील की।

- सरकार द्वारा लगान न देने पर किसानों की सम्पत्ति **कुर्क** की जा रही थी। गांधी जी ने लगान न देने की शपथ दिलाई थी।
- इस बीच सरकार ने गाँधी जी के दबाव में आकर बात मान ली और जो लगान दे सकते थे सिर्फ उन्हीं से लगान वसूला गया बाकी का लगान माफ करने का निर्णय किया गया। इस प्रकार यह आंदोलन सफल रहा।

अवध किसान सभा आंदोलन (Awadh Kisan Sabha Movement-1920)

1857 के विद्रोह के पश्चात् अवध के तालुकदारों को उनकी भूमि लौटा दी गयी। तालुकदार या बड़े जमींदार इस प्रांत के कृषकों का अत्यधिक शोषण करते थे जिनमें **लगान की ऊंची दरें, भूमि से बेदखली, अवैध** कर तथा नजराना इत्यादि सम्मिलित था।

- **प्रथम विश्व युद्ध** के उपरांत अनाज तथा अन्य आवश्यक चीजों के दाम अत्यधिक बढ़ जाने से संयुक्त प्रांत के किसानों की दशा अत्यंत दयनीय हो गयी।
- **होमरूल लीग** की गतिविधियों के कारण संयुक्त प्रांत में **फरवरी, 1918** में **गौरीशंकर मिश्र** तथा **इंद्रनारायण द्विवेदी** ने **संयुक्त प्रांत किसान सभा** का गठन किया।
- इस कार्य में **मदन मोहन मालवीय** ने इन्हें सराहनीय योगदान प्रदान किया। **1919** के मध्य तक इसकी लगभग 500 शाखाएँ गठित की जा चुकी थीं।
- किसान सभाओं के गठन से संबद्ध प्रमुख नेताओं में **झिंगुरी सिंह, दुर्गापाल सिंह** एवं **बाबा रामचंद्र** का नाम भी सम्मिलित है।
- **जून, 1920** में **जवाहर लाल नेहरू** ने **बाबा रामचंद्र** के आग्रह पर इन गाँवों का दौरा किया तथा गाँव वासियों से गहन सम्पर्क स्थापित किया।
- राष्ट्रवादी नेताओं में मतभेद के कारण **अक्टूबर, 1920** में **'अवध किसान सभा'** का गठन किया गया। अवध किसान सभा ने किसानों से आग्रह किया कि वे बेदखल जमीन न जोतें और बेगार न करें।
- साथ ही सभा ने किसानों से इन नियमों का पालन न करने वाले किसानों का सामाजिक बहिष्कार करने तथा अपने विवादों को पंचायत के माध्यम से हल करने की अपील की।
- **जनवरी, 1921** में कुछ क्षेत्रों में स्थानीय नेताओं की **गलतफहमी** एवं **आक्रोश** के कारण **किसान सभा आंदोलन** ने हिंसक रूप धारण कर लिया।
- किसानों ने **बाजारों, घरों** एवं **अनाजों की दुकानों** पर धावा बोलकर उन्हें लूटा तथा पुलिस के साथ उनकी हिंसक झड़पें हुईं। **रायबरेली, फैजाबाद** एवं **सुल्तानपुर** इन गतिविधियों के प्रमुख केंद्र थे।
- सरकार ने दमन की नीति द्वारा आंदोलन को कमजोर करने का प्रयास किया तथा **'अवध मालगुजारी रेंट संशोधन अधिनियम'** पारित कर दिया। इसने आंदोलन को कमजोर किया तथा **मार्च, 1921** तक आंदोलन समाप्त हो गया।

एका आंदोलन (Eka Movement-1921)

संयुक्त प्रांत के **अवध क्षेत्र** के उत्तरी जिलों जैसे **हरदोई, बहराइच** तथा **सीतापुर** में 1921 के अंत में किसान पुन: संगठित होकर आंदोलन पर उतर आए और अपने नए स्वरूप में यह **'एका आंदोलन'** कहलाया। यह आंदोलन मदारी पासी के नतृत्व में हुआ। इस आंदोलन से निम्न मुद्दे संबद्ध थे-

- लगान की दरें लगभग 50 प्रतिशत से भी अधिक थीं।
- राजस्व वसूली के कार्य में जमींदारों द्वारा अपनायी गयीं दमनकारी नीतियाँ।
- बेगार की प्रथा।

इस एका या एकता आंदोलन में प्रतीकात्मक धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन किया जाता था तथा एकत्र किसानों को शपथ दिलायी जाती थी कि वे केवल उचित लगान ही अदा करेंगे तथा लगान में समय सीमा का पालन करेंगे। यदि उन्हें भूमि से बेदखल किया जाएगा तो वे भूमि नहीं छोड़ेंगे बेगार करने से इंकार कर देंगे और अपराधियों से संबंध नहीं रखेंगे तथा पंचायत के निर्णय स्वीकार करेंगे।

- एका आंदोलन का मुख्य नेतृत्व समाज के निचले तबके के **किसानों-चमारपासी** एवं अन्य पिछड़ी जातियों के किसानों तथा कई छोटे जमींदारों के हाथों में था।
- **मार्च, 1922** के अंत तक सरकार की दमनकारी नीतियों ने आंदोलन को कुचल डाला।

मोपला विद्रोह (Moplah Rebellion-1921)

अवध से प्रेरणा लेकर **मोपला** के स्थानीय किसानों ने **अगस्त, 1921** में **केरल के मालाबार तट** पर जबर्दस्त विद्रोह किया। इसे **मोपला विद्रोह** के नाम से जाना जाता है।

- **मोपला, केरल के मालाबार तट** के मुस्लिम किसान थे, जहां जमींदारी के अधिकार मुख्यतया हिन्दुओं के हाथों में थे। **मोपलाओं के विद्रोह** का प्रमुख कारण-लगान की ऊंची दरें, नजराना एवं अन्य दमनकारी तौर-तरीके थे।
- **19वीं शताब्दी में 1836-54 के बीच में भी जमींदारों के अत्याचारों से पीड़ित होकर मोपलाओं ने 22 बार विद्रोह किये थे।** लेकिन इस बार का आंदोलन, राष्ट्रवादी आंदोलन के साथ संबंधित था, जो इसकी प्रमुख विशेषता थी।
- खिलाफत आंदोलन का समर्थन पाकर किसानों ने आंदोलन में अपनी पूरी शक्ति लगा दी। यहां भी अवध के समान किसानों की बैठक और खिलाफत की बैठक में फर्क कर पाना कठिन था। **गांधी जी, शौकत अली, मौलाना आजाद** आदि राष्ट्रीय नेताओं द्वारा इन क्षेत्रों का दौरा करने के उपरांत यह आंदोलन और अधिक सक्रिय हो गया।
- अंत में सरकार ने **फरवरी, 1921** में निषेधाज्ञा (Prohibitory order) लागू कर खिलाफत के साथ किसानों की सभाओं पर रोक लगा दी और इसके सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया।
- परिणामत: आंदोलन का नेतृत्व स्थानीय मोपला नेताओं के हाथों में आ गया और आंदोलन ने हिंसक रूप अपना लिया।
- **20 अगस्त, 1921** को खिलाफत के एक **प्रमुख नेता की गिरफ्तारी** के लिए सेना ने मस्जिद में प्रवेश किया। इसे मोपलाओं ने अपने धर्म का अपमान समझा और हिंसा पर उतारू हो गए।
- आंदोलनकारियों ने विद्रोह के प्रथम चरण में **बदनाम जमींदारों** को निशाना बनाया। यद्यपि विद्रोही मोपला किसान मुसलमान थे, परंतु उदार जमींदारों और हिन्दुओं को उन्होंने परेशान नहीं किया।
- इसके लिए नेताओं द्वारा विद्रोहियों को विशेष हिदायत दी जाती थी। परंतु अंग्रेजी सरकार द्वारा **'मार्शल लॉ'** लागू करने की घोषणा से विद्रोह का चरित्र बदल गया।
- सरकार ने हिन्दुओं पर अपना समर्थन करने के लिए दबाव डाला और कुछ हिन्दू स्वेच्छा से भी खुले तौर पर सरकार का समर्थन करने लगे।
- इसने विद्रोह को हिन्दू विरोधी स्वरूप दे दिया। जिसकी परिणति बड़े पैमाने पर हिन्दुओं की **हत्याएं एवं धर्म** परिवर्तन की घटनाओं के रूप में हुई।
- राष्ट्रवादी नेताओं ने इस आंदोलन से स्वयं को अलग कर लिया। आंदोलन के साम्प्रदायिक रूप ले लेने से यह और भी अलग-थलग पड़ गया।
- **दिसम्बर, 1921** तक सरकार ने पूरी तरह आंदोलन का दमन कर मोपलाओं के मनोबल को पूरी तरह तोड़ दिया तथा आजादी की पूरी लड़ाई में वे फिर कभी शामिल नहीं हुए।
- यद्यपि केरल में बड़े पैमाने पर किसान आंदोलन चलाया गया जिसका नेतृत्व वामपंथियों ने किया।

बारदोली सत्याग्रह (Bardoli Satyagraha-1928)

गांधी जी के **राजनीति में पदार्पण** के पश्चात् गुजरात के **सूरत जिले** के **बारदोली तालुके** में राजनीतिक गतिविधियाँ तेजी से सक्रिय हुईं। **जनवरी, 1926** में स्थानीय प्रशासन द्वारा भू-राजस्व की दरों में 30 प्रतिशत वृद्धि की घोषणा के बाद यहां की परिस्थितियां गंभीर हो गयीं।

- यहां के कांग्रेसी नेताओं के नेतृत्व में स्थानीय लोगों ने इस वृद्धि का तीव्र विरोध किया। परिस्थिति की गंभीरता को देखते हुए सरकार ने समस्या के समाधान हेतु **'बारदोली जांच आयोग'** का गठन किया।
- आयोग ने संस्तुति दी कि भू-राजस्व की दरों में की गयी वृद्धि अन्यायपूर्ण एवं अनुचित है।
- किसानों द्वारा इस बढ़ी हुई दरों पर भू-राजस्व अदा करने से इंकार कर दिया गया। किसानों ने सरकार के सम्मुख यह मांग रखी कि सरकार समस्या के समाधान हेतु किसी स्वतंत्र आयोग का गठन करे तथा प्रस्तावित लगान वृद्धि वापस ले।
- अन्यथा वे अपना आंदोलन जारी रखेंगे। इस आंदोलन को **सरदार वल्लभ भाई पटेल** ने नेतृत्व प्रदान किया। आंदोलन को संगठित करने के लिए सरदार पटेल ने पूरे तालुके में **13 छावनियों** की स्थापना की।
- आंदोलनकारियों के समर्थन में जनमत का निर्माण करने के लिए बारदोली **'सत्याग्रह पत्रिका'** का प्रकाशन तथा आंदोलन के तरीकों का पालन सुनिश्चित करने के लिए **'बौद्धिक संगठन'** की स्थापना की गयी।
- आंदोलन का विरोध करने वाले लोगों का सामाजिक बहिष्कार किया गया। आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु भी अनेक कदम उठाए गए।
- **के. एम. मुंशी** तथा **लालजी नारंजी** ने आंदोलन के समर्थन में **'बंबई विधान परिषद'** की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया।
- आंदोलन **अगस्त, 1928** तक पूरे क्षेत्र में सक्रिय हो गया। आंदोलन के समर्थन में **बंबई में रेलवे हड़ताल** का आयोजन किया गया।
- **पटेल की गिरफ्तारी** की संभावना को देखते हुए **2 अगस्त, 1928** को गांधीजी भी **बारदोली** पहुंच गए। सरकार ने आंदोलन को **शांतिपूर्ण** एवं **सम्मानजनक** ढंग से समाप्त करने हेतु एक **'जाँच समिति'** गठित करना स्वीकार कर लिया।
- तदुपरांत गठित **ब्लूमफील्ड** और **मैक्सवेल समिति** ने भू-राजस्व में बढ़ोत्तरी को गलत बताया और बढ़ोत्तरी 30% से घटाकर 6.03% कर दी गयी।
- इस प्रकार **बारदोली सत्याग्रह** की सफल ऐतिहासिक परिणति हुई।

1930-40 के दशक के किसान आंदोलन (Peasant Movement of 1930-40's)

1930 और 1940 के दशक में भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के साथ-साथ किसान आंदोलनों ने भी वृहद् रूप ग्रहण किया। 1929-30 की **विश्वव्यापी आर्थिक मंदी का निर्धन** कृषक वर्ग पर बुरा प्रभाव पड़ा तथा कांग्रेस द्वारा **'सविनय अवज्ञा आंदोलन'** ने इस चरण के आंदोलनों को काफी प्रेरणा दी।

- इस दशक के किसान आंदोलनों ने व्यापक कर और लगान न देने के अभियान का रूप धारण कर लिया।
- इस चरण के किसान संघर्षों ने स्वतंत्रता पश्चात् हुए कृषि सुधार हेतु एक सकारात्मक वातावरण तैयार करने में महती भूमिका निभायी। यथा-जमींदारी उन्मूलन इस दौर में उठी मांग स्वतंत्रता के पश्चात् कार्यान्वित हुयी।
- इसी प्रकार, **ट्रावनकोर** राज्य के भारत में विलय के लिये **पुन्नप्रा-बायलार के आंदोलन** ने ऐतिहासिक भूमिका निभायी।
- इस चरण में किसानों ने **टैक्सों में कटौती,** सामंतों की **गैर-कानूनी वसूलियाँ** और **बेगार की समाप्ति**, जमींदारों के **अत्याचारों से मुक्ति, ऋण बोझ में कमी**, गैरकानूनी तरीकों से ली गयी भूमि की वापसी तथा किसानों की सुरक्षा आदि जैसी प्रमुख मांगें रखीं।
- खेतिहर मजदूरों की मांगें **आंध्र प्रदेश** और **गुजरात** के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों के किसान आंदोलनों में गौण ही रहीं।
- वास्तव में इस काल में हुए आंदोलनों का उद्देश्य कृषि ढांचे में आमूल परिवर्तन नहीं बल्कि इस व्यवस्था के कुछ अत्यंत पीड़ादायक पहलुओं का अंत करना था।
- इस काल के किसान आंदोलनों के लिए **सविनय अवज्ञा आंदोलन** और कांग्रेस की प्रांतीय सरकारें प्रमुख कारण थे।
- **सविनय अवज्ञा आंदोलन** से उत्पन्न युवा एवं जुझारू राजनीतिक कार्यकर्ताओं की फौज ने सविनय अवज्ञा आंदोलन में ठहराव के उपरांत अपनी राजनीतिक ऊर्जा किसान आंदोलनों में लगा दी।
- फिर, 1937 के चुनावों में अधिकांश प्रांतों में कांग्रेस की सरकार बनी। **1937-39** के बीच **28 महीनों** का कांग्रेसी शासनकाल किसान आंदोलनों का उत्कर्ष काल था।
- इस काल में आंदोलनों के लिए नागरिक स्वतंत्रताओं के साथ-साथ कांग्रेसी सरकारों ने कृषि-कानूनों में सुधार के लिए कुछ ठोस कदम भी उठाए।

अखिल भारतीय किसान सभा (All India Kisan Sabha-1936)

11 अप्रैल, 1936 में **लखनऊ** में स्थापित इस सभा में **सहजानंद सरस्वती अध्यक्ष** तथा **एन. जी. रंगा सचिव** चुने गए। इस सभा ने किसान घोषणा-पत्र जारी किया तथा **इंदुलाल याज्ञिक** के निर्देशन में एक पत्र का प्रकाशन भी प्रारंभ किया।

- **1936** में **अखिल भारतीय किसान सभा** का सम्मेलन **फैजपुर** में आयोजित किया गया।
- **1937** के प्रांतीय चुनावों हेतु जारी किए गए कांग्रेसी घोषणा-पत्र के अनेक प्रावधान, **अखिल भारतीय किसान सभा** के एजेंडे से प्रभावित थे।

कांग्रेस सरकार के अंतर्गत किसान आंदोलन (Peasant Movement Under Congress Government)

कांग्रेसी सरकारों के सहयोगात्मक रवैये के कारण **1937-39** के बीच किसान आंदोलन ने व्यापक विस्तार किया। किसानों द्वारा अपनी मांगें उठाने के अलावा **जनसभाएं, प्रदर्शन, धरने** आदि आयोजित किए गए। परिणामत: आंदोलनों का प्रसार गांवों तक हो गया।

तेभागा आंदोलन (Tebhaga Movement- 1946-47)

यह **बंगाल** का एक प्रमुख **कृषक आंदोलन** था। 1940 के लगान आयोग की सिफारिश के अनुसार, इस आंदोलन में फसल का दो-तिहाई हिस्सा बटाईदारों (किसानों) को दिये जाने की मांग की गई।

- बटाईदारों द्वारा जोतदारों के विरुद्ध चलाये गए इस आंदोलन में सबसे मुख्य भूमिका **'बंगाल किसान सभा'** की थी।
- इस सभा के नेतृत्व में **सभाओं** एवं **प्रदर्शनों** का आयोजन किया गया तथा तेभागा पाई (हमें दो-तिहाई भाग चाहिए) एवं **इंकलाब जिंदाबाद** जैसे नारे लगाए गए।
- शीघ्र ही **तेभागा आंदोलन जलपाईगुड़ी, मिदनापुर** एवं **रंगपुर** जिलों में भी फैल गया। इस आंदोलन में सभी स्थानों पर बटाईदारों ने एक जैसी पद्धति अपनाई। **वे लाठी लेकर प्रदर्शन** करते थे तथा **नारे** लगाते थे एवं उपज को जोतदारों के घर ले जाने की बजाय अपने घर ले जाते थे।
- **बटाईदारों ने** आंदोलनकारी किसानों को भरपूर समर्थन दिया। **बंगाल की**

कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों-**मुजफ्फर अहमद, सुनील सेना** तथा **मोनी सिंह** की इस आंदोलन में मुख्य भूमिका थी।

- महिलाओं ने इस आंदोलन में सक्रियता से भाग लेने के साथ-साथ आंदोलन का नेतृत्व भी किया। **काकद्वीप** में इन्होंने आंदोलनकारियों के साथ मिलकर सभाओं एवं प्रदर्शनों में भाग लिया। **'बंगीय प्रादेशिक किसान सभा'** के नेतृत्व में चलाये गए इस आंदोलन के मुख्य केंद्र थे- **संदेशखाली, हरोआ, काकद्वीप, भंगर, सोनारपुर, कासनौंग** और **चौबीस परगना** जिले का **सुंदरवन क्षेत्र**।
- इसके अतिरिक्त **उत्तरी बंगाल** के कई क्षेत्रों में भी जोरदार ढंग से आंदोलन चलाया गया।
- आंदोलनकारी किसानों ने **'तेभागा'** का नारा बुलंद करते हुए जमींदारों एवं साहूकारों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा पुलिस के साथ कई स्थानों पर इनकी हिंसक झड़पें भी हुयीं।
- स्वाधीनता के पश्चात् भी यह आंदोलन, आधुनिक भारत के इतिहास का सबसे बड़ा **कृषक गुरिल्ला युद्ध** था, जिसने 3 हजार गाँवों तथा 30 लाख लोगों को प्रभावित किया।

तेलंगाना आंदोलन (Telangana Movement-1946)

स्थानीय देशमुखों ने **पटेल** तथा **पटवारियों** की मिली भगत से अधिकांश उपजाऊ भूमि पर कब्जा कर लिया तथा अपनी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में पर्याप्त वृद्धि कर ली। इन देशमुखों को स्थानीय प्रशासन एवं पुलिस के साथ ही निजाम की सरकार का भी संरक्षण प्राप्त था।

- इन देशमुखों ने किसानों तथा खेतिहर मजदूरों का भरपूर शोषण किया तथा इस क्षेत्र में इनके अत्याचारों की एक बाढ़ सी आ गई। **सामंती दमन** तथा **जबरन वसूली** स्थानीय किसानों की नियति बन गई।
- अपने प्रति किए जा रहे अत्याचारों से तंग आकर किसानों एवं खेतिहर मजदूरों ने शोषकों के विरुद्ध आंदोलन छेड़ दिया।
- कुछ समय पश्चात् स्थानीय **कम्युनिस्ट, मझोले कृषक** तथा **कांग्रेस संगठन** भी इस अभियान में शामिल हो गए।
- इस आंदोलन में विद्रोहियों ने शोषकों के विरुद्ध गुरिल्ला आक्रमण की नीति अपनायी। युद्ध के दौरान कम्युनिस्ट नेतृत्व वाले गुरिल्ला छापामारों ने **आंध्र महासभा** के सहयोग से पूरे **तेलंगाना क्षेत्र** के गांवों में अपनी अच्छी पैठ बना ली।
- **नालगोंडा** के **जगांव तालुका** में एक देशमुख की गांव के उग्रवादियों ने हत्या करने के साथ ही इस आंदोलन की शुरूआत हुई।
- शीघ्र ही विद्रोह **वारंगल** एवं **खम्मम** में भी फैल गया। किसानों ने **'संघम'** के रूप में संगठित होकर देशमुखों पर आक्रमण प्रारंभ कर दिये।
- इन्होंने हथियार के रूप में **लाठियों, पत्थर के टुकड़ों** एवं **मिर्च पाउडर** का उपयोग किया। किंतु सरकार ने आंदोलनकारियों के प्रति अत्यंत निर्दयतापूर्ण रुख अपनाया।
- **अगस्त, 1947** से **1948** के मध्य आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर था। भारतीय सेना द्वारा **हैदराबाद** को जीतने के पश्चात् यह आंदोलन समाप्त हो गया।

तेलंगाना आंदोलन की कई महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ थीं, जो निम्नानुसार हैं-

- गुरिल्ला छापामारों **(वेठियों)** ने गांवों पर नियंत्रण स्थापित कर लिया तथा **बेगार प्रथा** पूरी तरह समाप्त हो गयी।
- खेतिहर किसानों की मजदूरी बढ़ा दी गयी।
- अवैध रूप से कब्जा की गयी जमीन किसानों को वापस लौटा दी गयी।
- लगान की दरों को तय करने तथा भूमि के पुनर्वितरण हेतु अनेक कदम उठाए गए।
- सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि के लिए अनेक कदम उठाए गए तथा **हैजे पर नियंत्रण** के लिये प्रयास किए गए।
- महिलाओं की दशा में उल्लेखनीय सुधार आया।
- भारत की सबसे बड़ी रियासत से **अर्द्ध-सामंती व्यवस्था** का उन्मूलन कर दिया गया।
- आंदोलन ने भाषायी आधार पर **आंध्र प्रदेश के गठन** की भूमिका तैयार की।

किसान आंदोलन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ (Important Achievements of the Peasant Movement)

ये किसान **आंदोलन राष्ट्रवादी विचारधारा** पर **अवलंबित** थे और लगभग सभी क्षेत्रों में इन किसान आंदोलनों की प्रकृति समान थी।

- इन किसान आंदोलनों ने जमींदारी व्यवस्था एवं साम्राज्यवादी शासन की जड़ें खोद दीं। आंदोलनों के माध्यम से भूस्वामियों अर्थात् किसानों को उनके वास्तविक अधिकारों का ज्ञान हुआ तथा कृषि व्यवस्था में परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ हुई।
- इन आंदोलनों ने एक ऐसा माहौल तैयार किया जिससे राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान राजनीतिक दलों द्वारा **कृषि सुधार एक प्रमुख मांग के रूप** में दिखाई देने लगी।
- अनेक किसान आंदोलन संगठन संगठित हुए जिन्होंने न केवल किसान आंदोलनों को नेतृत्व प्रदान किया बल्कि राष्ट्रीय आंदोलन को भी गति प्रदान की।
- इन आंदोलनों का एक दूरगामी परिणाम भी था। जिसके कारण स्वतंत्रता के पश्चात् विभिन्न सुधारों के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण किया। जैसे- **जमींदारी प्रथा का उन्मूलन**।

विभिन्न प्रांतों में किसानों की गतिविधियाँ (Activities of Farmers in Various Provinces)

केरल (Kerala)

केरल के मालाबार क्षेत्र में **वामपंथियों के** नेतृत्व में **'कृषक संघर्षों'** में संगठित होकर किसानों ने सामंती वसूलियों, अग्रिम लगान वसूली तथा बेदखली इत्यादि के विरुद्ध जबरदस्त अभियान छेड़ा।

- उनका एक तरीका अत्यंत लोकप्रिय और प्रभावी सिद्ध हुआ, जिसमें वे **जत्थे** बनाकर जमींदारों के घर जाते थे और उनके सामने अपनी मांगे रखकर तत्काल समाधान प्राप्त करते थे।
- **1938** में किसानों ने **मालाबार काश्तकारी (टेनेंसी) एक्ट 1929** में संशोधन के लिए एक महत्त्वपूर्ण आंदोलन चलाया।

आंध्र प्रदेश (Andhra Pradesh)

1937 के चुनावों में आंध्र प्रदेश में जमींदारों तथा उनके समर्थक उम्मीदवारों की पराजय ने किसानों का मनोबल बहुत बढ़ा दिया।

- किसानों ने जमींदारों के विशेषाधिकारों और ज्यादतियों के विरुद्ध विद्रोह प्रारम्भ कर दिया तथा ऋण में राहत की मांग की।
- इस समय प्रदेश में कई कृषक संगठन सक्रिय थे। **1933 में एन. जी. रंगा** द्वारा स्थापित **'भारतीय कृषक संस्थान'** प्रमुख था।
- **आंध्र के किसान** कार्यकर्ताओं को **अर्थशास्त्र** एवं **राजनीतिशास्त्र** में प्रशिक्षित करने के लिए प्रसिद्ध वामपंथी नेता (जैसे- **पी.सी. जोशी, अजय घोष** एवं **आर. डी. भारद्वाज**) **'ग्रीष्म कालीन स्कूलों'** में

व्याख्यान देने आते थे।
- इसकी व्यवस्था किसानों के द्वारा दिये गए चंदे से होती थी। यह आंध्र प्रदेश के किसान आंदोलन की एक उल्लेखनीय विशेषता थी।

बिहार (Bihar)

सहजानंद सरस्वती, कार्यानंद शर्मा, यदुनंदन शर्मा, राहुल सांस्कृत्यायन, पंचानन शर्मा एवं **पं. यमुना कारजी** इत्यादि नेताओं ने बिहार के किसान आंदोलनों को योग्य नेतृत्व प्रदान किया।
- 1929 में **बिहार किसान सभा** की स्थापना हुई आरंभ में इसकी गतिविधियाँ सीमित थी। पर बाद में यह **स्वामी सहजानंद सरस्वती** के गतिशील नेतृत्व में क्रांतिकारी आधारों पर सक्रिय हुए।
- सहजानंद कांग्रेस की राजनीति से भी संबंधित थे। लेकिन उनका आंदोलन **1934** के बाद अपनी चरम सीमा पर आया, जब **सविनय अवज्ञा आंदोलन** को समाप्त हुए काफी समय गुजर गया था।
- **सविनय अवज्ञा आंदोलन** के दौरान किसानों की समस्याओं के प्रति कांग्रेस नेतृत्व की गहरी उदासीनता में **स्वामी सजहानंद** का मोहभंग हुआ।
- **स्वामी सहजानंद** धीरे-धीरे एक क्रांतिकारी किसान नेता बनकर उभरे। उनका **कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी** के नेताओं से नजदीकी संपर्क कायम हुआ।
- उन्होंने **1934** में जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के बारे में सोचना शुरू कर दिया। इसलिए **बिहार प्रदेश किसान सभा के घोषण-पत्र** में (11 जुलाई, 1936) किसानों की कुछ **'बुनियादी'** मांगें दर्ज की गईं।
- इसमें जमींदारी प्रथा के उन्मूलन तथा किसानों के जमीन पर **मालिकाना हक** की व्यवस्था, **भूमिहीनों** के लिए रोजगार जैसी मांगे उल्लेखनीय थीं।
- यह भी उल्लेखनीय है कि **बिहार में 1931** में कांग्रेस नेतृत्व का रुझान स्पष्टत: जमींदार-समर्थक था, पर तभी **जदुनंदन शर्मा** के नेतृत्व में एक मजबूत किसान आंदोलन का उभार भी आया।
- **1937-38** में **'बकाश्त आंदोलन'** के नाम से एक अन्य लोकप्रिय आंदोलन हुआ। किसानों ने बेदखली के खिलाफ संघर्ष किया। कांग्रेस का रवैया अस्पष्ट-सा रहा।
- जब बकाश्त जमीन की वापसी के लिये इन्होंने आंदोलन तेज किया, तब कांग्रेस सरकार से इस आंदोलन में मतभेद भी हो गए क्योंकि कांग्रेस जमींदारों को नाराज कर राष्ट्रीय आंदोलन में बाधाएँ नहीं खड़ा करना चाहती थी।
- आंदोलन का मुख्य स्वरूप था- **सत्याग्रह** तथा **जबरन बुआई** और **फसल कटाई**। इस दौरान किसानों के जमींदारों के साथ बड़े पैमाने पर संघर्ष भी हुये।
- **1939** में यह आंदोलन कुछ सुविधाएँ मिलने तथा कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी के कारण कुछ समय के लिए स्थगित हो गया। लेकिन **1945** में यह पुन: प्रारम्भ हुआ और स्वाधीनता के बाद भी **जमींदारी प्रथा** की समाप्ति तक चलता रहा।

पंजाब (Panjab)

पंजाब में हुए प्रारंभिक किसान आंदोलनों में **पंजाब नौजवान भारत सभा**, **कीर्ति किसान दल**, **कांग्रेस** एवं **अकाली दल** की मुख्य भूमिका थी।
- **1937 में पंजाब किसान समिति** ने किसान आंदोलन के संबंध में नए दिशा-निर्देश जारी किए।
- इस आंदोलन के द्वारा पश्चिमी पंजाब के जमींदारों को निशाना बनाया गया, जिनकी शक्ति **यूनियनवादी सरकार** के गठन के बाद काफी बढ़ गयी थी।
- इस आंदोलन का प्रमुख कारण **अमृतसर** एवं **लाहौर** में भू-राजस्व में वृद्धि, **मुल्तान** एवं **मांटगोमरी** में **सिंचाई कर** में वृद्धि तथा निजी ठेकेदारों द्वारा **नए टैक्स** लगाया जाना था।
- यहां किसानों ने अपनी मांगों के समर्थन में हड़तालें कीं तथा अंत में वे रियायत प्राप्त करने में सफल रहे।
- पंजाब में किसानों की गतिविधियों के मुख्य केंद्र थे- **जालंधर, अमृतसर, होशियारपुर, लैलपुरा** एवं **शेखपुरा**।
- **पश्चिमी पंजाब** के **मुस्लिम किसान** तथा दक्षिण-पूर्वी पंजाब के हिन्दू किसान इन आंदोलनों के प्रभाव से सामान्यतया अछूते ही रहे।
- इसके अलावा **बंगाल, उड़ीसा, असम, पश्चिमोत्तर सीमांत प्रांत राज्यों** और **त्रावनकोर** तथा **हैदराबाद** जैसी देशी रियासतों में भी इस चरण में प्रभावी कृषक आंदोलन हुए।

राजस्थान (Rajasthan)

1920 के दशक में राजस्थान सामंतवाद विरोधी किसान आंदोलनों का केंद्र रहा। **मई, 1922** में **मोतीलाल तेजावत** से प्रेरित **भील आंदोलन** को कुचलने के लिए **मेवाड़ पुलिस** ने **दो गांव जला** दिए।
- **1927** से **बिजौलिया आंदोलन** फिर से शुरू हो गया। किसानों ने **विजय सिंह पथिक, मणिलाल बर्मा** और **हरिमाऊ उपाध्याय** के नेतृत्व में सत्याग्रह के जरिए बेगार के खिलाफ संघर्ष किया, **मेवाड़** जैसी **देशी रियासतों** में किसान राष्ट्रवाद निश्चित ही शहरी राष्ट्रवाद से पहले उत्पन्न हुआ।

भारत में श्रमिक आंदोलन (Labour Movement in India)

भारत में आधुनिक उद्योग धंधों की शुरूआत **19वीं शताब्दी** के उत्तरार्द्ध में हुई। 1853 के पश्चात् भारतीय संचार साधनों में मशीनों का प्रयोग किया जाने लगा। रेल लाइनों के बिछाने तथा इंजन के लिए **कोयला** निकालने में हजारों श्रमिकों को रोजगार मिला।
- श्रमिक वर्ग के इस प्रारंभिक काल में रेलवे उद्योग से सम्बद्ध अन्य उद्योगों के विकास भी आवश्यक था।
- फलत: कोयला उद्योग का तेजी से विकास हुआ तथा उसने हजारों श्रमिकों को रोजगार के अवसर प्रदान किए। इसके पश्चात् **कपास** एवं **जूट उद्योग** का विकास हुआ।
- भारतीय श्रमिक वर्ग को भी उन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जिनका सामना औद्योगीकरण के प्रारंभिक चरण में **इंग्लैण्ड** व अन्य देशों के श्रमिक कर चुके थे।
- इन कठिनाइयों में **कम मजदूरी, लंबी कार्य अवधि,** कारखानों में आधारभूत सुविधाओं का अभाव इत्यादि प्रमुख थीं।
- भारत में औपनिवेशिक शासन की उपस्थिति ने **भारतीय श्रमिक आंदोलन** को एक नई विशेषता प्रदान की। भारतीय श्रमिक वर्ग को दो परस्पर विरोधी तत्वों-उपनिवेशवादी राजनीतिक शासन तथा विदेशी एवं भारतीय पूंजीपतियों के शोषण का सामना करना पड़ा।
- इन्हीं परिस्थितियों ने श्रमिक आंदोलन को राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष का एक भाग बना दिया।

श्रमिक आंदोलन के प्रारंभिक प्रयास (Early Attempts of the Labour Movement)

19वीं शताब्दी में प्रारंभिक राष्ट्रवादी विशेषकर उदारवादी भारतीय श्रमिकों की मांगों को लेकर प्राय: उदासीन रहे। हालांकि कुछ आंदोलन थे जिनमें **बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद, सूरत मद्रास, वर्धा** आदि स्थानों पर **सूती मिलों, बागानों तथा रेलवे की हड़तालें** शामिल हैं। लेकिन इनमें अधिकांश छिटपुट, असंगठित और स्फूर्त विद्रोह थे, इनका कोई व्यापक राजनीतिक असर नहीं पड़ा।
- प्रारंभ में श्रमिकों के हालात सुधारने के लिए कुछ संगठित प्रयास किए गए। **1870** के दशक में कई तरह के समाजसेवी व्यक्तियों ने इस तरह के

प्रयास किए थे। **1870 में बंगाल** में एक **ब्रह्म समाजी शशिपद बनर्जी** ने एक **श्रमिक क्लब** की स्थापना की और भारत **श्रमजीवी नामक मासिक पत्रिका** का प्रारंभ किया।

- इसका मूल उद्देश्य श्रमिकों को शिक्षित कर उन्हें जागरुक बनाना था। **1878 में सोराबजी शपूरजी बंगाली** ने **1878 में बम्बई विधान परिषद** में श्रमिकों के काम में घंटे सीमित करने तथा उन्हें दशाएं उपलब्ध कराने के लिए एक विधेयक रखने की कोशिश की लेकिन इस कार्य में उन्हें सफलता नहीं प्राप्त हुई।
- 1880 में **बम्बई** में **नारायण मेघाजी लोखंडे** ने **'दीनबंधु'** नामक एक **अंग्रेजी -मराठी** साप्ताहिक पत्र का प्रारंभ किया तथा 1890 में उन्होंने **'बम्बई मिल हैंड्स एसोसिएशन'** की स्थापना की।
- **लोखंडे** मजदूरों की सभाएँ आयोजित करते थे। इन सब प्रयासों का मूल रूप समाजसेवा का था और ये संगठित मजदूर वर्ग के आंदोलनों की शुरूआत का प्रतिनिधित्व नहीं करते।
- वस्तुत: मोटे तौर पर यह देखा गया कि **राष्ट्रीय आंदोलन** की मुख्य धारा **श्रमिकों के सवाल** पर उदासीन थी। उस समय **मजदूरों की हालत** काफी खराब थी इसके बावजूद प्रारंभिक राष्ट्रवादियों ने **श्रमिकों की स्थिति** पर ध्यान नहीं दिया।
- राष्ट्रवादी नेताओं के इस ढीलेढाले रुख का प्रमुख कारण उस समय राष्ट्रवादी आंदोलन अपने **शैशवावस्था** में था, राष्ट्रवादी नेता यह नहीं चाहते थे कि किसी भी हालत में यह आंदोलन कमजोर पड़े।
- कांग्रेस के **दूसरे अधिवेशन (1886)** में **दादाभाई नौरोजी** ने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि "कांग्रेस को उन सवालों तक ही सीमित रखना चाहिए जिसमें पूरे राष्ट्र की भागीदारी हो तथा सामाजिक सुधारों और विभिन्न वर्गों के पारस्परिक समायोजन का कार्य कांग्रेस की उपसमितियों को सौंप देना चाहिए।"
- धीरे-धीरे इस रुख में बदलाव नजर आने लगा। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और राष्ट्रवादी अखबारों ने बागान मालिकों के खिलाफ **जबदस्त अभियान** चलाया।
- **1899 में ग्रेट इंडियन पेनिन्सुलर** (Peninsular) **रेलवे की प्रथम हड़ताल पूर्णत: सफल रही।**
- यह श्रमिक वर्ग की पहली संगठित हड़ताल जो मजदूरी, काम के घंटों तथा अन्य सेवा शर्तों से संबद्ध थी। इस हड़ताल को अभूतपूर्व समर्थन प्राप्त हुआ। लगभग सभी राष्ट्रवादी अखबारों ने खुलकर इसका समर्थन किया।
- तिलक ने **'मराठा'** और **'केसरी'** के द्वारा हड़ताल का भरपूर समर्थन किया और महीनों अभियान चलाया।
- **बंबई** तथा **बंगाल में फिरोजशाह मेहता, डी. ई. वाचा, सुरेन्द्र नाथ टैगोर** जैसे विख्यात राष्ट्रवादियों ने भी खुला समर्थन दिया।
- यह एक राष्ट्रीय मुद्दा बन गया और राष्ट्रीय आंदोलन का अभिन्न हिस्सा भी बन गया।
- **20वीं शताब्दी** के प्रारम्भ में श्रमिक वर्ग के विकास के साथ राष्ट्रवादी बुद्धिजीवियों का एक वर्ग भी सामने आया जिसने श्रमिक वर्ग के हितों को शक्तिशाली पूँजीपतियों से रक्षा के लिए कानून बनाने पर जोर देना शुरू कर दिया। इनमें **विपिन चन्द्रपाल** और **सुब्रमण्यम अय्यर** प्रमुख हैं।

स्वदेशी आंदोलन के समय श्रमिक आंदोलन (Labour Movement at the Time of Swadeshi Movement)

स्वदेशी आंदोलन श्रमिक आंदोलन के इतिहास में एक युगांतरकारी घटना थी। इस दौरान श्रमिकों ने विस्तृत राजनीतिक गतिविधियों में भागीदारी निभायी। इस दौरान हड़तालों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ी और कई स्वदेशी आंदोलन के नेताओं ने पूरी उत्साहपूर्वक अपना समर्थन और योगदान दिया। हड़ताली मजदूरों के समर्थन में आयोजित जनसभाओं में **विपिनचन्द्र पाल, सी.आर. दास** और **लियाकत हुसैन** जैसे राष्ट्रवादी नेताओं ने भाषण दिये स्वदेशी आंदोलन के उन नेताओं में **अश्विनी कुमार दत्त, प्रभात कुमार राय चौधरी, प्रेमतोष बोस** और **अपूर्व कुमार घोष** ने अपने आप को पूर्ण रूप से श्रमिक संगठनों को समर्पित कर दिया।

- इनकी सबसे बड़ी **सफलता विदेशी पूँजी** से लगे हुए, **उपनिवेशवादी सत्ता** के द्वारा संचालित उद्योगों जैसे- **सरकार प्रेस, मुद्रणालय, रेलवे** तथा **जूट उद्योग** में लगे हुए मजदूरों को संगठित करना था।
- कलकत्ता की गलियों में हड़ताली श्रमिकों के समर्थन में जुलूस निकाला करते थे। इसमें भारी जन सहयोग मिला।
- अखिल भारतीय स्तर पर **यूनियन** बनाने का पहला प्रयोगात्मक प्रयास भी इस अवसर पर किया गया लेकिन यह असफल रहा।
- **बंगाल विभाजन 1905** को पूरे देश में उठ खड़ा हुआ। बंगाल में मजदूर वर्ग ने भी विरोध में हड़ताल की, **प्रेस, फैक्टरियों, रेलवे** में काम करने वाले श्रमिकों ने काम नहीं किया।
- **हाबड़ा के बर्न कम्पनी** के **शिपयार्ड** में मजदूरों ने काम करने से मना दिया। **तमिलनाडु** के **तुतीकोरिन** में **सुब्रमण्यम शिव** और **चिदंबरम पिल्लै** के नेतृत्व में सूती मिलों के श्रमिकों के पक्ष में व्यापक रूप से हड़तालें हुईं।
- **पंजाब** के **रावलपिंडी** में **हथियार गोदाम** तथा **रेलवे इंजीनियरिंग विभाग** के श्रमिकों ने हड़ताल कर दी। इस आरोप में **लाला लाजपत राय** और **अजीत सिंह** को निर्वासित किया गया।
- इसी समय सबसे बड़ा राजनीतिक प्रदर्शन, तिलक पर चलाये गए मुकदमे और सजा सुनाने के विरोध में हुआ।
- **बम्बई** की सभी **कपड़ा मिलों** और **रेल श्रमिकों** ने छ: दिन की हड़ताल की। पुलिस ने जब श्रमिकों को वापस काम पर भेजने को मजबूर किया तो पुलिस और श्रमिकों के बीच कई जगह पर संघर्ष हुआ।
- इस संघर्ष की सराहना **लेनिन** ने भी की और कहा कि भारत का श्रमिक वर्ग अब राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने लगा है।
- स्वदेशी आंदोलन के समय सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यही थी कि जो श्रमिक आंदोलन अभी तक सिर्फ आर्थिक मांगों को लेकर ही होते थे।
- अब उसने अपने आंदोलन में व्यापक राजनीतिक मुद्दों को भी शामिल कर लिया। यह एक बड़ा बदलाव था।
- इसके अतिरिक्त श्रमिक आंदोलन मुद्दों पर **राष्ट्रवादी नेताओं के समर्थन** से संगठित हड़ताल की अवस्था में पहुँच गया और व्यापक राजनीतिक आंदोलनों में **मजदूर वर्ग** शामिल होने लगा।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान एवं उसके बाद श्रमिक आंदोलन (Labor Movement During and After the First World War)

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान तथा उसकी समाप्ति के पश्चात् वस्तुओं के मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि हुई तथा इनका निर्यात भी बढ़ा, इसके फलस्वरूप उद्योगपतियों को अभूतपूर्व लाभ प्राप्त हुआ लेकिन श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी दी गयी।

- इसी बीच भारतीय राजनीतिक परिदृश्य पर **गांधी जी का अभ्युदय** हुआ। गांधीजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का जनाधार व्यापक हुआ तथा उन्होंने श्रमिकों एवं किसानों को अपने आंदोलन से संबद्ध करने का प्रयास किया।
- इसी समय श्रमिकों को **व्यापार संघों (Trade Unions)** में संगठित किए जाने की आवश्यकता भी महसूस की गयी।
- इसी बीच कुछ अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं यथा-**सोवियत संघ की स्थापना, कूमिन्टर्न (Comintern) की स्थापना** तथा **अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) की स्थापना** आदि ने भारतीय श्रमिक वर्ग में एक **नई चेतना** का विकास किया।
- राष्ट्रीय आंदोलन, **होमरूल लीग 1915** से शुरू होकर **1919 में रौलट सत्याग्रह** के मार्ग से होता हुआ **असहयोग** और **खिलाफत आंदोलन** के

माध्यम से उत्कर्ष की ओर बढ़ा।

- राष्ट्रीय आंदोलन के साथ ही श्रमिक वर्ग आंदोलन भी मजबूती के साथ आगे बढ़ा। अपने वर्गीय अधिकारों की रक्षा के लिए श्रमिक वर्ग एक राष्ट्रीय स्तर के संगठन बनाने की ओर प्रयासरत हो गए।
- श्रमिकों को एक सूत्र में आबद्ध करने के उद्देश्य से 1920 में **ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC)** की स्थापना की गयी।

अखिल भारतीय मजदूर संघ कांग्रेस की स्थापना (Establishment of AITUC)

श्रमिकों को एक सूत्र में आबद्ध करने के उद्देश्य से 1920 में **ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC)** की स्थापना की गई।

- **लाला लाजपत राय एटक के प्रथम अध्यक्ष** तथा **दीवान चमनलाल** इसके प्रथम **महासचिव (General Secretary)** चुने गए।
- अपने पहले अध्यक्षीय भाषण में **लाला लाजपत राय** ने इस बात पर जोर दिया कि " भारतीय श्रमिकों को राष्ट्रीय स्तर पर संगठित होने में एक क्षण का समय नहीं खोना चाहिए, देश में संगठित होने, आंदोलन करने और शिक्षित करने की सबसे अधिक जरूरत है। हमें हर हाल में अपने श्रमिकों को संगठित करना चाहिए, उन्हें वर्गचेतना बनाना चाहिए।"
- **एटक** ने मजदूरों के लिए जो घोषणा पत्र जारी किया था उसमें न केवल संगठित होने का आग्रह किया गया था बल्कि राष्ट्रीय राजनीति में हस्तक्षेप के लिए भी उनसे कहा गया था।
- **लाला लाजपत राय** ने पूंजीवाद को साम्राज्यवाद से जोड़ने का प्रयास किया और कहा कि **साम्राज्यवाद एवं सैन्यवाद, पूंजीवाद** की **जुड़वा संतानें** हैं।
- **प्रख्यात कांग्रेसी** एवं **स्वराज्यवादी नेता सी. आर. दास की अध्यक्षता** में एटक का तीसरा एवं चौथा अधिवेशन सम्पन्न हुआ।
- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गया **अधिवेशन (1922)** में सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पारित कर एटक की स्थापना का स्वागत किया गया तथा इसकी सहायता के लिए एक समिति का गठन किया गया।
- **सी.आर. दास** ने कांग्रेस द्वारा श्रमिकों एवं किसानों को राष्ट्रीय आंदोलन की प्रक्रिया में भागीदार बनाए जाने का सुझाव दिया तथा कांग्रेस द्वारा इनकी (श्रमिकों एवं किसानों) मांगों का समर्थन करने की बात कही।
- उन्होंने कहा कि यदि कांग्रेस ऐसा नहीं करती तो ये दोनों ही वर्ग राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा से पृथक हो जाएंगे। अन्य प्रमुख राष्ट्रवादी नेताओं, यथा-**जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचंद्र बोस, सी.एफ. एन्ड्रयूज, जे. एम. सेनगुप्ता, सत्यमूर्ति, वी.वी. गिरी** एवं **सरोजनी नायडू** ने भी **ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन** कांग्रेस से निकट संबंध स्थापित करने के प्रयास किए।
- प्रारम्भ में **'एटक'** पर ब्रिटेन के श्रमिक दल के सामाजिक एवं लोकतांत्रिक विचारों का गहरा प्रभाव था। इस पर **अहिंसा, प्रन्यासवाद (Trusteeship)** एवं वर्ग सहयोग जैसे गांधीवादी दर्शन के सिद्धांतों का भी गहरा प्रभाव था।
- गांधीजी ने **अहमदाबाद टेक्सटाइल लेबर एसोसिएशन (1918)** की स्थापना में महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया तथा इसके साथ मिलकर श्रमिकों की मजदूरी में **27.5% वृद्धि** करने के लिए चलाये गए आंदोलन का समर्थन दिया।
- अंतत: यह आंदोलन सफल रहा तथा श्रमिकों की मजदूरी में 27.5% की वृद्धि कर दी गयी।
- बदलती हुई परिस्थितियों के प्रति श्रमिक वर्ग ने अत्यंत शानदार ढंग से अपनी प्रक्रिया व्यक्त की। 1919-20 के दौरान अनेक यूनियनों की रचना की गयी।
- 1920 में यूनियनों की संख्या 125 थी जिनके सदस्यों की संख्या 250000 थी। इस समय देश की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं में मजदूरों की भागीदारी उल्लेखनीय थी।
- इसके साथ ही आर्थिक मांगों और नस्ली भेदभाव के खिलाफ **रेल कर्मचारियों की हड़ताल** तथा **आम जनता** का उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष साथ-साथ चले।
- **नवम्बर, 1921 प्रिंस ऑफ वेल्स** के भारत दौरे के समय कांग्रेस ने सम्पूर्ण देश में बहिष्कार का आह्वान किया।
- इसके समर्थन में श्रमिकों ने सारे देश में हड़ताल की घोषणा की, **बंबई** में सभी सूती मिलें बंद रहीं। मजदूरों ने अंग्रेजों के खिलाफ अहिंसक आंदोलन किया।
- इसके पश्चात् एक बार फिर 1922 में श्रमिक आंदोलन में शिथिलता दिखायी देती है। अब यह आंदोलन पुन: विशुद्ध रूप से आर्थिक मांगों को लेकर संघर्षरत हो गया।

स्मरणीय तथ्य
पहला फैक्ट्री अधिनियम (1881)
यह अधिनियम लॉर्ड रिपन के समय लाया गया।
मुख्य विषय- बालश्रम से संबंधित।
प्रावधान- 7 वर्ष से कम उम्र के बच्चे काम में नहीं लगाए जा सकते।
12 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए काम के घण्टे निर्धारित किए जाएंगे।
द्वितीय फैक्ट्री अधिनियम (1891)
यह अधिनियम लैंसडाउन के समय लाया गया।
मुख्य विषय- महिला श्रम से संबंधित (कार्य के घण्टे, साप्ताहिक छुट्टी आदि)।
बाल श्रम के विषय में प्रावधान- 9 वर्ष से कम उम्र के बच्चे काम में नहीं लगाये जाएंगे (1881 में 7 वर्ष)।
14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के लिए काम के घण्टे निर्धारित होने चाहिए (1881 में 12 वर्ष)।
ट्रेड यूनियन अधिनियम, 1926
इस अधिनियम द्वारा-
व्यापार संघों को वैध संगठनों के रूप में मान्यता दे दी गयी।
व्यापार संघों की गतिविधियों के पंजीकरण एवं नियमन संबंधी कानूनों की व्याख्या की गयी।
व्यापार संघों की नागरिक एवं आपराधिक गतिविधियों के लिए कुछ सीमाएं भी तय कर दी गयीं।

वामपंथी विचार और श्रमिक आंदोलन (Leftist Thoughts and Labour Movement)

20वीं शताब्दी के तीसरे दशक में वामपंथी वैचारिक प्रवृत्तियाँ सुदृढ़ हुईं और इससे श्रमिक आंदोलन को प्रोत्साहन मिला। वामपंथी विचार ने राष्ट्रीय आंदोलन को भी प्रभावित किया। 1927 के प्रारम्भ में विभिन्न कम्युनिस्ट दंलों ने अपने को कामगार और किसानों की पार्टी **(वर्कर्स एंड पीजेंट्स पार्टी)** के रूप में संगठित किया।

- वामपंथी नेताओं में **श्रीपाद अमृत डांगे, मुजफ्फर अहमद, पूरनचन्द जोशी** तथा **सोहन सिंह जोशी** का नाम प्रमुख है।
- **कामगार किसान पार्टी (डब्लू.पी.पी.)** कांग्रेस के अन्दर ही वामपंथी गुट के रूप में कार्य करती थी अतिशीघ्र यह प्रांतीय और अखिल भारतीय स्तर पर कांग्रेस के भीतर एक शक्तिशाली संगठन हो गया।
- 1928 के अंत तक **ट्रेड यूनियन आंदोलन** में कम्युनिस्टों का प्रभाव अधिक दिखाई देने लगा और इसके कारण क्रांतिकारी और सैनिक भावना का विकास हुआ।
- अप्रैल, **1928 में गिरनी कामगार यूनियन** (कम्युनिस्टों के नेतृत्व वाली संस्था) के नेतृत्व में **बंबई में सूती मिलों** के मजदूरों द्वारा छ: महीने लम्बी हड़ताल का आयोजन किया गया।

- इस दौरान **गिरनी कामगार यूनियन** ने महत्वपूर्ण स्थान हासिल कर लिया। पूरा वर्ष औद्योगिक जगत में अभूतपूर्व उथल-पुथल की स्थिति रही। **रेलवे मजदूरों, जूट मिलों, नगरपालिकाओं, कागज मिलों** आदि में काम करने वालों के बीच भी कम्युनिस्टों का प्रभाव दिखाई दे रहा था।
- **1928 में झरिया** में हुए एटक के अधिवेशन में भी कम्युनिस्टों समेत वामपंथियों की स्थिति काफी प्रभावशाली थी। कम्युनिस्टों के प्रभाव से चिंतित होकर सरकार ने 1928 के अंत में यह रिपोर्ट देनी शुरू कर दी कि "मुश्किल से कोई जनसेवा अथवा उद्योग बचा होगा जिसमें पूरी तरह या आंशिक रूप से कम्युनिज्म का प्रभाव न पड़ा हो।"
- इधर **1927** से **1929** के बीच कम्युनिस्टों और क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों के प्रभाव में मजदूरों ने देश में बड़ी संख्या में हड़तालों एवं प्रदर्शनों में हिस्सा लिया।
- **1927** में **एटक** ने **साइमन कमीशन** के बहिष्कार का निर्णय किया। जिसमें श्रमिकों ने भारी संख्या में भाग लिया।
- मजदूरों में बढ़ती हुई उग्रता और राजनीतिक सक्रियता से चिंतित होकर सरकार ने इसे वैधानिक कानून द्वारा रोकने का प्रयास किया।
- इस रूप में सरकार द्वारा श्रमिक आंदोलन पर दोतरफा आक्रमण किया गया और **'पब्लिक सेफ्टी बिल 1929** तथा **ट्रेड डिस्प्यूट एक्ट 1929'** जैसे दमनकारी कानून बनाए गए।
- इन कानूनों का सहारा लेकर सरकार ने **मार्च, 1929** में भारत की संप्रभुता से **ब्रिटिश ताज** को वंचित करने का आरोप लगाते हुए श्रमिक आंदोलन में सक्रिय सभी **क्रांतिकारी नेताओं** को बंदी बनाकर मेरठ लाया गया और उन पर **षड्यंत्र का मुकदमा** चलाया गया।
- इन क्रांतिकारियों में प्रमुख थे- मुजफ्फर अहमद, एस.ए. डांगे, जोगलेकर, शौकत उस्मानी तथा तीन ब्रिटिश नागरिक-फिलिफ स्प्राट, बेन ब्रेडले एवं लेस्टर हचिंसन।
- जिसे **'मेरठ षड्यंत्र केस'** के नाम से जाना जाता है। सरकार ने कुछ रियायतें देकर मजदूर आंदोलन के एक बड़े हिस्से को तोड़ने का प्रयास किया जिसमें वह सफल भी रही और सरकार ने उन्हें संविधानवादी और संगठनवादी कहा।
- इस प्रकार सरकार ने चालाकी पूर्ण कार्यों से श्रमिक आंदोलन पर असर पड़ा तथा दूसरी तरफ अब कम्युनिस्टों ने राष्ट्रीय धारा से जुड़कर और उसके भीतर रहकर अपने तरीके को बदल दिया।
- इस कारण कम्युनिस्ट राष्ट्रीय आंदोलन में अलग-थलग पड़ गए। श्रमिक वर्ग पर भी उसकी पकड़ बहुत कम हो गई। एटक के भीतर भी कम्युनिस्ट अलग-थलग पड़ गए।

सविनय अवज्ञा आंदोलन और कांग्रेसी सरकार (Civil Disobedience Movement and Congress Government)

वामपंथी प्रभाव के कम होने पर श्रमिक आंदोलन कांग्रेस के नेतृत्व के पीछे चलना प्रारंभ किया। इस क्रम से **सविनय अवज्ञा आंदोलन** के समय देश भर के श्रमिकों ने भाग लिया। **कलकत्ता के परिवहन** एवं **मिल मजदूर, मद्रास के मिल** मजदूरों ने इस आंदोलन में बड़ी बहादुरी से संघर्ष किया। **शोलापुर** में पुलिस ने ब्रिटिश विरोधी जुलूस पर गोली चलायी तो **सूती मिल मजदूर** हिंसा पर उतारू हो गए। **सरकारी भवन, कार्यालय, कचहरी, थानों, रेलवे स्टेशनों** पर हमला किया गया तथा कुछ दिनों के लिए प्रशासन अपने हाथ में ले लिया गया तथा **राष्ट्रीय झण्डा फहरा** दिया।

- इस संघर्ष को **मार्शल लॉ** लागू कर कुचल दिया गया। इस दौरान **बंबई में कांग्रेस ने नारा** दिया कि **"मजदूर और किसान कांग्रेस के हाथ-पाँव हैं"।**
- **4 फरवरी, 1930** को लगभग 20,000 मजदूरों जिनमें **जी.आई.पी. रेलवे** में काम करने वाले थे काम बंद कर दिया।
- गांधी जी ने जब **नमक कानून** तोड़ा तो **जी.आई.पी. रेलवे यूनियन** के कर्मचारियों ने एक नए तरह का सत्याग्रह शुरू किया।
- **उत्तर बंबई** के बाहरी इलाकों के स्टेशनों पर झुंड में पहुँचते और अपने सामने **लाल झंडा** लगाकर रेलवे लाइन पर लेट जाते। पुलिस ने बर्बरतापूर्वक इस आंदोलन का दमन किया। **1932** से **1934** के बीच श्रमिकों ने उत्साहपूर्वक सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लिया।
- 1937 में हुए प्रांतीय चुनावों में अखिल **भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (एटक)** ने कांग्रेस उम्मीदवारों का समर्थन किया। 1937-39 के दौरान प्रांतों में लोकप्रिय मंत्रिमंडलों का गठन हुआ प्रांतों को स्वायत्तता हासिल हुई।
- प्रांतों में गठित कांग्रेसी सरकारों ने **ट्रेड यूनियन** की गतिविधियों को अपना समर्थन दिया। श्रमिकों की मांगों के प्रति कांग्रेसी सरकारों के सहानुभूति पूर्वक रवैये के कारण अनेक **श्रमिक समर्थक विधान** बनाए गए।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान व उसके पश्चात् श्रमिक आंदोलन (Labour Movement During After World War II)

1939 को जब विश्व युद्ध आरंभ हुआ श्रमिक संघों एवं नेताओं ने युद्ध का विरोध किया युद्ध के प्रयासों में किसी भी प्रकार के विघ्न को रोकने के लिए सरकार द्वारा कठोरतापूर्वक दमन किया गया। इसके बावजूद पूरे देश में आर्थिक मुद्दों को लेकर कई हड़तालें हुईं। **1941** में **सोवियत संघ** पर **नाजी हमले** के पश्चात् कम्युनिस्टों ने यह तर्क दिया कि युद्ध का स्वरूप अब बदल गया है।

- अब यह युद्ध साम्राज्यवादी न होकर **जनता का युद्ध** हो गया है। अत: श्रमिक वर्ग का यह दायित्व बनता है कि वह फासीवादी ताकतों को हटाने के लिए मित्र राष्ट्रों का समर्थन करे, जिसने समाजवादियों के **पितृभूमि** को संकट में डाल दिया है।
- इस परिवर्तन के फलस्वरूप **कम्युनिस्ट पार्टी** ने भारत छोड़ो आंदोलन से स्वयं को अलग कर लिया।
- **भारत छोड़ो आंदोलन** से कम्युनिस्टों की उदासीनता तथा विरोध करने के बावजूद श्रमिक वर्ग भारत छोड़ो आंदोलन से बिल्कुल अछूता नहीं रहा।
- **ऑपरेशन जीरो आवर** के तहत् **9 अगस्त, 1942** को भारत छोड़ो आंदोलन के समर्थन में देशभर में हड़तालें कीं।
- इस क्रम में **टाटा स्टील प्लांट 13 दिन** बंद रहा तथा यह नारा दिया गया कि "वे तब तक काम नहीं करेंगे जब तक देश में **राष्ट्रीय सरकार** नहीं बन जाती।"
- इसी प्रकार **अहमदाबाद सूती कपड़ा मिल** में लगभग साढ़े तीन महीने हड़ताल रही। यद्यपि कम्युनिस्टों के प्रभाव क्षेत्र में मजदूरों का सहयोग भारत छोड़ो आंदोलन में कम था फिर भी कई क्षेत्रों में पार्टी लाइन के बावजूद **साम्यवादी दल-बल** सहित भारत छोड़ो आंदोलन में शामिल हुए।
- **1945-47** के समय श्रमिकों ने राष्ट्रीय आंदोलन में बढ़-चढ़कर कर भाग लिया। युद्ध के पश्चात् की राजनीतिक गतिविधियों में श्रमिक वर्ग ने बड़ी संख्या में भाग लिया।
- **आई.एन.ए.** मुकदमों को लेकर **कस्बों तथा शहरों** में आयोजित की गयी सभाओं में (विशेषकर **कलकत्ता** में) श्रमिक वर्ग की भागीदारी रही।
- 1945 में **कलकत्ता** एवं **बंबई** के बंदरगाह मजदूरों ने **इंडोनेशिया** भेजे जाने वाले जहाजों पर माल लादने से इन्कार कर दिया। श्रमिक वर्ग का मानना था कि ऐसा करने का अर्थ दक्षिण-पूर्व एशिया के राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम का दमन करना था।
- **1946 में शाही नौ सैनिक विद्रोह के समर्थन** में हड़ताल इस काल में मजदूरों द्वारा किए गए कार्यों में शायद सर्वाधिक शानदार कार्य था।
- औपनिवेशिक शासन के अंतिम वर्षों में भी श्रमिक आंदोलन आर्थिक मुद्दों को लेकर आंदोलनरत रहा और हड़तालों की संख्या में असाधारण वृद्धि देखी गयी। हड़तालों में **डाक-तार, रेलवे** एवं अन्य प्रतिष्ठानों में आयोजित हड़ताल सबसे अधिक विख्यात हैं।

19वीं सदी के सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलन
(Social-Religious Reform Movements of 19th Century)

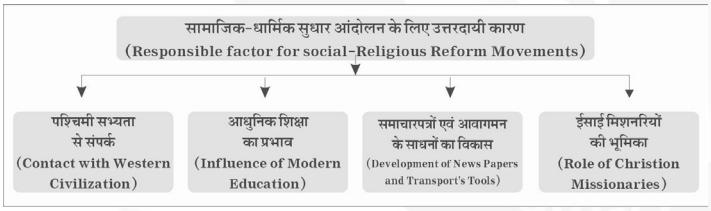
भारतीय पुनर्जागरण: सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन (Indian Renaissance: Social and Religious Reform Movements)

भारतीय इतिहास में ही नहीं बल्कि विश्व इतिहास के परिप्रेक्ष्य में भी **सामाजिक-धार्मिक आंदोलन** एक घटना मात्र नहीं होते हैं वरन् वास्तविक संदर्भों में **क्रांति के प्रतिरूप** जैसे होते हैं। उदाहरण के लिए **यूरोपीय पुनर्जागरण** एवं **धर्म सुधार आंदोलन,** छठी सदी ई. पू. में परंपरा विरोधी संप्रदायों का उदय, **14वीं-15वीं सदी** में मध्यकालीन **भक्ति आंदोलन** आदि को इस संदर्भ में देखा जा सकता है। इन आंदोलनों से न सिर्फ इनका तत्कालीन परिवेश बदला बल्कि आगे आने वाले युग की विकासधारा भी व्यापक संदर्भों में प्रभावित हुई।

जीवन के विविध क्षेत्र जैसे-संस्कृति, समाज, राजनीति आदि इन आंदोलनों द्व ारा निर्देशित हुए। 19वीं सदी के सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों को इसी श्रृंखला की एक कड़ी के रूप में देखा जा सकता है।

19वीं शताब्दी में भारतीय समाज और धर्म अनेक रूढ़ियों एवं कुप्रथाओं से ग्रस्त हो चुका था क्योंकि समाज के मूल्य रीति-रिवाज धर्म पर आधारित थे। अत: अनेक कुरीतियों का समर्थन धर्म के आधार पर किया जाता था। अत: धर्म में सुधार लाए बिना समाज में सुधार संभव नहीं था। जिसे समाप्त करने हेतु भारतीयों द्वारा विभिन्न प्रयास किए गए।

19वीं सदी में **बौद्धिक** एवं **सांस्कृतिक** उथल-पुथल भारतीय समाज की एक विशेषता थी। इस काल में हुए धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलनों का भारतीय इतिहास में विशेष स्थान है। इन आंदोलनों ने देश के जनजीवन को झकझोर दिया। इनके द्वारा जहां एक तरफ धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों की बात की गयी, वहीं दूसरी तरफ भारत के अतीत को पुनर्जीवित करने की चेष्टा की गयी, जिससे भारतीयों के मन में आत्मसम्मान व आत्मगौरव की भावना को जगाया जा सके। इसे ही पुनर्जागरण की संज्ञा दी जाती है।



सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन के लिए उत्तरदायी कारण (Responsible factor for socio-Religious Reform Movements)

- ***पश्चिमी सभ्यता से संपर्क*** *(Contact with Western Civilization)* भारत का पश्चिमी जगत की सभ्यता और संस्कृति से प्राचीनकाल से ही संबंध रहा था, जो मध्यकाल से सुप्तप्राय हो गया था।
- अंग्रेजों के आगमन ने इस संबंध को मजबूत किया। पश्चिमी जगत से संपर्क कायम होने से पाश्चात्य् जगत में हुई **बौद्धिक** तथा **वैज्ञानिक प्रगति** का प्रभाव भारतीय जनमानस पर पड़ा। इस प्रभाव ने समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने की लालसा को उत्पन्न किया।
- ***आधुनिक शिक्षा का प्रभाव*** *(Influence of Modern Education)* - स्वार्थवश ही सही अंग्रेजों ने जिस **आधुनिक शिक्षा** को बढ़ावा दिया उसने भारतीयों की मन: स्थिति पर काफी व्यापक प्रभाव डाला।
- अब भारतीय भी **व्यक्तिगत** एवं **वैचारिक स्वतंत्रता, समानता** आदि की दिशा में सोचने लगे और अपने समाज में व्याप्त बुराइयों को सुधारने का प्रयास करने लगे।
- ***समाचारपत्रों एवं आवागमन के साधनों का विकास*** *(Development of Newspapers and Transport's Tools)* - अंग्रेजी शासन के दौरान समाचार पत्रों एवं जनसंचार के साधनों का विकास होने से लोगों को **विचार-अभिव्यक्ति के प्रचार** एवं **जनसंपर्क** की सुविधा प्राप्त हुई।
- इसी प्रकार रेलों और सड़कों के विकास ने यह संभव कर दिया कि सामाजिक-धार्मिक सुधार द्वारा भारतीय जनमानस को सही दिशा में उद्वेलित किया जा सके और नयी व्यवस्था के लिए तैयार किया जा सके। सुधारकों ने वस्तुत: ऐसा ही किया।
- ***ईसाई मिशनरियों की भूमिका*** *(Role of Christion Missionaries)* - भारत में सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन जागृत करने में ईसाई मिशनरियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इन्होंने हिन्दू समाज में व्याप्त कुप्रथाओं और बुराइयों की आलोचना करते हुए अपने धर्म के प्रचार व प्रसार का प्रयास शुरू कर दिया।
- इससे भारतीयों के समक्ष अपने धर्म और संस्कृति की सुरक्षा के लिए खतरा नजर आने लगा। इसके लिए सुधारकों ने हिन्दू धर्म को अधिक उदार बनाने तथा उसमें व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिए प्रयास प्रारंभ कर दिया। इसी प्रयास ने आंदोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया। इस सुधार आंदोलन के पीछे आंतरिक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका रही।
- **19वीं सदी** का भारतीय परिवेश विभिन्न रूपों में एक प्रकार का उथल-पुथल का काल था। इसे संक्रमण काल के रूप में भी देखा जा सकता है जो **18वीं सदी** से ही जारी था। इस परिवेश की विशेषताएं थीं, ब्रिटिश विस्तार और उसके विरोध में भारतीय प्रतिक्रिया, भारतीय सुधारकों द्वारा सांस्कृतिक रक्षा की अभिव्यक्ति, भारतीयों में पराजयबोध की भावना तथा अपनी दुर्बलता जानने की कोशिश, अतीत का गौरवबोध आदि।
- इस प्रकार इस संक्रमणकालीन अवस्था में नए-नए तत्वों के आने से परंपरा एवं वर्तमान तत्वों के संघर्ष का एक विशेष स्वरूप दिखाई पड़ता है। परंपरा एवं आधुनिकता का यह द्वंद्व विभिन्न सुधारों की प्रक्रिया में भी देखा जा सकता है।

इन सब कारणों के अलावा इस गति को बल प्रदान करने में प्रबुद्ध तथा उदार अंग्रेजों का योगदान भी सराहनीय रहा। इसके अतिरिक्त महान सुधारकों जैसे **राजाराम मोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, दादाभाई नौरोजी, केशवचंद्र सेन, स्वामी विवेकानंद** आदि का योगदान अतुलनीय रहा। इन महान लोगों की वजह से ही सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सफल रहा।

विभिन्न सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन (Various Socio-Religious Reform Movements)

जब सुधार आंदोलन की बात की जाती है तब इसे दो वर्गों में विभाजित कर अध्ययन कर सकते हैं।

- प्रथम वे जिन्होंने अपने-अपने क्षेत्रों में व्याप्त बुराइयों को दूर कर उनमें सुधार के प्रयत्न किए, जैसे-**ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज** तथा **अलीगढ़ आंदोलन** आदि।

- द्वितीय वे वर्ग जो **पुनर्नवीकरण (Revivalist) आंदोलन** के द्वारा अपने समाज का पुनरुद्धार करना चाहते थे, जिनमें **आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन** तथा **देवबन्द आंदोलन** थे।
- दोनों ही वर्गों द्वारा भिन्न-भिन्न सीमा तक अपने धर्म में सुधार करने का प्रयत्न और **पवित्र धर्म की दुहाई** दी जाती थी। दोनों ही वर्गों में भेद केवल मात्रा का था जो अपनी-अपनी **परंपरा, तर्क** तथा **अंतरात्मा** पर निर्भर था।

भारत में लगभग सभी सामाजिक कुरीतियाँ धार्मिक मान्यताओं पर आधारित थीं इसलिए धार्मिक सुधार के बिना सामाजिक सुधार संभव नहीं था। इस कारण प्राचीन धार्मिक विश्वासों और परंपराओं को चुनौती देनी पड़ी। एक अन्य पहलू यह भी देखने को मिलता है कि भारतीय जीवन के भिन्न-भिन्न पक्षों का एक दूसरे से बहुत निकट का संबंध होता है, जिसके कारण एक पक्ष में सुधार का प्रभाव दूसरे पक्ष पर स्पष्ट दिखायी देता है, जैसे- सती प्रथा, देवदासी प्रथा आदि के समाप्ति के बिना स्त्री-समाज का सामाजिक कल्याण संभव नहीं हो सकता था।

सामाजिक सुधार आंदोलनों में **राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, दादाभाई नौरोजी, सर सैय्यद अहमद खाँ** आदि का योगदान अतुलनीय रहा। इन महान लोगों की वजह से ही सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन अपने लक्ष्य तक पहुंचने में सफल रहे।

राजा राममोहन राय एवं ब्रह्म समाज (Raja Ram Mohan Roy and Brahmo Samaj)

राजा राममोहन राय को **19वीं सदी** के सुधार आंदोलन का प्रवर्तक, भारतीय नवजागरण का अग्रदूत, **आधुनिक भारत का पिता** आदि कहा जाता है। एक रूप में अगर **19वीं सदी** की बात की जाए तो इन्हें **20वीं सदी** के गाँधी के समान व्यापक आयामों वाला व्यक्तित्व कहा जा सकता है। इनकी मूल विशेषता भारतीय एवं पाश्चात्य् विचारों में समन्वय की स्थापना करना था। राजा राममोहन राय की उपलब्धियां विभिन्न क्षेत्रों में देखी जा सकती हैं जैसे-

- **धार्मिक क्षेत्र** में **राजा राममोहन राय** ने उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने लगभग सभी धर्मों का अध्ययन किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सभी धर्म सत्य हैं, लेकिन **कर्मकांड** उन्हें दूषित बना देते हैं।
- धार्मिक सुधार में उन्होंने विशेष रुचि ली एवं इन सुधारों के माध्यम से धर्म में **व्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों** आदि पर प्रहार किया जिससे धर्म सभी के लिए सुलभ हो सके।
- जिस समय बंगाल में युवा वर्ग शिक्षा से प्रभावित होकर **ईसाई धर्म** की ओर आकर्षित हो रहे थे, उसी समय राजा राममोहन राय **हिन्दू धर्म** के रक्षक के रूप में सामने आए।
- एक तरफ उन्होंने **ईसाई पादरियों** से हिन्दू धर्म की रक्षा की तो दूसरी तरफ हिन्दू धर्म में व्याप्त बुराइयों की आलोचना की।
- उन्होंने युवा अवस्था से ही **मूर्तिपूजा** की आलोचना की, हिन्दू धर्म के सिद्धांतों की पुनर्व्याख्या की और मानव सेवा के लिए उपनिषदों से पर्याप्त मात्रा में आधार खोज निकाले।
- वे **एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे** तथा मूर्तिपूजा का विरोध करते थे। 1803 में **तुहफत उल मुजाहिदीन** नामक दार्शनिक कृति में मूर्तिपूजा का विरोध किया गया तथा **एकेश्वरवाद** को सब धर्मों का मूल बताया।
- एकेश्वरवाद को बढ़ावा देने एवं हिन्दू धर्म की **कुरीतियों एवं प्रथाओं** के विरुद्ध लड़ने के लिए उन्होंने 1815 ई. में आत्मीय सभा की स्थापना की।
- 1828 ई. में हिन्दू धर्म को शुद्ध करने एवं एकेश्वरवाद का प्रचार करने के उद्देश्य से **'ब्रह्म समाज'** की स्थापना की।
- **सामाजिक क्षेत्र** में राजा राममोहन राय जीवनपर्यंत सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध आवाज उठाते रहे। वे महिलाओं के अधिकारों, जैसे- **उत्तराधिकार** एवं **संपत्ति का अधिकार, बहुविवाह प्रथा पर रोक, विधवाओं की दयनीय स्थिति** तथा **सती प्रथा** पर रोक आदि मुद्दों को अपने प्रमुख सामाजिक सुधार का केंद्र बिंदु बनाया।
- उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि **1829 ई.** में **सती प्रथा को समाप्त** करने एवं इस प्रथा के विरुद्ध **कानून बनवाने** की रही।
- **शिक्षा के क्षेत्र** में राजा राममोहन राय का योगदान इस रूप में उल्लेखनीय है कि वे आधुनिक शिक्षा के समर्थक एवं प्रचारक थे। शिक्षा के क्षेत्र में इन्होंने **अंग्रेजी भाषा** एवं **पाश्चात्य ज्ञान** का समर्थन करते हुए परंपरागत **भारतीय ज्ञान-विज्ञान** को भी महत्व प्रदान किया।
- **1817 ई.** में **डेविड हेयर** की सहायता से **कलकत्ता में हिन्दू कॉलेज** की स्थापना की जो धर्म निरपेक्ष रूप से पाश्चात्य पद्धति पर उच्च शिक्षा देने हेतु पहली संस्था थी क्योंकि इससे पहले यह कार्य सिर्फ ईसाई मिशनरियों द्वारा होता था।
- **1825 ई. में वेदांत कॉलेज की स्थापना की** जहाँ भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों पद्धतियों की शिक्षा दी जाती थी।
- **प्रेस की** भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस संदर्भ में **राजा राममोहन राय भारतीय पत्रकारिता** के अग्रदूत माने जाते हैं। इन्होंने विभिन्न भाषाओं, **बांग्ला में संवाद कौमुदी, फारसी में मिरातुल अखबार, अंग्रेजी में ब्रह्मनिकल मैंगजीन** आदि पत्र निकाले। इसके प्रयासों के प्रभाव से **1838 ई.** में **मैटकॉफ** द्वारा प्रेस पर लगा प्रतिबंध हटाया गया।
- **राजनीतिक क्षेत्र में** किए गये कार्यों के कारण **राजा राममोहन राय** आधुनिक भारत के **पहले राजनीतिक सुधारक** माने जाते हैं। भारत में राष्ट्रीय चेतना लाने के लिए भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों के एकीकरण में विश्वास रखते थे।
- उन्होंने **1820 के दशक** में राजनीतिक सुधारों की मांग की, ये मांग आगे चलकर प्रारंभिक राष्ट्रीय कांग्रेस के समय प्रमुख मांगे बनीं। उदाहरण के लिए कुछ सरकारी पदों का **भारतीयकरण, कार्यपालिका** एवं **न्यायपालिका का पृथक्करण, न्याय क्षेत्र में समानता, संवैधानिक** सुधार आदि।
- उन्होंने समसामयिक घटनाओं के बारे में लोगों को शिक्षित करने तथा सरकार के समक्ष लोक-विचार प्रस्तुत करने के लिए पत्रकारिता को भी बढ़ावा दिया।
- **आर्थिक क्षेत्र में** भी इन्होंने किसानों के हित में स्थायी बंदोबस्त का स्वरूप निर्धारित करने, भेदभावपूर्ण आयात-निर्यात को समाप्त करने आदि की मांगे रखीं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि **राजा राममोहन राय एक समाज सुधारक** के साथ ही **शिक्षा, प्रेस, राजनीति, अर्थव्यवस्था** आदि विविध क्षेत्रों में भी एक सक्रिय व्यक्तित्व दिखाई पड़ते हैं।
- वास्तव में यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि **19वीं सदी** के **सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन** की प्रवृत्तियां सिर्फ **समाज एवं धर्म** से नहीं जुड़ी रहीं बल्कि जीवन के अन्य क्षेत्रों से जुड़कर राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में नए परिवर्तनों के लिए प्रेरित करती हैं।
- **राजा राममोहन राय सामाजिक-धार्मिक सुधार-आंदोलन के प्रवर्त्तक** के रूप में तो जाने जाते ही हैं साथ ही **19वीं सदी** में जिस राष्ट्रवाद का विकास हुआ उसके स्वरूप निर्धारण में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही।

ब्रह्म समाज (Brahmo Samaj)

राजा राममोहन राय द्वारा **1828 ई.** में **ब्रह्म समाज** की स्थापना की गयी। उन्होंने **1830 ई.** में लिखे **प्रन्यासकरण पत्र** में ब्रह्म समाज के उद्देश्यों का उल्लेख किया है, इसमें **ईश्वर को शाश्वत, सर्वाधार, अपरिवर्त्य ईश्वर** अर्थात् जिसे परिवर्तित

न किया जा सके, सारे विश्व का **कर्ता और रक्षक** बताया गया है। उनके उपदेशों का तात्पर्य सभी **धर्मों में आपसी एकता** को दृढ़ करना था।

- इस संस्था को नवजीवन प्रदान करने और **एकेश्वरवादी** आंदोलन के रूप में आगे बढ़ाने में **देवेन्द्रनाथ टैगोर** का महत्वपूर्ण योगदान था। **1842 ई.** में वे इस आंदोलन में शामिल हुए। उन्होंने **मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, कर्मकांड** और **प्रायश्चित** आदि से ब्रह्म समाज के अनुयायियों को रोका।
- **देवेन्द्रनाथ टैगोर** ने **केशवचन्द्र सेन** को ब्रह्म समाज का **आचार्य** नियुक्त किया। केशवचन्द्र सेन ने शीघ्र ही इस आंदोलन को लोकप्रिय बना दिया तथा इसकी शाखाएं **बंगाल से बाहर उत्तर प्रदेश, पंजाब** और **मद्रास** में खोली गईं।
- **केशवचन्द्र सेन** उदारवादी विचार के थे। वे हिन्दू धर्म को **संकीर्ण** मानते थे और संस्कृत के मूलपाठों के प्रयोग को ठीक नहीं मानते थे। इनकी सभाओं में सभी **(ईसाई, मुसलमान, पारसी)** धर्मों की पुस्तकों का पाठ होने लगा।
- इन कारणों से **देवेन्द्र नाथ टैगोर** ने ब्रह्म समाज के एक मात्र प्रन्यासी **(ट्रस्टी)** की हैसियत से **1865** से **केशवचन्द्र सेन को ब्रह्म समाज** से बाहर निकाल दिया।
- **1866 ई०** में केशवचन्द्र सेन ने एक **नवीन ब्रह्म समाज** का गठन किया जिसे **'आदि ब्रह्म समाज'** कहा गया। इन्होंने समाज सुधार की **मौलिक एवं व्यापक योजना** को अपनाकर भक्ति को **ब्रह्मवाद** से जोड़ा।
- ब्रह्म समाज का दूसरा विच्छेद **1878 ई.** में समाज की व्यवस्था के बारे में प्रश्न एवं सेन द्वारा **'नेटिव मैरिज एक्ट'** को भंग करने के कारण हुआ। **आनंद मोहन बोस** एवं शिवनाथ शास्त्री ने **'साधारण ब्रह्म समाज'** की स्थापना की।

ब्रह्म समाज का योगदान (Contribution of Brahmo Samaj) - ब्रह्म समाज का भारतीय पुनर्जागरण में महत्वपूर्ण योगदान रहा। धार्मिक क्षेत्र में ब्रह्म समाज ने **अवतारवाद** की अवधारणा का खण्डन किया।

- **बहुदेववाद तथा मूर्तिवाद** की भी आलोचना की गयी और **एकेश्वरवाद** की बात की गयी। ब्रह्म समाज ने वर्ण व्यवस्था की भी आलोचना की।
- सामाजिक दृष्टि से ब्रह्म समाज ने **अंधविश्वास और रूढ़िवादी** परंपराओं का विरोध किया और उसे सरल बनाया जिससे समाज का हर वर्ग या व्यक्ति उस समाज में अपने आप को ढाल सके तथा बेहतर जीवनयापन कर सके।
- इस क्रम में ब्रह्म समाज ने विदेश यात्रा पर लगे प्रतिबंधों को चुनौती दी, **स्त्रियों की प्रतिष्ठा** को बनाए रखने के लिए प्रयत्न किया। **बहुविवाह, सती प्रथा, बाल-विवाह, पर्दा प्रथा** को समाप्त करने तथा **स्त्री शिक्षा** और **विधवा विवाह** के लिए भी प्रयास किया।
- ब्रह्म समाज द्वारा जातिवाद तथा अस्पृश्यता **(छूआछूत)**जैसी सामाजिक बुराइयों का कड़ा विरोध किया तथा इन्हें दूर करने का प्रयत्न भी किया यद्यपि इसमें ब्रह्म समाज उतना सफल नहीं हुआ।

यंग बंगाल आंदोलन (Young Bengal Movement)

इस आंदोलन के संस्थापक **हेनरी लार्ड विनियन डेरोजियो** थे। **डेरोजियो एंग्लो-इंडियन** थे, जिन्हें क्रांतिकारी कहा जाता था। वे **हिन्दू कॉलेज में प्राध्यापक** थे और उनकी प्रतिभा आश्चर्यजनक थी जिससे प्रभावित होकर अनेक **मेधावी, विद्यार्थी** उनके प्रशंसक और अनुयायी बन गये।

- **डेरोजियो** फ्रांस की क्रांति से प्रभावित थे और अपने समय में शायद सबसे उग्र विचार रखते थे। उन्होंने प्राचीन रीति-रिवाजों एवं परंपराओं का विरोध किया और वे अपने अनुनायियों को विवेकपूर्ण ढंग से सोचने, समानता और स्वतंत्रता से प्रेम करने तथा सत्य की पूजा करने के लिए प्रेरित किया।
- उन्होंने महिला अधिकार एवं महिला शिक्षा की सिफारिश की तथा **प्रेस और जनसंगठनों** के माध्यम से जनता को समकालीन सामाजिक-आर्थिक एवं राजनैतिक विषयों पर शिक्षित किया।
- **डेरोजियो** के समर्थक **आधुनिक पाश्चात्य विचारों** से इतने प्रभावित थे कि उन्हें **परंपरागत हिन्दू संस्कृति** में अनेक दोष दिखायी देने लगे और इसके लिए वे अतीत से पूर्ण रूप से संबंध-विच्छेद करना चाहते थे।
- अत: हिन्दूवादी संगठनों में उपर्युक्त कमियों के बावजूद **यंग बंगाल आंदोलन** की उपलब्धि को नकारा नहीं जा सकता है। इसकी उपलब्धियां निम्नलिखित हैं-
- इसने जनता को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रश्नों पर समाचार पत्रों, पुस्तिकाओं और सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा शिक्षित करने की राजा राममोहन राय की परंपरा को आगे बढ़ाया।
- इसने सामान्य हित के सार्वजनिक प्रश्नों को लेकर आंदोलन चलाए जिसमें **प्रेस की स्वतंत्रता, जमींदारों के अत्याचारों** से **रैय्यतों की सुरक्षा, सरकारी सेवा के उच्च पदों** पर भारतीयों को रोजगार जैसे प्रमुख मुद्दे शामिल थे।

मूल्यांकन

- **यंग बंगाल आंदोलन** अत्यधिक क्रांतिकारी होने के कारण समाज में व्यापक पैठ बनाने में सफल नहीं हो सका। फिर भी कहा जा सकता है कि **यंग बंगाल आंदोलन** को अपने उद्देश्यों में भले ही कोई ठोस सफलता नहीं मिल पाई हो लेकिन इस आंदोलन का **प्रतीकात्मक महत्व** यह रहा है कि आने वाले वर्षों में सभी **सुधारकों** एवं **राष्ट्र प्रेमियों** के लिए प्रेरणा स्रोत रहा।

पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर
(Pandit Ishwar Chandra Vidyasagar)

19वीं शताब्दी में बंगाल के दूसरे महान सुधारक **पंडित ईश्वर चंद्र विद्यासागर** थे। बंगालियों की सामाजिक दशा सुधारने और उन्हें शिक्षित करने के लिए उन्होंने अथक प्रयास किए। उनमें **मानवोचित गुणों, विवेकशीलता, नम्रता** एवं **गरीबों के प्रति सहानभूति की भावना** कूट-कूट कर भरी थी। **संस्कृत भाषा** और **बांग्ला साहित्य** के विकास में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

- **ईश्वर चन्द्र विद्यासागर** को सबसे अधिक **नारी जाति** के सामाजिक स्थिति को लेकर किए गये प्रयासों और उनको ऊँचा उठाने के उनके योगदान के कारण याद किया जाता है।
- इन उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने **विधवा पुनर्विवाह, बाल विवाह** और **बहुविवाह** जैसी सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध आवाज उठायी। सुधार-आंदोलन के व्यक्तित्वों में विद्यासागर इस रूप में विशिष्ट हैं कि उन्होंने **विधवा-पुनर्विवाह** के समर्थन में आंदोलन चलाया, जिसमें उन्हें सफलता भी मिली और 1856 में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित किया गया।
- इस मुख्य कार्य के अतिरिक्त **विद्यासागर** ने समाज एवं धर्म क्षेत्र में व्याप्त रूढ़ियों एवं आंडबरों का विरोध किया। अपनी बातों के समर्थन में इन्होंने परंपरा का भी सहारा लिया। उदाहरण के लिए इन्होंने इस तथ्य को स्थापित किया कि वैदिक ग्रंथों में भी विधवा-पुनर्विवाह की अनुमति है।
- विद्यासागर ने **1850** में **बाल विवाह** का विरोध किया और उन्होंने जीवन भर बहुविवाह के विरुद्ध आंदोलन चलाया।
- वे **नारी-शिक्षा** को ही नारी जाति के प्रगति का आधार मानते थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने **35 बालिका विद्यालयों** की स्थापना की, इसी क्रम में **कलकत्ता में 1849 ई.** में **बेथुन स्कूल** की स्थापना हुई जो नारी शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बन गया, जिसकी स्त्री शिक्षा के विकास में भूमिका रही।
- शिक्षा क्षेत्र में **संस्कृत कॉलेज कलकत्ता** के प्रिंसिपल रहते हुए उन्होंने गैर ब्राह्मणों को भी संस्कृत पढ़ने के अधिकार की बात की।

दयानंद सरस्वती और आर्य समाज
(Dayanand Saraswati and Arya Samaj)

19वीं सदी के सुधारकों में **दयानंद सरस्वती** सबसे अग्रणी माने जाते हैं। दयानंद सरस्वती सुधारवाद की दूसरी धारा का प्रवर्तन करते हैं।

- एक ओर जहाँ पहली धारा **राजा राममोहन राय** की है, जिसमें पाश्चात्य् प्रभावों को ग्रहण किया गया है तो वहीं दूसरी धारा **दयानंद सरस्वती** द्वारा स्थापित आर्य समाज की है। जो वैदिक परंपरा में विश्वास करती थी और पाश्चात्य प्रभावों का विरोध इस रूप में **आर्य समाज** को पाश्चात्य प्रभाव की प्रतिक्रिया के रूप में भी देखा जाता है।

मूल विचार

- दयानंद सरस्वती ने **प्राचीन वैदिक धर्म** के स्थापना की बात की और इसके लिए इन्होंने **'वेदों की ओर लौटो'** का **नारा** दिया। इनका मानना था कि वैदिक काल के बाद से लेकर उनके समय तक सभी धर्म **पाखंड का रूप** हैं।
- अत: इन्होंने इस पाखंड के खंडन के लिए **पाखंड खंडिनी आंदोलन** चलाया।
- वास्तव में इनके अनुसार वेद के अतिरिक्त अन्य ग्रंथ जैसे **पुराण आदि मनगढंत कथाओं** का समुच्चय लगता है और इसके **प्रसारक पाखंडी ब्राह्मण** हैं जिन्होंने हिन्दू धर्म को भ्रष्ट किया है। इन्होंने कहा कि **प्रत्येक व्यक्ति को वेद पढ़ने का अधिकार** है।
- 1875 में इन्होंने **बम्बई में आर्य समाज** की स्थापना की, जिसका मुख्य उद्देश्य प्राचीन वैदिक धर्म की शुद्ध रूप से पुन: स्थापना करना था। उस समय हिन्दू समाज में जो झूठे धार्मिक विश्वास तथा सामाजिक कुरीतियाँ व्याप्त थीं उन्हें जड़ से खत्म करने का प्रण किया।
- **दयानंद सरस्वती** का मुख्य उद्देश्य भारत को धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय रूप से एक करना था। समकालीन हिन्दू धर्म तथा समाज में अनेक त्रुटियां देखीं और दोनों ही क्षेत्रों में व्याप्त इन त्रुटियों को दूर करने का अथक प्रयास जीवनभर करते रहे।

स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा किए गये प्रयास निम्नलिखित हैं-

- **धार्मिक क्षेत्र** में इन्होंने **मूर्ति पूजा, अवतारवाद, पशुबलि, श्राद्ध कर्म, तंत्र-मंत्र** आदि कर्मकांडों को अस्वीकृत किया। इनका मानना था कि वेदों में इन कर्मकांडों का कोई महत्व नहीं है। **वेद ईश्वरीय ज्ञान** के समान है।
- दयानंद सरस्वती कर्मकांडों का विरोध करते हुए यह मानते थे कि प्रकृति सत् है, **आत्मा सत्** तथा **चित्** है और **परमात्मा सत्चित्** और **आनंद** है। ये तीनों ही **आनादि** और **अनंत** हैं।
- उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को शाश्वत मानव धर्म के अनुसार आचरण कर **मोक्ष प्राप्त** करना चाहिए।
- **दयानंद सरस्वती** का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों द्वारा अपना भाग्य बदल सकता है। अत: प्रत्येक व्यक्ति को संसार की कर्मभूमि में कार्य करते हुए मोक्ष की ओर अग्रसर होना होगा, कर्मशील बनकर जीवन व्यतीत करना होगा।
- **सामाजिक क्षेत्र** में भी इन्होंने सुधारों के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए। स्वामी जी ने **छुआछूत, बालविवाह, दहेज प्रथा, जाति प्रथा** आदि बुराइयों पर **कुठाराघात** किया।
- भारत के सामाजिक इतिहास में वे पहले सुधारक थे जिन्होंने **शूद्र तथा स्त्री** को **वेद पढ़ने, उच्च शिक्षा प्राप्त करने, यज्ञोपवीत धारण करने** तथा **ऊँची जातियों के बराबर हर जगह अधिकार प्राप्त करने** का समर्थन किया। सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य स्त्रियों की दशा सुधारने को लेकर किया।
- वे पुत्र तथा पुत्रियाँ को समान मानते थे और उनके बीच होने वाले भेदभाव के खिलाफ थे। उन्होंने **बाल विवाह, विधवा को हेय मानना, बहुविवाह, वेश्यागमन, देवदासी प्रथा** इत्यादि सामाजिक बुराइयों को उन्होंने अस्वीकार किया। वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते थे, परन्तु चारों वर्णों को समान मानते थे और किसी भी वर्ण को अस्पृश्य नहीं मानते थे।
- इस प्रकार स्वामी जी ने हिन्दू समाज में **समानता की भावना** को जागृत किया जो आज हमारे **संविधान का अंग** है।
- **ज्ञान, भाषा, शिक्षा** के विषय पर स्वामी जी ने अपने विचार प्रकट किए उनका मानना था कि ज्ञान के माध्यम से ही राष्ट्र के पिछड़ेपन को दूर किया जा सकता है।
- तात्कालीन परिवेश में ज्ञान के महत्व पर जोर देना राष्ट्रवाद के विकास के संदर्भ में एक विशिष्टि तत्व है।
- इन्होंने **गुजराती** होते हुए भी **हिन्दी भाषा में 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखा** और हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु कार्य किए।
- एक संदर्भ में इन्हें **हिन्दी को राष्ट्रभाषा** के रूप में प्रचारित-प्रसारित करने वालों में प्रारंभिक व्यक्तित्व माना जा सकता है। वास्तव में **दयानंद विदेशी सत्ता** के विरुद्ध भारतीयों में **सांस्कृतिक एकता की स्थापना करना चाहते** थे।
- **स्वामी दयानंद सरस्वती की मृत्यु** के बाद इनके समर्थकों द्वारा शिक्षा क्षेत्र में व्यापक कार्य किए गए। **लाला हंसराज** ने **दयानंद-एंग्लो वैदिक कॉलेज** की स्थापना की जबकि स्वामी श्रद्धानंद ने **गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय** के माध्यम से भारतीय पद्धति से शिक्षा प्रसार के प्रयास किए।

आर्य समाज के सिद्धान्त- स्वामी दयानंद सरस्वती ने 1875 में आर्य समाज की स्थापना के समय ही इसके नियम और सिद्धांत को बताया जो आज भी उसी रूप में विद्यमान है, ये निम्न हैं-

- सभी **सत्य विद्या** है और जो **पदार्थ विद्या** से जाने जाते हैं उन सबका आदि **मूल परमेश्वर** है।
- **ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु अनादि, सर्वेश्वर, सर्वाधार, सर्वव्यापक, अजर, अमर, अभय नित्य, पवित्र** और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी चाहिए।
- वेद ही सत्य पुस्तक है। वेदों को **पढ़ना, सुनना, सुनाना आर्यों का परम कर्तव्य** है।
- हमेशा सत्य बोलना चाहिए तथा असत्य को त्याग देना चाहिए।
- सभी कार्य धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य पर विचार करके करना चाहिए।
- संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है।
- **अविधा का नाश** और **विद्या में वृद्धि** करना चाहिए।
- प्रत्येक व्यक्ति को समाज की उन्नति में अपनी उन्नति के लिए प्रयास करना चाहिए।

राष्ट्रवादी आंदोलन में आर्य समाज की भूमिका
(Role of Arya Samaj in Nationalist Movement)

19वीं सदी के समाज-सुधारकों में **राजा राममोहन राय** के पश्चात् **दयानंद सरस्वती** सर्वाधिक **चेतना** संपन्न व्यक्तित्व थे। राष्ट्रवादी आंदोलन के विकास धारा में भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। विशेष कर स्वदेशी की वह अवधारणा, जिसने आगे चलकर भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माण एवं विकास में आधारभूत भूमिका का कार्य किया इसे सामने लाने में दयानंद सरस्वती की प्रारंभिक भूमिका रही। इन्होंने नारा दिया कि **'भारत भारतीयों के लिए है' साथ ही इनका मानना था कि, "कोई कितना भी कहे स्वदेशी राज्य सर्वोपरि होता है तथा विदेशी राज्य कभी सुखदायी नहीं हो सकता है।"**

- इनका यह विचार तत्कालीन भारतीय परिवेश में चल रहे **राजभक्ति बनाम**

देशभक्ति के द्वंद्व में देशभक्ति को वास्तविक अर्थों में स्थापित करने में सहायक होता है।

- उस समय कई भारतीय बुद्धिजीवियों की सोच पर कड़ा प्रहार हुआ। साथ ही, इस विमर्श में देशभक्ति के तत्वों को प्रबलता मिली।
- वास्तव में **19वीं सदी** के अंत तक, जब तक राष्ट्रवादी नेतृत्व में उदारवादी प्रभाव रहा तब तक ब्रिटिश सुशासन के नाम पर अंग्रेजी शासन के कुरीतियों पर भी पर्दा डाला जाता रहा। अत: दयानंद सरस्वती का विचार राष्ट्रीय आंदोलन के लिए एक अग्रगामी विचार रहा, जिससे कई अर्थों में आगे चलकर कांग्रेस नेतृत्व प्रेरित हुआ। दयानंद सरस्वती से ही पहली बार स्वदेशी वस्त्र का समर्थन, स्वराज शब्द की अभिव्यक्ति हुई।
- कहा जा सकता है कि **19वीं सदी** के सुधारकों में **दयानंद सरस्वती** इस रूप में विशिष्ट हैं कि इनके विचारों से भारतीय राष्ट्रवाद की विकास धारा को निर्णायक तत्व मिले। हालाँकि कुछ बिंदुओं पर इनकी आलोचना हुई जैसे इन्होंने धर्म परिवर्तित हिन्दुओं को पुन: हिन्दू धर्म में शामिल करने के लिए **'शुद्धि आंदोलन'** चलाया, जिसे सांप्रदायिकता के विकास से भी जोड़कर देखा जाता है।

थियोसोफिकल सोसायटी (Theosophical Society)

भारत में धार्मिक आंदोलन के इतिहास में **थियोसोफिकल सोसायटी** की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है। वर्ष **1975 में न्यूयार्क** में यह संस्था उन व्यक्तियों द्वारा स्थापित की गयी थी जो भारतीय विचारों और संस्कृति से प्रभावित थे।

- इस संस्था की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य प्राचीन भारतीय **धर्म एवं दर्शन** के प्रति लोगों में विश्वास जगाना तथा धर्म को **समाज सेवा का प्रमुख आधार** बनाना था। इस संस्था के विचार मुख्यत: **हिन्दू धर्म** तथा इसके अतिरिक्त **बौद्ध एवं पारसी धर्मों** से भी प्रभावित था। इस संस्था की गतिविधियों से भारतीय धर्म एवं दर्शन के विचारों को **महिमा मंडित** भी किया गया, जिससे एक प्रकार से अतीत गौरव की भावना प्रसारित हुई।
- परिणामत: भारतीयों के मन में अपनी संस्कृति के प्रति खोया हुआ विश्वास वापस लाने में मदद मिली। इस संस्था से जुड़ी **एनी बेसेंट** जैसे प्रचारकों ने शिक्षा के क्षेत्र में कई संस्थानों की स्थापना की।
- उन्होंने **1898 में बनारस में सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज (सी.एच.एस) की नींव रखी** जहाँ हिन्दू धर्म और पाश्चात्य वैज्ञानिक विषय पढ़ाये जाते थे, **1916 में यही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय** बन गया। साथ ही सामाजिक सुधार के भी कार्य हुए।
- यह संस्था भारत के प्राचीन धर्म में गहरी अभिरुचि रखती थी। इसने हिंदुओं के पुनरुत्थान एवं भारतीय आदर्शों एवं परंपराओं को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। एक अर्थ में यह संस्था 'प्रतिक्रियावादी' थी।
- **एनी बेसेंट** के प्रयासों से ही **बनारस** में **सेंट्रल हिन्दू स्कूल** की स्थापना हुई, जो बाद में **'बनारस हिंदू विश्वविद्यालय'** बना।
- भारत की स्वतंत्रता में भी उनका योगदान है। उन्होंने **1916 ई.** में **'होमरूल लीग'** की स्थापना की जिसने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को प्रभावित किया।

स्वामी विवेकानंद एवं रामकृष्ण मिशन (Swami Vivekananda and Ramakrishna Mission)

19वीं सदी के सुधार आंदोलनों की श्रृंखला में **स्वामी विवेकानंद** इस रूप में उल्लेखनीय हैं कि इनके विचारों एवं कार्यों से इस पूरे सुधार आंदोलन का मूल आदर्श मानवतावाद की स्थापना प्रखरता से अभिव्यक्त हुआ।

- विवेकानंद अपने **गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस** के विचारों से काफी प्रभावित थे और उनकी स्मृति में ही इन्होंने **रामकृष्ण मिशन की स्थापना** कर अपने विचारों को प्रसारित किया। विवेकानंद के गुरु रामकृष्ण परमहंस का मानना था कि- **'मानव सेवा ईश्वर सेवा से बढ़कर है।'** परमहंस हिन्दू धर्म में श्रद्धा रखने के बावजूद सभी धर्मों की एकता में विश्वास रखते थे। विवेकानंद ने अपने गुरु के इन्हीं विचारों मानवतावाद एवं सभी धर्मों की बुनियादी एकता को आगे बढ़ाया और धर्म के संबंध में संकुचित दृष्टिकोण की निंदा की।
- विवेकानंद के अनुसार भारत भूमि के विकास में हिन्दू एवं इस्लाम दोनों धर्मों का सहयोग एवं समन्वय आवश्यक है। उल्लेखनीय है कि स्वामी जी ने भारतीयों को जागृत करने के लिए संकुचित दृष्टि छोड़कर वैश्विक परिप्रेक्ष्य में स्वयं को जोड़ने की बात की।
- इनका कहना था कि **"हमारा धर्म रसोई में बंद हो गया है जिसे खोलने की आवश्यकता है।"**
- विवेकानंद के विचारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचार **मानव सेवा** से संबंधित विचार है। जहां इनका कहना है कि **'मानव सेवा ईश्वर के समान है।'**
- विवेकानंद का मानना था कि प्रत्येक **जाति का निर्धन** व्यक्ति उनका **सगा-संबंधी** है। वे धनी व्यक्तियों द्वारा कमजोर वर्ग के शोषण की आलोचना करते हैं। वे कहते हैं **भूखों को धर्म का पाठ पढ़ाना मानवता** एवं **ईश्वर दोनों का अपमान** है मानवता वही है जो निर्धनों को रोटी देता है।
- उनके अनुसार वह देशद्रोही के समान है जो **शिक्षा एवं ज्ञान** अर्जित तो करता है लेकिन **निर्धनों की सेवा** नहीं करता।
- कहा जा सकता है कि **19वीं सदी** के सुधारकों में **स्वामी विवेकानंद** कई संदर्भों में विशिष्ट थे। इन्होंने सुधारों के केन्द्र में मानवतावाद को स्थापित करने का प्रयास किया, जो सुधारों का आदर्श भी था। साथ ही, इन्होंने न सिर्फ भारतीयों के संकुचित दृष्टिकोण पर प्रहार कर परिवर्तन के लिए प्रेरित किया बल्कि **भारतीय ज्ञान, दर्शन एवं संस्कृति** को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भी स्थापित करने का कार्य किया।

इस्लाम धर्म सुधार आंदोलन (Islamic Reform Movement)

19वीं सदी के सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन किसी एक धर्म तक सीमित नहीं थे। कुछ वैसे ही जैसे मध्यकालीन धार्मिक आंदोलनों द्वारा जहाँ हिन्दू धर्म में भक्ति आंदोलन हुआ, वहीं इस्लाम में **सूफी आंदोलन**।

- **19वीं सदी** के इस्लाम धर्म सुधार में दो प्रकार की प्रवृत्तियां देखी गयीं। एक **रूढ़िवादी** या **पुनरुत्थानवादी** तथा दूसरा **सुधारवादी**।

रूढ़िवादी/पुनरुत्थानवादी (Orthodox/Revivalist)

इसके तहत **बहावी, देवबंद** आदि आंदोलन को देखा जा सकता है। बहावी आंदोलन की शुरूआत पाश्चात्य प्रभाव के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप हुई। इस आंदोलन का उद्देश्य था भारत को **दारूल हर्ब** की जगह **दारूल इस्लाम** बनाना अर्थात् इस्लामी मान्यताओं के अनुसार व्यवस्था का संचालन करना।

- इस आंदोलन के प्रमुख नेताओं में शामिल थे- **शाह वली उल्लाह, शाह अब्दुल्ला, अब्दुल अजीज, टीटू मीर** आदि। प्रारंभ में यह सुधार आंदोलन सिर्फ धर्म-सुधार पर केन्द्रित था पर बाद में इसमें ब्रिटिश विरोध का स्वर प्रमुखता से स्थापित हुआ। जिसका तात्पर्य है कि इसने राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को भी प्रभावित किया।

मुस्लिम सुधार आंदोलन में **देवबंद आंदोलन** का प्रमुख स्थान रहा है। इस आंदोलन के दो उद्देश्य थे-

- मुसलमानों में **कुरान** तथा **हदीस** की शुद्ध शिक्षा का प्रसार करना।
- विदेशी शासकों के विरुद्ध **'जिहाद'** की भावना जीवित रखना। **मुहम्मद कासिम ननौत्वी** तथा **रशीद अहमद गंगोही** के नेतृत्व में **1866 ई०** में देवबंद में **दार-उल-उलूम** की स्थापना किया गया। इसका उद्देश्य मुस्लिम

संप्रदाय के लिए धार्मिक नेता का प्रशिक्षित करना था शिक्षा मौलिक इस्लाम धर्म की दी जाती थी जिसका उद्देश्य मुस्लिम समुदाय का धार्मिक एवं नैतिक पुनरुद्धार करना था।

- **देवबंद आंदोलन** ने **1885** में बनी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का स्वागत किया।

सुधारवादी (Reformist)

इसमें **अहमदिया, फैरायजी, अलीगढ़** आदि आंदोलन उल्लेखनीय हैं। **19वीं सदी** के प्रारंभ में **मिर्जा गुलाम अहमद** द्वारा **'अहमदिया आंदोलन'** चलाया गया, जिसमें मूलत: मुस्लिम समाज में सुधार तथा ईसाई मिशनरियों एवं आर्य समाजियों के आक्रमण से इस्लाम की रक्षा करने की बात की गई।

- इसने आधुनिक औद्योगीकरण एवं तकनीकी प्रगति को धार्मिक स्वीकृति प्रदान की। यह भारत का सर्वाधिक संगठित मुस्लिम समूह था। इसी समय **फैरायजी आंदोलन** भी चला, जिसे विकसित करने में **हाजी शरियतुल्ला, दादू मियाँ** आदि महत्वपूर्ण थे। यह आंदोलन भी मूलत: समाज सुधारों पर ही केन्द्रित था।
- इस्लामिक सुधार आंदोलनों में **19वीं सदी** के उत्तरार्द्ध में **सर सैय्यद अहमद खां** द्वारा चलाया गया। **अलीगढ़ आंदोलन** सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इसमें पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार के साथ ही मुस्लिम समाज में सुधारों की बात की गई।
- **सर सैय्यद अहमद खाँ** का मानना था कि मुसलमान अपने-आप को अलग-थलग रखेंगे तो वे अपने न्यायोचित अधिकारों से वंचित रह जाएंगे। उन्होंने मुसलमानों के दृष्टिकोण को आधुनिक बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने विचारों का प्रचार **'तहजीब-उल-अखलाक' (सभ्यता और नैतिकता)** द्वारा किया।
- मुसलमानों में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार प्रसार करने के लिए उन्होंने **1875 ई. में अलीगढ़** में एक आधुनिक विद्यालय **'मुस्लिम एग्लों ओरियन्टल स्कूल'** की स्थापना की जिसमें पाश्चात्य् एवं मुस्लिम धर्म दोनों की शिक्षा दी जाती थी बाद में **1920 ई.** में यह **अलीगढ़ विश्वविद्यालय** बन गया।
- अलीगढ मुस्लिम संप्रदाय के धार्मिक तथा सांस्कृतिक पुनर्जागरण का केन्द्र बन गया। चूंकि **सैयद अहमद** के कार्यक्रम का मुख्य केंद्र अलीगढ़ को प्राय: **'अलीगढ़ आंदोलन'** के नाम से जाना जाता है। मुस्लिम समाज एवं शिक्षा क्षेत्र में कार्यों के कारण यह आंदोलन उल्लेखनीय है।
- लेकिन दुर्भाग्य वश अंग्रेजों के फूट डालो शासन करो नीति और हिन्दू प्रभुत्व के गलत भय के कारण यह आंदोलन कांग्रेस विरोधी, हिन्दू विरोधी और अंग्रेज समर्थक हो गया। इसकी मूल विशेषता स्त्री-सुधारों की बात करना भी था।

पारसी धर्म-सुधार आंदोलन (Parsi Reform Movement)

19वीं शताब्दी के सुधार आंदोलनों से **पारसी समाज** भी अछूआ नहीं रहा। पारसी धर्म में सुधार के तहत **'रहनुमाई मजदयान सभा'** गठित की गई, जिसका उद्देश्य पारसियों की प्राचीन धर्म एवं परंपरा की शुद्धता को प्राप्त करना तथा उसकी सामाजिक व्यवस्था में सुधार करना था।

- इस संस्था की स्थापना में **फरदोन जी, एस.एस. बंगाली, दादा भाई नौरोजी** आदि प्रमुख थे। **रहनुमाई मजदयान सभा** ने धार्मिक रूढ़िवादिता के विरुद्ध आंदोलन शुरू किया और **पारसी समाज** को आधुनिक बनाने का प्रयत्न किया। इस दृष्टि से महिलाओं की **शिक्षा, विवाह** एवं **समाज** में उनकी स्थिति सुधारने का प्रयत्न किए गए।
- इस आंदोलन के परिणामस्वरूप पारसी लोगों ने पश्चिमी जीवनशैली अपनाना शुरू कर दिया और एक समय ऐसा आया जब सामाजिक तौर पर वे भारतीय समाज के सबसे आधुनिक वर्ग में बदल गये। इनमें नौरोजी प्रारंभिक राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रमुख नेता थे।
- **दादाभाई नौरोजी** आर्थिक राष्ट्रवाद की धारणा का विकास करने वाले **प्रथम भारतीय** थे। समाज-सुधारक दादा भाई नौरोजी की आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रही।

सिख धर्म सुधार आंदोलन (Sikh Reform Movement)

सिख धर्म में सुधारों का विकास मुख्यत: गुरुद्वारा प्रबंधन में व्याप्त विकृतियों को दूर करने के लिए हुआ। इसकी शुरूआत **अमृतसर खालसा कॉलेज** की स्थापना के साथ हुई **गुरुद्वारा प्रबंधन** के सुधार की यह प्रक्रिया आगे चलकर **'अकाली आंदोलन'** की प्रमुख मांग बनी।

- अकाली आंदोलन में गुरुद्वारों को भ्रष्ट महंतों के प्रभाव से दूर करने में सफलता मिली। गुरुद्वारों के पास जमीन और पैसे का भ्रष्ट एवं स्वार्थी महंत मनमाने ढंग से उपभोग करते थे। **1921** में अकालियों के नेतृत्व में सिख जनता ने इसका विरोध किया।
- महंतों और सरकार (जो महंतो की सहायक थी) के विरुद्ध एक शक्तिशाली सत्याग्रह शुरू किया। बाध्य होकर सरकार को **1922 में सिख गुरुद्वारा अधिनियम** पास करना पड़ा।
- इस अधिनियम में 1925 में कुछ सुधार किया गया। इस प्रकार इस अधिनियम की सहायता तथा कभी-कभी सीधी कार्रवाई से भी भ्रष्ट महंतों को गुरुद्वारों से निकाला गया।

सुधार आंदोलन की प्रकृति/स्वरूप (Reform Movement's Nature/Form)

19वीं सदी के सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलन की प्रकृति या स्वरूप को निम्नलिखित आधारों पर देखा जा सकता है।

सुधार आंदोलन के तत्व/विचारधारा (Reform Movement's Element/Ideology)

- संपूर्ण सुधार आंदोलनों में **बुद्धिवाद, तर्कवाद, मानवतावाद, सर्व व्यापकतावाद** आदि प्रवृत्तियां सामान्य रूप से देखी गईं। इन विचारों के पीछे पाश्चात्य बौद्धिक जागरण का प्रभाव तो था पर साथ ही, इसके लिए इन विचारों को भारतीय परिवेश में आत्मसात किए जाने के लिए परिवेशगत परिस्थितियों की निर्णायक भूमिका रही।
- इस आंदोलन का स्वरूप बहुआयामी था। यह सामाजिक तथा धार्मिक दोनों सुधारों से संबद्ध था। आंदोलन का मुख्य लक्ष्य समाज सुधार था चूँकि समाज में अनेक कुरीतियों का समर्थन धर्म के आधार पर किया जाता था।
- अत: सामाजिक जीवन बहुत सीमाओं तक धार्मिक विचारों एवं मान्यताओं से प्रभावित था। अत: धर्म में सुधार के बिना समाज सुधार तर्कहीन था। चूँकि यह **आंदोलन तर्क** एवं **वैज्ञानिक दृष्टिकोण** से संबद्ध था।
- विभिन्न प्रकार के सामाजिक सुधार के तहत एक मानवतावादी समाज की स्थापना के उद्देश्य से तत्कालीन समाज में व्याप्त विभिन्न बुराइयों जाति-**प्रथा, छुआछूत, नारी शोषण** आदि का विरोध इस आंदोलन द्वारा किया गया और एक सीमा तक इसमें सफलता भी मिली क्योंकि **बाल-विवाह, सती-प्रथा** आदि पर रोक लगी और **विधवा पुनर्विवाह** को बढ़ावा मिला।
- सुधारवादियों एवं पुनरुत्थानवादियों के बीच का द्वंद्व, **19वीं सदी** के सुधार आंदोलन की यह एक विशिष्ट प्रकृति रही, जिसे हम हिन्दू, इस्लाम आदि धर्मों में हुए विभिन्न सुधार आंदोलन में देख सकते हैं।

- सुधारवादियों ने जहाँ तत्कालीन आधुनिक तत्वों पर जोर दिया वहीं पुनरुत्थानवादियों ने अतीत को ही आधार बनाया। उदाहरण के लिए **राजा राम मोहन राय** के विचारों में जहाँ-जहाँ सुधारवादी तत्वों का प्रभाव ज्यादा है, वहीं **स्वामी दयानंद सरस्वती** के यहाँ पुरुत्थानवादी तत्व भी दिखाई पड़ते हैं।
- **स्वामी दयानंद सरस्वती** ने **'वेदों की ओर लौटो'** का नारा देकर अतीत पर जोर दिया और साथ ही उन्होंने **'शुद्धि आंदोलन'** चलाया, ताकि धर्म परिवर्तित लोगों को पुन: हिन्दू धर्म में वापस लाया जा सके। इस आंदोलन को सांप्रदायिकता के विकास से भी जोड़कर देखा जा सकता है।

इसी प्रकार इस्लाम के तहत बहावी जैसे जो पुनरूत्थानवादी आंदोलन चले, उसमें **कुरान** को ही आधार बनाते हुए सुधारों की बात की गयी साथ ही भारत को **दारूल हर्ब** या **काफिरों का देश** कहकर इसे दारूल इस्लाम बनाने की बात की गयी। इस बात को भी सांप्रदायिकता के प्रारंभिक विकास से जोड़कर देखा जाता है।

- यह आंदोलन विधि व कानून निर्माण पर भी बल देता है। इस रूप में यह **मध्ययुगीन सुधार आंदोलन** से भिन्न था।
- औपनिवेशिक संस्कृति एवं विचारधारा तथा भारतीय संस्कृति एवं विचारधारा का द्वंद्व था। एक तरफ इस सुधार आंदोलन पर पाश्चात्य **भाषा, शिक्षा, कला, साहित्य, धर्म** आदि का प्रभाव था। कई सुधारकों ने इसमें काफी हद तक सुधार भी किया। **वहीं दूसरी ओर** कई सुधारकों द्वारा इसकी प्रक्रिया में भारतीय भाषा, धर्म एवं संस्कृति के नाम पर सुधारों की बात की गयी।
- सुधारकों में आंतरिक द्वंद्व की प्रवृत्ति भी देखी गयी। लगभग सभी सुधारों ने वर्ण-व्यवस्था का विरोध किया, पर **दयानंद सरस्वती** ने **जाति-भेद** का तो विरोध किया पर वर्ण व्यवस्था को समाज के संचालन हेतु आवश्यक माना। इसी तरह लगभग सभी सुधारकों द्वारा मूर्ति-पूजा का विरोध किया गया पर **विवेकानंद** द्वारा मूर्ति-पूजा का विरोध नहीं किया गया। **केशवचंद्र सेन** ने स्वयं अपनी पुत्री का विवाह कम उम्र में पूरे **वैदिक कर्मकांड** के साथ कर दिया।
- **सर सैय्यद अहमद** आधुनिक विचारों से प्रभावित होते हुए पर्दा प्रथा पर बल देते हैं।
- सुधारों के तरीके को लेकर भी सुधारकों में द्वंद्व दिखाई देता है। विभिन्न सुधारकों में कुछ सुधारक क्रांतिकारी तरीकों से आमूल-चूल परिवर्तन चाहते थे, जैसे-**ज्योतिबा फुले**। वहीं कुछ सुधारक परंपरावादी समाज व्यवस्था को बनाए रखते हुए ही सुधार चाहते थे, जैसे-**दयानंद सरस्वती, महादेव गोविंद रानाडे** आदि। दयानंद सरस्वती ने **जाति-प्रथा** का तो विरोध किया पर वर्ण-व्यवस्था का नहीं।
- 19वीं सदी का सुधार आंदोलन संपूर्ण भारत में अपना प्रभाव स्थापित नहीं कर सका, बल्कि इसका प्रभाव क्षेत्र मुख्यत: **बंगाल, महाराष्ट्र, मद्रास** आदि क्षेत्र में थे।
- इसके अतिरिक्त यहां के भी ग्रामीण क्षेत्र इससे अछूते रहे। तात्पर्य यह है कि कुछ प्रमुख क्षेत्र एवं शहरी इलाके ही इससे प्रभावित रहे, अन्य क्षेत्र एवं ग्रामीण इलाके इससे अछूते रहे।
- इन सुधार आंदोलन का प्रमुख प्रभाव शहरी शिक्षित मध्यम वर्ग पर ही पड़ा **ग्रामीण कृषक जनता** इससे लगभग अप्रभावित रही।
- इसी आधार पर कहा जाता है कि यह सुधार आंदोलन एक व्यापक जन आंदोलन का रूप नहीं ले सका।

सुधार आंदोलन : यूरोपीय पुनर्जागरण का प्रभाव (Reform Movements : Effect of European Renaissance)

19वीं सदी के सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन के स्वरूप के तहत **साम्यता** एवं **विषमता** के तत्वों के साथ ही यह विषय बिंदु भी रहा है कि, यह आंदोलन कहाँ तक यूरोपीय पुनर्जागरण की अभिव्यक्ति है। किसी सार्थक निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए यह आवश्यक है कि हम इसके पक्ष और विपक्ष के विभिन्न तर्कों का विश्लेषण करें।

पक्ष में तर्क (Argument in Favor)

- इन सुधार आंदोलन में कई ऐसी प्रवृत्तियाँ देखी गयीं, जिनके आधार पर यह कहा गया कि यह यूरोपीय पुनर्जागरण की ही अभिव्यक्ति है जैसे **मानवतावाद, तर्कवाद, विज्ञानवाद** आदि विचार।
- जिस तरह **15वीं-16वीं सदी** के यूरोपीय पुनर्जागरण के मध्य युग का अंत हुआ और आधुनिक युग का प्रारंभ हुआ उसी प्रकार **19वीं सदी** के सुधारों से भारत में आधुनिक युग का प्रारंभ हुआ।
- **उपरोक्त विचारों का विभिन्न तर्कों के आधार पर विरोध किया गया है, जैसे-**
  - भारतीय संदर्भ में **मानवतावाद, तर्कवाद, विज्ञानवाद** आदि तत्व अभी व्यावहारिक स्तर पर विस्तार नहीं प्राप्त कर पाये थे जबकि यूरोपीय संदर्भ में पुनर्जागरण का महत्वपूर्ण आधार था।
  - यूरोप से अलग यहाँ सुधार आंदोलन से **पूर्व अंधकार युग** नहीं था। **18वीं सदी** में किसी केंद्रीय साम्राज्य के अभाव में अस्थिरता अवश्य थी पर इसका मतलब यह नहीं था कि, यह युग अंधकार युग था।
  - यूरोपीय परिप्रेक्ष्य में पुनर्जागरण के लिए यहां **भौगोलिक खोज, वैज्ञानिक आविष्कार, कला** एवं **साहित्य क्षेत्र की गतिविधियां** आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। ये तत्व भारतीय प्ररिप्रेक्ष्य में बहुत सीमित थे।
  - ये सुधार आंदोलन के छोटे भाग अर्थात् नगरीय एवं उच्च मध्यम वर्ग की आवश्यकताएं पूरी करते थे। इनमें कोई भी बहुसंख्यक किसानों, **नगरों की गरीब जनसंख्या** तक नहीं पहुँचा।

विपक्ष में तर्क (Argument in Opposition)

विपक्ष विरोध के इन्हीं तर्कों को आगे बढ़ाते हुए इस सुधार-आंदोलन के पीछे के वास्तविक कारणों की जाँच-पड़ताल की गई और निम्नलिखित तथ्य स्थापित किए गए।

- पश्चिम के उदारवादी विचारों से **आम जनमानस** का बहुत कम संबंध था। लोगों की बहुत बड़ी समस्या औपनिवेशिक शोषण की समस्या थी।
- पाश्चात्य विचारों के आरोपण से पाश्चात्यीकरण को बढ़ावा मिला न कि आधुनिकीकरण को, इससे तात्पर्य यह है कि आधुनिकीकरण में किसी परिवेश की परंपरा भी होती है। आधुनिकीकरण की यथार्थ भूमि उसके अपने परिवेश से तैयार होती है न कि बाह्य विचारों से। उदाहरण के लिए **चीन** एवं **जापान** का आधुनिकीकरण इसका प्रमाण है जिसका आधार उसके अपने परिवेश से निर्मित हुआ है।
- इन विचारकों का यहाँ तक कहना है कि पाश्चात्य प्रभावों ने तो यहाँ विकसित हो रहे परिवेशजनित आधुनिकीकरण की स्वाभाविक प्रक्रिया को अवरुद्ध ही किया। यहाँ का आधुनिकीकरण ब्रिटिश शोषण की प्रतिक्रिया की भी एक अभिव्यक्ति था।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि **19वीं सदी** का सामाजिक-धार्मिक आंदोलन कुछ संदर्भों में यूरोपीय पुनर्जागरण के तत्वों को तो अवश्य ग्रहण करता है पर इसे उसकी देन या अभिव्यक्ति कहना समुचित प्रतीत नहीं होता। वास्तव में यह आंदोलन यूरोपीय पुनर्जागरण से भिन्न एक भारतीय नवजागरण था जिससे मध्य युग की समाप्ति हुई और कई संदर्भों में आधुनिकता का विकास हुआ।

सुधार आंदोलनों की प्रणाली (Features of Reform Movements)

सामाजिक-धार्मिक परंपराओं में सुधार लाने के लिए विभिन्न प्रणालियों का प्रयोग किया गया जिनमें से चार मुख्य धाराएँ हैं, जो निम्नलिखित हैं-

- **आंतरिक सुधार** प्रणाली की शुरूआत **राजा राममोहन राय** द्वारा की गयी थी और **19वीं शताब्दी** में इसका प्रयोग हुआ। इस प्रणाली के प्रचारकों को यह विश्वास था कि किसी भी सुधार को प्रभावशाली होने के लिए यह आवश्यक है कि वह समाज के अंदर से ही हो।
- परिणामस्वरूप इनके प्रयास लोगों के बीच जागरुकता की भावना पैदा करने पर केंद्रित थे। यह प्रयास उन्होंने **किताबें छापकर,** विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर बहस व विवाद का आयोजन इत्यादि करके किया। **राजा राममोहन राय** का **सती प्रथा के खिलाफ प्रचार**, **ईश्वर चंद्र विद्यासागर** के **विधवा-विवाह** पर लिखे इश्तहार तथा **बी.एन. मालाबारी** के शादी-विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने के प्रयास इत्यादि इसके उदाहरण हैं।
- **कानून के द्वारा** सुधार कानूनी हस्तक्षेप द्वारा प्रभाव लाने के विश्वास पर आधारित थी। इस प्रणाली की वकालत करने वाले-**बंगाल के केशवचन्द्र सेन, महाराष्ट्र के महादेव गोविन्द रानाडे** तथा **आंध्र प्रदेश के विरेशलिंगम** का मानना था कि सुधार के प्रयास वास्तव में तब तक प्रभावशाली नहीं हो सकते जब तक उन्हें राज्य का सहयोग प्राप्त नहीं हो। इसलिए उन्होंने सरकार से **विधवा-विवाह (सिविल मैरिज)** तथा अन्य विवाहों की न्यूनतम आयु बढ़ाने जैसे सुधारों को कानूनी समर्थन देने की मांग की।
- हांलाकि वे यह समझने में भूल कर बैठे कि ब्रिटिश सरकार की सामाजिक सुधारों में रुचि केवल अपने **संकीर्ण राजनैतिक** व **आर्थिक स्वार्थों** के कारण थी और वे तभी हस्तक्षेप करते जब इन सुधारों से उनका स्वार्थ अप्रभावित रहता।
- साथ ही, वे यह समझने में भी गलती कर बैठे कि बदलाव के लिए हथियार के रूप में कानून की भूमिका औपनिवेशिक समाज में ही सीमित थी क्योंकि इसे **जनता की मान्यता** प्राप्त नहीं थी।
- **प्रतीकात्मक बदलाव द्वारा सुधार की** तीसरी प्रवृत्ति की कोशिश विशिष्ट विरोधी-गतिविधियों द्वारा प्रतीकात्मक बदलाव लाने की थी। यह प्रवृत्ति **"डेरोजियो"** या **"यंग बंगाल"** तक ही सीमित थी जो सुधार-आंदोलन के बीच क्रांतिकारी धारा का नेतृत्व करती थी। इस समूह के सदस्य, जिनमें से प्रमुखत: **दक्षिनारंजन मुखर्जी, रामगोपाल घोष** तथा **कृष्ण मोहन बनर्जी** ने परंपराओं का बहिष्कार किया और समाज की मान्यता प्राप्त मानदंड़ों के खिलाफ विद्रोह किया।
- वे **"पश्चिम के नए उठते विचारों"** की धारा से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने सामाजिक समस्याओं के प्रति समझौता न करने वाली क्रांतिकारी प्रवृत्ति का प्रदर्शन किया।
- **रामगोपाल घोष** ने इस समूह की क्रांतिकारिता को अभिव्यक्त करते हुए घोषणा की- **"वह जो तर्क नहीं करेगा धर्मान्ध है, वह जो नहीं कर सकता, बेवकूफ है और जो नहीं करता गुलाम है।"**
- इन्होंने जिस प्रणाली को अपनाया उसकी मुख्य कमजोरी यह थी कि वह भारतीय समाज की सांस्कृतिक परंपरा को आकर्षित करने में सफल नहीं हो पाई। अत: बंगाल में उभरते नए मध्यम वर्ग ने इसे परंपरा के विरुद्ध पाया और स्वीकार नहीं किया।
- **सामाजिक कार्यों द्वारा सुधार** चौथी धारा थी जैसा कि **ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, आर्य समाज** और **रामकृष्ण मिशन** की गतिविधियों से स्पष्ट है। उन लोगों को बिना सहायक सामाजिक कार्य के विरुद्ध बुद्धिजीवी प्रयासों की सीमित सीमा का स्पष्ट ज्ञान था।
- उदाहरण के लिए **ईश्वर चंद्र विद्यासागर विधवा विवाह** की वकालत सिर्फ प्रवचनों और किताबों के प्रकाशन करके ही खुश नहीं थे।
- शायद आधुनिक युग में भारत ने उनके रूप से सबसे महान मानवतावादी को जन्म दिया, जिसने अपने को विधवा-विवाह की समस्याओं से जोड़ लिया और अपनी पूरी जिन्दगी, शक्ति और धन इसी कार्य पर लगा दिया।
- इन सबके बावजूद वह सिर्फ कुछ एक विधवा-विवाह ही करवा पाए।
- विद्यासागर का सार्थक रूप से कुछ न प्राप्त कर पाना ही इस बात का द्योतक है कि औपनिवेशिक भारत में सामाजिक सुधारों के प्रभाव की अपनी एक सीमा थी। **आर्य समाज** और **रामकृष्ण मिशन** ने भी सामाजिक कार्य द्व ारा सुधार व पुनर्जागरण के विचारों को बढ़ावा देने का प्रयास किया। उनकी सीमा उनकी खुद की वह सीमित समझ थी कि सामाजिक और बौद्धिक स्तरीय सुधार समाज के संपूर्ण चरित्र व संरचना के साथ इस कदर जुड़े हैं कि उसे अलग करके नहीं देखा जा सकता।
- मौजूदा व्यवस्था की संकीर्णता ही उन सीमाओं को दर्शाती है जिन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का कोई भी प्रयास लांघ नहीं पाया है।
- दूसरे सुधार-आंदोलनों की तुलना में इनकी निर्भरता औपनिवेशिक सरकार के हस्तक्षेप पर कम और सामाजिक कार्य को मत के रूप में विकसित करने पर ज्यादा रही।

सुधार आंदोलन की उपलब्धियाँ एवं सीमाएँ (Achievements and Limitations of Reform Movements)

उपलब्धियाँ (Achievements)

19वीं सदी के सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों को पहले के सुधार आंदोलनों की भांति ही युग-विभाजक अध्याय के रूप में देखा जा सकता है। युग-विभाजक अध्याय इसलिए कि इसका प्रभाव सिर्फ धर्म या समाज पर ही केन्द्रित नहीं रहा बल्कि इसने जनजीवन के लगभग सभी क्षेत्रों को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया। इनका उपलब्धियों को निम्नलिखित बिंदुओं पर देखा जा सकता है-

- इसके माध्यम से तत्कालीन भारतीय धर्म एवं समाज की रूढ़िवादिता एवं जड़ता पर प्रहार हुआ और भारतीय नवजागरण का मार्ग प्रशस्त हुआ।
- भारतीय सांस्कृतिक चेतना के प्रसार से आत्मगौरव एवं आत्मसम्मान की भावना प्रसारित हुई।
- सुधार-आंदोलन के दौरान शेष विश्व से जुड़ाव भी स्थापित हुआ जिससे भारतीय ज्ञान-विज्ञान एवं सांस्कृतिक क्षेत्र को व्यापकता मिली।
- वास्तव में इन आंदोलनों का उदय ही पुराने धर्मों को नवीन आधुनिक सांचे में ढालकर उनकों समाज के नए वर्गों की आवश्यकतानुसार बनाने के लिए हुआ था।
- इन आंदोलनों के कारण शेष दुनिया से भारत के बौद्धिक और सांस्कृतिक अलगाव को भी कुछ हद तक समाप्त किया तथा भारतीयों को विश्वव्यापी विचारों में भागीदार बनाया, जैसे- **स्वामी विवेकानंद का शिकांगो धर्म संसद 1893 का भाषण**।
- राष्ट्रीय चेतना के विकास में योगदान सुधार आंदोलनों की शायद सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि इसने ऐसे समय पर भारतीयों को समानता स्वतंत्रता एवं जागरण का संदेश दिया जब देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था और समस्त जनजीवन अंध विश्वास, रूढ़िवादिता एवं अज्ञान के अंधकार में भटक रहा था।
- इस सुधार आंदोलन से विभिन्न स्तरों पर जैसे-**विचार, नेतृत्व, संगठन कार्यक्रम, जनसहभागिता** आदि तत्वों की राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में आधारभूमि तैयार हुई, जिसने आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन के

विकासधारा को वैचारिक एवं व्यावहारिक दोनों स्तरों पर आगे बढ़ाया।

- **राजा राममोहन राय** के रूप में अगर राजनीतिक सुधारों का प्रवर्तक मिला तो **दयानंद सरस्वती** के रूप में **स्वदेशी एवं स्वराज का प्रचारक** भी, साथ ही स्वामी विवेकानंद के रूप में मानवतावाद का वास्तविक पुजारी भी, **दादाभाई नौरोजी** जैसे **आर्थिक राष्ट्रवाद के प्रवर्तक** भी।
- चूंकि एक बौद्धिक एवं सामाजिक जागरण दीर्घकालीन जड़ता के बाद और बड़ी विषम परिस्थितियों में हुआ था। अत: इसके प्रति प्रारंभिक उत्साह और इसमें बड़ी उम्मीदें बांधना कोई अप्रत्याशित बात नहीं थी। स्वाभाविक रूप से लोगों को ऐसा लगा कि इस जागरण से समस्त राष्ट्रीय जीवन की कायापलट हो जाएगी और देश में आधुनिक युग का अभ्युदय होगा। पर ऐसा हुआ नहीं और सुधार-आंदोलन भारत में मध्य युग से आधुनिक युग के बीच संक्रमण की एक गोधूलि बनकर रह गया।
- **अलबत्ता** यह **गोधूलि मध्ययुग** के अवसान और आधुनिक युग के आगमन का संकेत अवश्य दे रही थी।

सीमाएं (Limitations)

- इस सुधार आंदोलन में आत्म-गौरव की भावना के प्रसार के उद्देश्य से अतीत की ओर लौटने पर जोर दिया गया पर इस प्रक्रिया में कुछ ऐसी विकृतियां आईं जिन्हें सुधार आंदोलन की कमजोरी माना जाता है, जैसे-प्राचीन भारत को स्वर्ण युग एवं मध्य युग को विदेशी युग के रूप में दिखाया जाना।
- समस्या यह हुई कि प्राचीन काल को स्वर्ण युग कहने से निम्नवर्गीय जनता जो उस युग में उपेक्षित थी वह इस आंदोलन के साथ स्वयं को जोड़ नहीं पाई। इसी तरह मध्य युग की उपेक्षा के कारण मुस्लिम वर्ग इस प्रवृत्ति को संदेह की दृष्टि से देखता था, जो आगे चलकर सांप्रदायिकता के विकास का भी एक कारण बना।
- मुस्लिम मध्यवर्ग के अनेक लोगों ने अपनी परंपरा और अपनी धरोहर को पश्चिम एशिया के इतिहास में खोजना आरंभ कर दिया। फलत: समन्वित संस्कृति के विकास की सदियों में चली आ रही प्रक्रिया पर अंकुश लगा।
- इसका दुष्परिणाम तब सामने आया जब राष्ट्रीय चेतना के साथ सांप्रदायिक चेतना का भी विकास होने लगा।
- इस आंदोलन की एक कमजोरी पीछे मुड़कर अतीत की महानता का गुणगान करना तथा धर्मग्रंथों को आधार बनाने की प्रवृत्ति थी। यह आंदोलन की अपने सकारात्मक शिक्षाओं की विरोधी बन गई। इसने मानव बुद्धि तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के श्रेष्ठता की वियार को आघात पहुंचाया, जिससे **छद्म वैज्ञानिक चिंतन** को बल मिला।
- सुधार आंदोलन में धर्म सापेक्ष दृष्टिकोण अपनाया गया जिसके कारण आंदोलन पर संकीर्णता का प्रभाव रहा।
- सुधारकों में सैद्धांतिक अंतर्विरोधों के कारण भी इस आंदोलन को सीमित सफलता मिली।
- संपूर्ण समाज के स्तर पर कोई विशेष मौलिक परिवर्तन नहीं हो पाये, इसे हम क्षेत्रीय एवं वर्गीय संदर्भों में देख सकते हैं।
- ये सभी सुधार आंदोलन समाज के एक बहुत छोटे भाग यानि नगरीय एवं उच्च मध्यम वर्गों की आवश्यकताएं पूरी करते थे इनमें से कोई भी बहुसंख्यक किसानों तथा नगरों की गरीब जनता तक नहीं पहुंचा।
- इस प्रकार यह आंदोलन अपनी **संकीर्णता धर्मसापेक्ष दृष्टिकोण, सैद्धांतिक अंतर्विरोध** एवं **ऐतिहासिक संदर्भ** में सामाजिक पृष्ठभूमि को यथोचित समझ के अभाव के फलस्वरूप अपने उद्देश्य में अपेक्षित रूप से सफल नहीं हो पाया।
- लेकिन इसकी विफलता का एक और भी कारण था, वह था इस आंदोलन का औपनिवेशिक संदर्भ। राजनीतिक गुलामी की जंजीर में बंधे रहकर सामाजिक या मानसिक स्वतंत्रता और मुक्ति का सारा नारा निरर्थक था।

ब्रिटिश सामाजिक-सांस्कृतिक नीति (British Social-Cultural Policy)

भारत में **18वीं सदी** के मध्य से ब्रिटिश शासन की स्थापना व विकास की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। इस प्रक्रिया के तहत ही ब्रिटिश शासन को सुदृढ़ आधार देने के लिए सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में भी नीतियां बनायी गईं। इन नीतियों के कारण भी परिवेश में परिवर्तन आता रहा।

- इस प्ररिप्रेक्ष्य में प्रारंभिक तौर में विशेषकर **1813** के पूर्व तक ब्रिटिश शासन द्वारा सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में तटस्थता की ही नीति अपनाई गई, पर 1813 के बाद अपने निहित उद्देश्यों के पूर्ति हेतु विशेषकर ब्रिटिश औद्योगीकरण के परिप्रेक्ष्य में अपने उत्पादों के प्रसार के लिए पाश्चात्यीकरण पर भी जोर दिया गया।
- इसके लिए भारतीय समाज के रूपांतरण की भी आवश्यकता थी और इस रूपांतरण के लिए समाज-सुधार से संबंधित कई कार्य किए गये।

इन कार्यों को हम निम्न बिंदुओं पर देख सकते हैं-

- ***सती प्रथा***- यह एक अनैतिक सामाजिक बुराई थी जो भारत में काफी लंबे समय से चली आ रही थी। इस प्रथा में विधवाओं को पति की चिता के साथ जलकर मरना पड़ता था।
- यह प्रथा सामान्यत: ऊँची जाति के हिन्दूओं के बीच प्रचलित थी। व्यक्तिगत स्तर पर कई अंग्रेज अधिकारियों ने सती प्रथा को रोकने का असफल प्रयास किया, किंतु यह **सरकारी नीति** नहीं थी।
- **लॉर्ड वेलेजली** ने **1803 ई०** में यह प्रयास किया कि ब्रिटिश शासित क्षेत्रों में यह प्रथा बंद करायी जाय। अपने इस विचार को उसने **सुप्रीम कोर्ट, कलकत्ता** के सामने रखा।
- कोर्ट का मानना था कि इस मुद्दे पर सरकार को सर्तक रहना चाहिए, धार्मिक नेताओं से बात करनी चाहिए तथा स्थानीय लोगों को विश्वास में लेना चाहिए। सरकार अपनी नीति को स्पष्ट नहीं कर सकी।
- इस कारण सती प्रथा में कोई कमी नहीं आई।
- **गवर्नर जनरल लॉर्ड एमहर्स्ट** का मानना था कि वैधानिक स्तर पर इस प्रथा के उन्मूलन का उपयुक्त समय अभी नहीं था किन्तु **विलियम बेंटिक गर्वनर** बना तब उसे यह सलाह दी गयी कि इस प्रथा को समाप्त करने का प्रयास करे।
- इस प्रयास में **राजा राममोहन राय** तथा **एच०एच० विल्सन** ने उचित माहौल बनाया और सरकार को इस प्रथा को समाप्त करने के लिए कानून बनाने के लिए प्रेरित किया।
- **राजा राममोहन राय** के प्रयासों के फलस्वरूप **लॉर्ड विलियम बेंटिक** ने जल्द ही इसे समाप्त करने का निर्णय लिया और अंतत **1829** को इसे गैर कानूनी घोषित कर दिया गया और **बंगाल प्रेसीडेंसी का** XVII **रेगुलेशन** पास हुआ।
- इसमें यह कहा गया कि यदि कोई व्यक्ति सती प्रथा में सहयोग देगा तो उसे **मानव मृत्यु का अपराधी** माना जाएगा और यदि किसी ने सती प्रथा को सम्पन्न कराने में बल प्रयोग किया तो उसे **मृत्युदंड** दिया जाएगा।
- ऐसा ही प्रस्ताव **1830** को **मद्रास प्रेसीडेंसी** में पास किया गया तथा **बंबई प्रेसीडेंसी** में इस प्रकार का कदम उठाया गया। हालांकि इस कदम का भारी विरोध भी किया गया **लॉर्ड विलियम बेंटिक** को ज्ञापन भी दिया गया। **आंदोलनकर्ता जनवरी, 1830** में इस मुद्दे को लेकर **प्रिवी कांउसिल** भी

गये लेकिन उक्त अपील को खारिज कर दिया गया।

- **विधवा-पुनर्विवाह** जैसी बुराई भारतीय समाज में उस समय व्याप्त थी। इस ओर सरकार का ध्यान तब गया जब भारतीय समाज सुधारकों ने इसके खिलाफ आवाज उठायी। विधवाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। इस मुद्दे पर सरकार को कानून बनाने का सुझाव दिया गया। **ईश्वर चंद्र विद्यासागर** ने इसके खिलाफ आंदोलन चलाया जिसका परिणाम यह हुआ कि सरकार द्वारा **'हिन्दू विडोज री-मैरिज एक्ट: 1856'** 26 जुलाई को अधिनियम XV, 1856 के रूप में पास किया गया।
- **बाल-विवाह** भी एक अत्यंत भयावह सामाजिक बुराई थी। सामाजिक सुधारकों द्वारा किए गए आंदोलनों के परिणास्वरूप सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। इस संबंध में 1872 में **ब्रह्म या नेटिव मैरेज एक्ट** जिसमें यह प्रावधान था कि विवाह के समय लड़की की उम्र 14 वर्ष और लड़के की उम्र 18 वर्ष होनी चाहिए।
- **1891 में ऐज ऑफ कंसेन्ट एक्ट या सम्मति आयु अधिनियम** पारित किया गया जिसमें विवाह के समय लड़की और लड़के की उम्र 12 वर्ष और 18 वर्ष निर्धारित किया गया। **1930 ई. में शारदा अधिनियम** के प्रावधानों में लड़की-लड़के का उम्र 14 वर्ष और 18 वर्ष निर्धारित किया गया।
- **बहु-विवाह प्रथा** भी हिन्दू समाज में एक सामाजिक बुराई थी। यह बुराई बंगाल में उच्च हिन्दू जातियों विशेषकर **ब्राह्मण जाति** में थी। इस ओर सरकार का ध्यान 1855 से 1857 के बीच तब गया जब इस सामाजिक बुराई के खिलाफ आवाज उठनी शुरू हुई।
- इस दिशा में सुधार के प्रयास शुरू किए गये लेकिन **1857** का विद्रोह शुरू होने के कारण इस पर रोक लग गयी। बाद में **बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर** ने भारत सरकार से अनुरोध किया कि वह इस पर कानून बनाए लेकिन इस अनुरोध को अस्वीकार कर दिया गया और कहा गया कि बंगाल के बाहर भी अन्य समुदायों में यह प्रथा प्रचलित है।
- **अंतर्जातीय विवाह** को भी बढ़ावा दिया गया। इसके अतिरिक्त **नरबलि की प्रथा** जो उड़ीसा में खोंड जनजाति में मुख्य रूप से प्रचलित थी। इस पर ब्रिटिश सरकार का ध्यान 19वीं सदी के मध्य में गया। इस क्रूर प्रथा पर **लॉर्ड हॉडिंग** द्वारा प्रतिबंध लगा दिया गया।
- **शिशु-वध** भी एक क्रूर सामाजिक बुराई थी 1802 में सरकार का ध्यान इस पर गया। यह बुराई सिर्फ आदिवासियों में नहीं बल्कि राजपूत जातियों में भी थी। **बंगाल प्रेसीडेंसी** में 1795 में रेगुलेशन एक्ट XXI के अनुसार इस प्रथा को पालन करने वालों को हत्यारा माना जाता था। बाद में इसे भारत के अन्य भागों में लागू कर दिया गया।
- **लॉर्ड विलियम बेंटिक** ने शिशु-हत्या पर प्रतिबंध लगा दिया था। सरकार ने एक कानून बनाया जिसमें लडकियों के जन्म का पंजीकरण करना तथा इसका नियमित सर्वेक्षण करना कि, वह बच्ची अभी भी जीवित है या नहीं आदि। इस प्रकार धीरे-धीरे यह प्रथा समाप्त होने लगी।
- **ठगी प्रथा का दमन विलियम बेंटिक** के समय में किया गया, उस समय **ठग डाकुओं और हत्यारों** का एक समूह था जो निर्दोष व्यक्तियों को लूटकर उनकी हत्या कर देते थे। ठग लोग अवध से लेकर **हैदराबाद** तक राजपूताना तथा **बुंदेलखण्ड** के समस्त क्षेत्र के बीच गिरोह बनाकर सक्रिय थे।
- ठगों में हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों के अनुयायी थे। ये लोग काली, दुर्गा अथवा भवानी की पूजा करते थे और उन्हें बलि चढ़ाते थे। **1829 ई. में इस प्रथा का दमन** करने के लिए **कर्नल स्लीमैन** को ठगी तथा डकैती उन्मूलन का कमिश्नर नियुक्त किया गया। उसने 1500 के लगभग ठगों को बन्दी बनाया गया। अनेक ठगों को फांसी दे दी गयी और शेष को **आजीवन निर्वासित** कर दिया गया। **1837** के पश्चात् संगठित रूप से ठगों का अंत हो गया।
- **दास प्रथा** भी एक सामाजिक बुराई थी। इस संबंध में समय-समय पर कई प्रावधान आये जिसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण **1833 का अधिनियम** था। इसके परिणाम स्वरूप **1843 ई. में दास प्रथा** समाप्त कर दिया गया।

इन सबके अतिरिक्त ईसाई मिशनरियों के माध्यम से भी शिक्षा एवं समाज क्षेत्र में कई कार्य हुए हालांकि मिशनरियों की गतिविधियों से धर्म-परिवर्तन को भी बढ़ावा मिला। कुल मिलाकर अन्य संदर्भों के तरह ही ब्रिटिश सामाजिक-सांस्कृतिक नीति एवं उसके सुधार भी अपने हितों की पूर्ति से जुड़े थे, पर इस प्रक्रिया में ही कई वास्तविक सुधार भी हुए।

Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

आधुनिक भारत में महिला सुधार आंदोलन
(Women's Reform Movement in Modern India)

परिचय (Introduction)

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। महिला आंदोलन के प्रारंभ से पूर्व, स्त्री सुधार आंदोलन के रूप में कई समाज सुधारकों ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु महत्त्वपूर्ण प्रयास किए। **राजा राममोहन राय प्रथम** व्यक्ति थे जिन्होंने ब्रिटिशकाल के दौरान रूढ़िवादी हिन्दू विचारधारा का विरोध किया और स्त्रियों की स्थिति में सुधार की वकालत की। राजा राममोहन राय की विशेषता यह रही कि, जहाँ **1829 में उन्होंने सती** प्रथा पर रोक लगवाने में सफलता पाई, वहीं उन्होंने **हिन्दू परंपरा** यहाँ तक कि मनुस्मृति की खिलाफत भी नहीं की।

- स्त्रियों की शैक्षिक स्थिति में सुधार हेतु **ईश्वरचन्द्र विद्यासागर** ने महत्त्वपूर्ण प्रयास किए।
- दयानंद सरस्वती ने वेदों की उच्चता को स्वीकार करते हुए हिन्दू समाज के सुधार की बात को आगे बढ़ाया। महात्मा गाँधी ने भी स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने के अहम प्रयास किए। उन्होंने बाल-विवाह का विरोध किया और कहा कि, लड़की की विवाह की न्यूनतम आयु 20 वर्ष होनी चाहिए। वे विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में थे। देवदासी के रूप में चलायी जाने वाली वेश्यावृत्ति का उन्होंने विरोध किया।
- **सन् 1920** के बाद चलने वाले **असहयोग आंदोलन** में **गाँधीजी** ने स्त्रियों की भागीदारी सुनिश्चित करायी।
- महिलाओं ने स्वतंत्रता प्राप्ति के दौरान कंधे से कंधा मिलाकर काम किया। वे राष्ट्रीय जीवन की प्रत्येक धारा में कानूनी रूप से पुरुषों के बराबर हो गयीं।

स्त्री-सुधार हेतु आरंभिक प्रयास (Early Efforts for Women's Reforms)

इस संदर्भ में सूरत में **1844** में मानव धर्मसभा तथा **1867** में बंबई में प्रार्थना समाज का गठन किया गया। इसके अतिरिक्त **1873** में पूना में ज्योतिबा फूले ने सत्य शोधक समाज की स्थापना की। इन समाज सुधारकों के कार्यक्रमों की धुरी स्त्री शिक्षा थी।

- **अमेरिकी मिशन ने 1824** में बंबई में प्रथम बालिका विद्यालय तथा स्कॉटिश मिशन ने 1840-45 के बीच पूना में ऊँची जाति की बच्चियों के लिए स्कूल खोले।
- इस बीच कई अन्य स्थानों पर भी स्कूल खोले गए परन्तु, ये विद्यालय मुख्यतया धर्म परिवर्तित ईसाइयों के लिए थे। फिर भी हिन्दू-मुस्लिम समाज में इनकी शिक्षा सेवाओं का विशेष प्रभाव पड़ा।
- **1882 के एजुकेशन कमीशन** के सुझावों पर अमल करते हुए सरकार ने स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देना प्रारंभ किया और भारतीय समाज सुधारकों ने भी स्त्री शिक्षा हेतु शिक्षण संस्थान खोलने प्रारंभ किए, जिसमें **महर्षि डी. के कर्वे** द्वारा स्थापित स्त्री विश्वविद्यालय महत्त्वपूर्ण है।
- **ब्रिटिश सरकार** ने भी महिला सुधार की दिशा में प्रयास करते हुए **सती प्रथा उन्मूलन (1829), विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856), बालिका हत्या पर पाबंदी (1870)** आदि कानून पारित किए। लेकिन हिन्दुओं के **उत्तराधिकार** तथा **विवाह संबंधी कानूनों को छुआ** तक नहीं। बीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में कई स्थानीय और राष्ट्रीय महिला संगठन अस्तित्व में आए तथा इन्होंने सामाजिक सुधारों के साथ-साथ, मत देने के अधिकार की मांग की।
- इन संगठनों ने **1929** में **बाल विवाह** निषेध कानून को पास करवाने में सफलता प्राप्त की तथा तलाक, उत्तराधिकार और सम्पत्ति के अधिकार के मामले उठाए। ऑल इंडिया वीमेंस कॉफ्रेंस ने **1934** में हिन्दू कोड का प्रस्ताव पास किया। 1937 में हिन्दू वीमेंस, राइट टू प्रॉपर्टी कानून पास हुआ।

शारदा अधिनियम

वर्ष **1927** में राय साहब हरबिलास शारदा ने हिन्दू बाल-विवाह विधेयक पेश किया। इस विधेयक को हरि सिंह गौड़ के सहमति विधेयक के साथ विशेषज्ञों की राय जानने के लिए विशेषज्ञ समिति में भेज दिया गया।

1929 में समिति ने अपनी रिपोर्ट में विवाह की न्यूनतम आयु 15 साल तथा विवाह से बाहर सहमति देने की न्यूनतम आयु 21 साल करने का सुझाव दिया।

अंत में **1930** में लड़कियों के लिए विवाह की न्यूनतम आयु 14 वर्ष, लड़कों की 18 वर्ष के प्रावधान के साथ कानून पास हुआ। ऑल इंडिया वीमेंस कॉन्फ्रेंस (ए.आई.डब्ल्यू.सी) ने इस विधेयक को पास कराने के लिए जनमत तैयार करने में अहम् भूमिका निभाई। इसने **1931** में एक प्रस्ताव पारित कर, सरकार से शारदा कानून का कड़ाई से पालन कराने की अपील की।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गठन के बाद स्त्रियों में राजनीतिक जागरुकता (Political Awareness among Women after the Formation of the I.N.C.)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सदस्यता स्त्रियों के लिए खुली थी। **1889** में बंबई में आयोजित कांग्रेस के पाँचवां अधिवेशन में दस महिलाओं ने भाग लिया। इससे पूर्व **1896** में स्वर्ण कुमारी देवी ने सखी समिति की स्थापना की।

बंगाल विभाजन विरोधी आंदोलन में भी स्त्रियों ने बड़ी संख्या में भाग लिया।

- गाँधी जी ने स्त्रियों से स्वराज प्राप्ति के संघर्ष में पुरुषों के समान भाग लेने की अपील की, जिसके फलस्वरूप हजारों की संख्या में विभिन्न वर्गों, जातियों, धर्मों की स्त्रियों ने राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया। इसके साथ-साथ स्त्रियों ने क्रांतिकारी आंदोलन में भी सक्रिय भागीदारी की।
- मैडम के.आर. जोशी (दत्त), प्रीति लता वाडेकर, शांति सुनिति, बीना दास, श्रीमती रूपवती जैन, दुर्गा देवी ने क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लिया।

स्त्रियों ने कांग्रेस के अलावा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में संगठित मजदूर संगठनों के कार्यक्रमों में भी भाग लिया।

- बंबई में **ऊषा बाई डांगे 1928** से ही मजदूर स्त्रियों के बीच सक्रिय थीं। **बिटिटयाह कपड़ा मिल** में महिला मजदूरों को निकालने के विरोध में आठ महीने हड़ताल रही।
- गिरनी कामगार यूनियन की सहसचिव प्रभावती गोरे ने **1940** में मंहगाई भत्ता आदि के लिए की गई बंबई के मजदूरों की हड़ताल में अहम भूमिका निभाई।
- **मीनाक्षी बाई राने** ने शोलापुर के कपड़ा मिल मजदूरों के बीच काम किया।
- बीसवीं सदी के तीसरे दशक में भी यहाँ के मिल मजदूरों को किसी प्रकार के कानूनी संरक्षण प्राप्त नहीं थे।
- **1934** में मजदूरों ने आर्थिक मंदी के खिलाफ 3 महीने तक हड़ताल की, जिसमें कुछ स्त्री मजदूरों ने जोर-शोर से भाग लिया। मीनाक्षी बाई ने भी स्त्री मजदूरों के संगठन को सक्रिय करने की कोशिश की।
- **1936** में बीड़ी मजदूरनियों के एक महीने तक हड़ताल होने पर, उसके बाद वेतन में थोड़ी सी बढ़ोत्तरी पर हड़ताल समाप्त की गई।
- स्त्रियों ने मजदूर वर्ग के आंदोलनों में हमेशा सक्रिय भूमिका निभायी।
- **1928-29** में इन्होंने कलकत्ता हावड़ा बाल्मीकियों तथा जूट मिल के

मजदूरों की हड़ताल में भाग लिया।
- संतोष कुमारी गुप्ता तथा प्रभावती दासगुप्ता ने कमजोर वर्ग की स्त्रियों को संगठित करने का काम किया। प्रभावती दासगुप्ता मजदूर किसान पार्टी द्वारा **1927 में बंगाल** में स्थापित **स्केविन्जर्स यूनियन की सचिव** बनी।

राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की सहभागिता (Participation of Women in National Movement)

बंगाल विभाजन के समय स्त्री सहभागिता ने स्वदेशी आंदोलन को मजबूती प्रदान की। स्त्रियों की सहभागिता ने राष्ट्रीय आंदोलन में एक नई स्फूर्ति प्रदान की।
- इस समय पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन, नये राष्ट्रीय समूहों के गठन और स्त्रियों के लिए विशेष सभाओं के आयोजन आदि ने स्त्रियों को राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया।
- परंतु इस काल में परंपरागत रीति-रिवाजों के कारण महिलाओं की अप्रत्यक्ष भागीदारी रही और राजनीतिक सहभागिता और सामाजिक संकीर्णता दोनों साथ-साथ चलती रहीं।



- घरेलू और बाहरी क्षेत्रों में स्पष्ट विभाजन के बावजूद महिलाओं ने क्रांतिकारी संगठनों के साथ परोक्ष भूमिका निभायी।
- यह भूमिका मुख्यत: अपने परिवार के लोगों तथा संबंधियों में देशभक्ति की भावना का संचार करना, राष्ट्रीय आंदोलन को व्यक्तिगत तथा सामूहिक सहानुभूति तथा पारिवारिक उत्तरदायित्व निभाते हुए सीमित प्रत्यक्ष भागीदारी के रूप में दिखाई पड़ती है।
- 1910 तथा 1920 के दशक में महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता में काफी वृद्धि हुई। इस दौरान गुप्त संदेश देने और क्रांतिकारियों के शरण देने के रूप में महिलाओं ने सामाजिक बंधन तोड़कर सक्रिय क्रांतिकारी भूमिका का निर्वहन किया और सजा भी काटी।
- इस समय सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि कुछ ब्रिटिश महिलायें भी भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की समर्थक बन गयी जिनमें **एनी बेसेन्ट, डोरोथी जिनराजदास, माग्रेट कजिन्स** तथा **सिस्टर निवेदिता** आदि थीं।

असहयोग आंदोलन एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन (Non-Cooperation Movement and Civil Disobedience Movement)

असहयोग आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन में गाँधी जी के चमत्कारिक नेतृत्व, अनोखे व्यक्तित्व और रचनात्मक कार्यक्रमों के कारण, नारी जाति में अभूतपूर्व शक्ति तथा तेजी आयी।
- गाँधी जी ने स्त्रियों को अहिंसा और स्वराज प्राप्ति के वृहत्तर कार्यक्रम में पुरुषों की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया।
- असहयोग आंदोलन के समय महिलाओं के लिए निष्क्रिय विरोध के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन में सहभागिता को तत्काल सामाजिक मान्यता प्राप्त हो गयी।
- इस संदर्भ में **सुचेता कृपलानी** ने कहा कि, **'गाँधी जी** ने न केवल औरतों में ही बल्कि उनके संरक्षकों (पिता, भाई, पति) में भी एक विश्वास जागृत किया कि, स्त्रियाँ जब भी घर से बाहर राजनीतिक जीवन में भाग लेती थीं तो उनके परिवार वालों को विश्वास होता था कि वे सुरक्षित होंगी।'
- **सन् 1920-22** के असहयोग आंदोलन में पहली बार महिलाएँ भारी संख्या में किसी आंदोलन से जुड़ीं। सैकड़ों महिलाओं ने गली-गली खादी और चरखा बेचने के साथ-साथ खादी को लोकप्रिय बनाने के लिए जुलूस निकाले और समूहों में विदेशी कपड़ों की होली जलाई।
- उन्होंने शराब की दुकानों पर धरना दिया और शराब के लाइसेंस की सरकारी नीलामी को रोका।
- 1921 के कांग्रेस सम्मेलन में 144 महिला प्रतिनिधियों ने भाग लिया। मुंबई में महिलाओं ने **राष्ट्रीय स्त्री सभा का गठन किया। यह पहला महिला संगठन था जो पुरुषों की मदद के बिना चलाया जाता था।** इसके दो उद्देश्य थें-
- स्वराज और महिलाओं का उद्धार एवं उत्थान। दोनों उद्देश्य एक-दूसरे से काफी नजदीक से जुड़े हुए थे। राष्ट्रीय स्त्री सभा की सदस्यों ने पूरे मुंबई में खादी का प्रचार किया। उन्होंने नवंबर, 1921 में **'प्रिंस ऑफ वेल्स'** की भारत यात्रा के विरोध में पूरे मुंबई शहर में हड़ताल आयोजित की।
- इस आंदोलन के समय महिलाओं द्वारा राजनीतिक आंदोलनों तथा कार्यक्रमों में बड़े पैमाने पर हिस्सा लेने के कारण उनका स्थान समान नागरिक के स्तर तक पहुँच गया।
- समग्र रूप से देखा जाय तो असहयोग आंदोलन में भाग लेने वाली स्त्रियों की संख्या अपेक्षाकृत कम थी परंतु उनकी सहभागिता का महत्त्व संख्या से न होकर इस बात में था कि महिलाओं ने स्वयं आगे बढ़कर सभाओं तथा प्रदर्शनों का आयोजन किया।
- यह इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था कि, जिस स्त्री वर्ग को सदियों से किसी भी तरह की पहल करने से वंचित रखा गया था, उसने आंदोलन को चलाया।
- 1920 तथा 1930 के दशक में स्त्री वर्ग के प्रति गाँधी जी के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया।
- अब वे स्त्रियों के अधिकारों के साथ-साथ उनके प्रगतिशील भूमिका की बात भी करने लगे। गाँधी जी का मानना था कि राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया में महिलाओं के **उत्पादक** एवं **रचनात्मक** भूमिका पर बल देकर तथा उन्हें समान सहयोगी तथा भागीदार नेता का स्थान देकर, उनका साकारात्मक उपयोग किया जा सकता है।
- सविनय अवज्ञा आंदोलन में महिलाओं ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। अहमदाबाद से डांडी तक की यात्रा कर सविनय अवज्ञा आंदोलन से राष्ट्रीय आंदोलन के प्रारंभ तक महिलाओं की भागीदारी का एक नया चरण शुरू हुआ।
- 1930 के इस आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी संख्यात्मक और गुणात्मक दोनों ही दृष्टियों से 1920 के दशक की शुरूआत की भागीदारी से भिन्न थी।
- दांडी यात्रा के बाद महिलाओं को आंदोलन में पूरी तरह सम्मिलित कर लिया गया और राष्ट्रीय आंदोलन में हर वर्ग की महिलाओं ने भाग लिया।
- सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय हजारों महिलाएँ राष्ट्रीय आंदोलन के समर्थन में घरों की चारदीवारी से बाहर आईं।
- इनके विरोध के प्रमुख तरीके जुलूस, प्रभातफेरी, शराब तथा विदेशी कपड़ों

की दुकान पर धरना तथा अवैध नमक बनाकर नमक कानून का उल्लंघन करना था, विदेशी कपड़ों की होली जलाई जाती थी, आंदोलन के जोश को बरकरार रखने के लिए कई दिवस तथा सप्ताह जैसे **'महिला दिवस', 'चरखा सप्ताह'** आदि का आयोजन किया जाता था।

- **कमलादेवी चट्टोपाध्याय** जैसी महिला नेताओं ने आत्मत्याग से खेतिहर महिलाओं की एक गौरवमयी छवि प्रस्तुत की।
- वहीं **एनी बेसेंट** ने एक त्यागमयी भारतीय नारी की छवि को, सरोजिनी नायडू ने त्यागमयी **'भारतीय माँ'** और मार्गरेट कजिंस ने **'महान भारतीय नस्ल'** और **'शक्तिशाली मुस्लिम रेस'** की छवियों को सामने रखा। कांग्रेस की गतिविधियाँ हमेशा शहरी श्रमिक महिलाओं के बजाय ग्रामीण किसान महिलाओं पर केंद्रित रहीं।
- 1930 के दशक में महिलाओं को पहली बार पुलिस दमन का सामना करना पड़ा। 1930 में मुंबई में चुनाव बूथ पर चुनाव के खिलाफ धरने पर बैठीं 400 महिलाओं को एक साथ गिरफ्तार कर अत्यंत कड़ी सजा दी गई।
- असहयोग आंदोलन तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन में भाग लेने वाली प्रमुख महिलाएँ थीं- कमला देवी चौधरानी, कस्तूरबा गाँधी, उमा नेहरू, ज्ञानवती देवी, शकुंतला देवी, कृष्णदेवी, वी. राजलक्ष्मीम्मा, दुर्गाबाई देशमुख आदि।

श्रमिक वर्ग आंदोलन में महिलाएँ (Women in Working Class Movement)

1920 के दशक के अंत तक श्रमिक आंदोलन में महिलाओं की उपस्थिति महसूस की जाने लगी थी। कई नामी ट्रेड यूनियन की महिलाएँ सामने आईं तथा **श्रमिक महिलाओं** ने स्वयं प्रयत्न करके संगठित होना शुरू कर दिया था। फलत: श्रमिक आंदोलन में उनकी अपनी एक जगह बनी।

- **कराची** में आयोजित 1931 के कांग्रेस सम्मेलन में श्रमिकों के साथ-साथ कई महिला संबंधी प्रस्ताव भी पारित किए गए, जैसे- फैक्टरियों में कार्यरत महिलाओं हेतु एक महिला डॉक्टर तथा प्रसूति गृह व बच्चों की देखभाल हेतु एक क्रैंच और नर्सरी स्कूल की व्यवस्था होनी चाहिए।

क्रांतिकारी और कम्युनिस्ट आंदोलन में महिलाएँ (Women in Revolutionary and Communist Movement)

1930 के दशक के उत्तरार्ध में कई कम्युनिस्ट महिलाएँ नारीवादी क्षेत्र में आईं। **ऊषाबाई डांगे** जैसी कम्युनिस्ट महिलाओं ने मुंबई में सूती वस्त्र उद्योग में लगी श्रमिक महिलाओं को संगठित किया।

- **कम्युनिस्ट** और **राष्ट्रवादी** महिलाओं ने 1930 के दशक में पहली बार राजनीतिक बंदियों की रिहाई के लिए देशव्यापी अभियान में एक साथ काम किया।
- 1939 में महिला राजनीतिक एक्टिविस्टों ने मिलकर कांग्रेस महिला संघ बनाया।
- बंगाल में ए.आई.डब्ल्यू.सी. उग्रवादी स्त्री संघ समूह, युगांतर और भूमिगत कम्युनिस्ट इसमें शामिल थे।
- उन्होंने मिलकर **'मंदिरा'** शीर्षक से एक पत्रिका निकाली तथा सड़कों और नुक्कड़ों पर सभाएँ कीं। छात्राओं ने अखिल भारतीय छात्रा संघ (ए.आई.एस.एफ.) नामक छात्रा समिति बनाई तथा सक्रियता से स्वाधीनता आंदोलन में भाग लिया।

भारत छोड़ो आंदोलन में महिलाएँ (Women in Quit India Movement)

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में भी हजारों की संख्या में महिलाओं ने भाग लिया। महिलाएँ समानांतर सरकार बनाने के साथ-साथ कई गैर कानूनी कामों में भागीदार बनीं। इस दौरान कई महिलाओं की हत्या कर दी गई।

- फलत: महिलाओं को आत्मरक्षा-संबंधी प्रशिक्षण दिया गया ताकि वे जापानी बमों और अंग्रेजों तथा अमेरिकन यौनिक उत्पीड़कों से अपनी रक्षा कर सकें।
- **बारीसाल** में लाठी चलाने का प्रशिक्षण देने हेतु महिलाओं की आत्मरक्षा समितियाँ बनीं।
- **शेरपुर** (मानसिंह जिले) में कई बैठकें हुईं जिसमें सामंतवाद के खिलाफ संघर्ष में महिलाओं की भूमिका पर चर्चा हुई।
- पटना में महिलाओं ने प्रभात फेरियाँ निकालीं और पोस्टर प्रदर्शनियाँ कीं। हुगली, बाली, चिंसुरा और महेशटोला (सभी 24 परगना जिला में) महिलाओं की आत्मरक्षा समितियों के समन्वय के लिए एक अलग संगठन समिति बनाई गई।
- महिला आत्मरक्षा समिति के नाम से गठित यह समिति मुख्यतया एक कम्युनिस्ट महिला संगठन था।
- इस समिति में बंगाल की अधिकांश कम्युनिस्ट महिलाएँ पूर्णकालिक कार्यकर्ता थीं तथा कांग्रेस महिला संघ के साथ यह समिति भी काफी प्रतिस्पर्द्धी थी।



भारत छोड़ो आंदोलन के समय **अरुणा आसफ अली, सुचेता कृपलानी** ने अन्य नेताओं के साथ मिलकर इस आंदोलन की बागडोर संभाली।

- सबसे रोमांचक कार्य विभिन्न केंद्रों से कांग्रेस रेडियो का गुप्त संचालन था जिसे ऊषा मेहता, राम मनोहर लोहिया और बाबू भाई चला रहे थे।

महिला संगठन (Women organization)

राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं ने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यद्यपि राजनीतिक सहभागिता के साथ-साथ नारी उत्थान से संबंधित उनका अपना आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन से अलग था परंतु इसका महत्त्वपूर्ण अंग था।

- **1896 ई. में स्वर्णकुमारी देवी ने सखी समिति का गठन किया।** इसी वर्ष पंडित रमाबाई ने पूना में आर्य महिला समाज की स्थापना की। इसके पश्चात् उन्होंने बंबई प्रांत में कई और संगठनों की स्थापना किया जो नारी उत्थान के लिए कार्यरत थी।
- 1910 में **सरलादेवी चौधरानी** ने **'सोशल कॉन्फ्रेंस'** के पुरुष नेताओं से मतभेद के कारण एक नए संगठन **'भारत स्त्री महामंडल'** की स्थापना की।
- इस दौरान उन्हें नारी उत्थान और सभाओं को संगठित करने से यह अनुभव महसूस हुआ कि औरतों का नेतृत्व अब अपने हाथ में लेना चाहिए तथा प्रांतीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर स्त्री संगठनों की स्थापना की जानी चाहिए। हालाँकि इस तरह का कोई संगठन नहीं बन सका जो राष्ट्रीय स्तर पर दिखायी दे।

- **1901-02** में हैदराबाद लेडीज एसोसिएशन की स्थापना हुई। यह कई सामाजिक कार्यों के अलावा गरीब लड़कियों की शिक्षा के लिए धन जुटाने के कार्य में लगी थी। **1913 ई.** में **बेगम खेदिव जंग** ने **अंजुमन-ए-खवातीन-ए-इस्लाम** (मुस्लिम लेडीज एसोसिएशन) की स्थापना की। **1919** में श्रीमति हुमायुँ मिर्जा ने अंजुमन-ए-खवातीन-ए-दक्कन (दक्कन लेडीज एसोसिएशन) बनाया।
- **1914** ई. में अलीगढ़ में **'द ऑल इंडिया मुस्लिम लेडीज कॉन्फ्रेंस'** की स्थापना हुई। इसका लक्ष्य शिक्षा तथा मुसलमान स्त्रियों के मूलभूत अधिकारों को प्राप्त करना था।
- **1917** में मद्रास में एक अन्य महिला संस्था **वीमेंस इंडिया एसोसिएशन (WIA)** की स्थापना हुई। उसी वर्ष सरोजिनी नायडू संवैधानिक सुधार समिति (Constitutional Reforms Committee) के पास एक महिला शिष्टमंडल लेकर गई तथा वयस्क मताधिकार की मांग की।
- भारत के नारी आंदोलन का यह मानना था कि औरतों को वोट का अधिकार मिलने से समाज सुधार संबंधी कानून बनाने में सहायता मिलेगी। शिष्टमंडल के मांग-पत्र में औरतों के लिए पुरुषों के समान वोट का अधिकार तथा शिक्षा एवं स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं की बात की गई थी।
- भारत सरकार अधिनियम, **1919** के लागू होने के बाद मद्रास प्रांतीय विधान मण्डल ने **1921** में महिलाओं को वोट का अधिकार दिया।
- इसी तरह **1921** में बंबई विधान मण्डल ने भी औरतों को यह अधिकार दिया।
- **1929** तक सभी प्रांतीय विधान मंडलों ने औरतों को वोट का सीमित अधिकार दे दिया था।
- **कमला देवी चट्टोपाध्याय** तथा **हेमन एन्लजों** की मांग साइमन कमीशन के सामने भी रखी गई हालाँकि महिला संस्थाओं ने आरक्षित सीटों के माध्यम से भागीदारी को स्वीकार नहीं किया।
- **1925 में नेशनल काउंसिल ऑफ वीमेन (National Council of Women)** तथा **1927** में ऑल इंडिया वीमेंस कॉन्फ्रेंस (All India Women's Conference) की स्थापना हुई।
- **1930** तक लगभग 10 हजार महिलायें इन संस्थाओं की सदस्य बन चुकी थीं। इसमें वीमेंस इंडिया एसोसिएशन काफी सक्रिय थी जो चंदा इकट्ठा करने, सामाजिक सेवा तथा नारी शिक्षा के साथ-साथ कुछ क्षेत्रों में महिलाओं के समान अधिकारों के लिए सरकारी नीतियों को प्रभावित करने की कोशिश भी कर रही थी।
- इस संस्था की स्थापना में **एनी बेसेन्ट** तथा **मारग्रेट कजिंस** जैसी महिलाओं का हाथ था जो स्वयं मताधिकार-विस्तारवादी, राजनीतिक उग्रवादी तथा अपने देश में उपनिवेशवाद की घोर विरोधी थीं।
- ऑल इंडिया वीमेंस कॉन्फ्रेंस मूलत: महिलाओं की शिक्षा तथा सामाजिक एवं कानूनी सुधार संबंधी विषयों पर चर्चा करने के उद्देश्य से बनाई गई थी।
- इससे **नारी आंदोलन** और **राष्ट्रीय आंदोलन** में एकता लाने में मदद मिली।
- जब पहली गोलमेज कॉन्फ्रेंस हुई तो ऑल इंडिया वीमेन्स कॉन्फ्रेंस में सरोजनी नायडू के नेतृत्व में आठ सदस्यों के प्रतिनिधिमण्डल ने सार्वजनिक मताधिकार तथा मिश्रित सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों की मांग की। इसमें महिलाओं के लिए किसी प्रकार के आरक्षण, मनोनयन अथवा सहयोजन का विरोध किया।
- **1931** में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने कराची प्रस्ताव में महिलाओं के लिए समान वोटिंग अधिकार का प्रस्ताव पास किया।
- **लोथियान कमेटी की रिपोर्ट** ने 10 साल के लिए प्रांतीय विधान मण्डलों में 2 से 5 प्रतिशत सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित करने तथा सम्पन्न वर्ग की शिक्षित महिलाओं को वोट देने के अधिकार का प्रस्ताव रखा। परंतु महिला संगठनों ने इस प्रस्ताव को दो कारणों से रद्द कर दिया।
- महिलाओं के वोट के अधिकार को शादी के साथ जोड़ना गलत है क्योंकि शादी स्त्रियों के बस में नहीं होती।
- इससे संपन्न वर्ग के वोट दुगने हो जाएँगे तथा अशिक्षित गरीब वर्ग घाटे में रहेगा।
- इसी तरह महिला संगठनों ने सीटों के आरक्षण की मांग को भी रद्द कर दिया। साथ ही, हिन्दू महिला तथा मुस्लिम महिला जैसे विभाजनों को अस्वीकार करके नारी एकता की मांग की गई।
- भारत सरकार अधिनियम, **1935** में प्रांतीय विधान मण्डलों में 4 प्रतिशत सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित की गईं तथा महिलाओं के वोट के अधिकार को भी थोड़ा अधिक व्यापक बनाया गया। अब पुरुष तथा महिला में यह अनुपात 5:1 प्रतिशत का हो गया। परंतु केवल शिक्षित विवाहित 21 साल के ऊपर संपन्न तथा कर अदा करने वाली महिलाएँ ही वोट देने का अधिकार रखती थीं।
- अत: व्यापक निरक्षरता, संपत्ति स्वामित्व के अभाव में केवल नाममात्र की महिलाएँ ही इसका लाभ उठा सकीं।

स्त्री सुधार आंदोलन
(Women Reform Movements)



राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी उनकी घरेलू भूमिका का विस्तारमात्र ही प्रतीत होती है। महिलाओं को राजनीतिक क्षेत्र में पुरुषों से कम अधिकार प्राप्त था तथा चुनाव या किसी स्वतंत्र कार्य से वंचित रखा गया था।

- आंदोलन में उनकी भागीदारी ने पारिवारिक समीकरण, जीवन शैली और उनकी राजनीतिक भूमिका में परिवर्तन नहीं किया।
- महिलाओं को कभी भी राजनीतिक भूमिका तय करने में स्वतंत्रता प्रदान नहीं की गयी। महिलाओं को प्रतिरोध आंदोलन में शामिल करने के लिए जो ढाँचा और रणनीति बनाई गई उससे न तो राजनीतिकरण संभव था, न ही निरंतर भागीदारी और न ही उनके हितों की रक्षा।
- खादी कार्यक्रम में काफी महिलाओं को जोड़ा गया पर सूत कातना, वस्त्र बुनना पहले से ही महिलाओं का क्षेत्र रहा है।
- समाज सुधार आंदोलन और पर्दा प्रथा विरोधी आंदोलन में स्त्री-पुरुष की भिन्नताएँ आदि सवालों की खादी आंदोलन में कोई जगह नहीं थी।
- खादी संबंधित गतिविधियों में महिलाओं को श्रमिक के रूप में देखा ही नहीं गया। गाँधीजी की आदर्श-स्त्री की संकल्पना में स्वतंत्र जीविकोपार्जन करने वाली आधुनिक आत्मनिर्भर स्त्री की छवि कहीं नहीं थी।
- **गाँधीजी** के अनुसार स्त्री त्याग और पीड़ा की प्रतिमा है और सार्वजनिक

जीवन में उसका काम अबाधित महत्त्वाकांक्षा और संपत्ति अर्जन पर रोक लगाना है। सूत कातना और वस्त्र बुनना उसके लिए धार्मिक कार्य थे और वे महिलाओं के स्वभाव के अनुकूल थे।

- सूत कातने और वस्त्र बुनने के संस्थानों पर काफी प्रतिबंध थे। यह कोई व्यावसायिक या व्यापारिक गतिविधि नहीं थी। महिलाओं को सीमित स्वायत्तता ही मिली हुई थी।
- वे न तो सामाजिक विचारधारा या मूल्यों का उल्लंघन कर रही थीं न ही कोई स्त्री क्षेत्र की सीमा लांघकर पुरुष क्षेत्र में प्रवेश कर रही थीं। चतुर राजनीतिज्ञों ने महिलाओं के लिए ऐसे ही कार्य तय किए, जिससे स्त्री-पुरुष क्षेत्रों का वैचारिक और व्यावहारिक अलगाव बना रहे।
- राष्ट्रवादियों ने महिलाओं की भीतरी या बाहरी राजनीतिक गतिविधियों में परंपरा से हटकर कुछ बदलाव लाने की सोची ही नहीं। महिला का कार्यक्षेत्र घर था, उनकी पोषक और त्यागमयी माँ की छवि को ज्यों का त्यों बनाए रखा गया।
- इस बात पर विशेष जोर दिया जाता रहा कि महिलाएँ सार्वजनिक क्षेत्र में जाएँ तो भी अपने नारीसुलभ (आध्यात्मिक) गुण नहीं छोड़े।
- यह मान्यता थी कि चूँकि उन्हें रोजी-रोटी कमाने पुरुषों की तरह बाजार नहीं जाना पड़ता। अत: वे अपेक्षाकृत ज्यादा सुरक्षित जीवन बिताती हैं और उनमें हम सभ्य और परिष्कृत समाज के आध्यात्मिक गुणों के दर्शन कर सकते हैं। देशभक्ति को धर्म में समाहित कर देने से महिलाओं का राजनीतिकरण पारंपरिक सांस्कृतिक ढाँचे से सही उतरता था।
- स्वाधीनता आंदोलन एक विशेष प्रकार का त्याग व बलिदान था न कि बाहरी राजनीतिक आंदोलन। आंदोलन एक धार्मिक प्रक्रिया थी और सांस्कृतिक तथा धार्मिक जंग भी।
- राष्ट्रीय आंदोलन का सारा विरोध पाश्चात्य् मानदंडों एवं प्रतिमानों से था और आंदोलन की भाषा, अवधारणा, प्रतीक आदि सबमें भारतीय धर्म एवं परंपरा को बनाए रखने पर विशेष जोर था।
- इस दौरान पाश्चात्य संस्कृति से भारतीय संस्कृति की रक्षा का प्रचार किया जा रहा था। यहीं हमें विरोधाभास की स्थिति दिखती है। आंदोलन की इन परंपरावादी जड़ों के कारण ही हजारों महिलाएँ आंदोलन में भाग ले सकीं और इसी कारण से अपने निजी व सार्वजनिक जीवन में परंपरा से हटकर कुछ भी नहीं कर सकीं।
- राष्ट्रवादियों ने महिला मुक्ति व उत्थान के विपरीत राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं को एक नई पितृसत्ता तले बाध्य रहने को मान्यता प्रदान की। महिलाओं को मात्र पत्नी, पुत्री और माँ की भूमिकाओं के रूप में परिभाषित किया गया। राष्ट्रीयता के इतिहास में महिलाओं का योगदान केवल उनकी पारंपरिक भूमिका का विस्तारमात्र है। राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं का कहीं कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं दिखता है।

सामाजिक सुधार अधिनियम : एक नजर में

अधिनियम	*वर्ष*	*गवर्नर जनरल*	*विषय*
सतीप्रथा प्रतिबंध	1829	लार्ड विलियम बैंटिक	सती प्रथा पर पूर्ण प्रतिबंध (धारा 17)
शिशु वध प्रतिबंध	1804	वेलेजली	शिशु हत्या पर प्रतिबंध (धारा 21 व 31)
हिन्दू विधवा पुनर्विवाह	1856	लार्ड कैनिंग	विधवा विवाह की अनुमति (धारा 15)
नैटिव मैरिज एक्ट	1872	नार्थबुक	14 वर्ष से कम आयु की कन्याओं के विवाह करने पर रोक लगा दी गयी।
एज ऑफ कंसेंट एक्ट	1891	लैंसडाउन	विवाह की आयु 12 वर्ष लड़की के लिए निर्धारित
शारदा एक्ट	1930	इरविन	विवाह की आयु 18 वर्ष लड़के के लिए निर्धारित
दास प्रथा पर प्रतिबंध	1943	एलनबरो	1853 के चार्टर द्वारा 1843 में दासता को प्रतिबंधित
1850 ई. विडो रिमैरिज एसोसिएशन की स्थापना विष्णुशास्त्री पण्डित ने किया।			

आधुनिक भारत में निम्न जातीय आंदोलन
(The Lower Caste Movement in Modern India)

निम्न-जातीय आंदोलन (Lower Caste Movement)

भारतीय समाज में वे जातियाँ जो जाति पदानुक्रम में निचले स्तर पर स्थित थीं और जो कई तरह की निर्योग्यताओं की शिकार थीं, को निम्न जाति की संज्ञा दी जाती है। अपनी सामाजिक दशा के संदर्भ में उनके द्वारा अपनी स्थिति में **सुधार हेतु** किए गए **सामूहिक प्रयास** को **निम्नजाति आंदोलन** कहा जाता है।



भारतीय समाज में दलित अथवा निम्न जातियाँ आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सबसे निचले स्तर से संबंधित रहीं हैं और जातीय निर्योग्यताओं से जुड़ी कई तरह की समस्याओं से पीड़ित रही हैं।

- ये जातियाँ न सिर्फ निम्न जाति श्रेणी से ताल्लुक रखती थी बल्कि भारतीय समाज की वर्ग संरचना में भी यह निम्नतम स्तर पर रही हैं।
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था में वे मुख्य रूप से गरीब किसान, बँटाई मजदूर तथा कृषि श्रमिक के रूप में और शहरी अर्थव्यवस्था में वे मुख्य रूप से श्रमजीवी जनसंख्या के रूप में विद्यमान रहे हैं।

वर्तमान में दलित शब्द मुख्यत: अनुसूचित जातियों का संदर्भ प्रस्तुत करता है जिनकी जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार 16.66 करोड़ से भी अधिक तथा समग्र जनसंख्या के 16.2% से अधिक थी। पूरे देश में उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, उड़ीसा व महाराष्ट्र में इनका अधिक जनघनत्व हैं।

भारत में निम्न-जाति आंदोलन के कारण (Reason of Lower Caste Movement in India)

- भारत में दलितों की प्रास्थिति सामाजिक सोपान में अत्यंत निम्न रही है, जिसके कारण इसके ऊपर कई सामाजिक प्रतिबंध आरोपित थे। समाज में इनको अपवित्र समझा जाता था और इनके लिए केवल अपवित्र व्यवसायों को ही निर्धारित किया गया था, जिसके कारण यह अपने विकास के अन्य अवसरों से वंचित हो गये थे। इस वंचना के चलते दलित आंदोलनों का आरंभ हुआ।
- आधुनिक शिक्षा के विकास ने भी निम्न जाति आंदोलन को सकारात्मक रूप में प्रभावित किया है। आधुनिक शिक्षा एवं पश्चिमी मूल्यों के प्रसार के साथ प्रदत्त प्रास्थिति के बजाय अर्जित गुणों एवं उपाय विधियों को मान्यता मिलनी शुरू हुई जिसके कारण निम्न जातियों को समाज में अपनी स्थिति का बोध एवं वंचन के एहसास ने दलित आंदोलनों को प्रोत्साहित किया।
- निम्न जातियों के उन्नयन हेतु समाज सुधारक व्यक्तियों, राजनीतिक दलों एवं अन्य संगठनों के प्रयासों ने भी दलित आंदोलन को गतिशील बनाया। मानवतावादी विचारकों एवं नेताओं ने निम्न जातियों के लिए अभिशाप बनी अस्पृश्यता जैसी कुरीति को समाप्त करने व उनको समानता दिलाने के प्रयास के क्रम में निम्न जातियों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना का विकास किया। साथ ही, विभिन्न संगठनों एवं राजनैतिक दलों ने निम्न जातियों के अधिकारों की मांग द्वारा इनके आंदोलनों को गतिशील बनाने का प्रयास किया।
- औद्योगीकरण आधारित नवीन अर्थव्यवस्था ने योग्यता को स्थापित करते हुए विकास की अनेक संभावनाओं एवं अवसरों को उत्पन्न किया, जिससे पारंपरिक व्यावसायिक प्रतिबंध ढीले हुए और निम्न जातियों को भी विकास के अवसर प्राप्त हुए जिसका अधिक लाभ उन्हें पारंपरिक प्रतिबंधों को तोड़ने के लिए आंदोलन को प्रेरित करने में मिला।
- नगरीकरण व नगरीय संस्कृति के विकास ने एक भेदभाव रहित सांस्कृतिक वातावरण का विकास किया जहाँ पर निम्न जातियों पर थोपे गए अपवित्रता संबंधी प्रतिबंधों को मान्यता नहीं दी जाती थी। इन नगरीय मूल्यों के प्रसार के परिणामस्वरूप भी इन जातियों के आंदोलन को प्रेरणा मिली।
- यातायात व संचार साधनों के विकास ने भी विभिन्न जातीय समूहों को पास लाने में मदद की है जिससे पवित्रता व अपवित्रता संबंधी धारणा कमजोर हुई साथ ही, यातायात व संचार साधनों के विकास ने विभिन्न निम्न जातियों के संगठन निर्माण को संभव बनाया जिससे निम्न जातियों के आंदोलन को व्यापक आधार प्राप्त हुआ।

अंग्रेजी शासनकाल में **आधुनिक** एवं **लोकतांत्रिक मूल्यों** के प्रसार के साथ निम्न जातियों में अपनी स्थिति के संदर्भ में वंचना का भाव उत्पन्न हुआ और उनमें चेतना का विकास हुआ। तब से लेकर आज तक ये जातियाँ अपनी प्रास्थिति में सुधार हेतु निरंतर आंदोलनरत रही हैं।

19वीं तथा 20वीं शताब्दी में दक्षिण एवं पश्चिम भारत में भिन्न-भिन्न जातीय आंदोलन प्रारंभ हुए। ये आंदोलन मुख्य रूप से **ब्राह्मणीय प्रभुत्त्व के** विरुद्ध थे।

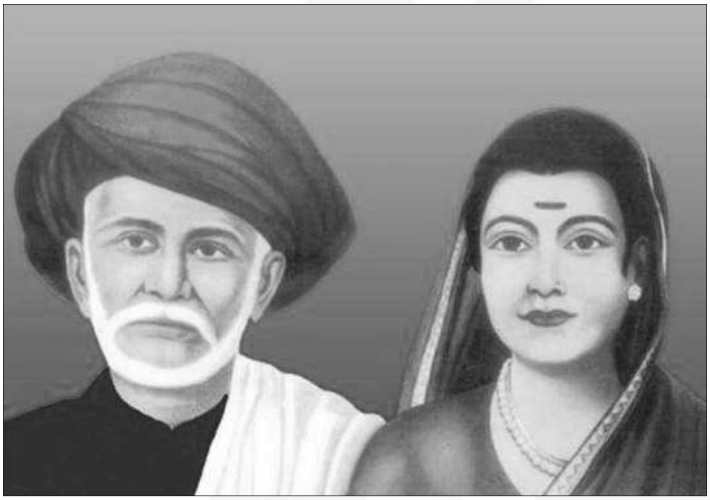
- भारत में निम्न जातियों की स्थिति में सुधार के लिए किए गए प्रारंभिक प्रयास महाराष्ट्र में **ज्योतिबा फुले एवं केरल में श्रीनारायण गुरु धर्म परिपालन योगम** के नेतृत्व में किया गया। इन आंदोलनों द्वारा व्यापक स्तर पर निम्न जातियों हेतु सुधार कार्यक्रमों की शुरूआत की गयी।
- इसके अतिरिक्त दक्षिण और पश्चिम भारत में अनेक आंदोलन निम्न जातियों को सम्मान दिलाने और ब्राह्मणवादी वर्चस्व के खिलाफ चलाये गए।

भारत में निम्न-जाति आंदोलन	
भारत में निम्न-जाति आंदोलन का उद्देश्य	1. निम्नजातियों को समाज में अत्यंत निम्न स्थिति से उबारना। 2. निम्नजातियों की निर्योग्यताओं की समाप्ति।
भारत में निम्न-जाति आंदोलन का कारण	1. निम्नजातियों की समाज में अत्यंत निम्न स्थिति। 2. निम्नजातियों का शोषण एवं निर्योग्यता। 3. निम्नजातियों के उत्थान के लिए विभिन्न नेताओं का प्रयास। 4. पश्चिमीकरण एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के तहत् निम्नजातियों में वर्ग चेतना का उद्भव। 5. मार्क्स की वैचारिकी का अम्बेडकर जैसे निम्न-जाति के नेताओं पर प्रभाव।

भारत में निम्न-जाति आंदोलन का प्रभाव	1. स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् दलितों के लिए विशेष संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधान। 2. अस्पृश्यता एवं निर्योग्यताओं की समाप्ति। 3. निम्नजातियों के उत्थान एवं समाज की मुख्यधारा में शामिल करने के लिए विभिन्न रोजगार योजनाओं का आरंभ। 4. अस्पृश्यों को शिक्षा एवं नौकरियों में आरक्षण तथा उनके शोषण की समाप्ति के लिए सुरक्षात्मक उपाय।

सत्य शोधक समाज (Satya Shodhak Samaj)

यह एक सामाजिक सुधार आंदोलन था जिसके कार्यक्रमों का निर्धारण एवं क्रियान्वयन **"सत्य शोधक समाज"** नामक संस्था के द्वारा होता था और जिसकी स्थापना **1873** में ज्योतिराव गोविंदराव फुले ने की थी। इसके द्वारा समाज में व्याप्त रूढ़ियों एवं शोषणकारी सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था के विरुद्ध जनमानस में वास्तविकता का बोध कराने का प्रयास किया गया।



- तत्कालीन महाराष्ट्र में **सामाजिक स्तरीकरण वर्णाश्रम धर्म** से नियंत्रित था जिसके अंतर्गत ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र नामक वर्गों की असमान जाति का क्रम-व्यवस्था के आधार पर समाज का विभाजन किया गया था।
- इसमें स्तरीकरण से नियंत्रित विभिन्न जातियों के बीच आपसी सामाजिक संबंधों को अनेक अंधविश्वासों, कुरीतियों एवं अमानवीय अत्याचारों द्वारा शोषणकारी बना दिया गया था।
- **ज्योतिराव फुले** जाति व्यवस्था को मानव समाज के खिलाफ मानते थे। यह व्यवस्था शूद्रों विशेषकर अछूत जातियों के लिए कभी न खत्म होने वाली दासता को सुरक्षित करती थी।
- ब्रिटिशकाल के दौरान ब्राह्मण अंग्रेजी शिक्षा को सफलतापूर्वक अपनाकर औपनिवेशिक **शासन में छाये रहे।** इस स्थिति ने गैर- ब्राह्मण जातियों में डर पैदा कर दिया था।
- साथ ही, इस प्रकार की रूढ़ सामाजिक व्यवस्था की ईसाई मिशनरियों एवं राष्ट्रवादी बुद्धिजीवियों द्वारा पश्चिमी उदारवादी विचारधारा के संदर्भ में तीव्र आलोचना की जा रही थी। इन्हीं परिस्थितियों ने फुले को सत्यशोधक समाज की स्थापना हेतु प्रेरित किया।
- **ज्योतिबा फुले** ने इतिहास की व्याख्या करने के बाद कहा था कि विदेशी आर्य लोगों ने यहाँ के मूल निवासियों (द्रविड़ लोगों) को हटाकर असमान जाति व्यवस्था लागू की और मूल निवासियों (द्रविडों) का शोषण करने के लिए धर्म का सहारा लिया।
- उन्होंने मूर्तिपूजा, कर्मकांड, कर्म सिद्धान्त, पुनर्जन्म और स्वर्ग जैसे सिद्धांतों की खूब आलोचना की। अत: उनका मानना था कि ईश्वर एक है और वह अवैयक्तिक है।
- सत्यशोधक समाज ने सार्वजनिक धर्म का समर्थन करते हुए छुआछूत व गुलामी की प्रथा के विरुद्ध आंदोलन किया।
- इस आंदोलन ने धर्म पर ब्राह्मणों के एकाधिकार को चुनौती दी और उस पर सार्वजनिक अधिकार को सुनिश्चित करने का प्रयास किया।
- इसके लिए ब्राह्मणों के प्रतीक चिह्न राम के बजाय राजा बलि को आंदोलन का प्रतीक चिह्न के रूप में स्थापित किया गया।
- सत्यशोधक आंदोलन समाज में जाति प्रथा के पूर्ण उन्मूलन और सामाजिक आर्थिक समानता का पक्षधर था और ब्राह्मणों के वर्चस्व को समाप्त कर निम्न या अछूत जातियों की सामाजिक पहचान हेतु क्रियाशील था।
- सत्यशोधक समाज ने ब्राह्मण या पुरोहित वर्ग को समाज के शोषक वर्ग के रूप में देखते हुए लगातार उनके विशेषाधिकारों एवं वर्चस्व का विरोध करते हुए एक समतावादी समाज की स्थापना के प्रयास में संलग्न रहा और विभिन्न सामाजिक सुधारों यथा महिला शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह आदि के लिए भी समर्पित रहा है।
- तर्क, बुद्धिवादिता, समानता एवं मानवतावादी सिद्धांतों के आधार पर सामाजिक, सांस्कृतिक संरचना का पुनर्निर्माण करना सत्यशोधक समाज का मूल उद्देश्य था। अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु समाज ने निम्न प्राथमिक उद्देश्यों को भी आत्मसात् किया-
  - लोगों के दिमाग में असमानता के प्रति जागरुकता उत्पन्न करना और ब्राह्मण अधिपत्य का विरोध करना।
  - स्त्री-मुक्ति का प्रयास करना।
  - शिक्षा का प्रसार करना।

श्री नारायण गुरु धर्म परिपालन सभा (Shree Narayan Guru Dharma Paripalan Sabha)

श्री नारायण गुरु धर्म परिपालन सभा **श्री नारायण गुरु** द्वारा स्थापित एक **क्षेत्रीय सुधार आंदोलन** था जो तत्कालीन रूढ़-सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था के विरुद्ध केरल के एझवा जाति के विरुद्ध होने वाले भेदभाव पूर्ण रवैये के प्रतिक्रिया स्वरूप प्रारंभ हुआ।



- केरल के तत्कालीन समाज में एझवा जाति ताड़ी निकालने का काम करती थी। यह जाति अस्पृश्य थी और जाति व्यवस्था में निहित छुआछूत (अस्पृश्यता) और शोषणकारी प्रथाओं की शिकार थी। इन्हें स्कूलों में व

मंदिरों में प्रवेश और सड़कों का उपयोग नहीं करने जैसी कई वर्जनाओं का सामना करना पड़ता था।

तत्कालीन ब्रिटिश भारत के अन्य क्षेत्रों में आधुनिक पश्चिमी विचारधारा से प्रभावित होकर परंपरागत जाति व्यवस्था में निहित अन्यायपूर्ण प्रथाओं तथा अन्य रूढ़ एवं शोषणकारी परंपराओं के विरोध में लोक आंदोलन आरंभ हो गये थे। इन्हीं आंदोलनों से प्रेरित होकर श्री नारायण गुरु धर्म परिपालन सभा ने केरल में एक समता मूलक, शोषणविहीन समाज की स्थापना के लिए निम्न लक्ष्यों को निर्धारित किया–

- जाति व्यवस्था में अपनी प्रास्थिति में ऊँची जातियों की जीवनशैली, उच्च शिक्षा, प्रतिष्ठित नौकरी आदि को अपनाकर जीवनस्तर को ऊँचा उठाना।
- विशेषकर ब्राह्मणों एवं अन्य जातियों के आधिपत्य के विरुद्ध विरोध पैदा करना एवं उनके विशेषाधिकारों से दलित जातियों को सुरक्षा प्रदान करना।
- जातीय निर्योग्यताओं का उन्मूलन करके एक समतावादी समाज की स्थापना करना।

उपरोक्त उदेश्यों की प्राप्ति हेतु **'एक ईश्वर, एक धर्म एवं एक जाति'** के मंत्र को केंद्र में रखकर यूनीटेलिक (Unitelic) के नाम से एक क्रियात्मक कार्यक्रम बनाया गया। अन्य दलित समर्थक आंदोलनों की भांति इस आंदोलन ने भी दलितों को समाज में अन्य जातियों के समान अधिकार की मांग की और दलितों के मंदिर में प्रवेश पर लगी पाबंदी का विरोध किया। इस आंदोलन ने दलितों की सामाजिक दशा सुधारने के लिए दलितों से ऊँची सभी जातियों के विरुद्ध संघर्ष की अपील की और नारा दिया कि समस्त मानव जाति के लिए एक ईश्वर, एक जाति और एक धर्म है जिसको बाद में परिवर्तन करते हुए कहा गया कि समस्त मानव जाति के लिए कोई ईश्वर नहीं, कोई जाति नहीं और कोई धर्म नहीं है। **श्री नारायण गुरु धर्म परिपालन योगम** के तत्वावधान में दलितों के उद्धार एवं विकास हेतु कई रचात्मक कार्यक्रम चलाए गए जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं–

- सार्वजनिक शिक्षण संस्थाओं में दलितों के प्रवेश हेतु अधिकार दिलाने का प्रयास किया गया।
- दलितों को मार्गों एवं सड़कों पर बिना रोक-टोक आने-जाने का अधिकार देने की मांग की गई।
- दलितों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व हेतु आरक्षण की मांग की गई।

इस प्रकार **श्री नारायण गुरु** धर्म परिपालन ने सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से पिछड़े हुए दलित वर्गों के उत्थान हेतु इन तीनों ही क्षेत्रों में सराहनीय प्रयास किया।

निम्न जातीय आंदोलन में अंबेडकर का योगदान (Ambedkar's Contribution in Lower Caste Movement)



दलित आंदोलन के रूप में किए गये उपर्युक्त प्रयासों की सीमाओं को देखते हुए अम्बेडकर द्वारा निम्न-जातियों का स्तर सुधारने हेतु अलग दृष्टिकोण अपनाया गया।

- **1924** में उन्होंने बम्बई में **बहिष्कृत हितकारिणी सभा** बनाई, जिसका उद्देश्य अस्पृश्य लोगों की नैतिक तथा भौतिक उन्नति करना था।
- उन्होंने आंदोलन की नीति अपनाई और अछूतों के लिए मंदिरों में प्रवेश तथा जनसाधारण को कुएँ से पानी भरने के लिए नागरिक अधिकारों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया।
- अम्बेडकर का मानना था कि अब तक इन जातियों की स्थिति सुधार का प्रयास मुख्यत: सामाजिक सुधार तक ही सीमित था।
- इन सुधारकों ने दलितों के **राजनैतिक सशक्तिकरण** पर विशेष ध्यान नहीं दिया और न ही यह अखिल भारतीय स्तर पर किया गया प्रयास था।
- इसलिए निम्न जातियों की स्थिति में सुधार एवं इनके राजनैतिक सशक्तिकरण के लिए अम्बेडकर द्वारा व्यवस्थित एवं **अखिल भारतीय** स्तर पर प्रयास किया गया।
- अम्बेडकर का मानना था कि जाति व्यवस्था में व्याप्त अस्पृश्यता की समाप्ति तभी संभव है जब दलित वर्ग राजनैतिक रूप से सक्रिय होकर सत्ता प्राप्त कर लेंगे, इसीलिए अम्बेडकर ने राजनैतिक सत्ता में दलितों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए **1942** में अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ की स्थापना की।
- AISCF (All India Scheduled caste Federation) की स्थापना यद्यपि दलितों के राजनैतिक उत्थान की दिशा में **अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कर** सकी और उसे **1946** व **1951** के चुनावों में हार का सामना करना पड़ा फिर भी दलितों की राजनैतिक चेतना के विकास में इस संगठन की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही।
- निम्न जातियों के संगठन द्वारा राजनैतिक सत्ता प्राप्ति में असफलता के कारण अम्बेडकर ने इन जातियों के उत्थान हेतु एक नयी अंतर्दृष्टि दी।
- उनके अनुसार भारतीय समाज में सोपानिक व्यवस्था किसी भी प्रकार समाप्त नहीं की जा सकती क्योंकि यह एक धार्मिक वैचारिकी के रूप में जन-मानस की मानसिकता में रची बसी है। अत: यहाँ पर निम्न जातियों को समानता नहीं मिल सकती।
- उनके अनुसार यदि निम्न जातियों को समानता का स्तर प्राप्त करना हो तो उन्हें हिन्दू धर्म की सीमा का अतिक्रमण कर धर्म परिवर्तन करना होगा। इस रूप में निम्न जातियों की स्थिति में सुधार हेतु अम्बेडकर ने निम्न जातियों हेतु बौद्ध धर्म अपनाने पर बल दिया।
- **डॉ. अम्बेडकर** को स्वतंत्रता की पूर्व संध्या पर **कांग्रेस ने संविधान सभा** का सदस्य मनोनीत किया तथा उन्हें **प्रारूप समिति का अध्यक्ष** बनाया गया। भारतीय गणतंत्र के नए संविधान में समस्त नागरिकों के लिए **समानता का अधिकार** स्वीकार कर लिया गया है और **अस्पृश्यता पर** पूर्ण रोक लगा दी गई।
- **1955** के अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम के अनुसार इसका उल्लंघन करने पर दंड का प्रावधान है। आज अम्बेडकर को निम्न जातियों के उद्धारक के रूप में याद किया जाता है।

स्मरणीय तथ्य

अम्बेडकर की मृत्यु के पश्चात् AISCF को भंग कर दिया गया। 1957 में भारतीय रिपब्लिकन पार्टी (RPI) की स्थापना की गई। इस पार्टी में संसदीय लोकतंत्र के माध्यम से अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कई आंदोलनों (जैसे-1959 व 1964-65 में भूमि वितरण हेतु आंदोलनों आदि) को नेतृत्व प्रदान किया परंतु शीघ्र ही वह व्यापक रूप से कमजोर पड़ गई क्योंकि कुछ नेता पार्टी से टूटकर अलग हो गए और कांग्रेस में शामिल हो गए।

दलितों के उत्थान संबंधी RPI की असफलता ने 1972 में बंबई में दलित युवाओं को दलित पैन्थर्स के निर्माण की ओर प्रेरित किया। दलित पैन्थर्स, संगठन की दिशा में RPI का विकल्प बनने का प्रयास किया और प्रारंभ में अपने प्रयास में यह बहुत हद तक सफल भी रहा, परंतु शीघ्र ही यह आंदोलन भी उन्हीं समस्याओं का शिकार हो गया और RPI की तरह नेताओं के आपसी मतभेदों के कारण बिखर गया।

न्याय दल एवं नायकर
(Justice Party & Naicker)

दक्षिण भारत में निम्न जातीय आंदोलन ब्रह्मणीय प्रभुत्व के विरुद्ध शुरू हुआ। इसी क्रम में 1916 में **'श्री पी. त्याग राज'** तथा **'डॉक्टर टी.एम. नायर'** ने **'दक्षिण भारतीय उदारवादी संघ'** की स्थापना की जिसे कालान्तर में प्राय: न्याय दल (जस्टिम पार्टी) कहा जाने लगा।

- रामास्वामी नायकर इसी न्याय दल से संबंधित थे। इन्हें पेरियार नाम से भी जाता है। **पेरियार, धर्म** और **ब्राह्मणों** के सर्वश्रेष्ठता के विरोधी थे। उन्होंने जाति व्यवस्था की आलोचना की और मानव जाति की मौलिक समानता और गरिमा की संकल्पना का प्रचार किया।
- **पेरियार का मानना** था कि धर्म और शास्त्र दोनों बुद्धिवाद के विरोधी थे। धर्म को गैर-ब्राह्मणों और स्त्रियों के निम्न सामाजिक स्थिति का जिम्मेदार ठहराया। उन्होंने जन्म, मरण और विवाह समारोहों में ब्राह्मणों की सेवाएँ न लेने का आह्वान किया।
- **रामास्वामी नायकर** ने हिन्दू देवी-देवताओं की खिल्ली उड़ायी और कहा कि कुछ ऐसे तत्व होते हैं जिनका सुधार नही हो सकता केवल अंत ही करना होता है। हिन्दू धर्म ऐसा ही तत्व है जो केवल अंधविश्वास है। हिन्दी भाषा को द्रविड़ों पर थोपने का उन्होंने विरोध किया।
- पेरियार के आंदोलन का भौगोलिक विस्तार छोटे शहरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में होते हुए भी उसका सामाजिक आधार उच्च गैर-ब्राह्मण जातियों तक सीमित था और यही उनके सामाजिक सुधार की लड़ाई की मूल रुकावट थी।
- इस प्रकार संस्कृति और समाज में संरचनात्मक परिवर्तन तथा द्रविड़ों की मानसिक दासता से स्वतंत्रता के लिए किए गए आत्मसम्मान आंदोलन का व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा। इस बात को ध्यान में रखकर पेरियार ने 1944 में द्रविड़ कड़गम दल बनाने के उद्देश्य से आत्मसम्मान लीग को जस्टिम पार्टी के साथ मिला दिया।
- ऐसा करने से पेरियार के पहले के सामाजिक आंदोलन का स्वरूप बदल गया और वह राजनीति से ज्यादा प्रभावित दिखाई देने लगी, इसे ब्राह्मण संस्कृति और जाति पद्धति के विरुद्ध चलाया गया और पेरियार का सैद्धांतिक संघर्ष कमजोर पड़ गया।

राष्ट्रीय आंदोलन एवं गाँधी
(National Movement & Gandhi)

जब राष्ट्रीय आंदोलन आरंभ हुआ तो स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जातीय भेदभाव की समाप्ति और व्यापक सामाजिक समता अनिवार्य शर्त बन गए।

इस प्रकार शुरू से ही राष्ट्रीय आंदोलन और उसके अभिन्न अंग भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सभी जातिगत विशेषाधिकारों और छुआछूत का विरोध किया तथा सभी भारतीयों के लिए समान नागरिक अधिकार, जाति-धर्म-लिंग के भेदभाव के बिना सभी को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए समान अधिकार एवं स्वतंत्रता की मांग की।

इस दिशा में विशेषकर छुआछूत समाप्त करने और दलित एवं अछूत वर्ग के उद्धार के लिए गाँधी जी ने भी भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने अछूतों (शुद्र आदि) को 'हरिजन' अर्थात् भगवान का आदमी कहा।

- उन्होंने उनकी भलाई के लिए **'हरिजन'** नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला और **'हरिजन सेवक संघ'** की स्थापना की।
- **गाँधी जी** दलितों एवं अछूतों के उद्धार के कार्य में आजीवन लगे रहे। विशेषण यहाँ इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि अपनी सारी नेकनीयती के बावजूद गाँधी जी की सामाजिक सुधार से संबंधित नीति की कुछ मौलिक कमजोरियाँ थीं।
- मसलन, गाँधी जी भेदभाव, छुआछूत आदि के विरुद्ध तो थे, पर वे वर्णव्यवस्था के समर्थक थे। यह एक बड़ा अंतर्विरोध
- 20वीं शताब्दी में वर्ण का अर्थ जाति से भिन्न नहीं हो सकता था। जाति प्रथा के प्रश्न पर उनके विचार अस्पष्ट और अनुदार थे।
- इसी प्रकार गाँधी जी **सामाजिक एकता** के पक्ष में तो थे, मगर **संपत्ति के समान वितरण के पक्ष में नहीं** थे। वे 'ट्रस्टीशिप' (न्यासिता) के पक्षधर थे।
- गाँधी जी के सामाजिक चिंतन में ऐसे कितने ही मौलिक अंतर्विरोध थे और उसमें व्यावहारिकता का अभाव था।
- उसके मुख्य कारण थे- उनके सामाजिक चिंतन पर धर्म का अतिशय-प्रभाव, उसमें प्रगतिशीलता का अभाव और सामाजिक प्रश्नों के प्रति भावनाप्रधान आदर्शवादी दृष्टिकोण आदि।

समीक्षा (Analysis)

इन सबके बावजूद जातीय कट्टरता एवं अस्पृश्यता का अंत आसान नहीं था। जब तक देश में विदेशी साम्राज्यवादी शासन था, तब तक इसका अंत हो भी नहीं सकता था। इस समस्या को खत्म करने के लिए विदेशी सरकार ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहती थी, जिससे समाज का रूढ़िवादी वर्ग, जो संपन्न और अंग्रेजों का समर्थक था, नाराज हो जाए। दूसरे सामाजिक उत्थान का संबंध राजनीतिक उत्थान से और राजनीतिक उत्थान, आर्थिक उत्थान से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ था, लेकिन भारतीयों का आर्थिक और राजनीतिक उत्थान अंग्रेजी शासन का स्वामित्व के लिए खतरनाक था। अत: इन सभी मुद्दों पर अंग्रेज बड़े सतर्क और लगभग चुप थे।

1947 में भारत विदेशी शासन से मुक्त हो गया। समानता और स्वतंत्रता के आदर्शों ने भारतीय मुक्ति-संग्राम को प्रेरणा दी थी। अत: स्वतंत्रता मिलने पर भारत सरकार का पहला काम था इन आदर्शों को जीवन के हर क्षेत्र के अभिव्यक्ति प्रदान करना। इसलिए नए संविधान के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक को एक-दूसरे के साथ समानता का अधिकार दिया गया और छूआछूत तथा जाति प्रथा को दंडनीय अपराध माना गया। इतना ही नहीं, अछूतों, अल्पसंख्यकों और पिछड़ी जातियों की भलाई के लिए विशेष व्यवस्था की गई। उन्हें नौकरियों के उच्च पद दिए गए और केंद्र तथा राज्यों की सरकारों में उनके लिए प्रतिनिधित्व सुरक्षित किया गया। भविष्य में भी इनकी भलाई हो, इनके लिए गणतंत्र के राष्ट्रपति को विशेष अधिकार दिए गए।

फिर भी जाति प्रथा अभी भी पूर्णरूप से समाप्त नहीं हो पाई है। आज भी यह देश के सामने एक बड़ी समस्या है। आरक्षण संबंधी विवाद के कारण जातीय भेद-भाव हाल के वर्षों में और भी संकीर्ण और कठोर होता जा रहा है।

19वीं सदी में भारतीय राष्ट्रवाद का विकास
(Development of Indian Nationalism in the 19th Century)

भारत में राष्ट्रवाद का उदय
(Rise of Nationalism in India)

19वीं शताब्दी के भारतीय इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना राष्ट्रीयता की भावना का उदय होना था। इसने भारतीय इतिहास की दिशा को ही मोड़ दिया और अंततः भारत को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त करवाया।

राष्ट्रवाद के विकास का सबसे प्रमुख कारण अंग्रेजी साम्राज्यवादी नीतियाँ थीं जिनके प्रतिक्रिया स्वरूप राष्ट्रवाद की भावना और सुदृढ़ हुई।

- अंग्रेजों की राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक शोषण की नीतियों ने भारतीयों को यह सोचने पर विवश कर दिया कि, उनके हित सुरक्षित नहीं हैं, इन्हीं भावनाओं की प्रेरणा ने लोगों के मन में राष्ट्रीय चेतना की भावना को विकसित किया। राष्ट्रीयता की वृद्धि में आर्थिक कारणों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।
- **1857** के बाद औपनिवेशिक शासन द्वारा आर्थिक नीतियों में किए गए बदलाव ने आर्थिक एकता की स्थापना की, परन्तु ग्रामीण अर्थव्यवस्था की संरचना को छिन्न-भिन्न कर कमजोर कर दिया।
- भारतीय पूँजीपतियों का वर्ग भी औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों से संतुष्ट नहीं था, क्योंकि औपनिवेशिक आर्थिक नीति उनके व्यापारिक हितों तथा उद्देश्यों की पूर्ति नहीं करते थे और वे केवल ब्रिटिश आर्थिक नीति का पोषण करते थे।
- अंग्रेजी अधिपत्य से भारत को एक लाभ यह हुआ कि पूरा देश (उत्तर से दक्षिण व पश्चिम से पूर्व) राजनीतिक तथा आर्थिक एकता के सूत्र में बंध गया, जबकि यह कार्य औपनिवेशिक शासन ने अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए ही किया था।
- यह अंग्रेजों के लिए अभिशाप एवं भारतीयों के लिए वरदान सिद्ध हुआ। एकीकरण की प्रक्रिया में रेल और डाक-तार की व्यवस्था ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- इसी एकीकरण की प्रक्रिया ने राष्ट्रीयता की भावना को सामान्य जनमानस में संचारित कर राष्ट्रवाद की भावना को विकसित किया।
- किन्तु भारत में राष्ट्रवाद के विकास के पीछे कोई एक कारण या परिस्थिति नहीं थी बल्कि इसका विकास विभिन्न परिस्थितियों एवं प्रतिफलों का परिणाम था।

राष्ट्रवाद के उदय के कारण (Reasons for the Rise of Nationalism)

लिटन, रिपन व कर्जन की नीतियों के प्रति प्रतिक्रिया (Response to Lytton, Rippon and Curzon's Policies)

लॉर्ड लिटन की भारत विरोधी नीतियों ने राष्ट्रभावना जगाने का कार्य किया। लॉर्ड लिटन की विभिन्न प्रतिक्रियावादी नीतियों जैसे- इंडियन सिविल सर्विस में प्रवेश की न्यूनतम आयु **21** वर्ष से घटाकर **19** वर्ष करना ताकि भारतीय शिक्षित युवक परीक्षा न दे सकें, **1876 ई.** में जब पूरा भारत (विशेषकर दक्षिण भारत) भयंकर अकाल की चपेट में था तब भव्य दिल्ली दरबार का आयोजन (1877) कर लाखों रुपया बर्बाद करना, एक ऐसा कार्य था, जिसने हर एक भारतीय के मन में असंतोष के बीज बो दिए।

- इसी परिप्रेक्ष्य में कलकत्ता के एक समाचार पत्र में आलोचना करते हुए लिखा गया कि, "नीरो वंशी बजा रहा था, जब रोम जल रहा था।" वर्नाकुलर प्रेस एक्ट (1878) तथा शस्त्र अधिनियम (1878) इत्यादि ने देशवासियों के समक्ष सरकार की वास्तविक मंशा उजागर कर दी, जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप अंग्रेजों के विरुद्ध जनमत तैयार करने में मदद मिली।
- इसके पश्चात् इल्बर्ट बिल विवाद (1883) सामने आया। लॉर्ड रिपन ने इल्बर्ट बिल के द्वारा भारतीय मजिस्ट्रेटों को यूरोपियनों के **मुकद्दमों पर निर्णय** करने का अधिकार देना चाहा। इस बात पर सम्पूर्ण भारत और इंग्लैंड में अंग्रेजों ने संगठित होकर तीव्र आंदोलन किया जिससे इस प्रस्ताव का संशोधित रूप ही कानून बन सका। इसमें **'काले और गोरे'** को लेकर, जो विवाद खड़ा हुआ उससे स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज रंग के आधार पर भारतीयों से कितनी घृणा करते थे। इससे भारतीयों में अंग्रेजों के विरुद्ध घृणा पैदा हुई तथा उनमें संगठित होकर आंदोलन करने की प्रेरणा को बल मिला।

इसी प्रकार कर्जन की बंगाल विभाजन तथा कांग्रेस के प्रति नीतियों ने भी राष्ट्रवादी भावना को प्रबल किया।

अंग्रेजी शासकों की प्रजातीय श्रेष्ठता की भावना एवं प्रतिक्रियावादी नीतियाँ (A feeling of Racial Superiority by the English Rulers and Reactionary Policies)

अंग्रेज शासकों द्वारा प्रजातीय व्यवहार एवं श्रेष्ठता की भावना ने भारतीयों को अत्यधिक आहत किया। अंग्रेज अधिकारियों तथा कर्मचारियों ने खुले आम शिक्षित भारतीयों को नस्ली टिप्पणी द्वारा अपमानित किया तथा कई बार उन पर प्रहार किये।

- उच्च एवं महत्त्वपूर्ण पदों पर भारतीयों को नियुक्ति का अधिकार नहीं था, क्योंकि उन्हें नस्लीय दृष्टि से हीन समझा जाता था।
- इन सभी भेदभावपूर्ण कारणों से त्वचा के गोरेपन एवं प्रजातीय श्रेष्ठता के रंग में डूबे अंग्रेजों के प्रति भारतीयों में घृणा पैदा हो गयी।
- जातीय अहंकार का सबसे घृणित रूप था- न्याय में असमानता। अंग्रेज तथा भारतीयों के झगड़े में दोषी होने पर भी अंग्रेजों को दोषमुक्त कर दिया जाता था तथा दोषहीन होने पर भी भारतीयों को कठोर दण्ड दिया जाता था।

आर्थिक शोषण की नीति
(Policy of Economic Exploitation)

अंग्रेजी शासन का भारतीय राष्ट्रवाद पर प्रभाव अत्यंत विनाशकारी था। अंग्रेजों के पक्षपातपूर्ण आर्थिक तथा राजस्व नीति की प्रतिक्रियास्वरूप आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय हुआ। औद्योगिक क्रांति के बाद भारत, ब्रिटेन को सिर्फ कच्चा माल उपलब्ध कराने वाला उपनिवेश बन कर रह गया। भारत से लगातार धन निकास का क्रम चलता रहा, इसका प्रभाव भारतीयों पर पड़ा।

- 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में **24** अकाल पड़े, जिसमें लगभग 3 करोड़ व्यक्ति मारे गए लेकिन इन परिस्थितियों में भी भारत से अन्न का निर्यात किया जाता रहा।
- भारतीय राष्ट्रवादियों ने **"भारत में बढ़ती हुई दरिद्रता का सिद्धांत"** विकसित किया और इसका मुख्य कारण अंग्रेजों की भारत विरोधी आर्थिक नीतियों को ही बताया।
- इस प्रकार द्ररिद्रता तथा विदेशी दासता को संबद्ध कर दिया। इससे भारतीयों के मन में विदेशी राज के प्रति घृणा उत्पन्न हुई और **स्वदेशी राज** एवं **स्वदेशी माल** के प्रति प्रेम जागा। फलस्वरूप राष्ट्रवाद की भावना विकसित हुई।

भारत का राजनीतिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक एकीकरण
(Political, Administrative and Economic Integration of India)

भारत में औपनिवेशिक शासन का प्रसार उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक तथा पूर्व में असम से लेकर पश्चिम में खैबर दर्रे तक फैल गया था। औपनिवेशिक शासन की शक्ति ने पूरे भारत को एक झंडे के तले एकत्र कर दिया।

- एक दक्ष कार्यपालिका, संगठित न्यायपालिका तथा संहिताबद्ध फौजदारी तथा दीवानी कानून, जिन पर दृढ़ता पूर्वक अमल होता था और भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक सामान्य रूप से लागू होते थे।
- इसने भारत की परम्परागत प्रशासनिक, सांस्कृतिक एकता को एक नये प्रकार की राजनीतिक एकता प्रदान की। प्रशासनिक सुविधाओं, सैन्य-रक्षा उद्देश्यों, आर्थिक विस्तार तथा व्यापारिक शोषण को ध्यान में रखते हुए परिवहन के साधनों का विकास किया गया।
- सड़कों का निर्माण हुआ जिससे एक स्थान से लेकर दूसरे स्थान के जुड़ने में सुगमता हो गई। परंतु देश को एक सूत्र में बांधने का सबसे बड़ा कार्य रेलवे के विकास से हुआ।
- 1850 के उपरांत आधुनिक डाक व्यवस्था, टेलीफोन एवं तार के विकास ने देश को समेकित करने तथा संचार में सहायता की।
- साधनों के विकास ने भारत के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों का एक-दूसरे से संबंध बना एवं संबंधों को सुदृढ़ता प्रदान करने में सहायता मिली, जिससे राष्ट्रवाद को और बल मिला।

राष्ट्रवादी परिप्रेक्ष्य से एकीकरण के प्रभाव को दो बिन्दुओं में देखा जा सकता है–

- एकीकरण से विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के आर्थिक हित एक-दूसरे से जुड़ गए। जैसे किसी एक भाग में अकाल पड़ने पर इसका प्रभाव दूसरे भाग में खाद्यान्नों के मूल्यों में वृद्धि एवं आपूर्ति पर भी पड़ता था।
- यातायात एवं संचार के साधनों के विकास से देश के विभिन्न वर्गों के लोग विशेषत: नेताओं का आपस में राजनीतिक सम्पर्क स्थापित होने की प्रक्रिया और तेज हो गई। विचारों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया को अधिक गति मिली।

तत्कालीन विश्वव्यापी घटनाओं का प्रभाव (Impact of Current World Events)

राष्ट्रवाद की उन तीव्र लहरों ने, जो समकालीन यूरोपीय देशों तथा दक्षिण अफ्रीका को प्रभावित कर रहीं थीं, भारतीय राष्ट्रवाद को भी स्फूर्ति प्रदान की। दक्षिण अमेरिका में स्पेनी एवं पुर्तगाली औपनिवेशिक शासन की समाप्ति से अनेक नये राष्ट्रों का उदय हुआ। इसके अतिरिक्त जापान द्वारा रूस की पराजय, इथोपिया द्वारा **इटली की पराजय** एवं **आयरलैंड की घटनाओं** ने भारतीयों को काफी प्रभावित किया, जिससे भारतीयों में राष्ट्रवाद एवं स्वतंत्रता की भावना प्रबल हुई।

भारत के अतीत का पुन: उत्थान एवं आत्मगौरव का विकास (Revival of India's Past and Development of Self Pride)

19वीं शताब्दी के प्रारंभ में भारतीयों को अपने अतीत का ज्ञान अत्यंत कम था। किन्तु तत्कालीन प्रसिद्ध यूरोपीय इतिहासकारों तथा विभिन्न राष्ट्रवादी विचारकों जैसे- आर.जी. भंडारकर, आर.एल. मित्रा एवं स्वामी विवेकानंद इत्यादि ने भारत की प्राचीन सांस्कृतिक विरासत को पुनर्व्याख्यायित किया, जिससे राष्ट्र की एक नयी तस्वीर पेश हुई।

- इन लोगों ने अथक परिश्रम के द्वारा कला, साहित्य, वास्तुकला, संगीत, दर्शन, विज्ञान तथा गणित इत्यादि के क्षेत्रों में भारतीय उपलब्धियों को बताया एवं मानव सभ्यता के विकास में भारत के योगदान को पुन: स्थापित किया, जिससे लोगों में राष्ट्रप्रेम तथा राष्ट्रीयता की भावना जागृत हुई।
- यूरोपीय चिंतकों ने व्याख्या की कि, भारतीय तथा यूरोपीय एक ही प्रकार के आर्यों की संतान हैं।
- इसका भारतवासियों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा तथा उनमें प्रजातीय हीनता की भावना जाती रही। इससे देशवासियों के अन्दर गुलामी और दासता की भावना को समाप्त करने में मदद मिली।

सुधार आंदोलनों द्वारा राष्ट्रवादी भावना का विकास (Development of Nationalist Spirit by Reform Movements)

19वीं शताब्दी में भारत में विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलन प्रारंभ हुए। इन आंदोलनों ने सामाजिक, धार्मिक नवजागरण का कार्यक्रम प्रारम्भ किया, जिससे पूरा देश प्रभावित हुआ। आंदोलनकारियों ने व्यक्ति की स्वतंत्रता, सामाजिक एकता और राष्ट्रवाद के सिद्धांतों पर जोर दिया और उनके लिये संघर्षपूर्ण कार्य किया।

- इन आंदोलनों द्वारा समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं प्रथाओं को दूर कर सामाजिक एकता को कायम किया गया।
- समाज सुधार के प्रस्तावों को सरकार द्वारा स्वीकृति मिलने में विलंब ने समाज सुधारकों को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि जब तक स्वशासन नहीं होगा तब तक सुधार संबंधी प्रस्तावों को पूर्णतया सरकारी सहमति एवं सहयोग नहीं मिल सकता।
- सुधार-आंदोलनों ने देशवासियों में साहस जुटाया कि वे औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध एकजुट होकर संघर्ष करें।

पाश्चात्य चिंतन तथा शिक्षा का भारतीय जनता पर प्रभाव (Impact of Western Thinking and Education on Indian People)

आधुनिक शिक्षा के विकास से आधुनिक पाश्चात्य विचारों को अपनाने में मदद मिली, जिससे भारतीय राजनीतिक चिंतन को एक नई दिशा मिली।

- जब ट्रैवेलियन, मैकाले तथा बैंटिक ने देश में अंग्रेजी शिक्षा का श्रीगणेश किया तो यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण निर्णय था।
- भारत में पाश्चात्य शिक्षा का विकास प्रशासनिक आवश्यकताओं के लिये किया गया था परंतु इससे नवशिक्षित वर्ग के लिये पाश्चात्य उदारवादी विचारधारा को अपनाने और समझने के द्वार खुल गये।
- प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वानों **बेन्थम, शीले, मिल्टन, स्पेंसर, स्टुअर्ट मिल, पेन, रूसो** तथा **वाल्टेयर** जैसे लेखकों के अतिवादी और पाश्चात्य विचारों ने भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग में स्वतंत्र राष्ट्रीयता तथा स्वशासन की भावना को प्रबल किया, जिससे उन्हें अंग्रेजी साम्राज्य का विरोधाभास स्पष्टत: परिलक्षित होने लगा।
- इसके साथ ही अंग्रेजी भाषा के विकास ने सम्पूर्ण राष्ट्र के विभिन्न भागों एवं स्थानों के लोगों के लिये एक सम्पर्क भाषा का कार्य किया।
- इसने सभी भाषा-भाषियों को एक मंच पर लाकर खड़ा कर दिया, जिससे राष्ट्रवादी आंदोलन की भावना को अखिल भारतीय स्वरूप मिल सका।
- अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त कर नवशिक्षित युवा वर्ग जैसे- वकीलों, डाक्टरों इत्यादि ने उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैंड की यात्रा की। जहाँ इन्होंने एक स्वतंत्र देश में विभिन्न राजनैतिक संस्थाओं के विकास की प्रक्रिया देखी तथा वस्तुस्थिति का भारत से तुलनात्मक आकलन किया और पाया कि, भारत में नागरिकों को विभिन्न प्रकार के स्वतंत्र अधिकारों से दूर रखा गया था।
- इस नवपाश्चात्य भारतीय शिक्षित वर्ग ने भारत में नए बौद्धिक एवं शिक्षित मध्यवर्ग का विकास किया, कालांतर में इस वर्ग ने राष्ट्रीय आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारत की विभिन्न **राजनीतिक** एवं अन्य **संस्थाओं** को इसी मध्यम वर्ग ने नेतृत्व प्रदान किया।

प्रेस, समाचार-पत्रों एवं साहित्य द्वारा राष्ट्रीय भावना का विकास (Development of National Sentiment by Press, Newspaper and Literature)

उपनिवेशी शासकों द्वारा भारतीय प्रेस पर विभिन्न बाध्यताओं के बावजूद 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारतीय समाचार पत्रों एवं साहित्य की अभूतपूर्व प्रगति हुयी।

भारतीय प्रेस, जहाँ एक ओर उपनिवेशी नीतियों की आलोचना करता था वहीं दूसरी ओर देशवासियों में आपसी एकता सुदृढ़ करने पर जोर देता था। प्रेस ने आधुनिक विचारों एवं व्यवस्थाओं यथा-स्वशासन, लोकतंत्र, दीवानी अधिकार एवं औद्योगिकीकरण इत्यादि के प्रचार-प्रसार में भी सराहनीय भूमिका निभायी। समाचार पत्रों, पैम्फलेट्स तथा राष्ट्रवादी साहित्य के विकास ने देश के विभिन्न भागों में स्थित राष्ट्रवादी नेताओं के मध्य आपसी विचारों के आदान-प्रदान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

- इसी प्रकार समाचार पत्रों ने जनमत बनाने तथा राष्ट्रीयता के प्रसार में मुख्य भूमिका निभाई। दि इंडियन मिरर, बंगाली, अमृत बाजार पत्रिका, बाम्बे क्रॉनिकल, केसरी, मराठा, द हिंदू इत्यादि अंग्रेजी तथा भारतीय भाषा के समाचार पत्रों ने इस क्षेत्र में बहुत कार्य किया तथा अंग्रेजी शासन द्वारा किये गए अत्याचारों को प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने प्रतिनिधि सरकार, स्वतंत्रता तथा प्रजातंत्रीय संस्थाओं को जनता में लोकप्रिय बनाया। इस प्रकार भारतीय समाचार-पत्र भारतीय राष्ट्रवाद के विकास तथा जनता को शिक्षित करने का महत्त्वपूर्ण माध्यम बना।
- **19वीं-20वीं शताब्दी** में विविध प्रकार के साहित्य की रचना हुयी जिससे राष्ट्रीय जागरण में सहायता मिली। विभिन्न कविताओं, निबंधों, कथाओं, उपन्यासों एवं गीतों द्वारा विभिन्न भाषाओं के विद्वानों जैसे- **हिन्दी में** भारतेंदु हरिश्चंद्र, **बांग्ला में** रवींद्रनाथ टैगोर, राजा राममोहन राय, बंकिमचंद्र चटर्जी, **मराठी में** विष्णु शास्त्री चिपलूणकर, **असमिया में** लक्ष्मीदास बेजबरूआ इत्यादि इस काल के प्रख्यात राष्ट्रवादी साहित्यकार थे, जिन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा राष्ट्रवादी भावना को बढ़ाया।

मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों का विकास (Development of Middle class Intellectuals)

औपनिवेशिक शासन की प्रशासनिक तथा आर्थिक प्रक्रिया से नगरों में एक मध्यवर्गीय नागरिकों की श्रेणी का विकास हुआ। इस नवीन श्रेणी ने तत्परता से अंग्रेजी भाषा को सीखा जिससे उसे रोजगार तथा सामाजिक प्रतिष्ठा दोनों ही प्राप्त होने लगे। यह नवीन श्रेणी अपनी शिक्षा के विकास से समाज में उच्च स्थान पर होने तथा प्रशासक वर्ग के समीप होने से आगे आई।

- यह मध्यवर्ग भारत की नवीन आत्मा बन गया तथा इसने पूरे देश में नयी शक्ति का संचार कर दिया। इसी वर्ग ने राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाते हुए सभी चरणों को नेतृत्व प्रदान किया।
- इस मध्यम वर्ग में नव शिक्षित-वकील, डॉक्टर, पत्रकार और शिक्षक आदि थे जिन्होंने सक्रिय रूप से सक्षम नेतृत्व प्रदान किया।

कांग्रेस के गठन से पूर्ववर्ती संस्थाओं द्वारा राष्ट्रवाद का विकास (Development of Nationalism by the Previous Institutions before the Formation of the Congress)

19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत में जिन राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना हुई उनका नेतृत्व मुख्यतया: समृद्ध एवं प्रभावशाली वर्ग द्वारा किया गया।

- पाश्चात्य संस्कृति के भारत आने के फलस्वरूप राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता, राजनीतिक अधिकारों जैसी आधुनिक राजनीतिक अवधारणाएँ भारत में विकसित हुईं। भारतीय उपमहाद्वीप में उन राजनीतिक विचारों का विकास हुआ जिनसे भारतीय इतिहास सर्वथा अनभिज्ञ था। वास्तव में, इन राजनीतिक संगठनों ने भारत को आधुनिक संसार में प्रवेश दिलाया। इन राजनीतिक संस्थाओं का स्वरूप स्थानीय या क्षेत्रीय था। इन्होंने विभिन्न याचिकाओं एवं प्रार्थना-पत्रों के माध्यम से ब्रिटिश संसद के समक्ष अपनी मांगें रखीं।
- बंगाल में राजनीतिक आंदोलनों के सबसे पहले प्रवर्तक राजा राममोहन राय थे। वे पाश्चात्य विचारों से प्रभावित व्यक्ति थे। उन्होंने ही सर्वप्रथम अंग्रेजों का ध्यान भारतीय समस्याओं की ओर आकृष्ट किया।
- ऐसा माना जाता है कि **1833** के चार्टर एक्ट की अनेक उदारवादी धाराएँ उन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम थीं। लेकिन बंगाल में सर्वप्रथम राजनीतिक संगठन बनाने का श्रेय उनके सहयोगियों को मिला, जब उन्होंने **1836** में **बंगभाषा प्रकाशक सभा** का गठन किया। यह सभा सरकार की नीतियों से संबंधित मामलों की समीक्षा करती थी और उनके सुधार के लिए प्रार्थना-पत्र भेजती थी।
- **1838 में जमींदारों** के हितों की सुरक्षा के लिये **जमींदारी एसोसिएशन** जिसे **लैंडहोल्डर्स एसोसिएशन** के नाम से भी जाना जाता था, का गठन किया गया। जमींदारी एसोसिएशन भारत की पहली राजनीतिक सभा थी, जिसने संगठित राजनीतिक प्रयासों का शुभारम्भ किया। इसने ही सर्वप्रथम अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये संवैधानिक प्रदर्शन का मार्ग अपनाया।
- **1843** में बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसायटी, **1851** में ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन, **1866** में दादा भाई नौरोजी द्वारा लंदन में **'ईस्ट इंडिया एसोसिएशन'**, 1875 में शिशिर कुमार घोष द्वारा **'इंडियन लीग,'** 1876 में सुरेंद्रनाथ बनर्जी और आनंदमोहन बोस द्वारा स्थापित **'इंडियन एसोसिएशन'** जैसी महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ स्थापित हुईं।
- इसके अतिरिक्त **बॉम्बे एसोसिएशन, पूना सार्वजनिक सभा, मद्रास महाजन सभा** आदि संस्थाओं ने जनजागरुकता फैलाने, राष्ट्रवाद की भावना जागृत करने तथा राजनीतिक शिक्षा को प्रोत्साहन देने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।
- उपरोक्त सभी संगठनों के बाद **1885** में कांग्रेस की स्थापना से भारतीय राष्ट्रवाद के उत्थान तथा विकास में और तेजी आई। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इस संगठन के व्यक्तियों का राष्ट्रवादी भावना को जागृत करने तथा प्रबल बनाने में सराहनीय योगदान रहा है।

निष्कर्ष (Conclusion)

राष्ट्रवाद के उत्थान ने उन परिवर्तनों का प्रारम्भ किया जो आगे चलकर निरंतर व्यापक होता गया और कांग्रेस जैसी राष्ट्रीय संस्था के नेतृत्व में विभिन्न ब्रिटिश शासन विरोधी आंदोलनों का विकास सम्भव हो पाया तथा इसकी अंतिम परिणति 1947 में ब्रिटिश शोषण तंत्र की समाप्ति के रूप में हुई।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना एवं विकास
(Establishment & Development of Indian National Congress)

परिचय (Introduction)

भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में **1885** में ए. ओ. ह्यूम द्वारा कांग्रेस की स्थापना संस्थागत स्तर पर एक युग विभाजक अध्याय है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 19वीं सदी की विभिन्न परिस्थितियों की उपज है जिसमें सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों, **1857** के विद्रोह एवं उसके पश्चात् औपनिवेशिक शासन द्वारा किये गए परिवर्तनों, 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रवाद के उदय एवं विकास, कांग्रेस पूर्व के विभिन्न राजनीतिक संगठनों के विकास आदि की निर्णायक भूमिका रही।

- **1885** में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व, **1830** के दशक से ही भारत के विभिन्न भागों में राजनीतिक संगठनों की स्थापना एवं विकास जारी रहा। इस संदर्भ में राजा राममोहन राय को राजनीतिक चेतना का अग्रदूत माना जा सकता है।
- इस विकास क्रम में **1857** के विद्रोह ने भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसके तहत् यह पाया गया कि, विद्रोह के पश्चात् स्थापित राजनीतिक संगठन अपने सामाजिक आधार एवं मांगों के स्तर पर **1857** के पूर्व के संगठनों से अधिक व्यापक थे। इस विकास प्रक्रिया के दौरान हम अनेक संगठनों को देख सकते हैं-

कांग्रेस की स्थापना के पूर्व प्रमुख राजनीतिक संगठन (Major Political Organizations before the Formation of the Congress)

पाश्चात्य् संस्कृति के भारत में आने के फलस्वरूप राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता, राजनीतिक अधिकारों जैसी आधुनिक राजनीतिक धारणाएँ भारत में विकसित हुईं। भारतीय उपमहाद्वीप में उन राजनीतिक विचारों का विकास हुआ जिनसे भारतीय इतिहास सर्वथा अनभिज्ञ था।

- वास्तव में, इन राजनीतिक संगठनों ने भारत को आधुनिक संसार में प्रवेश दिलाया। इसी संदर्भ में आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन हुआ परंतु इसके पूर्व अनेक राजनीतिक एवं गैर राजनीतिक संगठनों की स्थापना हुई।
- जुलाई, **1838** में जमींदारों के हितों की सुरक्षा के लिए जमींदारी एसोसिएशन जिसे लैंडहोल्डर्स एसोसिएशन के नाम से जाना जाता था, का गठन किया गया। जमींदारी एसोसिएशन भारत की पहली राजनीतिक सभा थी, जिसने संगठित राजनीतिक प्रयासों का शुभारम्भ किया।
- **1843** में एक अन्य राजनीतिक सभा बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसायटी बनायी गयी, जिसका उद्देश्य लोगों में राष्ट्रवाद की भावना को जागृत करना तथा राजनीतिक शिक्षा को प्रोत्साहित करना था।
- **28 अक्टूबर, 1851** जमींदारी एसोसिएशन और बंगाल ब्रिटिश इंडिया सोसायटी को मिलाकर 'ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन' बना दिया गया। वस्तुत: इस सभा में जमींदार ही मुखिया थे और उन्हीं के हितों की बात की जाती थी।
- **1866** में दादा भाई नौरोजी ने लंदन में ईस्ट इंडिया एसोसिएशन का गठन किया, इसका उद्देश्य भारत के लोगों की समस्याओं और मांगों से ब्रिटिश सरकार को अवगत कराना तथा भारतवासियों के हित में इंग्लैंड में जनसमर्थन तैयार करना था।
- **1875** में शिशिर कुमार घोष द्वारा इंडियन लीग की स्थापना की गयी, जिसका उद्देश्य लोगों में राष्ट्रवाद की भावना जागृत करना तथा राजनीतिक शिक्षा को प्रोत्साहन देना था।
- **26 जुलाई, 1876** को इंडिया लीग का स्थान इंडियन एसोसिएशन ने ले लिया, इसकी स्थापना **आनंद मोहन बोस** और **सुरेंद्रनाथ बनर्जी** ने की।
- इसका उद्देश्य मध्यम वर्ग के साथ ही जनसाधारण को भी जोड़ना था।
- शीघ्र ही इंडिया एसोसिएशन ने आई.सी.एस. की प्रवेश आयु को लेकर सिविल सर्विस आंदोलन चलाया, जिसको भारी समर्थन प्राप्त हुआ।

बंबई में स्थापित राजनीतिक संस्थाएँ (Political Institutions Established In Bombay)

बंबई में स्थापित सर्वप्रथम राजनीतिक संस्था **बॉम्बे एसोसिएशन** थी, जिसका गठन **26 अगस्त, 1852** को 'कलकत्ता ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन' के नमूने पर किया गया। इसका उद्देश्य भेदभावपूर्ण सरकारी नियमों के विरुद्ध सरकार को सुझाव देना तथा विभिन्न बुराइयों को दूर करने हेतु सरकार को ज्ञापन देना था।

- **1870** में महादेव गोविंद रानाडे ने **'पूना सार्वजनिक सभा'** बनायी, जिसका उद्देश्य सरकार और जनता के मध्य कड़ी का कार्य करना था।
- **1885** में बॉम्बे **प्रेसीडेंसी एसोसिएशन** बनायी गयी, जिसका श्रेय सैय्यद बदरूद्दीन तैय्यबजी, फिरोजशाह मेहता एवं के.टी. तैलंग को है।

मद्रास में स्थापित राजनीतिक संस्थाएँ (Political Institutions Established in Madras)

कलकत्ता की ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन की शाखा के रूप में **मद्रास नेटिव एसोसिएशन** का गठन किया गया किंतु यह ज्यादा प्रभावपूर्ण नहीं हो सकी। इसने भी अंग्रेजी संसद को **1853** के चार्टर के पूर्व एक ज्ञापन भेजा जो बंबई तथा कलकत्ता एसोसिएशन के नमूने पर आधारित था, परंतु मद्रास एसोसिएशन का न तो जनता पर ही कुछ प्रभाव था, न कि शासक वर्ग पर।

- **मई, 1884** में एम. वीर राघवाचारी, बी. सुब्रह्मण्यम अय्यर एवं पी. आनंद चारलू ने **मद्रास महाजन सभा** का गठन किया। इस सभा का उद्देश्य स्थानीय संगठन के कार्यों को समायोजित करना था।
- आगे चलकर **1883** ई. में **इंडियन नेशनल कॉन्फ्रेंस, 1884** ई. में **महाजन सभा, 1885** ई. में **बॉम्बे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन** आदि द्वारा भी राजनीतिक चेतना को प्रसारित किया गया। इस प्रकार उपरोक्त राजनीतिक संस्थाओं के माध्यम से **1885** में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की संस्थागत पृष्ठभूमि तैयार हुई।

कांग्रेस की स्थापना और उससे संबंधित विवाद (The Establishment of Congress and Disputes Related to it)

दिसंबर, 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। इसकी स्थापना एक पूर्व अंग्रेज अधिकारी ए.ओ. ह्यूम द्वारा की गई। आगे चलकर यह संस्था उदारवादी (1885-1905), उग्रवादी (1905-15) आदि विभिन्न चरणों में विकसित हुई।

- गाँधी जी के भारत आगमन के साथ ही यह एक राष्ट्रीय संस्था के रूप में स्थापित हो गई।
- राष्ट्रीय आंदोलन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। तत्कालिक और बाद के इतिहासकार इसकी स्थापना के विषय में अपने-अपने विचार व्यक्त किए। विद्वानों ने इस बात का पता लगाने की

कोशिश की कि यह किसी एक व्यक्ति अथवा कई लोगों अथवा कुछ विशेष परिस्थितियों का प्रतिफल है। कांग्रेस की स्थापना की व्याख्या की चर्चा निम्नलिखित वैकल्पिक सिद्धांतों द्वारा की जाती है।

सुरक्षा वाल्व सिद्धांत (Safety Valve Theory)

लाला लाजपत राय जो गरमपंथी दल के नेता माने जाते थे, उन्होंने **1916** ई. में **'यंग इंडिया'** में एक लेख लिखा है जिसमें उन्होंने **1885** में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना को **'सुरक्षा वाल्व सिद्धान्त'** के रूप में व्याख्यायित किया। इन्होंने कहा कि, कांग्रेस की स्थापना तत्कालीन गवर्नर जनरल **लॉर्ड डफरिन** के दिमाग की उपज है।

- संभवत: लाला लाजपत राय का उद्देश्य तत्कालीन समय में व्याप्त नरमपंथी-गरमपंथी संघर्ष में नरमपंथियों पर प्रहार करना था। इन विचारों के पश्चात् सुरक्षा वाल्व सिद्धान्त चर्चा में आया। रजनी पामदत्त ने अपनी पुस्तक **'इंडिया टुडे'** में इस विचार को प्रस्तावित किया।
- वास्तव में एक अखिल भारतीय संगठन की योजना को मूर्त रूप आकार **ए.ओ. ह्यूम** ने दिया जो एक अंग्रेज ही नहीं, बल्कि भारतीय सिविल सेवा में **एक प्रशासनिक** अधिकारी भी थे।
- ऐसा माना जाता है कि उन्हें कई ऐसे महत्त्वपूर्ण तथ्यों का पता चला जिससे यह प्रमाणित होता था कि आम जनता के दु:खों और बुद्धजीवी वर्ग के अलगाव ने भारतीयों के मन में आक्रोश भर दिया था जो ब्रिटिश शासन के लिए कभी भी खतरा पैदा कर सकता था।
- अत: इस सिद्धान्त का मूल आधार यह था कि, अंग्रेजी शासन के विरुद्ध बढ़ते हुए जन असंतोष को एक मंच पर अभिव्यक्त करना और इस क्रम में सेफ्टी वाल्व के स्वरूप में कांग्रेस की स्थापना हुई।
- कांग्रेस के रूप में एक ऐसी संस्था का निर्माण हुआ जो ब्रिटिश शासन के विरुद्ध राष्ट्रीय जागरण के विस्तार को रोक सके। विशेषकर शिक्षित मध्यम वर्ग में जो कि विद्रोह का वैचारिक नेतृत्वकर्ता तथा इस वर्ग के असंतोष को भी राजनीतिक पहल के माध्यम से अभिव्यक्त किया जा सके।
- इस सिद्धान्त का आधार इस बात से भी बनाया गया, कि ऐसी सूचनाएँ थीं कि पुन: **1857 जैसे विद्रोह की** संभावना है।
- इसके अलावा ह्यूम ने खुद ही कहा था कि उसका उद्देश्य भारतीय आक्रोश को रोकने के लिए एक सुरक्षा कपाट (सेफ्टी वाल्व) का प्रबंध करना था, जिससे अंग्रेजों के विरुद्ध किसी बड़े विद्रोह को रोका जा सके।
- **बनर्जी** के इस वक्तव्य ने इसे और मजबूती प्रदान की कि ह्यूम, डफरिन की सीधी सलाह से काम कर रहे थे।
- इन तथ्यों का अध्ययन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म एक सुनियोजित ब्रिटिश साजिश का परिणाम था, जिसका उद्देश्य भारतीयों के बीच पैदा हुए असंतोष को शांतिपूर्ण और संवैधानिक तरीके अपनाकर इस तरह के खतरों को टालना था।
- अत: अगर कांग्रेस जैसी संस्था हो तो जनता की दबी भावनाएँ विभिन्न नेतृत्वों के माध्यम से एक स्थान पर अभिव्यक्त हो सकती हैं।

आधुनिक दृष्टिकोण (Modern View)

सुरक्षा वाल्व सिद्धान्त को कई आधुनिक विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया है। इन विद्वानों का मानना है कि सुरक्षा वाल्व सिद्धान्त के समर्थन में कोई ठोस तार्किक एवं संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिये गए हैं, जिससे कांग्रेस की स्थापना को सुरक्षा वाल्व के रूप में माना जाए।

- डफरिन ने कुछ समय बाद ही **ह्यूम** एवं **कांग्रेस की आलोचना** की थी, आगे चलकर अन्य गवर्नर जनरल भी कांग्रेस के प्रति कड़ा रुख रखते हैं जैसे कर्जन द्वारा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पूर्णत: समाप्ति का विचार उल्लेखनीय है।
- समग्रत: इन आधुनिक विचारकों का मानना है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना भारतीयों की अपनी विकसित हो रही राष्ट्रीय चेतना का परिणाम थी जो एक ऐसी राजनीतिक राष्ट्रीय संस्था की स्थापना चाहते थे जो भारतीय जनता के राजनीतिक समस्याओं को सरकार के समक्ष रख सके।
- उपरोक्त विमर्श के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि सुरक्षा वाल्व सिद्धान्त समुचित रूप से व्याख्यायित नहीं हो पाता है, संभवत: इसके पीछे सिद्धान्त देने वाले का अपना उद्देश्य रहा हो।
- वास्तव में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना किसी एक विचारधारा या सोच की उपज नहीं वरन् सामूहिक राष्ट्रीयता की भावना की अभिव्यक्ति है जिसकी पृष्ठभूमि 19वीं सदी के प्रारम्भ में हो रहे विभिन्न परिवर्तनों द्वारा तैयार हो गई थी।
- जहाँ तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना में ह्यूम की भूमिका का प्रश्न है वह एक अच्छे संगठनकर्ता थे तथा उन्होंने राष्ट्रवादियों को एक मंच पर लाने का सार्थक प्रयास किया।
- उन्होंने स्वयं अपनी पुस्तक 'People's Friend' में भारतीयों के प्रति उदारता व्यक्त की है तथा अपने सम्पूर्ण काल में भारत के सामाजिक-आर्थिक विकास के प्रति सकारात्मक रुख रखा है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे-

- राष्ट्रीय स्तर पर जनसाधारण के विचारों की अभिव्यक्ति के लिए एक मंच के रूप में कार्य करना।
- एक समान आर्थिक एवं राजनीतिक कार्यक्रमों हेतु देशवासियों का समूह बनाना।
- भारतीयों को **जाति, धर्म, प्रांत** आदि से ऊपर उठाकर उनमें एक राष्ट्रवादी जागरण का संचार करना।
- औपनिवेशिक प्रवृत्ति को समझकर एवं उसके आधार पर वैचारिक संघर्ष को बल देना।
- भारतीयों को राजनीतिक लक्ष्यों से परिचित कराना तथा राजनीतिक शिक्षा देना।

कांग्रेस की कार्यप्रणाली (Methodology of Congress)

कांग्रेस की स्थापना से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक कांग्रेस की कार्यप्रणाली समय और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रही। कांग्रेस की कार्यप्रणाली के आधार पर इसका अध्ययन तीन चरणों में किया जा सकता है-

नरमपंथी चरण (1885-1905) (Moderate Stage) (1885-1905)

1885 में कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् से राष्ट्रीय आंदोलन सुव्यवस्थित रूप से निरंतर विकसित होता रहा है। इस विकास प्रक्रिया में अपने परिवेश के अनुरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की गतिविधियों का स्वरूप लक्षित होता है। इसी परिप्रेक्ष्य में प्रारंभिक राष्ट्रीय कांग्रेस की गतिविधियों को नरमपंथी चरण के रूप में देखा जा सकता है।



- **1885** से **1905** तक जिन उदारवादी बुद्धिजीवियों का प्रभुत्व था वे भारतीय राष्ट्रवाद के प्रथम चरण के नेता थे जिनमें **डब्ल्यू.सी. बनर्जी,**

आनंदमोहन बोस, एम.सी. मजूमदार, रास बिहारी घोष, सुरेंद्र नाथ बनर्जी, दादा भाई नौरोजी, रानाडे, गोखले, फिरोजशाह मेहता, बदरुद्दीन तैय्यबजी आदि प्रमुख थे।

- उदारवादी, कानून के दायरे में रहकर अहिंसक एवं संवैधानिक प्रदर्शनों के पक्षधर थे। यद्यपि उदारवादियों की यह नीति अपेक्षाकृत धीमी थी किंतु इससे क्रमबद्ध राजनीतिक विकास की प्रक्रिया प्रारंभ हुई।
- उदारवादियों का मत था कि अंग्रेज भारतीयों को शिक्षित बनाना चाहते हैं तथा वे भारतीयों की वास्तविक समस्याओं से बेखबर नहीं हैं। अत: यदि सर्वसम्मति से सभी देशवासी प्रार्थनापत्रों, याचिकाओं एवं सभाओं इत्यादि के माध्यम से सरकार से अनुरोध करें तो सरकार धीरे-धीरे उनकी मांगे स्वीकार कर लेगी।
- अपने इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उदारवादियों ने दो प्रकार की नीतियों का अनुसरण किया।
  - पहला, भारतीयों में राष्ट्र प्रेम एवं चेतना जागृत कर राजनीतिक मुद्दों पर उन्हें शिक्षित करना एवं उनमें एकता स्थापित करना।
  - दूसरा, ब्रिटिश जनमत एवं ब्रिटिश सरकार को भारतीय पक्ष में करके भारत में सुधारों की प्रक्रिया प्रारम्भ करना।
- उदारवादियों का मानना था कि ब्रिटेन से भारत का सम्पर्क होना भारतीयों के हित में है तथा अभी ब्रिटिश शासन को प्रत्यक्ष रूप से चुनौती देने का यथोचित समय नहीं आया है, इसीलिए बेहतर होगा कि उपनिवेशी शासन को भारतीय शासन में परिवर्तित करने का प्रयास किया जाए।

नरमपंथियों के विचार व उनकी कार्य पद्धति (Thoughts of Moderates and Their Working Method)

- **नरमपंथी**, निमयबद्ध प्रगति एवं क्रमिक सुधारों में विश्वास तथा सुधारों के लिए ब्रिटिश सहयोग में आस्था रखते थे।
- अपनी मांगों की पूर्ति के लिए संवैधानिक एवं शांतिपूर्ण साधनों को अपनाने में आस्था तथा इस कार्य पद्धति के तहत् प्रार्थना, याचना एवं शांतिपूर्ण प्रतिरोध, शिष्टमंडल, प्रस्ताव, समाचार पत्रों में लेख आदि के द्वारा भारतीय जनता की समस्याओं की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया गया। संवैधानिक क्षेत्र में नरमपंथी राजनीति ने कभी ब्रिटिश साम्राज्य से पूर्ण अलगाव की कल्पना नहीं की। वे साम्राज्यिक ढाँचे के अंतर्गत सीमित स्वशासन चाहते थे।
- जनसाधारण के राजनीतिक प्रश्नों पर शिक्षित वर्गों को एकताबद्ध करना। इसके तहत् राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय मांगों का निरूपण तथा साथ ही, सामाजिक समानता एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बल दिया गया।
- इन्होंने अतीत को गौरवान्वित करने की जगह भविष्य पर बल देने की।

उपलब्धियाँ (Achievements)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा सम्पूर्ण भारत को जोड़ने का प्रयास हुआ। प्रारंभ में राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा अपने अधिवेशनों के लिए विभिन्न भारतीय क्षेत्रों को चुना गया, इसके माध्यम से एक प्रकार से भौगोलिक जुड़ाव भी संभव हुआ। इसी प्रकार से इनके अध्यक्षों, सदस्यों एवं अन्य संदर्भों में धर्म, लिंग, जाति आदि का भेदभाव नहीं किया गया।

- उदारवादियों द्वारा एक सीमा तक ही सही तत्कालीन भारतीय राजनीति एवं समाज को नेतृत्व प्रदान किया गया। इनके प्रयासों से ही **1892** के अधिनियम में कई सकारात्मक प्रावधान शामिल हुए जैसे बजट पर बहस करना, जनहित के मामलों में प्रश्न पूछने का अधिकार आदि।
- इस दौर में अहिंसा, धर्मनिरपेक्षता, दबाव-समझौता-दबाव की रणनीति आदि भी दिखाई पड़ती है, जो आगे चलकर गाँधी युग में अधिक सक्रिय रूप लेती हैं।

उदारवादियों की सबसे बड़ी उपलब्धि अपनी मांगों के द्वारा आर्थिक राष्ट्रवाद की संकल्पना को विकसित करना था, जिसका मूल केंद्र बिंदु तो **'धन का निष्कासन सिद्धान्त'** ही था, पर वह विभिन्न रूपों में व्यक्त हुआ।

- इस आर्थिक राष्ट्रवाद की संकल्पना ने आगे चलकर राष्ट्रीय चेतना के विकास में निर्णायक भूमिका का निर्वहन किया। सम्मिलित हित के सिद्धान्तों पर आम सहमति बनाने एवं जागृति लाने में उदारवादी काफी हद तक सफल रहे।
- उन्होंने भारतवासियों में इस भावना की ज्योति जलाई कि सभी का एक ही शत्रु (अंग्रेज) है तथा सभी भारतीय एक ही राष्ट्र के नागरिक हैं। उन्होंने लोगों को राजनीतिक कार्यों में दक्ष कर राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय किया तथा आधुनिक विचारों को आमजन के बीच लोकप्रिय बनाया।
- उन्होंने उपनिवेशवादी शासन की आर्थिक शोषण की नीति को उजागर किया। भारत का शासन, भारतीयों के द्वारा उनके हित में हो इसको सार्वजनिक किया।
- भारतीयों में राष्ट्रवाद एवं लोकतांत्रिक विचारों एवं प्रतिनिधि संस्थाओं के विचारों को लोकप्रिय बनाने में सक्रिय भूमिका निभायी। एक समान राजनीतिक एवं आर्थिक कार्यक्रम विकसित किया, जिससे बाद में राष्ट्रीय आंदोलन को गति मिली।

कमजोरियाँ/सीमाएँ (Weaknesses/Limitations)

- नेतृत्व के स्तर पर इसके अधिकांश नेता उच्च मध्यम वर्ग से संबंधित थे। इनका रहन-सहन, आचार-विचार पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित था। अत: ये कभी अंग्रेजों के प्रति श्रद्धा भाव से ऊपर नहीं उठ पाये।
- नरमपंथी लम्बे समय तक ब्रिटिश के वास्तविक स्वरूप को समझने में असफल रहे और वे ब्रिटिश शासन को दैवीय मानते थे। साथ ही, मध्यम वर्ग के होने के कारण इनकी मांगों में उग्र सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रम नहीं शामिल हो सके। इन्होंने वर्ग सिद्धान्त को भी पूर्णत: नकारा।
- ये आम जनता में आस्था नहीं रखते थे जिसके कारण ये जनता के बीच कार्य नहीं कर सके। परिणामत: आम जनता के बीच इनकी जड़ें नहीं स्थापित हो सकीं।
- अपने विचार एवं कार्य पद्धति के कारण युवा वर्ग का भी समर्थन नहीं हासिल हो सका।
- नरमपंथियों की आलोचना मुख्यत: इनके उद्देश्यों के आधार पर न होकर इनकी कार्यशैली को लेकर हुई, विशेषकर इनकी भिक्षावृत्ति पर, साथ ही इनके लिए राजनीति अंशकालीन कार्य थी।

मूल्यांकन (Evaluation)

कुछ आलोचकों का विचार है कि राष्ट्रवादी आंदोलन और आरंभिक राष्ट्रवादियों को अधिक सफलता नहीं मिली। जिन सुधारों के लिए राष्ट्रवादियों ने आंदोलन छेड़े वे पूरे नहीं हुए। ये उदारवादी भारतीय जनमानस से लोक समर्थन जुटाने में असफल रहे।

- आरंभिक राष्ट्रवादियों के आंदोलन को असफल घोषित करना उचित नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से तात्कालिक कठिनाइयों के मद्देनजर उन्होंने जो कार्य अपने हाथ में लिया, वह अपने आप में महत्त्वपूर्ण था। व्यापक राष्ट्रीय जागृति लायी तथा साम्राज्यवाद के रूप में एक साझे शत्रु के अस्तित्व के प्रति जनता को जागरुक कर उनको एक राष्ट्र के रूप में एकताबद्ध किया। ब्रिटिश शासन के साम्राज्यवादी चरित्र को निर्ममतापूर्वक उजागर करने में

राष्ट्रवादियों ने महती भूमिका निभाई।

- उदारवादियों ने इस राजनीतिक सत्य को उद्घाटित किया कि, भारत का शासन, भारतीयों के हित में चलाया जाना चाहिए। आरंभिक आंदोलन की कमजोरियों को तो बाद की पीढ़ियों ने दूर कर दिया और उसकी उपलब्धियाँ आगे के वर्षों में एक और जोरदार राष्ट्रीय आंदोलन का आधार बन गईं।
- इसलिए हम कह सकते हैं कि अपनी तमाम कमियों के बावजूद आरंभिक राष्ट्रवादियों (नरमपंथी चरण) ने वह बुनियाद बनाई, जिस पर राष्ट्रीय आंदोलन आगे और भी विकसित हुआ।
- इस प्रकार यह तथ्य सत्य से काफी दूर है कि आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन एक असफलता थी।

नरमपंथी चरण में ब्रिटिश रुख (British Stand in Moderate Stage)

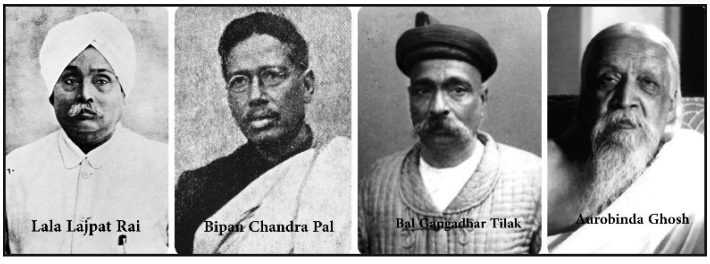
1885 ई. में कांग्रेस की स्थापना के समय से 1887 तक ब्रिटिश रुख सकारात्मक रहा पर जैसे ही कांग्रेस का प्रसार बढ़ा **1887** के बाद कांग्रेस के प्रति ब्रिटिश सरकार ने प्रतिक्रियावादी रुख अपनाया।

- इसका उद्देश्य कांग्रेस को विकसित होने से रोकना तथा इसे समाप्त करना था। निम्न बिंदुओं के संदर्भ में इसको देखा जा सकता है-
- डफरिन ने कांग्रेस के चरित्र को चुनौती दी और कांग्रेस की मांगों को महत्त्व नहीं दिया। कांग्रेस को सूक्ष्म लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था कहा।
- कर्जन ने तो यहाँ तक कह दिया था कि "कांग्रेस अपने पतन की ओर लड़खड़ाती हुई जा रही है और भारत में रहते मैं उसकी शांतिमय मृत्यु में सहायता कर सकूँ।"
- फूट डालो और राज करो की नीति के तहत् हिंदू-मुस्लिम विभेद को बढ़ावा देना। जैसे- **सर सैय्यद अहमद खाँ** (यूनाइटेड पैट्रियाटिक एसोसिएशन) द्वारा कांग्रेस का विरोध।
- आगे चलकर कांग्रेस के अंदर ही नरमपंथियों एवं गरमपंथियों के बीच विभेद बढ़ाने हेतु फूट डालो और राज करो की नीति अपनाई गई जो निरंतर विकसित होती गई।

उग्रपंथी चरण (1905-1915)
(Extremist State) (1905-1915)

कांग्रेस की स्थापना के बाद कुछ वर्षों पश्चात् शिक्षित युवाओं का एक वर्ग जो उदारवादियों द्वारा अपनाये गए विचारों के विरोध स्वरूप उत्पन्न हुआ उसे उग्रपंथी विचारधारा से इंगित किया गया।

- नरमपंथियों के अनुनय-विनय की नीति की असफलता ने देश के अंदर और कांग्रेस के अंदर असंतोष पैदा किया।
- **उन्नीसवीं सदी** के अंतिम और **बीसवीं सदी** के आरंभिक वर्षों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में एक नए एवं तरुण दल का उदय हुआ, जो पुराने नेताओं के आदर्श तथा कार्यक्रमों के आलोचक थे। ये चाहते थे कि कांग्रेस का लक्ष्य स्वराज्य होना चाहिए जिसे वे आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता से प्राप्त करें।



- गरमपंथी राजनीति के उभार में औपनिवेशिक शासन की वास्तविक पहचान ने निर्णायक भूमिका निभाई। भारत में पड़ने वाले **भयंकर अकाल, भयंकर गरीबी, 1892 के सुधार आंदोलन से उपजी निराशा, 1897** में तिलक को कारावास, कर्जन की भारत तथा भारतवासियों के प्रति प्रतिक्रियावादी नीतियाँ आदि ने उग्रवादी विचारधारा को उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- इन स्थितियों के कारण भारतीयों के समक्ष औपनिवेशिक शासन का वास्तविक चेहरा सामने आया जिससे उग्रपंथी नेताओं (**विपिन चंद्रपाल, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय** आदि) द्वारा कांग्रेस द्वारा अपनाई गई नीति के विरोध में कांग्रेस पर भिक्षावृत्ति संस्था आदि का आरोप लगाया गया।
- भारतीय राजनीति में यह नया दौर दो रूपों में प्रकट हुआ **पहला** कांग्रेस के भीतर उग्रपंथी (गरमदल) का उदय तथा **दूसरा** क्रांतिकारी दल का उदय। औपनिवेशिक शासन द्वारा भारतीयों के प्रति अपनाई गई नीतियों ने गरमपंथी नेताओं को और उग्र किया।

उग्रपंथी विचार के सैद्धांतिक आधार
(Ideological Foundation of Extermist Thought)

उग्रपंथी विचारकों का मानना था कि **1857** का विद्रोह राष्ट्रवादी उद्देश्य, स्वधर्म तथा स्वराज की स्थापना को लेकर हुआ, लेकिन उदारवादियों ने पाश्चात्य आदर्शों और बुद्धिवाद को महत्त्व दिया जिसके कारण भारत की आम जनता से वे दूर हो गये। विभिन्न समाज सुधार आंदोलनों ने राजनैतिक उग्रवाद को प्रोत्साहन दिया।

- राजनैतिक उग्रपंथी, जो अपनी सांस्कृतिक विरासत से प्रेरणा ग्रहण किये हुये थे, वे चाहते थे कि भारत सभी देशों से समान स्तर और आत्मसम्मान के साथ मिले। उनमें आत्मसम्मान कूट-कूट कर भरा था, इसी कारण वे उदारवादियों को अंग्रेजों का चापलूस मानते थे और उनका विरोध करते थे।

उग्रवादी दल के उदय के कारण
(Reason of Rise of Extremist Party)

- ***ब्रिटिश शासन के सही चरित्र की पहचान (Identifying the True Character of British Rule)-*** नरमपंथी राष्ट्रवादियों की राजनीति इस विश्वास पर आधारित थी कि ब्रिटिश शासन अंदर से सुधारा जा सकता था, लेकिन राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नों से संबंधित ज्ञान जब फैला तो धीरे-धीरे यह विश्वास टूट गया।
- आरंभ के नेताओं ने अपने अध्ययन तथा लेखों द्वारा लोगों को भारत में ब्रिटिश राज के सच्चे स्वरूप को समझाने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने प्रमाणों से यह सिद्ध किया कि अंग्रेजी राज तथा उसकी नीतियाँ ही भारत की दरिद्रता के मूल कारण हैं।
- राजनीतिक रूप से चैतन्य भारतीयों को विश्वास था कि ब्रिटिश शासन का उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करना अर्थात् भारत की संपत्ति से इंग्लैंड को समृद्ध बनाना है। उन्होंने महसूस किया कि जब तक भारतीयों द्वारा नियंत्रित और संचालित कोई सरकार ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जगह नहीं ले लेती, आर्थिक क्षेत्र में भारत शायद ही कुछ प्रगति कर सके।
- राष्ट्रवादियों ने खासकर यह भी देखा कि भारत के उद्योग तब तक फल-फूल नहीं सकते, जब तक कि उन्हें सुरक्षा और प्रोत्साहन देने वाली कोई भारतीय सरकार न हो।
- भारत में **1896** और **1900** के बीच भयानक अकाल पड़े जिसमें लगभग

90 लाख से ऊपर लोग मारे गए। वे जनता की दृष्टि में विदेशी शासन के आर्थिक दुष्परिणामों के जीते जागते प्रतीक थे।

- 1892 और 1905 के बीच जो राजनीतिक घटनाएँ घटीं, उन्होंने भी राष्ट्रवादियों को काफी निराश किया तथा उन्हें और भी उग्र राजनीति के बारे में सोचने को बाध्य किया।
- 1892 का **"भारतीय परिषद कानून"** घोर निराशा का कारण सिद्ध हुआ। दूसरी ओर जनता को जो थोड़े से राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे, उन पर प्रतिबंध लगाने के प्रयास किये गए। 1898 में एक नया कानून बनाया गया जिसके अनुसार "विदेशी शासन के प्रति असंतोष की भावना' फैलाने को अपराध घोषित किया गया। 1899 में कलकत्ता नगर निगम में भारतीय सदस्यों की संख्या घटा दी गयी।
- 1904 में **इंडियन ऑफिशियल सीक्रेट एक्ट** बनाकर प्रेस की स्वतंत्रता को सीमित कर दिया गया। 1897 में नाटु भाइयों को बिना मुकदमा चलाए **देश बाहर** कर दिया गया तथा उन पर लगाए गए आरोपों को भी जनता को नहीं बतलाया गया। उसी वर्ष तिलक और दूसरे समाचार पत्र संपादकों को विदेशी सरकार के प्रति जनता को भड़काने के आरोप में लंबी-लंबी जेल की सजाए दी गयीं।
- इन सब बातों से जनता को लगा कि सरकार राजनीतिक छूट देने के बजाय पहले से मिली छूटों को नियंत्रित करना चाहती
- **लॉर्ड कर्जन** के कांग्रेस विरोधी दृष्टिकोण ने अधिकाधिक लोगों को विश्वास दिलाया कि, भारत में ब्रिटिश शासन के रहते राजनीतिक और आर्थिक प्रगति की आशा करना व्यर्थ है।
- सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी ब्रिटिश शासन अब प्रगतिशील नहीं रहा था। प्राथमिक और तकनीकी शिक्षा में कोई प्रगति नहीं हो रही थी। साथ ही, अधिकारीगण उच्च शिक्षा के प्रति **शंकित** हो रहे थे और उसके प्रसार में बाधा डालने की कोशिश कर रहे थे।
- 1904 में भारतीय विश्वविद्यालय कानून से राष्ट्रवादियों को लगा कि भारत के विश्वविद्यालयों पर और भी सख्त सरकारी नियंत्रण स्थापित करने तथा उच्च शिक्षा का प्रसार रोकने का प्रयास किया जा रहा है।
- इस तरह अधिकाधिक संख्या में भारतीयों को विश्वास होता जा रहा था कि देश की आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए स्वशासन आवश्यक है।
- ***आत्मविश्वास का संदेश (Message of Self Confidence)*** - **19वीं सदी** के अंत तक भारतीय राष्ट्रवादियों का आत्मविश्वास और आत्मसम्मान बहुत बढ़ा था।
- उन्हें अपना शासन स्वयं कर पाने तथा देश का विकास कर सकने की अपनी क्षमता में विश्वास हो चुका था।
- तिलक, अरविंद घोष और विपिन चंद्र पाल जैसे नेताओं ने राष्ट्रवादियों को आत्मविश्वास का संदेश दिया और उनसे आग्रह किया कि वे भारतीय जनता के चरित्र और क्षमताओं पर विश्वास करें।
- उन्होनें भारतीय जनता को बताया कि उनकी समस्या का हल उनके हाथ में है और इसके लिए उन्हें निर्भय और बलवान होना चाहिए।
- **स्वामी विवेकानंद** ने कहा, 'दुनिया में अगर कोई पाप है तो वह निर्बलता है, निर्बलता का त्याग करो।' उन्होनें जनता से यह भी कहा कि अतीत के महिमामंडन के भरोसे जीना छोड़ो और मर्द की तरह अपने भविष्य का निर्माण करो।
- यह भी विचार फैला कि जनता की राजनीतिक चेतना को उभारा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए विवेकानंद ने कहा कि 'भारत की एक मात्र आशा उसकी जनता है। ऊँचे वर्ग के लोग शारीरिक और नैतिक दृष्टि से मृतप्राय हैं।'
- ***शिक्षा और बेरोजगारी में वृद्धि (Rise in Education and Unemployment)*** - 19वीं सदी के अंत तक शिक्षित भारतीयों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। इसका एक बड़ा भाग प्रशासन में बहुत ही कम वेतन पर कार्य कर रहा था और दूसरे बहुत से लोग बेरोजगार घूम रहे थे।
- अपनी आर्थिक स्थिति के कारण ये लोग ब्रिटिश सरकार के चरित्र को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने लगे। उनमें से अनेक उग्र राष्ट्रवादी नेताओं की ओर आकर्षित हुए।
- शिक्षित भारतीयों की संख्या जितनी बढ़ी, उतना ही लोकतंत्र, राष्ट्रवाद और आमूल परिवर्तन के पश्चिमी विचारों का प्रभाव भी फैला। ये शिक्षित भारतीय उग्र राष्ट्रवाद के बेहतरीन प्रचारक और अनुयायी सिद्ध हुए।
- ***कांग्रेस की उपलब्धियों से असंतोष (Dissatisfication from Achievements of Congress)*** - कांग्रेस के पहले के 15-20 वर्षों की उपलब्धियों से तरुण लोग संतुष्ट नहीं थे।
- उनका अंग्रेजों की न्यायप्रियता तथा बराबरी की भावना पर कोई विश्वास नहीं रह गया था।
- वे लोग शांतिपूर्ण और संवैधानिक तरीकों के आलोचक बन गए थे और समझते थे कि याचना, प्रार्थना तथा प्रतिवाद करने की नीति से कुछ नहीं मिलने वाला।
- उन्होंने साम्राज्यवाद को समाप्त करने के लिए यूरोपीय तरीके अपनाने पर बल दिया।
- 1905 में लाला लाजपत राय ने इंग्लैंड से लौटने पर कहा कि "अंग्रेजी प्रजातंत्र अपनी ही समस्याओं में इतना उलझा हुआ है कि, उनके पास हमारी समस्याओं के लिए कोई समय नहीं है।"
- कांग्रेस के तरुण दल के अनुसार कांग्रेस का राजनीतिक धर्म, केवल क्राउन के प्रति राजभक्ति प्रकट करना, अपने लिए प्रांतीय अथवा केंद्रीय विधानपरिषदों में सदस्यता प्राप्त करना, केवल अत्यधिक भाषण देना था।
- उन पर यह दोष लगाया गया कि वे केवल मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवियों के लिए कार्य करते हैं, इन्हें भय था कि यदि जनसाधारण इस आंदोलन में आ गया तो उनका नेतृत्व समाप्त हो जाएगा।
- तिलक ने कांग्रेस को चापलूसों का सम्मेलन और इसके अधिवेशन को छुट्टियों का मनोरंजन बतलाया, तो लाला लाजपत राय ने कांग्रेस सम्मेलनों को **"शिक्षित भारतीयों का वार्षिक राष्ट्रीय मेला"** कहा।
- तिलक ने तो यहाँ तक कहा कि, "यदि हम इसी तरह वर्ष में एक बार मेंढक की भांति टर्राएँगें तो हमें कुछ नहीं मिलेगा।"
- ***कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीतियाँ (Curzon's Reactionary Policies)*** - कर्जन के समय भारत का 7 वर्ष का शासन शिष्टमंडलों, भूलों और आयोगों (Delegations, Omissions and Commissions) के लिए प्रसिद्ध था, जिसकी भारतीयों में कड़ी आलोचना हुई।
- कर्जन ने भारत को कभी एक राष्ट्र नहीं माना। उसकी दृष्टि में भारतीय चरित्र का मूल्य बहुत कम था। वह भारत में ब्रिटिश सत्ता की जड़े मजबूत करने आया था तथा कांग्रेस और राष्ट्रीयता की भावना का प्रबल दुश्मन था। उसने भारतीयों को संवैधानिक और प्रशासनिक अधिकार देने के बदले सारी शक्ति अपने हाथों में केंद्रित करने का प्रयास किया।
- उसने भारतीयों को उच्च सरकारी पदों के लिए अयोग्य करार दिया तथा कलकत्ता कॉर्पोरेशन एक्ट द्वारा इसके सदस्यों की संख्या घटा दी। इसी प्रकार भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट द्वारा उच्च शिक्षा पर सरकारी नियंत्रण अधिक बढ़ा दिया तथा ऑफिशियल सीक्रेट एक्ट द्वारा समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लगा दिया।
- **उसका सबसे विवादास्पद कार्य बंगाल विभाजन था।** यह योजना

सिर्फ राजनैतिक आधार पर तैयार की गयी थी, इसका कोई वैधानिक या सैद्धांतिक आधार नहीं था। इसका मुख्य उद्देश्य बंगाल में राष्ट्रीयता की भावना को कुचलना था।

- इस घटना ने बंगाल में उग्रवादी और सरकार विरोधी गतिविधियाँ तेज कर दीं। **लॉर्ड कर्जन** की वैदेशिक नीतियों से भी असंतोष को बढ़ावा मिला।
- ***समकालीन अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव (Contemporary International Influence)***- इस काल की अनेक विदेशी घटनाओं ने भी भारत में उग्र-राष्ट्रवाद के विकास को प्रोत्साहित किया।
- 1868 में **'मैईजी पुनर्स्थापना'** के बाद आधुनिक जापान के उदय ने दिखा दिया कि एक पिछड़ा हुआ एशियाई देश भी पश्चिमी सहायता के बिना अपना विकास कर सकता है। कुछ ही दशकों में जापान एक औद्योगिक एवं सैनिक शक्ति बन गया। व्यापक प्राथमिक शिक्षा का आरंभ किया गया तथा सक्षम और आधुनिक प्रशासन खड़ा किया गया।
- 1896 में इथियोपिया द्वारा इटली की हार तथा 1905 में जापान के हाथों रूस की पराजय ने यूरोपीय श्रेष्ठता के भ्रम को तोड़ दिया। एशिया के एक छोटे से देश के हाथों यूरोप की सबसे बड़ी सैन्य शक्ति की पराजय ने लोगों में नए उत्साह एवं आत्मविश्वास का संचार किया।
- **आयरलैंड, रूस, मिस्र, तुर्की** और **जापान** के बोअर युद्ध ने भारतीयों को विश्वास दिला दिया कि अगर जनता एकजुट होकर बलिदान के लिए तैयार हो, तो शक्तिशाली निरंकुश सरकारों को भी चुनौती दी जा सकती है।
- जिस बात की सबसे अधिक आवश्यकता थी वह थी देशभक्ति और आत्मबलिदान की भावना।
- ***उग्र विचारों से प्रेरित नेताओं का प्रादुर्भाव (The Emergence of Leaders Inspired by Furious Ideas)***- राष्ट्रीय आंदोलन के लगभग आरंभ से ही उग्र-राष्ट्रवादी विचाराधारा विकसित हो रही थी।
- बंगाल में राज नारायण बोस, अश्विनी कुमार दत्त और महाराष्ट्र में विष्णु शास्त्री चिपुलणकर उग्र विचारधारा का प्रसार कर रहे
- इसे बाल गंगाधर तिलक (लोकमान्य) ने और आगे बढ़ाया। उन्होनें महाराष्ट्र में अपने भाषणों तथा लेखों द्वारा छत्रपति शिवाजी को आदर्श बनाकर अंग्रेजों के विरुद्ध विरोध की प्रक्रिया तीव्र कर दी।
- इस कार्य में उनके दो समाचार पत्रों- 'मराठा' (अंग्रेजी में) तथा **'केसरी'** (मराठी में) ने अत्यधिक योगदान दिया।
- 1893 में उन्होंने **'गणपति उत्सव'** का उपयोग राष्ट्रवादी विचारों के प्रसार के लिए किया। इसी तरह 1895 में उन्होंने 'शिवाजी उत्सव' का आयोजन आंरभ किया।
- इसका उद्देश्य महाराष्ट्रीय युवकों के आगे अनुकरण के लिए शिवाजी का उदाहरण पेश कर उनमें राष्ट्रवाद की भावना पैदा करना था।
- 1896-97 में उन्होनें महाराष्ट्र के अकाल पीड़ित किसानों से कहा कि अगर उनकी फसल चौपट हो जाए तो वे मालगुजारी न दें।
- जब सरकार के खिलाफ घृणा और असंतोष भड़काने के आरोप में सरकार ने उन्हें 1897 में गिरफ्तार किया, तो उन्होंने दिलेरी और बलिदान का एक शानदार उदाहरण पेश किया। उन्होनें सरकार से क्षमा मागने से इंकार कर दिया और उन्हें 18 महीने कैद की सजा हुई। इस तरह वे आत्म बलिदान की राष्ट्रीय भावना के जीते जागते प्रतीक बन गए।

उग्रपंथी दल के उद्देश्य तथा कार्यक्रम (Programme and Purpose of Extremist Faction)

उग्रपंथी मत था कि भारतीयों को मुक्ति स्वयं अपने प्रयासों से प्राप्त करनी होगी। उन्होनें घोषणा की कि, इस कार्य के लिए बड़े-बड़े बलिदान करने होंगे और तकलीफें सहनी होंगी।

- उनके भाषण, लेख और राजनीतिक कार्य दिलेरी और आत्मविश्वास से भरपूर थे और अपने देश की भलाई के लिए किसी भी व्यक्तिगत बलिदान को कम समझते थे।
- उन्होंने नरमपंथियों की इस मान्यता को कि, भारत अंग्रेजों के **"कृपापूर्ण मागदर्शन** और **नियंत्रण"** में ही प्रगति कर सकता है, मानने से इंकार कर दिया।
- वे विदेशी शासन से दिल से नफरत करते थे और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि 'राष्ट्रीय आंदोलन का लक्ष्य स्वराज्य या स्वाधीनता है।' यह स्मरण रहे कि इन राष्ट्रवादियों के लिए स्वराज्य का अर्थ 'विदेशी नियंत्रण से पूर्ण स्वतंत्रता था, जिसमें राष्ट्र की नीतियों तथा प्रबंध में पूर्णतया स्वतंत्रता हो।' उदारवादी दल के लिए **स्वराज्य का अर्थ** साम्राज्य के **अंदर औपनिवेशिक स्वशासन** था।
- उन्हें जनता की शक्ति में असीम विश्वास था और उनकी योजना जनता की कार्यवाही के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने की थी। इसलिए उन्होंने जनता के बीच राजनीतिक कार्य पर और जनता की सीधी राजनीतिक कार्यवाही पर जोर दिया।
- उग्रवादियों के कार्यक्रमों में विदेशी माल का बहिष्कार और स्वदेशी माल के अंगीकार के अलावा राष्ट्रीय शिक्षा और सत्याग्रह पर जोर दिया गया।
- उनका मानना था कि विदेशी माल के बहिष्कार और स्वदेशी माल के प्रयोगों से अंग्रेजों को वित्तीय हानि होगी और बंगाल विभाजन रद्द करने के लिए सरकार पर दबाव डाला जा सकेगा। सरकार नियंत्रित शिक्षा संस्थाओं के स्थान पर एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना बनायी गयी। उग्रवादी दल की योजना थी कि विद्यार्थियों को देश सेवा में लगाया जाए। जब सरकार ने विद्यार्थियों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही करने की धमकी दी, तो विद्यार्थियों को छोड़ दिया।
- सर गुरुदास बनर्जी ने **बंगाल राष्ट्रीय शिक्षा परिषद** बनाई। मद्रास में पछैप्पा राष्ट्रीय कॉलेज स्थापित किया गया। पंजाब में डी.ए.वी. आंदोलन ने जोर पकड़ा। उग्रवादियों ने सहकारी संगठनों को भी बढ़ावा दिया। गाँव सफाई, प्रतिबंधक पुलिस कार्य, मेलों का आयोजन इत्यादि के लिए स्वयंसेवी संस्थाएँ स्थापित की गईं। दीवानी मामलों तथा छोटे-छोटे झगड़ों को सुलझाने के लिए पंच निर्णय समितियाँ बनायी गईं।

योगदान (Contribution)

- राष्ट्रीय आंदोलन को आम लोगों तक पहुँचाने में उग्र राष्ट्रवादियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। विदेशी सामानों का बहिष्कार तथा स्वदेशी के इस्तेमाल संबंधी आंदोलन ने राष्ट्रीय गतिविधियों को अधिक तीव्र बनाया।
- विद्यार्थी एवं युवा वर्ग बड़ी संख्या में राष्ट्रवादी आंदोलन से जुड़ने लगे तथा महिलाओं की भागीदारी बढ़ी।
- उग्रवादी आंदोलनकारियों के जेल जाने तथा कष्ट झेलने से आम लोगों में राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति तेजी से जुड़ाव संभव हुआ। तिलक व लाजपत राय के उदाहरण से लोग यह समझ गए कि बिना संघर्ष के स्वराज की प्राप्ति संभव नहीं है।
- उग्रवादियों के राजनीतिक संघर्ष की पद्धति जैसे जुलूस, भाषण एवं समारोह लोगों में चेतना जागृत करने के लिये लोकप्रिय साधन साबित हुए।
- कांग्रेस के सामाजिक आधार का विस्तार हुआ।

कमजोर पक्ष (Weak Side)

- उग्रवादियों ने धार्मिक प्रतीकों द्वारा विरोध पर बल दिया गया, इससे सांप्रदायिकता की भावना को बल मिला।
- उदारवादियों के साथ वैचारिक संघर्ष से राष्ट्रीय आंदोलन कमजोर हुआ और

ब्रिटिश सरकार को दमन करने का अवसर मिला। वस्तुतः वैचारिक मतभेद ने सूरत कांग्रेस विभाजन को संभव बनाया।

उदारवादियों एवं उग्रवादियों में अंतर	
उदारवादी (नरमपंथी)	***उग्रवादी (अतिवादी)***
1. सामाजिक आधार- जमींदार एवं शहरों के उच्च मध्यमवर्गीय लोगों के बीच प्रतिनिधित्व।	***1. सामाजिक आधार***- शहरों के शिक्षित एवं निम्न मध्यवर्गीय लोगों के बीच प्रतिनिधित्व।
2. सैद्धांतिक प्रेरणास्रोत- पाश्चात्य उदार विचार एवं यूरोपीय इतिहास।	***2. सैद्धांतिक प्रेरणास्त्रोत***- भारतीय इतिहास, सांस्कृतिक विरासत एवं परम्परागत हिंदू मूल्य।
3. ब्रिटिश न्यायप्रियता में विश्वास।	3. ब्रिटिश न्यायप्रियता में अविश्वास।
4. इनका विश्वास था कि ब्रिटेन के साथ राजनीतिक संबंध भारत के सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक हितों के लिये लाभदायी होंगे।	4. इनका मानना था कि ब्रिटेन के साथ राजनीतिक संबंध रहने से भारत का आर्थिक शोषण होता रहेगा।
5. ब्रिटिश ताज के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं समर्पण का भाव।	5. इनका विश्वास था कि ब्रिटिश ताज, भारतीय निष्ठा के प्रति अयोग्य है।
6. इनका मानना था कि सरकार विरोधी आंदोलन मध्यवर्गीय शिक्षित वर्ग तक ही सीमित रहना चाहिए क्योंकि जनसामान्य अभी राजनीतिक कार्यों में सक्रिय भागीदारी निभाने के लिए तैयार नहीं है।	6. इन्हें जनसामान्य की शक्ति एवं त्याग की भावना में पूर्ण निष्ठा एवं विश्वास था जिससे ये आंदोलन को तीव्र करने के पक्षधर थे।
7. सरकारी सेवाओं में भारतीयों की सहभागिता बढ़ाने एवं संवैधानिक सुधारों की मांग की।	7. भारतीय दुर्दशा को दूर करने हेतु स्वराज्य की मांग को प्रस्तुत किया।
8. केवल संवैधानिक दायरे में रहकर लक्ष्य पाने में विश्वास रखते थे।	8. आवश्यकता पड़ने पर लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वैध तरीकों जैसे- बहिष्कार एवं अहिंसात्मक प्रतिरोध से परहेज नहीं।
9. पाश्चात्य शिक्षा एवं सभ्यता के समर्थक।	9. भारतीय समारोहों के आयोजन तथा प्रेस, शिक्षा एवं भारतीय साहित्य के समर्थक।

कांग्रेस का सूरत विभाजन-1907
(Surat Split of Congress-1907)

स्वतंत्रता आंदोलन के प्रथम चरण में जब क्रांतिकारी आंदोलन धीरे-धीरे गति पकड़ रहा था तभी दिसम्बर, 1907 में **कांग्रेस का सूरत विभाजन** हुआ। इसका प्रमुख कारण कांग्रेस में दो विपरीत विचारधाराओं के बीच टकराहट थी।

- 1905 में जब कांग्रेस का अधिवेशन गोपालकृष्ण गोखले की अध्यक्षता में बनारस में सम्पन्न हुआ तो उदारवादियों एवं उग्रवादियों के मतभेद खुलकर सामने आ गये। इस अधिवेशन में बाल गंगाधर तिलक ने नरमपंथियों की ब्रिटिश सरकार के प्रति उदार एवं सहयोग की नीति की कटु आलोचना की।
- तिलक की मंशा थी कि, स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन का पूरे बंगाल तथा देश के अन्य भागों में तेजी से विस्तार किया जाए तथा इसमें अन्य संस्थाओं (यथा- सरकारी सेवाओं, न्यायालयों, व्यवस्थापिका सभाओं इत्यादि) को सम्मिलित कर इसे राष्ट्रव्यापी आंदोलन का स्वरूप दिया जाए जबकि उदारवादी इस आंदोलन को केवल बंगाल तक ही सीमित रखना चाहते थे तथा अन्य संस्थाओं को इस आंदोलन में सम्मिलित करने के पक्ष में नहीं थे।
- उग्रवादी चाहते थे कि बनारस अधिवेशन में उनके प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाए जबकि उदारवादियों का मत था कि बंगाल विभाजन का विरोध संवैधानिक तरीके से किया जाए तथा उन्होंने ब्रिटिश सरकार के साथ असहयोग करने की नीति का समर्थन नहीं किया।
- अंततः बीच का रास्ता निकालते हुये एक मध्य मार्ग अपनाया गया जिसमें कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीतियों तथा बंगाल विभाजन की आलोचना की गयी तथा स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन का समर्थन किया गया। इससे कुछ समय के लिए कांग्रेस का विभाजन टल गया।



- दिसम्बर, 1906 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। अधिवेशन में तत्कालीन साम्प्रदायिक दंगों एवं क्रांतिकारी आंतकवाद तथा उग्रवादियों की लोकप्रियता में वृद्धि के कारण उदारवादियों का प्रभाव कम हो गया। इस अधिवेशन में उग्रवादी, **बाल गंगाधर तिलक** या **लाला लाजपत राय** को अध्यक्ष बनाना चाहते थे, जबकि नरमपंथियों ने इस पद हेतु **डॉ. रासबिहारी घोष** का नाम प्रस्तावित किया।
- अंत में **दादा भाई नौरोजी** सर्वसम्मति से अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए तथा ब्रिटेन या अन्य उपनिवेशों की तरह **'स्वराज्य'** या **'स्वशासन'** को कांग्रेस ने अपना लक्ष्य घोषित किया।
- स्वदेशी, बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा के समर्थन में भी एक प्रस्ताव पारित किया गया किंतु इसकी स्पष्ट व्याख्या नहीं की गयी जिससे बाद में इस विषय पर उदारवादियों एवं उग्रवादियों में बहस छिड़ गयी।
- कलकत्ता अधिवेशन की उपलब्धियों से उत्साहित होकर उग्रवादियों ने अहिंसात्मक प्रतिरोध तथा शिक्षा संस्थाओं, व्यवस्थापिका सभाओं एवं नगर निकायों इत्यादि का बहिष्कार करने की मांग प्रारम्भ कर दी।
- कलकत्ता अधिवेशन में उदारवादियों के प्रस्तावों को ज्यादा महत्त्व न मिलने के कारण भी उनमें निराशा बढ़ी। धीरे-धीरे दोनों पक्षों में मतभेद बढ़ने लगे।
- उग्रवादियों का मानना था कि इस समय भारतीयों में अभूतपूर्व उत्साह है तथा स्वतंत्रता आंदोलन को पूर्णरूपेण प्रारम्भ करने का यह उपयुक्त समय है। उनका मत था कि अब वह समय आ गया है, जब ब्रिटिश शासन पर आघात किया जाए तथा उसे जड़ से उखाड़ फेंका जाए। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि उदारवादी इस कार्य के लिए अनुपयुक्त हैं तथा उन्हें स्वतंत्रता अभियान से अलग कर दिया जाए।
- दूसरी ओर उदारवादियों ने भी निष्कर्ष निकाला कि इस समय उग्रवादियों के साम्राज्यवाद विरोधी अभियान से उनका जुड़ना उचित नहीं है, क्योंकि वे ब्रिटिश सरकार को हटाने पर तुले हुए

- उदारवादी यह विश्वास करने लगे कि निकाय सुधारों के द्वारा प्रशासन में भारतीयों की भागीदारी का उनका स्वप्न पूरा हो जाएगा। नरमपंथियों ने तर्क दिया कि अतिवादियों के दबाव में कांग्रेस को जल्दबाजी में ऐसा कोई कदम नहीं उठाना चाहिए, जिससे भारतीय हितों को नुकसान पहुँचे। उदारवादी, अतिवादियों के साथ किसी प्रकार का सहयोग या सम्बन्ध नहीं रखना चाहते थे।
- उदारवादी यह अनुमान नहीं लगा सके कि सरकार द्वारा काउंसिल सुधारों का वास्तविक उद्देश्य अतिवादियों को उदारवादियों से पृथक करना है, न कि उदारवादियों को उपहार देना।
- अतिवादियों ने भी नरमपंथियों के हर कदम का गलत अनुमान लगाया। दोनों ही पक्ष इस बात की महत्ता से परिचित नहीं हो सके कि भारत जैसे विशाल औपनिवेशिक देश को विदेशी शासन से मुक्ति दिलाने के लिए विशाल राष्ट्रवादी आंदोलन एवं आपसी एकता अत्यंत आवश्यक है।
- अतिवादी चाहते थे कि 1907 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन नागपुर (मध्य प्रांत) में आयोजित किया जाए तथा बाल गंगाधर तिलक या लाला लाजपत राय इसके अध्यक्ष चुने जाएं। साथ ही यहाँ स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन तथा राष्ट्रीय शिक्षा के पूर्ण समर्थन में एक प्रस्ताव पारित किया जाए।
- दूसरी ओर उदारवादी चाहते थे कि **1907** का अधिवेशन **सूरत में** आयोजित किया जाए तथा किसी भी हालत में तिलक को अध्यक्ष न बनने दिया जाए। उन्होंने रासबिहारी घोष को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाने तथा स्वदेशी, बहिष्कार एवं राष्ट्रीय शिक्षा के प्रस्ताव को वापस लेने की जोरदार मांग की।
- इस समय दोनों ही पक्षों ने अड़ियल रुख अपना लिया तथा समझौते की किसी भी संभावना से इंकार कर दिया। इन परिस्थितियों में कांग्रेस में विभाजन सुनिश्चित हो गया।
- चूँकि इस समय कांग्रेस में उदारवादियों का वर्चस्व था फलतः उन्होंने ब्रिटिश शासन की सीमा में रहते हुए स्वराज्य व स्वशासन की मांग की तथा संवैधानिक तरीके से ही आंदोलन जारी रखने का निर्णय लिया।
- इसके पश्चात् सरकार ने अतिवादियों पर सुनियोजित हमले प्रारम्भ कर दिये। **1907** से **1911** के मध्य सरकार विरोधी आंदोलन को कुचलने के लिए पाँच नये कानून बनाए गए। इन कानूनों में राजद्रोही सभा अधिनियम 1907, भारतीय समाचार पत्र अधिनियम **1908**, फौजदारी कानून (संशोधित) अधिनियम **1908** तथा भारतीय प्रेस अधिनियम **1910** प्रमुख थे।
- मुख्य अतिवादी नेता बालगंगाधर तिलक को गिरफ्तार कर मांडले जेल (बर्मा) भेज दिया गया। इसी समय विपिनचंद्र पाल तथा अरविंद घोष ने सक्रिय राजनीति से संन्यास ले लिया तथा लाला लाजपत राय विदेश चले गये। अतिवादी आंदोलन को आगे जारी रखने में असफल रहे। उदारवादियों की लोकप्रियता भी कम हो गयी तथा वे युवाओं का सहयोग या समर्थन प्राप्त करने में नाकाम रहे।

कांग्रेस के प्रति सरकार की रणनीति
(Strategy of Government towards Congress)

कांग्रेस के प्रारंभिक वर्षों में उसके प्रति सरकार का रुख सहयोगात्मक रहा। इस समय कांग्रेस में उदारवादियों का वर्चस्व था। उदारवादियों ने प्रारम्भ से ही उग्र-राष्ट्रवाद से स्वयं को दूर रखना प्रारम्भ कर दिया था, जिसका आभास 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक से मिलना प्रारम्भ हो गया था। इस समय भी कांग्रेस के प्रति सरकार का रुख यथावत बना रहा क्योंकि अंग्रेजों के दृष्टिकोण से कांग्रेस, साम्राज्यवादी विरोधी तत्वों के विरुद्ध था तथा राष्ट्रवादी एवं उदार शिक्षित वर्ग का प्रतिनिधित्व करती थी।

- किंतु बाद के वर्षों में स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन के उभरने से कांग्रेस के प्रति सरकार का मोह भंग हो गया तथा उसने राष्ट्रवादियों के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन कर लिया।
- सरकार की इस नीति को तीन प्रमुख शब्दों **'अवरोध, सांत्वना एवं दमन'** के रूप में समझा जा सकता है। अपनी इस रणनीति के **प्रथम चरण** में सरकार ने उदारवादियों को डराने हेतु अतिवादियों के साधारण दमन की नीति अपनायी। **द्वितीय चरण** में सरकार एवं उदारवादियों के मध्य कुछ मुद्दों पर सहमति हुई तथा सरकार ने उदारवादियों को आश्वासन दिया कि यदि वे अतिवादियों से खुद को अलग रखें तो भारत में और संवैधानिक सुधार संभव हो सकते हैं।
- इसका मुख्य उद्देश्य उदारवादियों को अतिवादियों से पृथक करना था। इस प्रकार उदारवादियों को अपने पक्ष में करने के लिए अतिवादियों के दमन का मार्ग आसान हो गया। किंतु बाद में उदारवादी भी सरकार की उपेक्षा के शिकार हो गये।
- दुर्भाग्यवश जबकि राष्ट्रवादियों में समन्वय की अत्यंत आवश्यकता थी, उदारवादी तथा अतिवादी दोनों ही अंग्रेजों की रणनीति के शिकार हो गए तथा वे सरकार की वास्तविक मंशा को नहीं समझ सके। कांग्रेस का सूरत विभाजन अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश सरकार की इसी रणनीति का प्रतिफल था, जिसके तहत् नरमपंथी तथा अतिवादी एक-दूसरे से दूर होते गए तथा उनके मतभेद सूरत अधिवेशन में खुलकर सामने आ गये।

बंगाल विभाजन एवं स्वदेशी आंदोलन
(Partition of Bengal and Swadeshi Movement)

परिचय (Introduction)

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की विकासधारा में स्वदेशी आंदोलन कई रूपों में एक युगान्तरकारी घटना रही है। इस आंदोलन के प्रारम्भ होने के पीछे ब्रिटिश नीति थी, जिसके तहत् औपनिवेशिक शासन द्वारा औपनिवेशिक हितों की पूर्ति के लिए बंगाल का विभाजन किया गया और बंगाल विभाजन के प्रतिक्रियास्वरूप राष्ट्रवादी तत्वों द्वारा स्वदेशी आंदोलन प्रारम्भ किया गया।

- विभाजन की प्रक्रिया के संदर्भ में बंगाल विभाजन के पूर्व भी कुछ भागों को अलग किया गया था।
- उदाहरण के लिए **1874** ई. में असम को बंगाल से अलग कर दिया गया, इसी तरह **1897** ई. में दक्षिण लुसाई घाटी क्षेत्रों को बंगाल से अलग कर असम में मिलाया गया। इससे स्पष्ट है कि **1905** ई. का बंगाल विभाजन कोई नई बात नहीं थी।
- बंगाल विभाजन की प्रतिक्रिया में जो स्वदेशी आंदोलन चलाया गया उसको भी पूर्व की घटनाओं में देखा जा सकता है।
- उदाहरण के लिए दयानंद सरस्वती ने स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने की जोरदार वकालत की, स्वदेशी शासन को ही सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम बताया।
- इसी तरह कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् जो राष्ट्रवादी आंदोलन के विभिन्न स्वरूप विकसित हुए, चाहे वे नरमपंथी हों या गरमपंथी या क्रांतिकारी राष्ट्रवादी के रूप में सबमें कहीं न कहीं स्वदेशी की बात दिखाई पड़ती है।
- अत: इस पृष्ठभूमि में स्वदेशी आंदोलन का तत्व दिखाई पड़ता है। अत: उपरोक्त पृष्ठभूमि में बंगाल विभाजन एवं स्वदेशी आंदोलन की समीक्षा की जा सकती है।

बंगाल विभाजन एवं विभाजन के कारण (Partition of Bengal and Causes of Partition)

20 जुलाई, 1905 को **लॉर्ड कर्जन** ने एक आदेश जारी करके बंगाल को दो भागों में बाँट दिया। उस समय बंगाल प्रांत में **आधुनिक बांग्लादेश, पश्चिम बंगाल, बिहार** और **उड़ीसा** सम्मिलित थे।

- इसका क्षेत्रफल 1,89,000 वर्ग मील और जनसंख्या 8.5 करोड़ थी, जिसमें बिहार और उड़ीसा की जनसंख्या 2 करोड़ 10 लाख थी।
- बंटवारे के बाद पूर्वी बंगाल और असम का एक नया प्रांत बनाया गया जिसमें **राजशाही, चटगाँव** और **ढाका** के तीन डिवीजन सम्मिलित थे। इसका क्षेत्रफल 1,06,540 वर्ग मील और जनसंख्या 3 करोड़ 10 लाख थी, जिसमें से 1 करोड़ 80 लाख मुसलमान थे और 1 करोड़ 20 लाख हिंदू।
- इस प्रांत का मुख्य कार्यालय ढाका में था और यह एक लेफ्टिनेंट गर्वनर के अधीन
- दूसरी ओर पश्चिम बंगाल, बिहार और उड़ीसा थे जिनका क्षेत्रफल 1,41,580 वर्ग मील था और जिनकी जनसंख्या 5 करोड़ 40 लाख थी, जिसमें 4 करोड़ 20 लाख हिंदू और केवल 90 लाख मुसलमान थे। इसमें बंगाली अल्पसंख्यक थे।

बंगाल के विभाजन के पीछे स्थित कारणों को लेकर व्यापक विवाद रहा है। इतिहासकारों ने इसके अलग-अलग कारण बताये हैं-

प्रशासनिक सुविधा के दृष्टिकोण से (From the Point of View of Administrative Convenience)

सरकारी तौर पर यह दावा किया गया था कि बंगाल का विभाजन प्रशासनिक सुविधा को ध्यान में रखकर किया गया। कुछ हद तक इस दावे में दम था। बंगाल का प्रांत काफी बड़ा था और समय-समय पर इसे छोटा करने के सुझाव दिए जाते रहे थे।

- ब्रिटिश शासन का मानना था कि विभाजन से असम के विकास में और अधिक सहायता मिलेगी साथ ही, इससे बंगाल का बोझ भी कम होगा, लेकिन आंतरिक रूप से सरकार या ब्रिटिश शासन के उद्देश्य कुछ और ही थे।
- अगर सिर्फ प्रशासनिक सुविधा की बात होती तो बंगाल से गैर-बंगाली भाषी बिहार और उड़ीसा को भी अलग किया जा सकता था लेकिन इस प्रस्ताव पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था।
- कर्जन ने कहा था कि "बंगाल से बाह्य घटकों को अलग करने से तो बंगाली तत्वों की स्थिति और सुदृढ़ हो जाएगी और ठीक वही स्थिति पैदा हो जाएगी जिससे हम बचना चाहते हैं। हमारा प्रस्ताव राजनीतिक रूप से लाभदायक है जिसका प्रमाण है-कांग्रेस का इसे नापसंद करना।" वस्तुत: विभाजन का कारण राजनीतिक था।

फूट डालो और राज करो की नीति (Divide and Rule Policy)

राष्ट्रवादी इतिहासकारों की धारणा है कि बंगाल विभाजन का कदम जान-बूझकर **'फूट डालो और राज करो'** की नीति के अंतर्गत उठाया गया था।

- **19वीं सदी** के अंत और **20वीं सदी** के प्रारंभ में भारत में राष्ट्रीय चेतना तेजी से विकसित हो रही थी और जुझारू रुख अख्यितार कर रही थी। भारतीय राष्ट्रीय चेतना का केंद्र बंगाल था।
- अंग्रेजों ने इसी राष्ट्रीय चेतना पर आघात करने के उद्देश्य से ही बंगाल के बंटवारे का निर्णय लिया।
- **लॉर्ड कर्जन** के अनुसार-अंग्रेजी हुकूमत का यह प्रयास कलकत्ता को सिंहासन पतित करना, बंगाली आबादी का बंटवारा करना, एक ऐसे केंद्र को समाप्त करना था जहाँ से सारे देश में व बंगाल में कांग्रेस पार्टी का संचालन होता था तथा साजिशें रची जाती थीं।
- यह एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक चाल थी जिसका उद्देश्य था पश्चिमी और पूर्वी बंगाल के हिंदू राजनीतिज्ञों के बीच दरार
- रिजले ने कहा था, 'अविभाजित बंगाल एक बड़ी ताकत है। विभाजित होने से यह कमजोर हो जाएगी और हमारा मुख्य उद्देश्य बंगाल का बंटवारा करना है जिससे हमारे दुश्मन बंट जाएँ, कमजोर पड़ जाएँ।'

सांप्रदायिक भेदभाव को बढ़ावा देना (To Promote Communal Discrimination)

विभाजन का एक और उद्देश्य जान-बूझकर हिंदू-मुस्लिम तनावों को बढ़ावा देना था। राष्ट्रवादियों ने यह आरोप लगाया कि बंगाल विभाजन का उद्देश्य बंगाल को धार्मिक तौर पर बाँटना था, क्योंकि पूर्वी बंगाल में मुसलमानों और पश्चिमी बंगाल में हिंदुओं का बहुमत था।

इस आक्षेप को कर्जन के उस टिप्पणी से बल मिलता है, जो उसने ढाका में भाषण देते हुए कही थी। 'बंगाली मुसलमानों को एकता का ऐसा अवसर दिया जा रहा है जो मुसलमान सूबेदारों और बादशाहों के समय से उन्हें नसीब नहीं हुआ था।'

बंगालियों को अल्पसंख्यक बनाना (To make Minority of Bengalis)

बंगाल विभाजन का सिर्फ यह उद्देश्य नहीं था कि बंगालवासियों को दो प्रशासनिक हिस्सों में बांटकर उनके प्रभाव को कम किया जा सके।

- अंग्रेजी हुकूमत का मूल मकसद बंगाल में बंगालियों की आबादी कम करके उन्हें अल्पसंख्यक बना देना था।
- मूल बंगाल में 1 करोड़ 70 लाख बंगाली और 3 करोड़ 70 लाख उड़िया व हिंदी भाषी लोगों को रखने की योजना थी।

विभाजन के पीछे ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य (Objectives of British Government Behind Partition)

1905 में जब कर्जन द्वारा बंगाल विभाजन की घोषणा की गई जिसका कारण प्रशासनिक असुविधा को बताया गया। उस समय बंगाल एक बड़ा प्रांत था जिसके प्रशासन में ब्रिटिश सरकार को असुविधा होती थी।

- इस प्रशासनिक असुविधा के आधार पर बंगाल को दो भागों पूर्वी एवं पश्चिमी बंगाल में विभाजित किया गया।
- पूर्वी बंगाल के साथ असम में चटगाँव, ढाका, राजशाही को तथा पश्चिमी बंगाल के साथ बिहार एवं उड़ीसा को जोड़ दिया गया। वास्तव में इस विभाजन का उद्देश्य राष्ट्रीय आंदोलन के केंद्र बंगाल को तोड़ना तथा हिंदू-मुसलमान एकता को विखंडित करना था।
- यही कारण था कि पूर्वी बंगाल वाले भाग में गैर-हिंदुओं अर्थात् मुस्लिमों को ज्यादा रखा गया तथा दूसरे भाग में बांग्ला भाषी अल्पसंख्यकों को रखा गया, इस प्रकार धर्म एवं भाषा के स्तर पर दोनों भागों को अल्पसंख्यक बनाकर बंगाल में राष्ट्रवादी भावना को कमजोर करने की कोशिश की गई।
- वास्तव में इस विभाजन के पीछे अंग्रेजों की सुनियोजित रणनीति थी क्योंकि ऐसे कुछ राजनीतिक एवं आर्थिक कदम भी उठाए गए, जैसे पूर्वी बंगाल के क्षेत्र को शेष बंगाल का प्रतिस्पर्धी बनाने की कोशिश की गई, जिसके लिए कलकत्ता के साथ ही ढाका में भी एक उच्च न्यायालय की स्थापना तथा कलकत्ता के अतिरिक्त पूर्वी बंगाल के चटगाँव क्षेत्र में बंदरगाह के निर्माण को प्रस्तावित किया गया।
- चटगाँव में बंदरगाह स्थापित होने से असम भी फायदे में रहता क्योंकि कलकत्ता बंदरगाह पर ज्यादा बोझ था।
- इस प्रकार राजनीतिक एवं आर्थिक लाभों को आधार बनाकर विभाजन के ब्रिटिश उद्देश्य को एक छद्म जामा पहनाया गया।

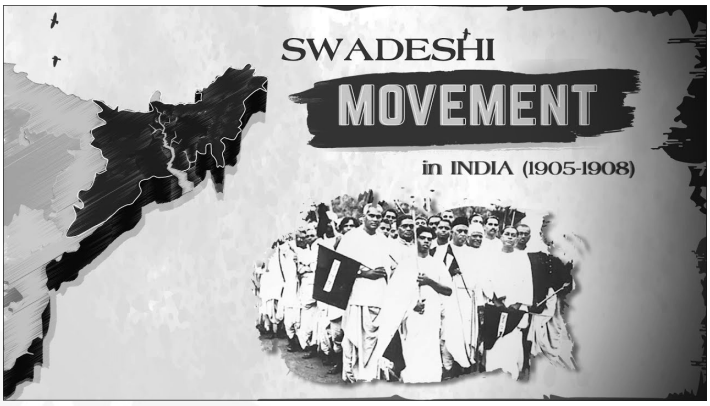
विभाजन का प्रभाव (Effect of the Partition)

- राष्ट्रवादियों ने विभाजन के वास्तविक अभिप्राय को समझा एवं विभाजन की कार्यवाही को भारतीय राष्ट्रवाद के प्रति चुनौती के रूप में देखा।
- विभाजन के विरोध में स्वेदशी आंदोलन की शुरूआत।
- उग्रवादी राष्ट्रीयता का उद्भव।

स्वदेशी आंदोलन (Swadeshi Movement)

स्वदेशी आंदोलन का प्रारंभ (The Beginning of the Swadeshi Movements)

20 जुलाई, 1905 को **कर्जन** द्वारा **बंगाल विभाजन** के निर्णय की घोषणा की गयी इसके परिणामस्वरूप 7 **अगस्त, 1905** को कलकत्ता टाउन हाल में एक बैठक कर **स्वदेशी आंदोलन** की घोषणा की गई। इसी बैठक में ऐतिहासिक बहिष्कार प्रस्ताव पारित हुआ। **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी,** कृष्ण कुमार मित्र आदि इसके प्रारम्भिक नेताओं में से थे।



- जिस दिन (16 अक्टूबर, 1905) को बंगाल विभाजन लागू किया गया। उस दिन-शोक दिवस, राखी दिवस आदि के रूप में मनाने की घोषणा की गई इसे **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी** ने कहा 'यह हमारे ऊपर एक वज्र की तरह गिरा है।' आमार-सोनार बांग्ला, वंदे मातरम् आदि गीत गाकर लोगों को विभाजन का विरोध करने के लिए प्रेरित किया गया।
- धीरे-धीरे यह आंदोलन विस्तारित होकर पूरे भारत में फैल गया।
- **विस्तार की इस प्रक्रिया को हम दो चरणों में देख** सकते हैं। प्रथम चरण में नरमपंथी तरीकों से ही आंदोलन चलाया गया यहाँ तक कि **1905** के कांग्रेस अधिवेशन में आंदोलन का तो समर्थन किया गया, पर बहिष्कार के प्रस्ताव का नरमपंथियों द्वारा स्पष्ट समर्थन नहीं किया गया पर आगे चलकर जब **नरमपंथी** तरीके कमजोर पड़ने लगे तब गरमपंथियों का आंदोलन पर प्रभाव बढ़ता गया। इन लोगों ने स्वराज, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा एवं बहिष्कार को प्रमुखता से स्थापित किया।
- तिलक ने बम्बई व पुणे में, अजीत सिंह व लाला लाजपत राय ने पंजाब एवं उत्तर प्रदेश में, सैय्यद हैदर रजा ने दिल्ली में तथा चिदम्बरम पिल्ले ने मद्रास में इस आंदोलन का प्रचार किया।

आंदोलन का मूल उद्देश्य तो बंगाल विभाजन का विरोध था, पर इस विरोध को व्यक्त करने के लिए आत्मनिर्भरता को प्रमुख आधार बनाया गया और इसी परिप्रेक्ष्य में स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने का प्रचार-प्रसार, स्वदेशी वस्त्रों को प्रोत्साहन, राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार-प्रसार आदि को उद्देश्य के अनुरूप निर्धारित किया गया। बहिष्कार के अंतर्गत विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने तथा विदेशी वस्त्रों को जलाने को कहा गया। भारतीय जनता को सरकार के अवैतनिक पदों तथा काउंसिल की सदस्यता आदि से त्यागपत्र देने को प्रेरित किया गया।

स्वदेशी को अपनाने तथा विदेशी को त्यागने के लिए कुछ रचनात्मक कार्य किये गये। जैसे स्वदेशी आर्थिक विकास, राष्ट्रीय शिक्षा को बढ़ावा दिया गया, **अरविंद घोष** ने **राष्ट्रीय कॉलेज** की स्थापना कर देशी शिक्षा को बढ़ावा देने का प्रयास किया। इसी समय **राष्ट्रीय शिक्षा परिषद** की भी स्थापना की गई।

स्वदेशी आंदोलन का अंत (The End of Swadeshi Movement)

1905 से प्रारम्भ हुआ स्वदेशी आंदोलन **1908** तक आते-आते कई कारणों से कमजोर पड़ता गया जिसके प्रमुख कारण थे-

- औपनिवेशिक सरकार द्वारा दमन को तीव्र करना।
- **1907** में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस में फूट, सांप्रदायिकता संबंधित विभिन्न घटनाओं आदि के कारण स्वदेशी आंदोलन का धीरे-धीरे कमजोर होते जाना।

- 1911 के दिल्ली अधिवेशन में इस विभाजन को रद्द कर दिया गया क्योंकि अब बंगाल में उस तरह की राष्ट्रवादी तीव्रता नहीं रही थी।
- स्वदेशी आंदोलन के दौरान पुराने तरीकों के बदले कुछ नये तरीके अपनाये गए क्योंकि अब नरमपंथी नीति कमजोर पड़ने लगी थी। इसी दौरान ताकत का मुकाबला ताकत से करने के नारे को लेकर क्रांतिकारी राष्ट्रवाद भी विकसित हुआ।
- अब स्वदेशी मुद्दा सिर्फ आर्थिक तत्वों तक ही सीमित न रहकर कई अन्य क्षेत्रों में भी अभिव्यक्त हुआ, जैसे शिक्षा, संस्कृति आदि। उदाहरण के लिए रविन्द्र नाथ टैगोर ने पाश्चात्य कला परम्परा से प्रभावित होने की जगह भारतीय कला परम्परा को महत्त्व प्रदान किया।
- जनसहभागिता के स्तर पर राष्ट्रीय आंदोलन में पहली बार युवा वर्ग इस आंदोलन से सक्रिय रूप से जुड़ा इनके अतिरिक्त वकील, शिक्षक, महिलाएँ, व्यापारी आदि भी अपने-अपने कारणों से प्रभावित होकर जुड़े। मुस्लिम वर्ग का एक सीमित स्तर पर समर्थन रहा पर वह काफी हद तक क्षेत्रीय हितों द्वारा निर्देशित था।
- स्वदेशी आंदोलन को पूर्ण एवं लंबे समय तक न चला पाने के पीछे कुछ कारण थे जैसे-इस आंदोलन के दौरान नीतियों के स्तर पर (स्वदेशी, स्वराज, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा आदि) विरोधाभास के कारण **1907 में कांग्रेस** के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस के दो विचारधाराओं में फूट पड़ गई, जिसके कारण नरमपंथी एवं गरमपंथी अलग हो गए, जिससे आंदोलन के दौरान गरमपंथी राजनीति में एक ओर जहाँ **हिंदूवादी गुट दिखा**, वहीं अंग्रेजों की **'फूट डालो राज करो'** की नीति के तहत् **1906 ई.** में मुस्लिम लीग की स्थापना एवं **1909 ई. में सांप्रदायिक निर्वाचन आधारित अधिनियम** को बढ़ावा दिया गया। इन दोनों घटनाओं ने आगे चलकर, सांप्रदायिकता के विकास में निर्णायक भूमिका निभाई।

मूल्यांकन (Evaluation)

आंदोलन के विकास की धारा में 1857 की क्रांति के बाद **स्वदेशी आंदोलन** को 20वीं सदी का पहला सशक्त राष्ट्रीय आंदोलन माना जा सकता है। इस आंदोलन के कई क्षेत्रीय नेतृत्व एक सीमा तक राष्ट्रीय मुद्दों के साथ एकीकृत हुए जिससे उनमें आपस में एकता प्रदर्शित हुई जिससे मिलकर आंदोलन को गतिशीलता प्रदान करने में मदद मिली।

- इस आंदोलन की सफलता यह रही कि तकनीकी रूप से 1911 में बंगाल विभाजन को दिल्ली दरबार में रद्द कर दिया गया।
- प्रकृति के स्तर पर इस आंदोलन से राष्ट्रीय आंदोलन का नवीन स्वरूप निर्धारित हुआ क्योंकि राजनीतिक स्तर पर उदारवाद आधारित सीमित राष्ट्रवाद अब राजनीतिक उग्रवाद पर आधारित व्यापक राष्ट्रवाद में परिणत हुआ जिसमें जन सहभागिता के स्तर पर युवाओं, महिलाओं तथा समाज के अन्य तत्वों की सक्रिय भागीदारी ने आगे के आंदोलनों हेतु एक आधार की तरह काम किया। इस आंदोलन के कई कार्यक्रम आगे चलकर गाँधी जी के नेतृत्व में चलाए गए आंदोलनों में भी देखे गए।
- कुल मिलाकर स्वदेशी आंदोलन सीमित स्तर पर प्रसारित नरमपंथी राजनीति और आगे आने वाले व्यापक राष्ट्रवाद के बीच एक कड़ी है। अत: स्वदेशी आंदोलन सिर्फ उस समय के लिए ही नहीं प्रासंगिक रहा वरन् कई रूपों में आगे के निर्णायक राष्ट्रीय आंदोलन का भी मार्ग प्रशस्त करता रहा।

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद
(Revolutionary Nationalism)

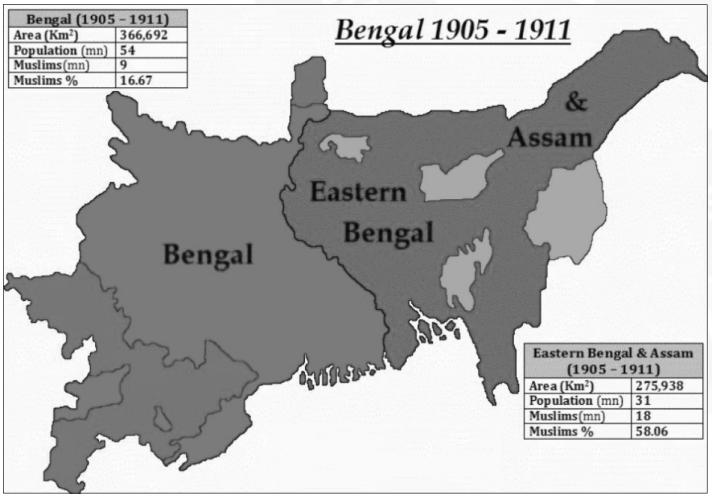
परिचय (Introduction)

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में क्रांतिकारी राष्ट्रवाद की धारा का एक उल्लेखनीय स्थान है क्योंकि इस धारा ने राष्ट्रवाद की मुख्य धारा से अलग हटकर नए तरीकों से राष्ट्रवादी चेतना को प्रसारित करने का हरसंभव प्रयास किया।

- क्रांतिकारी राष्ट्रवाद राजनीतिक गतिविधियों का ऐसा रूप था जिसे युवा वर्ग की राष्ट्रवाद से प्रेरित पीढ़ी ने अपनाया। इस वर्ग को मुख्य धारा की प्रचलित राजनीतिक गतिविधियों में अपनी रचनात्मक शक्तियों को व्यक्त करने का पर्याप्त अवसर नहीं मिला था। परिणामत: ये वैयक्तिक वीरता की कार्यवाहियों के द्वारा जन-जन में राष्ट्रवादी चेतना को प्रचारित करना चाहते थे।
- विश्व के अन्य भागों जैसे आयरलैंड, रूस आदि में भी क्रांतिकारियों की वैयक्तिक वीरता की गतिविधियाँ दिखाई पड़ती हैं।
- इस वैयक्तिक कार्यवाहियों में शामिल था- बदनाम ब्रिटिश अधिकारियों की हत्या करना, मुखबिर या देशद्रोहियों की हत्या करना, स्वेदशी डकैतियाँ आदि।
- इन गतिविधियों का उद्देश्य था ब्रिटिश शासन तंत्र में दहशत फैला कर लोगों की उदासीनता एवं डर को दूर हटाना और सबसे बड़ी बात यह कि इन सबके माध्यम से लोगों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करना।
- यह सही है कि क्रांतिकारी राष्ट्रवादी विशेषकर पहले चरण में मूलत: वैयक्तिक कार्यवाहियों पर ही जोर देते हैं पर इनके बाद ये भी अंतत: संपूर्ण जनता द्वारा सशस्त्र संघर्ष को आवश्यक मानते थे।

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद के उद्भव के कारण
(Causes of Emergence of Revolutionary Nationalism)

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद के विकास के पीछे बाह्य एवं आंतरिक दोनों संदर्भों का प्रभाव रहा। बाह्य रूप से जापान द्वारा रूस को हराया जाना, इथोपिया द्वारा इटली को हराया जाना आदि घटनाओं से युवा क्रांतिकारियों को यह प्रेरणा मिली कि संगठित एवं आक्रामक प्रयासों द्वारा बड़ी शक्तियों को हराना कोई अस्वाभाविक प्रक्रिया नहीं है।



- यही समय अर्थात् 19वीं सदी, यूरोप में राष्ट्रवाद के उत्थान की सदी थी। यहाँ की भी विभिन्न घटनाओं से क्रांतिकारी राष्ट्रवाद प्रेरित हुआ।
- आंतरिक स्तर पर नरमपंथी राजनीति की विफलता, क्रांतिकारी राष्ट्रवाद के लिए एक महत्त्वपूर्ण आधार बना। नरमपंथी राजनीति अपने नेतृत्व, आदर्शों, गतिविधियों आदि विभिन्न स्तरों पर संकुचित थीं तथा जनमत की आकांक्षाओं को पूर्ण करने में असफल रही थी।
- कांग्रेस के गरमपंथियों द्वारा समय-समय पर नरमपंथियों की प्रार्थना एवं याचना आधारित पद्धति की आलोचना की गई थी पर गरमपंथी भी इस परिप्रेक्ष्य में कोई समर्थ विकल्प प्रस्तुत नहीं कर पाए थे।
- परिणामत: क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों ने अपनी अलग विचारधारा का निर्माण किया ताकि अपने तरीके से राष्ट्रवादी गतिविधियों को संचालित किया जा सके।
- 1905 में बंगाल विभाजन के विरोध में हुए स्वदेशी आंदोलन में क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों ने एक आशा एवं विश्वास के साथ सक्रिय भागीदारी की थी पर इसमें उन्हें तात्कालिक सफलता नहीं मिली और ऐसा महसूस किया गया कि अब अन्य तरीकों से कार्य करने की आवश्यकता है।
- साथ ही, स्वदेशी आंदोलन के दौरान जिस तरीके से राष्ट्रवादी गतिविधियों का जिस क्रूरता से दमन किया गया उससे भी क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का आधार तैयार हुआ।
- उदाहरणस्वरूप-1906 के बारीसाल सम्मेलन पर पुलिस हमला हुआ। इस हमले की प्रतिक्रिया में क्रांतिकारी पत्रिका **'युगांतर'** ने लिखा-"बल को बल से ही रोका जाना चाहिए। अब तीस करोड़ जनता अपने साठ करोड़ हाथ उठाए।" इस समय के कई अन्य पत्र-पत्रिकाओं ने भी क्रांतिकारी गतिविधियों को प्रेरित तथा समर्थन किया।
- 1907 में कांग्रेस का **'सूरत विभाजन'** हुआ जिससे कांग्रेस की शक्ति कमजोर पड़ी और ब्रिटिश दमन चक्र भी तेज हो गया।
- इस दमन का विशेष प्रभाव गरमपंथियों पर पड़ा। उदाहरण के लिए-तिलक को छ: वर्षों के लिए सजा तथा **अरविंद घोष** को क्रांतिकारी षड्यंत्र के अभियोग में गिरफ्तार किया गया।
- इन परिस्थितियों में क्रांतिकारी आदर्शों से प्रेरित युवाओं में ब्रिटिश दमन-चक्र के प्रति नाराजगी तो थी ही साथ ही वे नरमपंथियों एवं उदारवादियों की व्यर्थता से भी नाराज थे।
- समग्रत: 1907 तक क्रांतिकारी राष्ट्रवाद हेतु व्यवस्थित आधार तैयार हो चुका था। यही कारण है कि हम 1908 से क्रांतिकारी राष्ट्रवादी गतिविधियाँ व्यापक स्तर पर देखते हैं।

कुछ अन्य कारण (Some Other Reason)

- **'आनंदमठ'** जैसे साहित्य **'युगांतर', 'संध्या', 'काल'** जैसे समाचार-पत्रों ने तीव्र राष्ट्रवादी भावनाएँ उत्पन्न कीं और व्यक्तिगत वीरता को प्रोत्साहित किया।
- द्वितीय चरण 1920 के दशक में उदित हुए क्रांतिकारी राष्ट्रवाद की पृष्ठभूमि तो प्रथम चरण के क्रांतिकारियों ने ही तैयार कर रखी थी, लेकिन तत्कालीन समय में असहयोग आंदोलन को वापस लेने से नवयुवकों में नैराश्य की भावना फैली।
- वस्तुत: गाँधीजी के असहयोग आंदोलन में नवयुवकों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था और उन्हें गाँधी जी के एक वर्ष के अंदर स्वतंत्रता दिलाने के नारे ने उत्साह से भर दिया, किंतु चौरी-चौरा कांड के पश्चात् गाँधीजी द्वारा आंदोलन की वापसी के पीछे उन्हें कोई ठोस कारण नजर नहीं आया, फलत: गाँधीवादी राजनीति से उनका मोहभंग हुआ और वैकल्पिक राजनीति के रूप में वे क्रांतिकारी गतिविधियों की तरफ बढ़े।
- स्वराजियों के संसदीय संघर्ष भी इन युवकों को आकृष्ट नहीं कर पाए।

अत: इनमें से अधिसंख्यक ने मान लिया कि सिर्फ हिंसात्मक तरीकों से ही आजादी हासिल की जा सकती है।

- नए साम्यवादी समूहों के उभरने, जो मार्क्सवाद, समाजवाद और सर्वहारा के सिद्धांत का प्रचार कर रहे थे, से भी प्रेरणा मिली।
- प्रथम विश्व युद्ध के बाद गठित हुए मजदूर संगठनों की क्रांतिकारी क्षमता का अंदाजा इन क्रांतिकारियों को था। वे इसका इस्तेमाल राष्ट्रीय क्रांति हेतु करना चाहते थे।

क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों के कार्यक्रम (Programs of Revolutionary Nationalism)

क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों के कार्यक्रम निम्नलिखित हैं-

- गुप्त समितियों की स्थापना करना।
- भारतीयों में क्रांतिकारी विचारों के प्रसार हेतु समाचार-पत्र एवं पम्पलेट का वितरण करना।
- देश के शहीदों की जीवनियों को संगीत व नाटक के द्वारा लोगों के सामने रखकर मातृभूमि के प्रति प्रेम जागृत करना।
- हथियार प्राप्त करना, बम बनाना, बंदूकें इत्यादि चोरी करना, विदेशों से शस्त्र खरीदकर देश में चोरी छिपे लाना।
- अत्याचारी अफसरों, मुखबिरों एवं देशद्रोहियों की हत्या करना।
- सैनिक शिक्षा, व्यायाम, धार्मिक कार्यक्रम, शक्ति पूजा आदि के लिए युवकों की भर्ती करना।
- 1920 के दशक में क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों की विचारधारा एवं कार्यक्रम में परिवर्तन आया। इस चरण के क्रांतिकारी नई चेतना और विचारधारा से भी युक्त थे। ये क्रांतिकारी समाजवादी विचारधारा से युक्त थे।
- इस द्वितीय चरण के क्रांतिकारियों का मानना था कि उन्हें इन तमाम व्यवस्थाओं का उन्मूलन करना है जिसके तहत् एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण करता है। इन्होंने राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ समाजवादी व्यवस्था की स्थापना का लक्ष्य भी निर्धारित किया। इन्होंने रेल, परिवहन के अन्य साधनों इस्पात एवं जहाज निर्माण जैसे बड़े उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का भी प्रस्ताव रखा।
- **भगत सिंह** ने क्रांति को सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक स्वाधीनता के रूप में परिभाषित किया। उन्होंने घोषित किया कि, भारत में संघर्ष तब तक चलता रहेगा जब तक मुट्ठीभर शोषक अपने लाभ के लिए आम जनता के श्रम का शोषण करते रहेंगे।
- इन क्रांतिकारियों का कार्यक्रम था- सारे भारत में स्वतंत्र मजदूरी एवं किसानों के राज की स्थापना, मजदूरों व किसानों को संगठित करना, ऐसे **आर्थिक, औद्योगिक** व **सामाजिक** आंदोलन के साथ सहानुभूति प्रकट करना जो सांप्रदायिकता से दूर रहकर देश को उनके उद्देश्य अर्थात् सम्पूर्ण आजादी और किसान मजदूर राज बनाने में सहायता करे।

विभिन्न क्रांतिकारी गतिविधियाँ (Various Revolutionary Activities)

- भारत में वैयक्तिक स्तर पर 1897 में पूना के **चापेकर** बंधुओं ने दो ब्रिटिश अफसरों **रैंड** एवं **एमहर्स्ट** की हत्या कर दी। कारण यह बताया गया कि, इन्होंने प्लेग के समय उचित कार्यवाही नहीं की थी।
- 1907 **ई.** में बंगाल के **लेफ्टिनेंट गवर्नर** पर जानलेवा हमला किया, हालाँकि यह प्रयास असफल रहा।
- 1908 में क्रांतिकारी-राष्ट्रवादी गतिविधियों की वास्तविक शुरूआत को देखा जा सकता है। इस समय की प्रमुख घटना थी-**खुदीराम बोस** एवं **प्रफुल्ल चाकी** द्वारा उस गाड़ी/बग्घी पर बम फेंका गया जिसमें उनके अनुसार मुजफ्फरपुर का बदनाम जिला-न्यायाधीश **किंग्सफोर्ड** यात्रा कर रहा था लेकिन दुर्भाग्यवश इसमें दो अंग्रेज महिलाएँ मारी गईं। पकड़े जाने पर प्रफुल्ल चाकी ने स्वयं को गोली मार ली तथा **खुदीराम बोस** को फाँसी दी गई। चाकी एवं बोस का यह बलिदान आगे के क्रांतिकारियों के लिए प्रेरणा स्रोत रहा।
- मद्रास में **'भारतमाता एसोसिएशन'** के वांची अय्यर ने गरमदलीय नेता चिदम्बरम पिल्लई की गिरफ्तारी का विरोध कर रही भीड़ पर गोली चलाने वाले अफसर की हत्या कर दी।
- **रासबिहारी बोस** एवं **शचींद्र सान्याल** ने **लॉर्ड हार्डिंग** की हत्या का असफल प्रयास किया।

संस्थागत स्तर पर (Institutional Level)

क्रांतिकारी गतिविधियों के तहत् जब अंग्रेजों का दमन चक्र तेज हुआ तब कई गुप्त समितियाँ भी निर्मित हुईं जिनमें बंगाल में **'अनुशीलन समिति', 'युगांतर'** आदि प्रमुख रहीं।

बम्बई में 1904 में वी.डी. सावरकर एवं उनके भाई गणेश ने **'मित्रमेला', 'अभिनव भारत'** आदि संगठन बनाये। महाराष्ट्र में गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र पूना, नासिक एवं बंबई आदि रहे। इसी प्रकार मद्रास क्षेत्र में **'भारतमाता एसोसिएशन'** प्रमुख गुप्त क्रांतिकारी समिति रही।

भारत से बाहर क्रांतिकारी गतिविधियाँ (Revolutionary Activities Outside India)

- क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों ने सिर्फ भारत में ही नहीं अपनी गतिविधियाँ संचालित कीं वरन, विदेशों में भी अपने अड्डे बनाए। वस्तुत: अनेक क्रांतिकारी सरकारी दमन से बचने के लिए विदेश चले गए और वहाँ जाकर अपना संघर्ष जारी रखा। इनमें सिर्फ भागे हुए क्रांतिकारी ही नहीं थे बल्कि ऐसे भी क्रांतिकारी थे जिन्हें यूरोप, अमेरिका, दक्षिण-पूर्व एशिया भेजा गया ताकि भारतीय राष्ट्रवाद को प्रचारित कर धन का एकत्रीकरण किया जाए।
- विदेशों में आंदोलन के प्रचार एवं प्रसार का श्रेय **श्यामजी कृष्ण वर्मा** को जाता है। वे तिलक की सिफारिश पर लंदन गए थे और 1904-14 के बड़े ही नाजुक दौर में उन्होंने लंदन, पेरिस और जेनेवा में भारत की **स्वतंत्रता** के लिए बड़े **जोर-शोर** से आंदोलन चलाया।
- **श्यामजी कृष्ण वर्मा** ने 1905 में **'होमरूल सोसायटी'** तथा **'इंडिया हाउस'** की स्थापना की। उन्होंने **'द इंडियन सोसियोलोजिस्ट'** (The Indian Sociologist) नामक समाचार पत्र भी निकाला जिसमें भारत में स्वराज की प्राप्ति को अपना लक्ष्य बनाया गया।
- इंडिया हाउस के एक सक्रिय सदस्य मदनलाल ढींगरा ने 1909 में भारत सचिव के **सहायक कर्जन वायली** की गोली मारकर हत्या कर दी। ढींगरा को फाँसी की सजा दी गई। इस षड्यंत्र में शामिल होने के लिए वी.डी. सावरकर को गिरफ्तार कर भारत भेज दिया गया।
- **वी.डी. सावरकर** पर मुकदमा चलने के पश्चात् लंदन गुट ने यह महसूस किया कि ब्रिटिश विरोधी गतिविधियाँ जारी रखने के लिए लंदन अब सुरक्षित नहीं है। अत: वे वहाँ से पेरिस या अन्य यूरोपीय राजधानियों में चले गए। इन नेताओं में प्रमुख थे **चट्टोपाध्याय, अय्यर** एवं **हरदयाल** आदि।

गदर आंदोलन (Gadar Movement)

- **गदर आंदोलन** प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारंभ की परिस्थितियों में ब्रिटेन की कठिनाइयों का लाभ उठाकर सशस्त्र तरीके से भारत की मुक्ति का प्रयास था।
- इसकी पृष्ठभूमि काफी पहले से ही उत्तरी अमेरिका में रह रहे पंजाबी प्रवासियों द्वारा तैयार की गयी थी। वहाँ पंजाबी प्रवासी नस्लवादी भेदभाव

के शिकार थे, इसके कारण इनमें राष्ट्रवादी चेतना का संचार हुआ और वे भारत के बाहर रहकर भी भारत की मुक्ति चाहते थे।
- वास्तव में **गदर आंदोलन** के सदस्य प्राथमिक स्तर पर प्रवासी भारतीयों को जागृत करना चाहते थे और अंततः सशस्त्र विद्रोह द्वारा ब्रिटिश शासन की समाप्ति चाहते थे।

आरंभिक गतिविधियाँ (Initial Activities)

- 1907 में रामनाथ पुरी ने **'सर्कुलर-ए-आजादी'** नामक पत्रिका निकाली, जिसमें स्वदेशी आंदोलन को हरसंभव सहायता देने की बात की गई।
- तारकनाथ दास ने **'फ्री हिंदुस्तान' (Free Hindustan)** नामक पत्रिका निकाली, जिसमें भारत की मुक्ति की बात थी।
- **जी.डी. कुमार** ने गुरुमुखी लिपि में **'स्वदेश-सेवक'** नामक पत्र निकाला, जिसमें सामाजिक सुधारों का समर्थन किया गया और हिन्दुस्तानी सिपाहियों को ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध बगावत करने की सलाह दी गई।
- 1910 में तारकनाथ दास एवं **जी.डी. कुमार** ने सिएटल (अमेरिका) में **'यूनाइटेड इंडिया हाउस'** की स्थापना की, जिसका एक उद्देश्य वहाँ काम कर रहे हिन्दुस्तानी मजदूरों को संगठित करना था।

संगठन, योजना एवं कार्यक्रम (Organization, Policy and Programme)

उत्तरी अमरीका में 1913 तक ऐसी गतिविधियाँ हो चुकी थीं, जिससे गदर आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार हुई। अब विभिन्न गतिविधियों का नेतृत्व **लाला हरदयाल** ने किया।
- मई, 1913 में **'हिन्दी एसोसिएशन'** की स्थापना हुई। बाद में इसी का नाम **'हिन्दुस्तान गदर पार्टी'** रख दिया गया। **सोहन सिंह भाखना** अध्यक्ष तथा **लाला हरदयाल** महासचिव बनाये गए।
- सेन फ्रांसिस्को (यू.एस.) को गदर पार्टी का मुख्यालय बनाया गया।
- गदर पार्टी द्वारा एक पत्रिका निकाली गई, जो पहले उर्दू में तथा आगे चलकर कई अन्य भाषाओं में निकाली गई। इस पत्रिका का उद्देश्य राष्ट्रवादी भावनाओं को जनता में प्रसारित करना था।
- अखबार के ऊपर **'अंग्रेजी राज्य का दुश्मन'** लिखा होता था तथा इसके माध्यम से अंग्रेजी राज्य के काले चिट्ठे के रूप में उसके नकारात्मक प्रभावों, धन का निष्कासन, अतिशय लगान, सेना पर खर्च, फूट डालो एवं शासन करो आदि का वर्णन रहता था। साथ ही, इसके माध्यम से जनता के सभी वर्गों को जोड़ने के लिए धर्म-निरपेक्ष कविताएँ भी होती थीं।
- योजनाओं के स्तर पर गदर आंदोलन 1776 ई. के अमेरिकी क्रांति से भी प्रेरित हुआ, जिसका मूल स्वर यह था कि प्रवासी भारतीयों की वास्तविक प्रतिष्ठा के लिए उनके अपने देश (भारत) का स्वतंत्र होना आवश्यक है। इसकी गतिविधियों से क्रांतिकारी विचारधारा से प्रेरित एक वर्ग भी तैयार हुआ जिसने आगे चलकर पंजाब तथा अन्य क्षेत्रों में वामपंथी विचारधारा एवं किसान आंदोलनों को विकसित करने में प्रमुख भूमिका निभाई।
- इसके द्वारा जो समाजवाद एवं जनतंत्रवाद की विचारधारा विकसित की गई वह आगे चलकर भारतीय राष्ट्रवाद की विचारधारा का प्रमुख अंग बनी।
- इसके माध्यम से धर्मनिरपेक्षता का दृष्टिकोण भी विकसित हुआ जो राष्ट्रवाद के एकजुट विकास के लिए महत्त्वपूर्ण था। यह सही है कि गदर आंदोलन में सिक्खों की संख्या ज्यादा थी पर अन्य को भी समान महत्त्व दिया गया। उदाहरण के लिए लाला हरदयाल हिन्दू थे तो बरकतउल्ला मुस्लिम।
- इन्होंने सिक्खों के संदर्भ में ब्रिटिश नीति की इस मंशा को उजागर किया कि अंग्रेजों ने सिक्खों को लड़ाकू कौम इसलिए कहा है कि, वे अंग्रेजों के प्रति अपनी वफादारी बनाए रखें।

गदर आंदोलन: 1914 की घटनाएँ तथा गदर का अंत (Gadar Movement: Events of 1914 and End of Gadar)

- 1914 के प्रारंभ में ही **गदर आंदोलन** के नेता लाला हरदयाल की गिरफ्तारी हो गई। इसी समय **'कामागाटामारू जहाज प्रकरण'** हुआ।
- इस प्रकरण के तहत् गुरदीत सिंह के नेतृत्व में यह जहाज सिंगापुर से बैंकूवर (कनाडा) जा रहा था पर कनाडा में प्रवासी लोगों के आने के लिए नये नियम बना दिये गए थे जिसके तहत् सीधे अपने जहाज पर आने वालों के अलावा अन्य जहाजों पर कनाडा आने पर प्रतिबंध था। इस नियम के कारण यह जहाज पुनः वापस लौटा तथा जब वह कलकत्ता पहुँचा तब ब्रिटिश पुलिस से उसका संघर्ष हुआ।
- इस घटना का संदर्भ एवं महत्त्व यह है कि इस पूरी प्रक्रिया में गदर के विचारों का भी प्रचार-प्रसार हुआ क्योंकि यह मामला अप्रवासी भारतीयों के साथ किये जा रहे भेदभाव से भी संबंधित था और इस भेदभाव की समाप्ति के लिए सार्थक हल यही था कि उनका अपना देश स्वतंत्र होना चाहिए।
- प्रथम विश्व युद्ध जैसे ही शुरू हुआ तब ब्रिटेन की युद्ध में व्यस्तता का लाभ उठाते हुए गदर आंदोलनकारियों ने अंतिम **'एलान-ए-जंग'** की योजना तैयार की, जिसकी शुरूआत पंजाब से होनी थी। करतार सिंह सराभा जैसे नेताओं ने इसके लिए आम जनता में आधार बनाने का प्रयास किया साथ ही भारतीय सिपाहियों को विद्रोह का संदेश दिया गया।
- गदर क्रांतिकारियों की यह योजना सीमित रूप में ही सफल हो पाई तथा ब्रिटिश दमन की प्रक्रिया तीव्र हो गई। परिणामतः गदर आंदोलन की सशस्त्र क्रांति आधारित राष्ट्रमुक्ति की योजना असफ़ल रही। रास बिहारी बोस जैसे क्रांतिकारी नेता भारत से बाहर चले गये।
- इस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध के प्रारंभ के समय विकसित हुआ गदर आंदोलन अपने उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर पाया पर इसके बावजूद इस आंदोलन की कई उपलब्धियाँ एवं कमजोरियाँ रहीं।

गदर आंदोलन की उपलब्धियाँ (Achievements of Gadar Movement)

- यद्यपि क्रांतिकारी राष्ट्रवाद के तहत् उभरने वाला गदर आंदोलन अपने मूल उद्देश्यों में सफल नहीं हो सका, फिर भी इसने एक सीमा तक राष्ट्रवाद की क्रांतिकारी विचारधारा को जनसमुदाय में लोकप्रिय बनाने में सफलता प्राप्त की।
- इसने उपनिवेशवाद के वास्तविक स्वरूप को जनता के समक्ष लाया तथा इस तथ्य को भी स्थापित किया कि, ब्रिटिश उपनिवेशवादी शोषणपरक नीतियाँ ही भारत के पिछड़ेपन का कारण हैं।

कमजोरियाँ/सीमाएँ (Weaknesses/Limitations)

- ये परिस्थितियों को सही समय पर समझने में असफल रहे।
- इन्होंने अंग्रेजों की सही ताकत का अंदाजा नहीं लगाया।
- इन्होंने आंदोलन के लिए सीमित क्षेत्रों पर ही ज्यादा ध्यान दिया जैसे-पंजाब।
- साथ ही कहीं न कहीं ये भारतीय जनता के संपूर्ण स्वरूप को समझने में भी सफल नहीं हो पाए।

निष्कर्ष (Conclusion)

इन कमियों के बावजूद भी भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में गदर आंदोलन की उल्लेखनीय भूमिका रही। अगर सिर्फ सफलता को ही मानक बनाया जाए तो तात्कालिक उद्देश्यों में असफलता के बावजूद गदर आंदोलन ने क्रांतिकारी तरीकों

से राष्ट्रवाद को विकसित करने में ऊर्जावान भूमिका का निर्वहन किया।

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का द्वितीय चरण
[IInd Phase of Revolutionary Nationalism (1922-1934)]

1890 के दशक से क्रांतिकारी राष्ट्रवाद की गतिविधियाँ प्रारम्भ होती हैं जो 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ तक जारी रहती हैं।
प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान तथा असहयोग आंदोलन के समय ये गतिविधियाँ स्थिर रूप में थीं, पर पुन: 1922 में असहयोग आंदोलन की वापसी के पश्चात् की परिस्थितियों में क्रांतिकारी राष्ट्रवाद के दूसरे चरण का आरंभ एवं विकास दिखाई पड़ता है।
वास्तव में असहयोग आंदोलन के दौरान क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों ने भी आंदोलन के विस्तार में सक्रिय भूमिका निभाई थी। परंतु आंदोलन की असमय वापसी से युवा क्रांतिकारियों का एक बार फिर राष्ट्रवाद की मुख्य धारा से मोहभंग हुआ। क्रांतिकारी राष्ट्रवाद के दूसरे चरण के प्रारंभ होने के पीछे यह सबसे प्रमुख कारण था।
इसके अतिरिक्त 1920 के दशक में समाजवादी विचारों के प्रसार, किसान एवं मजदूर आंदोलनों के विकास, राष्ट्रीय राजनीति में मुख्यधारा की गतिविधियों में शून्यता आदि कारणों से भी क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का द्वितीय चरण अस्तित्व में आता है।
इस दूसरे चरण में क्रांतिकारी गतिविधियों की दो धाराएँ दिखाई पड़ती हैं जिन्हें क्षेत्रीय संदर्भों में देखा जा सकता है-

पहली धारा (पंजाब एवं यूपी आदि में केंद्रित गतिविधियाँ)
[First Direction (Activities in Punjab and U.P etc.)]

'हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' की स्थापना (Establishment of Hindustan Republican Association)

इस क्षेत्र की क्रांतिकारी गतिविधियों की व्यवस्थित शुरूआत 1924 में कानपुर में **'हिंदुस्तान रिपब्लिक एसोसिएशन'** (HRA) की स्थापना से होती है। इसकी स्थापना में रामप्रसाद बिस्मिल, शचींद्रनाथ सान्याल की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

- इस क्रांतिकारी संगठन की स्थापना का मुख्य उद्देश्य था-सशक्त क्रांति के द्वारा संघीय गणतंत्र या संयुक्त राज्य भारत की स्थापना करना।
- आगे चलकर HRA के नेतृत्व में ही इस क्षेत्र की विभिन्न क्रांतिकारी गतिविधियाँ संपन्न हुईं जिनमें प्रमुख थी-**काकोरी कांड (1925)**। भगत सिंह, भगवती चरण वोहरा आदि की इसमें सक्रिय भूमिका रही और इस पर समाजवादी विचारों का प्रभाव बढ़ता रहा।
- पहले चरण की अपेक्षा एक निर्णायक परिवर्तन भी इसमें दिखा, जहाँ **भगत सिंह** जैसे क्रांतिकारी अपने क्रांतिकारी दर्शन में वैयक्तिक वीरतापूर्ण कार्यवाहियों से ज्यादा सामूहिक संघर्षों को महत्त्वपूर्ण मानने लगे।
- कहा जा सकता है कि दूसरे चरण में क्रांतिकारी गतिविधियाँ भी अब अधिक से अधिक जनमत को जोड़ने पर केंद्रित होने लगीं।
- 1928 में HRA को HSRA- Hindustan socialist Republican Association के रूप में स्थापित किया गया। इस स्थापना के पीछे भी समाजवादी विचारों का बढ़ता प्रभाव था।
- इस संस्था के तहत् 1928 में सांडर्स की हत्या की गई।
- इस हत्याकांड में भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, राजगुरु आदि शामिल थे।
- 1929 में केंद्रीय विधानसभा में ट्रेड डिस्प्यूट बिल, पब्लिक सेफ्टी बिल आदि का विरोध करने के उद्देश्य से बम फेंका गया।
- जिसके पीछे मूल उद्देश्य डर का माहौल पैदा कर ब्रिटिश हुकूमत के समक्ष अपना पक्ष रखना था और साथ ही भारतीय जनता को ब्रिटिश शासन की शोषणकारी नीतियों के प्रति सक्रिय प्रतिरोध हेतु भी प्रेरित करना था, पर 1931 में लाहौर षड्यंत्र केस के तहत् **23 मार्च, 1931** को **भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव** को फाँसी दे दी गई।
- इस घटना के पश्चात् एक तरह से इन क्षेत्रों से क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का द्वितीय चरण समाप्त सा हो गया।

द्वितीय धारा (बंगाल में केंद्रित)
[Second Direction (Concentrated in Bengal)]

इस क्षेत्र में भी असहयोग आंदोलन के पश्चात् उपजी परिस्थितियों में नये प्रकार के परिवर्तन दिखाई पड़े। कांग्रेस यहां दो धाराओं में बंट गई थी।

- पहला अनुशीलन समिति गुट जिसमें जे.एन. सेनगुप्ता आदि कांग्रेसी नेता शामिल थे तथा दूसरा युगांतर गुट जिसमें सुभाषचंद्र बोस आदि शामिल थे।
- 1925 में चितरंजन दास की मृत्यु के पश्चात् बंगाल में एक प्रकार से राजनीतिक नेतृत्व की शून्यता की स्थिति सामने आई।
- इन्हीं परिस्थितियों में तथा कुछ अन्य कारणों से बंगाल में क्रांतिकारी राष्ट्रवाद के दूसरे चरण का विकास हुआ।
- प्रारंभिक गतिविधियों में 1924 ई. में **गोपीनाथ साहा** द्वारा **चार्ल्स टैगॉट** की हत्या का प्रयास किया गया। पर यहाँ के क्रांतिकारियों में **सूर्यसेन** सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहे। इनके नेतृत्व में 1930 में **चटगाँव शस्त्रागार** की लूट की गई कुछ समय बाद ये पकड़े गए और 1934 में इन्हें फाँसी दे दी गई जिसके साथ ही बंगाल के क्रांतिकारी राष्ट्रवाद की दूसरी धारा लगभग समाप्त सी हो गई।
- इस धारा की उल्लेखनीय विशेषता क्रांतिकारियों में युवतियों की सक्रिय भागीदारी थी जिनमें **प्रीतिलता वाडेकर, कल्पना दत्त** आदि उल्लेखनीय हैं।
- बंगाल में महिला क्रांतिकारियों में शांति घोष व सुनीति चौधरी थीं जिन्होंने 1931 में जिलाधिकारी की गोली मार कर हत्या कर दी तथा फरवरी, 1932 में बीना दास ने दीक्षांत समारोह में गवर्नर को गोली मार दी।
- कुल मिलाकर क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का दूसरा चरण सीमित काल के लिए ही रहा पर स्वरूप की दृष्टि से देखे तो हम पाते हैं कि, पहले चरण की अपेक्षा नेतृत्व, उद्देश्य, कार्यक्रम, जनसहभागिता आदि विभिन्न आधारों पर यह चरण व्यापक संदर्भों वाला था।
- सबसे बड़ी बात यह रही कि अब क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए जनता के बड़े से बड़े भाग को जोड़ने की कोशिश की गई। इसके पीछे कहीं न कहीं यह भी कारण रहा कि इस दौर में राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा भी जनसहभागिता आधारित थी। किसान एवं मजदूर संगठित हो रहे थे तथा समाजवादी विचारों के प्रसार से अब राष्ट्रीय आंदोलन में राजनीतिक तत्वों के साथ ही सामाजिक-आर्थिक तत्वों पर भी विशेष जोर दिया जा रहा था।
- अपनी कमियों के बावजूद **क्रांतिकारी राष्ट्रवाद** का यह चरण भी भारतीय **राष्ट्रवाद** के विकास में इसलिए उल्लेखनीय है कि इसने राष्ट्रवाद की मुख्य धारा के विराम अवस्था में अपनी **सक्रिय गतिविधियों** के माध्यम से राष्ट्रवादी जागरण को बनाये रखा।

क्रांतिकारी दर्शन का प्रतिपादन
(Rendering of Revolutionary Philosophy)

भगत सिंह ने अपने क्रांतिकारी सहयोगियों के साथ मिलकर क्रांतिकारी दर्शन के माध्यम से क्रांतिकारी संघर्ष के तरीके एवं नीति के लक्ष्य को प्रस्तुत किया। यद्यपि **'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन'** के भीतर काफी समय से इस मुद्दे पर विचार मंथन चल रहा था।

- अक्टूबर, 1924 में एच.आर.ए की संस्थापक परिषद ने जनता को सामाजिक, क्रांतिकारी और साम्यवादी सिद्धांतों की शिक्षा देने तथा उनका प्रचार-प्रसार करने का निर्णय लिया। 1925 में अपने घोषणापत्र में कहा कि **'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन'** का उद्देश्य उन तमाम व्यवस्थाओं का उन्मूलन करना है, जिनके तहत् एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण करता है।

- एच.आर.ए. ने रेलवे तथा परिवहन के अन्य साधनों तथा इस्पात और जहाज निर्माण जैसे बड़े उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का भी प्रस्ताव रखा। एच.आर.ए. ने किसानों और मजदूरों का संगठन बनाने तथा **'संगठित हथियारबंद क्रांति'** के लिये काम करने का भी निर्णय लिया।
- अपने अंतिम वर्षों के दौरान (1920 के दशक में) ये क्रांतिकारी विनाशकारी तथा व्यक्तिगत आतंकवादी गतिविधियों से दूर होने लगे तथा उनका झुकाव राजनीतिक जनांदोलन की तरफ होने लगा।
- रामप्रसाद बिस्मिल ने अपनी हिरासत के दौरान युवकों से पिस्तौल और रिवाल्वर का साथ छोड़ देने, क्रांतिकारी षड्यंत्रों में हिस्सा न लेने और खुला आंदोलन चलाने की अपील की। उन्होंने युवकों से **हिन्दू-मुस्लिम** एकता बनाए रखने तथा सभी राजनीतिक दलों से कांग्रेस के नेतृत्व में एक होने की भी अपील की।
- बिस्मिल ने साम्यवाद में अपनी आस्था व्यक्त की तथा इस सिद्धांत का समर्थन किया कि 'प्रकृति की संपदा पर प्रत्येक इंसान का बराबर का अधिकार है'।
- चन्द्रशेखर आजाद के अनुरोध पर भगवती चरण वोहरा ने **'द फिलॉसफी ऑफ द बॉम्ब'** (बम का दर्शन) नामक प्रसिद्ध पुस्तक की रचना की। इसमें क्रांतिकारियों की ओर से जारी वह दस्तावेज या बयान था, जो उन्होंने जनता को अपनी विचारधारा से अवगत कराने हेतु जारी किया था।
- अपनी गिरफ्तारी से पूर्व भगत सिंह मार्क्सवाद से काफी प्रभावित थे तथा उग्रवाद एवं व्यक्तिगत उग्रवाद से उनका भरोसा उठ गया था। उनका मानना था कि व्यापक जनांदोलन ही सफल क्रांति लाने का एकमात्र तरीका है।
- दूसरे शब्दों में क्रांति का तात्पर्य है- 'जनता के द्वारा, जनता के लिये'।
- इसी उद्देश्य से भगत सिंह ने 1926 में पंजाब में क्रांतिकारियों के खुले संगठन **'भारत नौजवान सभा'** के गठन में प्रमुख भूमिका अदा की। भगत सिंह इस सभा के संस्थापक महामंत्री थे। **नौजवान भारत सभा** का उद्देश्य-युवकों, मजदूरों तथा किसानों के मध्य राजनीतिक कार्य करना, उन्हें संगठित करना तथा गाँवों में सभा की शाखाएँ खोलना था।
- भगत सिंह तथा सुखदेव ने छात्रों के मध्य खुले तौर पर संवैधानिक कार्य करने हेतु **'लाहौर छात्र संघ'** का भी गठन किया। भगत सिंह तथा उनके कामरेड साथियों ने यह भी महसूस किया कि क्रांति का तात्पर्य है 'क्रांतिकारी बुद्धिजीवियों के नेतृत्व में समाज के दलित, शोषित व गरीब तबके के जनांदोलन का विकास'। भगत सिंह कहा करते थे कि, 'गाँव एवं कारखाने ही वास्तविक क्रांतिकारी सेनाएँ हैं'।
- इन क्रांतिकारियों का मानना था कि बलिदान देकर ही युवाओं को प्रोत्साहित किया जा सकता है। अत: इन्होंने बहादुरीपूर्ण कार्यवाहियों के माध्यम से जनता के बीच अपने सिद्धान्तों को पहुँचाकर कैडर तैयार करने का कार्य किया।

क्रांति की पुनर्व्याख्या
(Reinterpretation of Revolution)

भगत सिंह व उनके क्रांतिकारी सहयोगियों ने क्रांति की पुनर्व्याख्या करते हुए उसे हिंसा व लड़ाकूपन से अलग करार दिया। इन्होंने साम्राज्यवाद को जड़ से उखाड़ फेंकने तथा समाजवादी समाज की स्थापना के उद्देश्य के रूप में क्रांति को परिभाषित किया।

- समाजवादी समाज का तात्पर्य ऐसे समाज से था जहा 'व्यक्ति द्वारा व्यक्ति का शोषण न हो'।
- एसेंबली बम कांड के विचारण के दौरान भगत सिंह ने अदालत में कहा था कि, 'क्रांति के लिये रक्तरंजित संघर्ष आवश्यक नहीं है', व्यक्तिगत बैर के लिये भी उसमें कोई जगह नहीं है। यह पिस्तौल और बम की उपासना नहीं है। क्रांति से हमारा आशय यह है कि अन्याय पर आधारित वर्तमान व्यवस्था समाप्त होनी चाहिए।
- भगत सिंह का मार्क्सवाद तथा समाज के संबंध में मार्क्स की वर्गीय अवधारणा में पूर्ण विश्वास था। उन्होंने कहा कि 'किसानों को सिर्फ विदेशी शोषणकर्ताओं से ही मुक्ति नहीं पानी है बल्कि उन्हें पूंजीपतियों और जमींदारों के चंगुल से भी मुक्त होना है।
- उन्होंने यह भी कहा कि "भारत में संघर्ष तब तक जारी रहेगा, जब तक मुट्ठी भर शोषणकर्ता अपने हितों की पूर्ति के लिये सामान्य जनता के श्रम का शोषण करते रहेंगे।" इस बात का कोई विशेष महत्त्व नहीं है कि शोषणकर्ता अंग्रेज पूंजीपति हैं या भारतीयों या अंग्रेजों का गठबंधन है या पूरी तरह भारतीय है।
- उन्होंने समाजवाद को वैज्ञानिक ढंग से परिभाषित किया जिसका अर्थ था पूँजीवाद तथा वर्ग-प्रभुत्व का पूरी तरह अंत।
- भगत सिंह द्वारा गठित **नौजवान भारत सभा के नियमों** के अनुसार-इस सभा के सदस्य किसी ऐसी संस्था, संगठन या पार्टी से किसी तरह का संबंध नहीं रखेंगे जो साम्प्रदायिकता का प्रचार करती हो। साथ ही, वे धर्म को जनता का व्यक्तिगत मामला मानते हुये जनता के मध्य सहनशीलता की भावना पैदा करने का प्रयास करेंगे।
- भगत सिंह ने जनता के अंधविश्वास तथा धर्मांधता के जाल से मुक्त होने पर बल दिया। उन्होंने धर्म एवं धार्मिक दर्शन की भी आलोचना की तथा नास्तिकता का मार्ग अपनाया।
- उन्होंने घोषित किया कि "प्रगति के लिये संघर्षरत प्रत्येक व्यक्ति को अंधविश्वासों की आलोचना करनी ही पड़ेगी तथा रूढ़िवादी विचारों को चुनौती देनी ही पड़ेगी।' प्रचलित मान्यताओं की प्रत्येक व्यवस्था को प्रासंगिकता एवं सत्यता की कसौटी पर खरा उतरना होगा।

क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का मूल्यांकन
(Evaluation of Revolutionary Nationalism)

क्रांतिकारी राष्ट्रवादी आंदोलन ने भारत से ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने का लक्ष्य निर्धारित किया था, किंतु उनका यह लक्ष्य पूरा नहीं हुआ, इसलिए प्राय: स्वतंत्रता संघर्ष में उनकी भूमिका पर प्रश्न चिह्न लगाया जाता है और उन्हें असफल करार दिया जाता है।

- स्वतंत्रता संघर्ष में इन क्रांतिकारियों की भूमिका पर कोई टिप्पणी करने से पहले यह समझना जरूरी होगा कि सफलता से हमारा आशय क्या है? यदि सफलता का आशय यह है कि आंदोलन के बाद उसके लक्ष्य की पूर्ण प्राप्ति हुई, तो फिर हमें यह कहना पड़ेगा कि गाँधीवादी आंदोलन भी असफल रहा क्योंकि एक वर्ष के अंदर स्वराज की प्राप्ति, पूर्ण स्वराज की प्राप्ति, भारत छोड़ो इत्यादि मांगे जो गाँधीवादी आंदोलनों ने रखी थीं, पूरी नहीं हुईं।
- वस्तुत: आंदोलन का उद्देश्य तत्कालीन उद्देश्य पूर्ति न होकर जनता में जागृति, स्वतंत्रता के प्रति कर्त्तव्य, साम्राज्यवाद पर दबाव डालने या उलटने और उसके लिए सर्वस्व न्यौछावर करने की भावना तथा आत्मत्याग की भावना का विकास करने से होता है।
- यदि इस पहलू के आधार पर क्रांतिकारियों की भूमिका के बारे में विचार करें, तो हमें यह मानना पड़ेगा कि उन्होंने भारत के युवकों में जागृति फैलाने और साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष में जुट जाने के लिए तैयार करने में जो भूमिका निभाई वह किसी से कम नहीं है।
- वस्तुत: राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारतीय स्वतंत्रता भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न वैचारिक आयामों से होकर गुजरी जिसमें एक आयाम क्रांतिकारी विचारधारा का भी था।

क्रांतिकारी आतंकवादी गतिविधियों से जुड़ी महत्त्वपूर्ण संस्थायें			
संस्था	**संस्थापक**	**वर्ष**	**स्थान**
मित्र मेला	बी.डी. सावरकर	1899	नासिक
अभिनव भारत	बी.डी. सावरकर	1904	लन्दन और भारत
अनुशीलन समिति	बारीन्द्र कुमार घोष, जतीन्द्र नाथ बनर्जी	1902	कलकत्ता
युगान्तर	बी. के. घोष, भूपेन्द्र नाथ दत्त	1906	कलकत्ता
भारत स्वशासन समिति तथा इण्डिया हाउस	श्याम जी कृष्ण वर्मा	1905	लन्दन
अंजुमाने मोहिब्बाने वतन	सरदार अजीत सिंह	–	लाहौर
पेरिस इंडिया सोसायटी	मैडम कामा	1905	पेरिस
हिन्दू एसोसिएशन ऑफ दि अमेरिका	सोहन सिंह भाकना	1913	पोर्टलैंड
'गदर' युगान्तर आश्रम	सोहन सिंह भाकना, लाला हरदयाल	1913	सैन फ्रांसिस्को
हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन	शचीन्द्र नाथ सान्याल राम प्रसाद बिस्मिल योगेश चटर्जी	1924	कानपुर
हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन	चन्द्र शेखर आजाद	1928	दिल्ली
भारतीय गणतन्त्र सेना	सूर्यसेन	1930	चटगांव
भारत नौजवान सभा	भगत सिंह, छबीलदास, यशपाल	1926	पंजाब
लाहौर छात्र संघ	सुखदेव एवं भगत सिंह	1925	पंजाब
ढाका अनुशीलन समिति	पुलिन दास	1902	बंगाल

क्रांतिकारी आतंकवादी गतिविधियों से जुड़ी महत्वपूर्ण समाचार पत्र, पत्रिका तथा पुस्तकें			
समाचार पत्र/पुस्तकें	**संपादक एवं प्रकाशन**	**समाचार पत्र/पुस्तकें**	**संपादक एवं प्रकाशन**
युगान्तर	वारीन्द्र कुमार घोष, भूपेन्द्र नाथ दत्त	'गदर'	हरदयाल (न्यूयार्क)
संध्या	ब्रह्मबांधव उपाध्याय	बंदी जीवन	शचीन्द्र नाथ सान्याल
बंदेमातरम	अरविन्द घोष	भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम	बी.डी. सावरकर
जमींदार	सिराजुद्दीन	'भवानी मंदिर'	अरबिन्द घोष
भारत माता	अजीत सिंह	'वर्तमान रणनीति'	बारीन्द्र कुमार घोष
इण्डियन सोशियोलॉजिस्ट	श्याम जी कृष्ण वर्मा	पथेर दावी	शरत चन्द्र चट्टोपाध्याय
वंदेमातरम	मैडम कामा (लंदन)	बम मैनुअल	पी.एन. बापट

Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

होमरूल आंदोलन
(Home Rule Movement)

परिचय (Introduction)

भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में प्रथम विश्व युद्ध का महत्व दो दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। एक ओर इस युद्धकाल में भारत के क्रांतिकारियों ने अपनी सक्रियता को बढ़ाया तो वहीं दूसरी ओर देश के अंदर होमरूल आंदोलन विकसित हुआ।

- होमरूल आंदोलन को जन्म देने का श्रेय मूलत: एनी **बेसेंट** को जाता है। एनी बेसेंट **1893** में **'थियोसॉफिकल सोसायटी'** के प्रचार के लिए भारत आयी थीं।
- उनका मानना था कि मानवता को आध्यात्मिकता का पाठ पढ़ाना भारत का मिशन है, किंतु इस मिशन को एक परतंत्र भारत पूरा नहीं कर सकता है।
- अत: आवश्यक है कि भारत स्वायत्तशासी हो।
- भारत को स्वायत्तशासी बनाने के लिए एनी बेसेंट ने निश्चय किया कि आयरलैंड की होमरूल आंदोलन की तर्ज पर भारत में भी एक आंदोलन चलाया जाए। ऐसा आंदोलन चलाने के लिए वह एक ओर तो कांग्रेस के नरमदल व तिलक के साथियों में एकता का प्रयास करने लगीं तथा दूसरी ओर होमरूल के विचार का प्रचार करने के लिए **1915** में **'न्यू इंडिया'** (New India) और **'कॉमन वील'** (Common Weal) नामक अखबार को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया।
- उन्होंनें प्रचार किया कि जिस तरह अन्य उपनिवेशों में वहां की यूरोपीयन जनता को अपनी सरकार स्वयं चलाने का अधिकार है, उसी तरह भारत की सरकार चलाने का अधिकार भारतीयों को मिलना चाहिए।
- **1914** में 6 वर्ष की सजा काटकर तिलक भी मांडले जेल से वापस आ गए थे। वापस आकर तिलक ने भी एक ओर कांग्रेस के अंदर एकता का प्रयास किया और दूसरी तरफ अपने लक्ष्य को अधिक व्यवहारिक बनाते हुए घोषणा की कि, 'मैं हिंदुस्तान की प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार चाहता हूँ जैसा कि आयरलैंड में वहाँ के आंदोलनकारी मांग कर रहे हैं।'
- दिसंबर, **1915** में कांग्रेस के बंबई अधिवेशन में तिलक और एनी बेसेंट को कांग्रेस के अंदर सफलता मिल गयी जब सत्येन्द्र नाथ सिन्हा की अध्यक्षता में गरमपंथियों को कांग्रेस में वापस लेने का फैसला लिया गया, किंतु उनका जो दूसरा उद्देश्य था कि कांग्रेस होमरूल लीग का गठन आंदोलन चलाने के उद्देश्य से करे, वह पूरा नहीं हो सका। कांग्रेस द्वारा होमरूल आंदोलन की दिशा में पहल न करने पर तिलक और एनी बेसेंट ने निजी प्रयासों पर बल देना ही उचित समझा।
- **1916** में परिस्थितियाँ एक जन आंदोलन के अनुकूल हो रही थीं। **1914** में जब प्रथम विश्व युद्ध प्रारंभ हुआ तो इंग्लैंड व उसके मित्र राष्ट्रों ने घोषणा की थी कि यह युद्ध प्रजातंत्र की रक्षा के लिए है।
- राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के सिद्धांत का भी उल्लेख किया गया था। भारतीयों ने आशा की थी कि इन सिद्धांतों को भारतीयों पर भी लागू किया जाएगा और इसी आशा से भारत के राष्ट्रीय नेतृत्व ने ब्रिटेन का पूर्ण रूप से साथ दिया था, किंतु युद्ध के चलते जब दो वर्ष हो गए तथा अपना खून बहाकर भी भारतीय साम्राज्यवादी शासन से कुछ न प्राप्त कर सके तो आशा का स्थान आक्रोश और बेचैनी ने ले लिया।
- जनता के इसी असंतोष को संघर्ष की दिशा में प्रवाहित करके स्वशासन प्राप्त करना एनी बेसेंट तथा तिलक का उद्देश्य था।

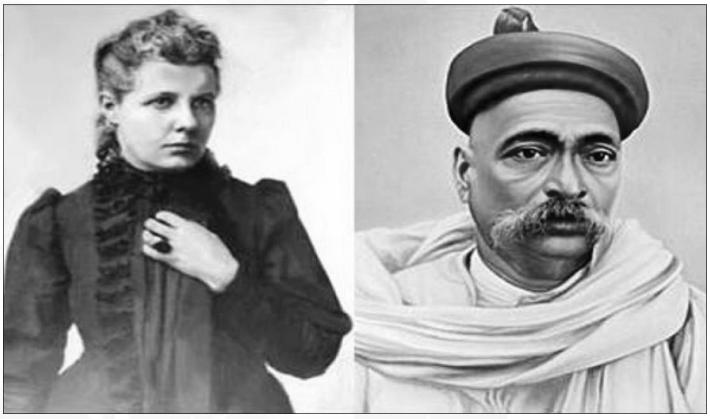
तिलक का होमरूल आंदोलन (Home Rule Movement of Tilak)

अपने उद्देश्य को ध्यान में रखकर तिलक ने अप्रैल, **1916** में बेलगाँव में **'होमरूल लीग'** की स्थापना की घोषणा कर दी।

अप्रैल, **1917** तक इस लीग की सदस्य संख्या 19000 और **1918** के आरंभ में 32,000 हो गयी। इस समय दो अलग-अलग (तिलक और एनी बेसेंट का होमरूल) नेतृत्व में गठित होमरूल लीग से जनता में भ्रम न फैले तथा आपस में कोई गलतफहमी न उत्पन्न हो इसके लिए तिलक तथा एनी बेंसेट ने अपने-अपने कार्यक्षेत्र निर्धारित कर लिए।

तिलक की लीग कर्नाटक, महाराष्ट्र मध्य प्रांत और बरार में सक्रिय रही तथा देश के अन्य भाग एनी बेसेंट की लीग के जिम्मे रहे। इन अन्य भागों में बंबई का नगर भी सम्मिलित था।

आश्चर्य की बात यह है कि तिलक व एनी बेसेंट ने अपनी-अपनी लीग का एक-दूसरे के साथ विलय नहीं किया।



ऐनी बेसेंट *बाल गंगाधार तिलक*

- होमरूल आंदोलन अपने अधिकारों को पाने का आंदोलन था। इसके लिए तिलक ने लीग की छ: शाखाएँ अपने कार्यक्षेत्र में खोलीं। प्रचार हेतु मराठी में छ: तथा अंग्रेजी में दो पर्चे निकालकर हजारों की संख्या में विस्तारित किए गए।
- तिलक ने महाराष्ट्र का भ्रमण कर जनसभाओं के माध्यम से होमरूल की अवधारणा को लोकप्रिय बनाया।
- होमरूल की मांग के साथ उन्होनें क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा तथा भाषाई प्रांतों की स्थापना की मांग को भी रखा। उनकी दृष्टि में ये दोनों मांगे एक थीं।
- उन्होंने कहा- "मराठी, तेलगू, कन्नड़ व अन्य भाषाओं के आधार पर प्रांतों के गठन की मांग का अर्थ ही है कि शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा हो।"
- तिलक की होमरूल लीग को शीघ्र ही सरकारी दमन का सामना करना पड़ा। **23 जुलाई, 1916** को तिलक को **'कारण बताओ'** नोटिस देकर पूछा गया कि उन पर प्रतिबंध क्यों न लगा दिया जाए इसके साथ ही उनसे 60 हजार का मुचलका भरने को भी कहा गया।
- इस दमन से तिलक को प्रसन्नता ही हुई क्योंकि जनता की सहानुभूति होमरूल लीग के कार्यकताओं के साथ हो गयी। इस घटना का एक फायदा और हुआ, हाईकोर्ट ने तिलक को निर्दोष करार दिया।
- इस अवसर का तिलक ने भी फायदा उठाया और अपने सर्वाजनिक भाषाणों में कहने लगे कि **'होमरूल'** या **'स्वशासन'** की मांग व्यक्त करने के लिए सरकार ने अनुमति दे दी है।

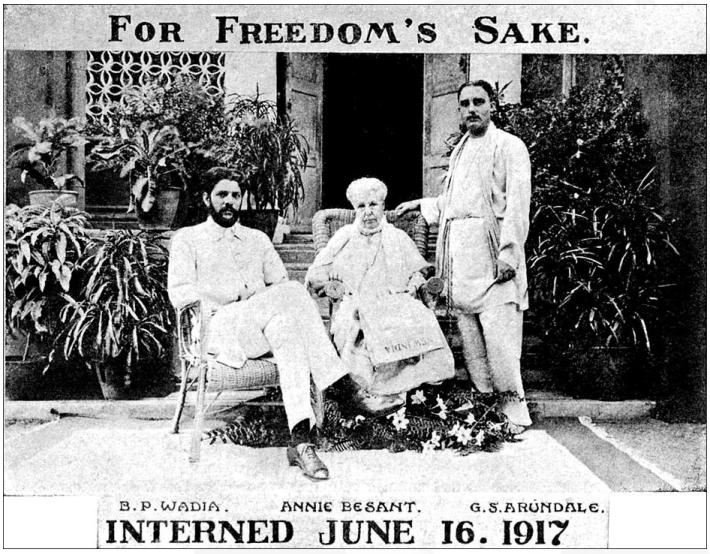
एनी बेसेंट का होमरूल आंदोलन
(Home Rule Movement of Annie Beasant)

एनी बेसेंट के समर्थकों ने होमरूल ग्रुप का गठन आरंभ कर दिया। जमुनादास, द्वारकादास, शंकर लाल और इंदुलाल याज्ञनिक ने प्रचार के उद्देश्य से 'यंग इंडिया' का प्रकाशन प्रारंभ कर दिया।

सितंबर, 1916 में एनी बेसेंट ने होमरूल लीग के गठन की घोषणा कर दी, **'अरुण्डेल'** को इसका सचिव बनाया गया।

1917 में एनी बेसेंट के लीग की सदस्य संख्या 27,000 हो गई थी। उनकी लीग आकार तथा विस्तार की दृष्टि से बड़ी किंतु संगठन की दृष्टि से कमजोर थी।

लीग का सारा बोझ वस्तुत: एनी बेसेंट, अरुण्डेल, रामास्वामी तथा बी.पी. वाडिया के कंधों पर था। जवाहर लाल नेहरू भी बेसेंट की लीग के सदस्य थे।



- एनी बेसेंट की लीग ने **'न्यू इंडिया'** के माध्यम से प्रचार किया, पुस्तकालयों की स्थापना की राजनीतिक कक्षाओं का आयोजन किया, परचे बाँटे तथा राजनीतिक सभाएँ कीं।
- सरकार ने इस लीग के आंदोलन का भी दमन किया तथा एनी बेंसेट के बरार व मध्य प्रांत में प्रवेश करने पर प्रतिबंध लगा दिया।

1917 के आरंभ से ही होमरूल आंदोलन में तेजी आयी तथा नरमपंथियों का एक हिस्सा भी आंदोलन में सम्मिलित हो गया। आंदोलन के बढ़ते प्रभाव ने सरकार की बेचैनी को बढ़ा दिया, जिससे सरकार की दमन चक्र नीति में तेजी आयी। मद्रास सरकार ने छात्रों को राजनीतिक सभाओं में आने पर प्रतिबंध लगा दिया। एनी बेसेंट, वाडिया और अरुण्डेल को नजरबंद कर दिया।

इस दमन की तीखी प्रतिक्रिया हुई, सर एस. सुब्रह्मण्यम अय्यर ने अपनी **'नाइट हुड'** की उपाधि त्याग दी तथा मालवीय, जिन्ना और सुरेन्द्र नाथ बनर्जी जैसे नेता लीग के सदस्य बनकर सक्रिय हो गए। अपने कार्य की इस तीखी प्रतिक्रिया ने अंग्रेज सरकार को चिंतित कर दिया तथा जन आक्रोश को शांत करने हेतु **'सुविधा देने'** की नीति का अनुकरण करने का निश्चय किया गया।

अगस्त, 1917 में नये भारत मंत्री मांटेग्यू ने घोषणा की कि– "ब्रिटिश शासन की नीति है कि भारत के स्वशासन के लिए विभिन्न संस्थाओं का क्रमिक विकास किया जाए जिससे भारत में स्वशासन की स्थापना की जा सके।' इस घोषणा के तहत् सितम्बर, 1917 को एनी बेसेंट को रिहा कर दिया गया।

- सरकार की नई नीति ने होमरूल आंदोलन के कमजोर करने के अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। एनी बेसेंट की रिहाई तथा अगस्त की घोषणा के बाद बहुतों को लगा कि अब आंदोलन की जरूरत नहीं रही अत: वह निष्क्रिय हो गये।
- 1918 की सुधार योजना की घोषणा ने स्वयं एनी बेसेंट को ढुलमुल बना दिया और अंत में वे सुधारों का समर्थन कर आंदोलन से अलग हो गयीं। इसी बीच तिलक **'इंडियन अनरेस्ट'** के लेखक वैलेंटाइन शिरोल पर मानहानि के मुकदमों की पैरवी के लिए इंग्लैंड चले गए जिससे होमरूल आंदोलन नेतृत्व विहीन हो गया और बिखर गया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि होमरूल आंदोलन भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के क्रमिक विकास का महत्त्वपूर्ण चरण था। यद्यपि यह आंदोलन पूर्णरूप से सफल नहीं हुआ फिर भी यह उपलब्धियों से भरा रहा।

इस आंदोलन ने अगस्त, 1917 की घोषणा तथा 1918-19 की सुधार योजना देने के लिए सरकार को बाध्य किया। इसके अलावा इस आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि इसने आंदोलन के लिए जुझारू योद्धा तैयार किए।

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में यही जुझारू आंदोलनकारी आजादी की मशाल लेकर आगे बढ़े और अंतत: अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त की।

राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गाँधी की भूमिका
(Role of Mahatma Gandhi in the National Movement)

परिचय (Introduction)

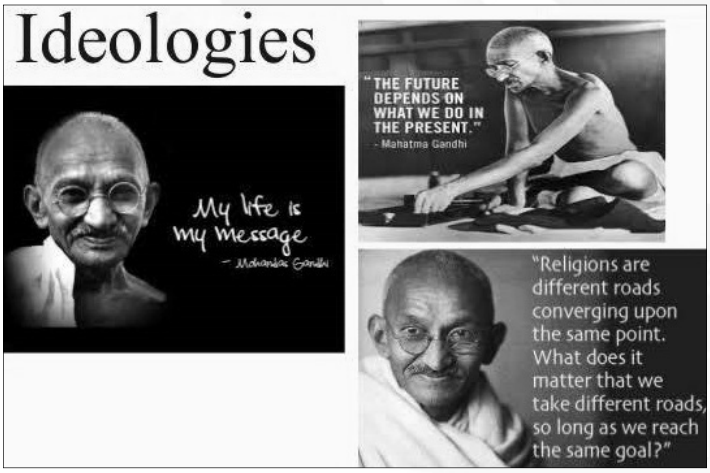
राष्ट्रीय आंदोलन में गाँधी जी की गतिविधियों का काल, कांग्रेस का तीसरा चरण (1915-47) था जो गाँधी युग के नाम से जाना जाता है, क्योंकि गाँधी जी ने राष्ट्रीय आंदोलन के विचार, दिशा एवं स्वरूप को निर्णायक रूप से परिवर्तित किया तथा उसे सार्थक निष्कर्षों तक पहुँचाया। उस समय कांग्रेस का उद्देश्य पूर्ण स्वराज की प्राप्ति करना था।

कांग्रेस की स्थापना एवं तत्पश्चात राष्ट्रीय आंदोलन का विकास प्रथम चरण या नरमपंथी चरण की प्रमुख उपलब्धि यह रही कि सीमित स्तर पर ही सही भारतीयों को एक राजनीतिक मंच मिला, भारतीयों के विकास के लिए विभिन्न विकास कार्यक्रमों तथा प्रशासन में पर्याप्त भागीदारी की बात कही गई। इसी चरण में **गरमपंथी विचारधारा** भी धीरे-धीरे प्रभावी होने लगी जो आगे चलकर **1905** के **बंगाल विभाजन** के विरोध में हुए **स्वदेशी आंदोलन** में प्रमुखता प्राप्त कर सकी।

- गरमपंथियों के प्रभाव तथा क्रांतिकारी आंदोलनों के कारण **1905 से 1915** का द्वितीय चरण उग्रपंथी चरण कहा गया। लेकिन इन आंदोलनों की कई सीमाएँ जनसहभागिता के स्तर पर, नेतृत्व के स्तर पर, आंदोलन के उद्देश्य, कार्यक्रमों और प्रभावों के स्तर पर देखी जा सकती हैं।

महात्मा गाँधी की विचारधारा (Ideology of Mahatma Gandhi)

गाँधी जी की विचारधारा पर कई धर्मों जैसे- वैष्णव, भगवद्, जैन, ईसाई आदि का एवं **टॉलस्टाय** और **रस्किन** के साहित्यों का प्रभाव पड़ा। गाँधी जी ने अपने विचारों के विकास में जीवन के **विभिन्न अनुभवों** के **अनुरूप सिद्धांत** एवं व्यवहार में समन्वय पर बल दिया। **गाँधी जी के विचारों** को हम व्यवस्थित रूप से कई संदर्भों में देख सकते हैं-



- गाँधी जी के राजनीतिक विचार रामराज्य की कल्पना, स्वराज की अवधारणा, **सत्ता का विकेन्द्रीकरण**, मानव **कल्याण की अवधारणा**, नैतिक मापदंड और सर्वधर्म समभाव आदि पर आधारित थे। गाँधी जी ने राजनीति और नैतिकता के निकट संबंध को स्पष्ट करने के लिए साधन एवं साध्य दोनों पर बल दिया। उनका मानना था कि जैसा साधन होगा वैसा ही साध्य होगा। इसकी तुलना उन्होंने बीज और वृक्ष से की और बताया कि बीज जैसा होगा वृक्ष भी बीज की प्रकृति के अनुरूप होगा। गाँधी जी के राजनैतिक धारणाओं का मूल आधार **'सर्वोदय'** था।
- **'सर्वोदय'** की परिकल्पना में गाँधी जी ने सभी के समान उन्नति की बात कही। उनका मानना था कि एक व्यक्ति का भी उतना ही महत्त्व है जितना कि अन्य व्यक्तियों का सामूहिक रूप से। वहीं सामाजिक विचारों के तहत् मानवतावाद, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता, स्त्री-पुरुष समानता, अस्पृश्यता की समाप्ति, हरिजन उत्थान, मार्क्स से विभेद (वर्ग-संघर्ष की जगह वर्ग-समन्वय पर जोर) आदि मतों पर जोर दिया।
- गाँधी जी ने सांस्कृतिक विचारों में धर्म पर बल देते हुए समस्त धर्मों में निहित मूलभूत सत्य पर बल तथा धर्म और राजनीति के समन्वय की बात की। गाँधी के अनुसार शिक्षा आत्म साक्षात्कार या अपने को पहचानने की कला है। उन्होंने बुनियादी शिक्षा को महत्त्व दिया। साथ ही, गाँधी जी ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति की आलोचना की। उन्होंने मातृभाषा में शिक्षा पर बल दिया, जो नैतिक मूल्यों पर आधारित एवं रोजगारपरक हो।
- गाँधी जी ने आर्थिक विचारों के तहत् आर्थिक विकेन्द्रीकरण, ग्रामीण उद्योगों (स्वदेशी उद्योग, चरखा) आदि पर बल दिया। गाँधी जी ने व्यक्तिगत सम्पत्ति का विरोध नहीं किया, पर सम्पत्ति संचय का विरोध किया। उन्होंने ट्रस्टीशिप सिद्धांत (न्यास का सिद्धांत) का प्रतिपादन किया इसके अनुसार संपत्ति का स्वामित्व निजी होते हुए भी उसके स्वामी उसे सार्वजनिक उपयोग के लिए बनाए। यह सिद्धांत औद्योगिक पूंजीवाद के विरोध में था।

गाँधी जी का जनांदोलनों के प्रति दृष्टिकोण (Gandhiji's approach towards Mass Movement)



- गाँधी जी ने जनता के हितों को स्वयं से जोड़ते हुए संघर्ष को जनसंघर्ष में बदलने की प्रकृति पर जोर दिया तथा उन्होंने जनांदोलन का विकास नैतिक संघर्ष के रूप में किया। इनकी विचारधारा एवं कार्यप्रणाली में कोई विरोधाभास नहीं था। गाँधी जी के जनांदोलन के दो प्रमुख सैद्धांतिक आधार थे पहला सत्याग्रह, इसका तात्पर्य-अहिंसा के माध्यम से असत्य पर आधारित बुराई का विरोध करना तथा इसको प्राप्त करने के साधनों में हड़ताल, असहयोग (जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप कार्य नहीं करने वाली भ्रष्ट सरकार के प्रति सहयोग नहीं करना), सविनय अवज्ञा (नागरिकों द्वारा अहिंसक तरीके से सरकारी कानूनों एवं नीतियों की अवज्ञा करना) तथा अन्य तरीकों में उपवास, धरना, सामाजिक-आर्थिक बहिष्कार आदि सम्मिलित है।
- गाँधी जी ने सत्याग्रह के तहत् साधन एवं साध्य की पवित्रता पर बल दिया। दूसरा, गाँधी जी ने अहिंसा को सत्याग्रह का आधार बनाते हुए जनांदोलन के विस्तार हेतु तथा जनाधार के निर्माण के आवश्यक तत्व के रूप में

अहिंसात्मक तरीकों को प्रमुख हथियार बनाया।

- गाँधी जी ने सरकार के स्तर पर **'दबाव-समझौता-दबाव'** की नीति का सहारा लिया, वहीं जनता के स्तर पर **'संघर्ष-विराम-संघर्ष'** की नीति का। गाँधी जी ने समन्वय की स्थापना पर हमेशा बल दिया, चाहे आंदोलन सक्रिय दौर में हो या निष्क्रिय दौर में।
- गाँधी जी के रचनात्मक कार्यों में सामाजिक उद्धार जिसके तहत् हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रति प्रतिबद्धता, हरिजन उद्धार कार्यक्रम, नारी-उत्थान पर बल आदि सम्मिलित थे। वहीं आर्थिक या सामाजिक संरचनात्मक कार्यों में ग्राम उद्योगों यथा चरखा, खादी का विकास महत्त्वपूर्ण रहा। साथ ही, राष्ट्रीय शिक्षा का विकास, स्वदेशी रचनात्मक कार्यों से देश का आर्थिक विकास आदि भी इसमें सम्मिलित रहे।
- गाँधी जी की लोकप्रियता के प्रमुख कारणों में उनके दृष्टिकोण के अलावा सादा जीवन एवं पवित्र आचरण, पारम्परिक प्रतीकों का प्रयोग, (भाषा, वस्त्र पहनावा) तत्कालीन आंतरिक एवं बाह्य परिवेश में गाँधी जी द्वारा स्वयं को अनुकूल बनाना तथा अफवाहों की सीमित भूमिका की विद्यमानता रही है।

दक्षिण अफ्रीका में गाँधी जी (Gandhiji in South Africa)

- ***प्रारंभिक जीवन तथा दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के खिलाफ संघर्ष***- मोहनदास करमचन्द गाँधी का जन्म **2 अक्टूबर, 1869** को गुजरात के काठियावाड़ में पोरबंदर नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता काठियावाड़ के दीवान थे। गाँधी जी ने इंग्लैंड से बैरिस्टरी की पढ़ाई की।
- वे गुजरात के एक व्यापारी दादा अब्दुल्ला का मुकदमा लड़ने दक्षिण अफ्रीका गये। वहाँ गोरे लोगों द्वारा एशियाई मजदूरों के साथ हो रहे प्रजातीय उत्पीड़न व भेदभाव को देखकर वे काफी दु:खी हुए।
- गाँधी जी ने इस रंग भेद की नीति का विरोध किया तथा दक्षिण अफ्रीका में भारतीय मजदूरों को उनके अधिकारों के लिये संघर्ष करने की प्रेरणा दी तथा उन्हें संगठित किया। गाँधी जी जनवरी, **1915** में भारत आ गये।
- ***दक्षिण अफ्रीका में भारतीय (Indian in South Africa)***- दक्षिण अफ्रीका में भारतीय तीन वर्गों में संगठित थे। प्रथम-वर्ग में मुख्यतया दक्षिण भारत से आए हुए मजदूर थे, जो **1890** के पश्चात् गन्ने के खेतों में काम करने दक्षिण अफ्रीका गए थे। दूसरे-वर्ग में भारत से आये वे मैमन मुसलमान थे जो मजदूरों के साथ दक्षिण अफ्रीका आये थे तथा तीसरे वर्ग में भारत से आये वे मजदूर थे जो कार्य का अनुबंध समाप्त होने के पश्चात् अपने परिवार के साथ वहीं रहने लगे।
- ये भारतीय मुख्यत: अशिक्षित थे तथा उन्हें अंग्रेजी का अत्यल्प या बिलकुल ज्ञान नहीं था। ये सभी दक्षिण अफ्रीका में प्रजातीय भेदभाव के शिकार थे। दक्षिण अफ्रीका की अंग्रेजी सरकार इन भारतीयों पर अनेक जुल्म ढ़ाती थी। इन्हें मत देने के अधिकार से वंचित रखा गया था।
- इन्हें कुछ विशेष स्थानों में ही रहने की अनुमति दी गई थी, जो अत्यंत संकीर्ण तथा गंदे थे तथा इनकी मानवीय दशायें अत्यंत निम्न थीं। अंग्रेजी सरकार ने 9 बजे रात्रि के पश्चात् भारतीयों तथा काले अफ्रीकियों को घर से बाहर निकलने पर प्रतिबंध लगा दिया था तथा उन्हें सार्वजनिक फुटपाथों के प्रयोग की अनुमति नहीं दी गई थी।

दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी के प्रयोग (1894-1906) (Gandhi Experiment in South Africa (1894-1906)

गाँधी जी ने इस चरण में दक्षिण अफ्रीकी सरकार को याचिकाओं एवं प्रार्थना-पत्रों के माध्यम से भारतीय मजदूरों के खिलाफ हो रहे उत्पीड़न का विरोध किया। उन्होंने ब्रिटेन को भी इस संबंध में अनेक प्रार्थना-पत्र भेजे। उन्होंने ब्रिटेन से इस विषय पर हस्तक्षेप करने की मांग की जिससे भारतीयों की दशा में सुधार हो सके। गाँधी जी ने ब्रिटेन से कहा कि चूँकि भारत, ब्रिटेन का उपनिवेश है, अत: ब्रिटेन का उत्तरदायित्व है कि वह भारतीयों पर हो रहे प्रजातीय भेदभाव एवं उत्पीड़न को रोकने का प्रयास करे। गाँधी जी ने भारतीयों को जागरुक कर संगठित करने का प्रयास किया।

- इन्होंने यहां **'नटाल भारतीय कांग्रेस'** की स्थापना की तथा **'इंडियन ओपीनियन'** नामक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया।
- ***अहिंसात्मक प्रतिरोध या सत्याग्रह का काल (1906-1914)***- इस चरण में गाँधी जी ने अहिंसात्मक प्रतिरोध या सविनय अवज्ञा की नीति के माध्यम से दक्षिण अफ्रीकी सरकार के विरुद्ध संघर्ष किया। **1906** में प्रारम्भ इस चरण को गाँधी जी ने सत्याग्रह का नाम दिया।
- ***पंजीकरण प्रमाणपत्र के विरुद्ध सत्याग्रह (1906)***- दक्षिण अफ्रीकी सरकार ने प्रत्येक भारतीय को अपने अंगूठे के निशान वाले पंजीकरण प्रमाणपत्र को हर समय अपने पास रखने का कानून बना दिया। गाँधी जी के नेतृत्व में सभी भारतीयों ने इस भेदभावमूलक कानून का विरोध करने का निर्णय लिया। गाँधी जी ने इस हेतु **'अहिंसात्मक प्रतिरोध सभा'** का गठन किया। सरकार द्वारा गाँधी जी सहित कई भारतीयों को पंजीकरण कानून का विरोध करने के कारण जेल में डाल दिया गया। बाद में सरकारी अधिकारियों ने स्वयं इन सभी निडर भारतीयों का छलपूर्वक रजिस्ट्रेशन कर दिया। लेकिन भारतीयों ने अपना विरोध जारी रखते हुए गाँधी जी के नेतृत्व में अपने रजिस्ट्रेशन के कागजातों को सामूहिक रूप से जला दिया।
- ***प्रवासी भारतीयों के प्रवेश पर रोक का विरोध***- सरकार ने एक नये कानून द्वारा प्रवासी भारतीयों के प्रवेश पर रोक लगा दी। इस कानून का विरोध करने हेतु अनेक वरिष्ठ भारतीय नटाल से ट्रांसवाल आए। वहीं उन्होंने ट्रांसवाल के तमाम भारतीयों का साथ दिया। यहाँ लोगों ने इस कानून का उल्लंघन किया। भारतीयों ने इस कानून का उल्लंघन करने हेतु एक प्रांत से दूसरे प्रांत की यात्राएँ कीं। सरकार ने विरोधियों के प्रति दमन का मार्ग अपनाया। 1908 में गाँधी जी एवं कई अन्य भारतीयों को जेल में डाल दिया गया तथा उन्हें तरह-तरह की यातनाएँ दी गयीं। सरकार ने भारतीय व्यापारियों को आर्थिक हानि पहुँचाने की भी धमकी दी।
- ***टॉलस्टॉय फार्म की स्थापना***- सरकार के अड़ियल रुख व आर्थिक समस्या ने गाँधी जी के नेतृत्व में चल रहे आंदोलन को संकटग्रस्त कर दिया। आंदोलनकारियों की सक्रियता धीरे-धीरे कम होने लगी। गाँधी जी ने आंदोलन को संकट की स्थिति में पाकर अंग्रेज अधिकारियों के साथ वार्ता की, जिसका कोई सार्थक परिणाम नहीं निकला। इन्हीं परिस्थितियों के मद्देनजर गाँधी जी ने **'टॉलस्टाय फार्म'** की स्थापना की तथा अपने एक जर्मन शिल्पकार मित्र कालेनबाख की मदद से सत्याग्रहियों के परिवार की पुनर्वास समस्या को हल किया तथा उनके भरण-पोषण की व्यवस्था की। इस फार्म हेतु भारतीयों ने भी काफी पैसा भेजा।
- ***पोल टैक्स तथा भारतीय विवाहों को अप्रमाणित करने के विरुद्ध अभियान***- सरकार ने इकरारनामे की अवधि समाप्त होने पर दक्षिण अफ्रीका में बसे भारतीयों पर तीन पौंड का कर लगा दिया। इसके खिलाफ व्यापक सत्याग्रह किया गया। वहाँ बसे भारतीय मजदूरों के लिए तीन पौंड की राशि चुकाना असंभव स्तर पर था। चूंकि इनकी आमदनी 10 शिलिंग मासिक से भी कम थी। अत: इस नियम के विरुद्ध सत्याग्रह में सभी भारतीयों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया तथा इसे व्यापक जन-आंदोलन का रूप दे दिया। इसी बीच सुप्रीम कोर्ट के एक निर्णय ने आंदोलन को और भड़का दिया।
- कोर्ट ने उन सभी विवाहों को अवैध घोषित कर दिया जो ईसाई पद्धति से नहीं सम्पन्न हुए थे तथा जिनका पंजीकरण नहीं हुआ था। इस कानून के

अनुसार हिन्दू, मुस्लिम और पारसी रीति-रिवाजों से संपन्न सभी शादियाँ अवैध थीं तथा ऐसी शादियों से उत्पन्न सभी संतानें भी अवैध थीं।

- भारतीयों ने इस फैसले को अपनी महिलाओं का अपमान समझा। गाँधी जी सहित अनेक सत्याग्रही कानून की अवहेलना कर नटाल से ट्रांसवाल पहुँच गए। सरकार ने इन लोगों को बंदी बनाकर कारावास में डाल दिया। शीघ्र ही खदान मजदूरों ने भी सरकारी दमन के विरोध में हड़ताल कर दी।
- सरकार की कठोर दमनकारी नीतियों से समूचा भारतीय समुदाय आक्रोशित हो उठा। गोपाल कृष्ण गोखले ने पूरे भारत का दौरा कर इस अत्याचार के खिलाफ जनमत तैयार किया।
- लॉर्ड हार्डिंग ने भी इस सरकारी दमन का विरोध करते हुए इसकी निष्पक्ष जांच की मांग की।
- दक्षिण अफ्रीकी सरकार ने गाँधी जी, लॉर्ड हार्डिंग, गोखले तथा सी.एफ. एन्ड्रयूज से कई दौर की लंबी बातचीत के बाद भारतीयों की मुख्य मांगें मान ली।
- सरकार ने तीन पौंड का कर तथा पंजीकरण प्रमाणपत्र से संबद्ध कानून समाप्त कर दिया।
- अब भारतीय अपने रीति-रिवाजों से विवाह कर सकते थे। साथ ही, सरकार ने भरोसा दिलाया कि भारतीय अप्रवासियों की अन्य कठिनाइयों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जाएगा।

दक्षिण अफ्रीका में गाँधी जी के अनुभव (Experience of Gandhiji in South Africa)

- दक्षिण अफ्रीका में गरीब भारतीयों के अदम्य साहसपूर्ण संघर्ष को देखकर गाँधी जी काफी प्रभावित हुए तथा उन्हें यह विश्वास हो गया कि भारतीय जनता आवश्यकता पड़ने पर किसी उदात्त उद्देश्य के लिये जुझारू संघर्ष और बलिदान को तैयार हो सकती है।
- यहाँ गाँधी जी ने विभिन्न सम्प्रदायों एवं समाज के विभिन्न वर्ग के लोगों को एकता के सूत्र में बांधने में सफलता प्राप्त की। उनके नेतृत्व में हिन्दू, मुस्लिम, पारसी, अमीर, गरीब, पुरुष, महिला सभी ने कंधे से कंधा मिलाकर आंदोलन में भाग लिया।
- गाँधी जी को यह अनुभव प्राप्त हुआ कि कई अहम मौकों पर नेताओं को समथर्कों की इच्छा के विरुद्ध निर्णय करना पड़ सकता है ताकि आम जन का कल्याण हो सके।
- दक्षिण अफ्रीका में गाँधी जी को विरोधी राजनीतिक धाराओं से उन्मुक्त वातावरण में एक विशिष्ट राजनीतिक शैली, नेतृत्व के नए अंदाज और संघर्ष के नये तरीकों को विकसित करने का अवसर मिला। इस विकसित रणनीति और संघर्ष शैली की कमियों और विशेषताओं से वे परिचित हो गए तथा बाद में सफलतापूर्वक गाँधी जी ने इसे अपने नेतृत्व में प्रयोग किया।

गाँधी जी की सत्याग्रह की तकनीक (Technique of Satyagraha of Gandhiji)

दक्षिण अफ्रीकी सरकार के विरुद्ध आंदोलन में गाँधी जी ने सत्याग्रह की तकनीक का प्रयोग किया, जो सत्य और अहिंसा पर आधारित था। 1906 के पश्चात् गाँधी जी ने यहां अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ किया, जिसे **'सत्याग्रह'** का नाम दिया गया। इसकी मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार थीं-

- सत्याग्रही सही-गलत का विचार किए बिना हमेशा सच्चा, अहिंसक एवं निडर रहता था।
- सत्याग्रही में बुराई के विरुद्ध संघर्ष करते समय सभी प्रकार की यातनाएँ सहने की शक्ति होनी चाहिए। ये यातनाएं सत्य के लिये उसकी आसक्ति का एक हिस्सा थीं।
- सत्याग्रही बुराई के विरुद्ध संघर्ष करते हुए बुरे व्यक्ति से प्रेम रखता है, उससे घृणा नहीं करता।
- एक सच्चा सत्याग्रही परिणाम की परवाह किए बगैर हमेशा बुराई का डटकर सामना करता है।
- केवल बहादुर एवं दृढ़ निश्चयी व्यक्ति ही सच्चा सत्याग्रही बन सकता है। सत्याग्रह कायर और दुर्बल लोगों के लिये नहीं है। कायर व्यक्ति हिंसा का सहारा लेता है, जिसका सत्याग्रह में कोई स्थान नहीं है।

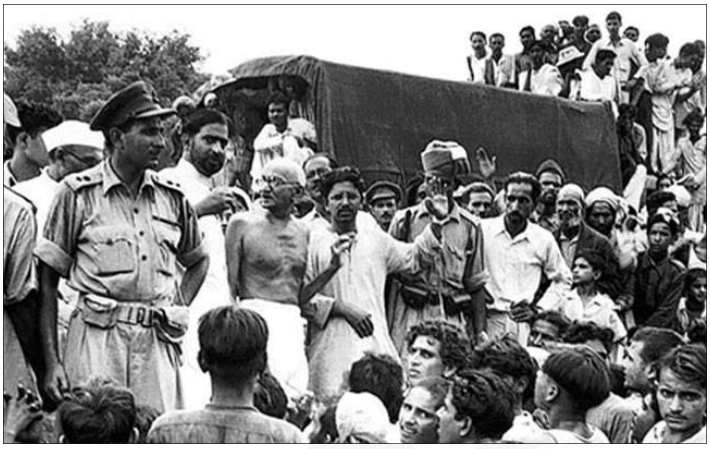
असहयोग आंदोलन से पूर्व गाँधी जी की गतिविधियाँ (Gandiji's Activities Before the Non-Cooperation Movement)

- **9 जनवरी, 1915** को भारत आगमन पर गाँधी जी का भव्य स्वागत किया गया। दक्षिण अफ्रीका में उनके संघर्षों और उनकी सफलताओं ने उन्हें भारत में अत्यंत लोकप्रिय बना दिया था। यह लोकप्रियता शिक्षित भारतीयों के साथ-साथ जनसामान्य तक पहुँच चुकी थी।



- गाँधी जी ने अगले एक वर्ष तक समूचे देश का भ्रमण कर जनसामान्य की यथास्थिति का अवलोकन करने का निर्णय किया।
- उन्होंने यह भी निर्णय लिया कि फिलहाल वह किसी राजनीतिक मुद्दें पर कोई सार्वजनिक कदम नहीं उठाएंगे।
- भारत की तत्कालीन सभी राजनीतिक विचारधाराओं से गाँधी जी असहमत थे।
- गरमपंथी राजनीति से उनकी आस्था पहले ही खत्म हो चुकी थी तथा वे होमरूल आंदोलन की इस रणनीति के भी खिलाफ थे कि अंग्रेजों पर कोई भी मुसीबत उनके लिये एक अवसर है।
- यद्यपि होमरूल आंदोलन इस समय काफी लोकप्रिय था, किन्तु इसके सिद्धांत गाँधी जी के विचारों से मेल नहीं खाते थे। उनका मानना था कि ऐसे समय में जबकि ब्रिटेन प्रथम विश्व युद्ध में उलझा हुआ है, होमरूल आंदोलन को जारी रखना अनुचित है।
- उन्होंने तर्क दिया कि इन परिस्थितियों में राष्ट्रवादी लक्ष्यों को प्राप्त करने का सर्वोत्तम मार्ग है- अहिंसक सत्याग्रह। उन्होंने सत्याग्रह से अलग मार्ग पर चलने वाले किसी भी राजनीतिक संगठन से सम्बद्ध नहीं होने की घोषणा की।
- गाँधी जी के नेतृत्व में 1917 और 1918 के आरम्भ में चम्पारण आंदोलन (बिहार) तथा खेड़ा और अहमदाबाद (दोनों गुजरात) सत्याग्रह हुए।
- ये तीनों ही आंदोलन स्थानीय आर्थिक मांगों से संबंद्ध थे। चम्पारण और खेड़ा किसान आंदोलन थे जबकि अहमदाबाद का आंदोलन औद्योगिक मजदूरों का आंदोलन था।

चंपारण सत्याग्रह 1917 (प्रथम सविनय अवज्ञा) [Champaran Satyagraha 1917 (First Civil Disobedience)]



चंपारण में नील के खेतों में कार्य करने वाले किसानों पर अंग्रेज मालिक बहुत अत्याचार कर रहे थे। उन्हें जमीन के कम से कम 3/20 भाग (तिनकठिया व्यवस्था) पर नील की खेती करना तथा मालिकों द्वारा तय दामों पर उन्हें बेचना पड़ता था।
अनुबंध से मुक्त करने के एवज में लगान एवं अन्य दरों में अत्यधिक वृद्धि कर दी गई।

- चंपारण के अनेक किसानों जिनमें राजकुमार शुक्ल प्रमुख थे, द्वारा आमंत्रित करने पर गाँधी जी चंपारण गए और किसानों की स्थिति की जाँच करने लगे। अधिकारियों द्वारा उन्हें तुरंत चंपारण से वापस चले जाने के आदेश को, दरकिनार कर गाँधी जी ने अहिंसात्मक प्रतिरोध या सत्याग्रह के मार्ग द्वारा अपनी कार्यवाही जारी रखी।
- अंतत: सरकार को विवश होकर एक जाँच समिति नियुक्त करनी पड़ी, जिसके एक सदस्य स्वयं गाँधी जी थे।
- वे आयोग को यह समझाने में सफल रहे कि तिनकठिया व्यवस्था समाप्त कर देनी चाहिए, किसानों से अवैध वसूले पैसे पर किसानों को हर्जाना दिया जाना चाहिए, बाद में बागान मालिक अवैध वसूली का 25% हिस्सा किसानों को लौटाने पर राजी हो गए और परिणामत: इसके एक दशक के भीतर ही बगान मालिकों ने चंपारण छोड़ दिया। इस प्रकार गाँधीजी ने भारत में **'सविनय अवज्ञा आंदोलन'** की प्रथम लड़ाई को सफलतापूर्वक जीता।

अहमदाबाद मिल हड़ताल (फरवरी-1918) (प्रथम भूख हड़ताल) [Ahmedabad Mill Strike February-1918 (First Hunger Strike)]

अहमदाबाद मिल में मालिकों और मजदूरों में **'प्लेग बोनस'** को लेकर विवाद छिड़ा था। प्लेग का प्रकोप तथा बढ़ी हुई महंगाई के कारण मजदूर **'प्लेग बोनस'** बरकरार रखने की मांग कर रहे थे। गाँधी जी ने मजदूरों को शांतिपूर्ण एवं अहिंसक ढंग से हड़ताल करने तथा 35% बोनस की मांग करने को कहा। जबकि मिल मालिक सिर्फ 20% बोनस देने के लिए राजी थे। गाँधी जी ने भूख हड़ताल शुरू किया। अत: मजबूर होकर मिल मालिक समझौते को तैयार हो गए तथा सारे मामले को एक ट्रिब्यूनल को सौंप दिया। ट्रिब्यूनल ने मजदूरों के पक्ष में निर्णय देते हुए, मिल मालिकों को 35% बोनस मजदूरों को भुगतान करने का फैसला सुनाया।

खेड़ा सत्याग्रह (अप्रैल-1918) [Kheda Satyagraha (April-1918)]

1918 के भयंकर अकाल के कारण गुजरात के खेड़ा जिलें में पूरी फसल बर्बाद हो गयी, फिर भी सरकार ने किसानों से मालगुजारी वसूलने की प्रक्रिया जारी रखी जबकि राजस्व संहिता के अनुसार यदि फसल का उत्पादन कुल उत्पादन के 1/4 से भी कम हो तो किसानों का राजस्व पूरी तरह माफ कर दिया जाना चाहिए। किंतु सरकार ने किसानों के राजस्व माफ करने से इंकार कर दिया।

- फलस्वरूप गाँधी जी ने किसानों को राजस्व अदा न करने तथा सरकार के दमनकारी कानून के खिलाफ संघर्ष करने की प्रेरणा दी। गाँधी जी के इस संघर्ष में **'सर्वेंट ऑफ इंडिया सोसायटी'** के सदस्य, गुजरात सभा आदि ने महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। सरकार ने पहले तो दमन का सहारा लिया, लेकिन बाद में अधिकारियों को गुप्त निर्देश दिया कि लगान उन्हीं से वसूला जाए जो लगान दे सकते हैं। इस आदेश से गाँधी जी का उद्देश्य पूरा हो गया तथा आंदोलन समाप्त हो गया।

उपरोक्त तीनों आंदोलनों की उपलब्धियाँ

- चंपारण, अहमदाबाद तथा खेड़ा आंदोलन की सफलता ने गाँधी जी के संघर्ष के गाँधीवादी तरीके, सत्याग्रह के औचित्य को सार्थक सिद्ध किया।
- गाँधी जी को देश की जनता के करीब आने तथा उसकी समस्याओं को समझने का अवसर दिया।
- गाँधी जी जनता की ताकत तथा कमजोरियों से परिचित हुए तथा उन्हें अपनी रणनीति का मूल्यांकन करने का अवसर मिला।
- इन आंदोलनों में गाँधी जी को विभिन्न वर्गों, विशेषतया युवा पीढ़ी का भरपूर समर्थन मिला तथा भारतीयों के मध्य उनकी विशिष्ट पहचान कायम हो गयी।
- एक तरह से भारत में गाँधी जी के लिए यह **"पायलट प्रोजेक्ट"** था।

रॉलेट एक्ट मार्च, 1919 (Rawlatt Act March, 1919)

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर जब भारतीय जनता संवैधानिक सुधारों का इंतजार कर रही थी उसी समय ब्रिटिश सरकार ने दमनकारी **'रॉलेट एक्ट'** जनता के सम्मुख पेश किया। सरकार ने भारत में क्रांतिकारियों के प्रभाव को समाप्त करने तथा राष्ट्रीय भावना को कुचलने के लिए इस कानून का निर्माण किया।

- रॉलेट एक्ट की व्यवस्था के अनुसार मजिस्ट्रेटों के पास यह अधिकार था कि किसी भी संदेहास्पद स्थिति वाले व्यक्ति को गिरफ्तार कर उस पर मुकदमा चला सकते थे। साथ ही, उसे अनिश्चित काल तक के लिए जेल में रख सकते थे। इसलिये इस कानून को बिना वकील, बिना अपील तथा बिना दलील का कानून कहा गया। इस प्रकार कैदी को अदालत में प्रत्यक्ष उपस्थित करने का अर्थात् बंदी प्रत्यक्षीकरण का कानून जो ब्रिटेन में नागरिक स्वतंत्रताओं की बुनियाद था उसे निलंबित करने का अधिकार सरकार ने **'रॉलेट एक्ट'** द्वारा अपने पास रख लिया।
- इसे काला अधिनियम एवं आंतकवादी अपराध अधिनियम भी कहा जाता है। सरकार इसके द्वारा किसी भी निर्दोष व्यक्ति को दंडित कर सकती थी।
- इस एक्ट के विरोध में गाँधी जी ने **6 अप्रैल, 1919** में देशव्यापी हड़ताल आयोजित किया, लेकिन तारीख की गलतफहमी के कारण सत्याग्रह प्रारंभ होने से पहले ही कई जगह इस आंदोलन ने हिंसक रूप ले लिया। गांधी जी ने स्थिति को संभालना भी चाहा लेकिन सरकार ने मौका नहीं दिया, सरकार ने बर्बरतापूर्वक दमन करना शुरू कर दिया, जिसका एक उदाहरण जलियांवाला बाग हत्याकांड है।

जलियांवाला बाग हत्याकांड 13 अप्रैल, 1919 (Jallianwala Bagh Massacre 13 April, 1919)

गाँधी जी तथा कुछ अन्य नेताओं के पंजाब में प्रवेश पर प्रतिबंध लगे होने के कारण वहाँ की जनता में बहुत आक्रोश था। पंजाब के दो लोकप्रिय नेता **डॉ. सत्यपाल** एवं **सैफुद्दीन किचलू** को गिरफ्तार कर लिया गया।

- बैसाखी के दिन **13 अप्रैल, 1919** को सत्याग्रहियों पर गोली चलाने तथा दोनों नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध एवं रॉलेट एक्ट के विरोध में अमृतसर में सभा आयोजित की गयी थी।
- इस दिन सुबह जनरल डायर ने सभा को अवैधानिक घोषित कर दिया तथा सभा के आयोजन को सरकारी आदेश की अवहेलना मानकर घटना स्थल की सैनिकों द्वारा घेराबंदी कर दी गयी तथा बर्बरतापूर्ण कार्यवाही द्वारा लगभग एक हजार लोगों की पुलिस द्वारा हत्या कर दी गयी।
- इस हत्याकांड के बाद पूरे पंजाब में मार्शल लॉ लगा दिया गया और लोगों पर अत्यंत क्रूर अत्याचार किये गए।
- पंजाब की घटनाएँ जब लोगों को ज्ञात हुई तो पूरे देश में भय और आक्रोश की एक लहर दौड़ गई।
- इस क्रूरता के विरोध में टैगोर ने **'नाइटहुड'** की उपाधि त्याग दी। भारतीय सदस्य शंकरनायर ने वायसराय की कार्यकारी परिषद से इस्तीफा दे दिया।
- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता में इस नृशंस घटना की जाँच के लिए एक आयोग की नियुक्ति की। जबकि सरकार द्व ारा जलियांवाला बाग हत्याकांड की जाँच के लिए **'हंटर आयोग'** की नियुक्ति की गयी, जिसने डायर का बचाव किया तथा सरकार ने अत्याचारी अपराधियों को दंडित करने के स्थान पर उनका पक्ष लिया, जिसके लिए जनरल डायर को सम्मानित किया गया।
- कांग्रेस द्वारा नियुक्त जाँच समिति ने अधिकारियों के बर्बरतापूर्ण कार्यवाही के खिलाफ पीड़ित परिवारों को आर्थिक सहायता देने की मांग की लेकिन सरकार ने इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इससे आक्रोशित होकर गाँधी जी ने असहयोग आंदोलन की भूमिका बनायी।

गाँधी जी का ग्रामीण भारत (Gandhiji's Rural India)

विस्तृत जनाधार के अभाव में कोई भी राष्ट्रीय आंदोलन सफल नहीं हो सकता है। कोई भी वर्ग या समुदाय किसी आंदोलन का भाग तभी बनता है जब आंदोलन की प्रगति के साथ उसे स्वयं की प्रगति दिखती है। गाँधी जी की यही व्यावहारिक सोच ग्रामीण भारत की चेतना का मुख्य कारण बनी।

- भारत आने के साथ ही गाँधीजी ने सर्वप्रथम भारत का भ्रमण किया। यहाँ उन्होंने पहले भारतीयों की समस्याओं को समझा, तत्पश्चात् अपने ग्रामीण आंदोलन चम्पारण, खेड़ा में सफलता प्राप्त की। उनकी सरल भाषा शैली ने उन्हें ग्रामीण भारत के समीप पहुंचा दिया।
- गाँधी जी ने अपने कार्यक्रमों में ग्रामीण भारत के अनेक प्रश्नों जैसे-अस्पृश्यता का अंत, बुनियादी शिक्षा सुधार के लिए तालीमी संघ, चरखा, खादी, स्वदेशी को अपनाया। वे भारत में रामराज्य के समर्थक थे।
- उन्होंने ग्रामीण जीवन की उन्नति को आंदोलन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बना दिया। यही कारण था कि गाँधी जी के आंदोलन में ग्रामीण भारत का सहयोग प्राप्त हुआ। इसके अभाव में भारतीय स्वतंत्रता कोरी कल्पना ही प्रतीत होती है।

गाँधी जी का शैक्षिक दृष्टिकोण (Gandhiji's Educational Approach)

वस्तुत: वर्ष **1833** के चार्टर एक्ट के द्वारा यह निर्देशित किया गया कि भारत में कोई मान्य शिक्षा पद्धति निर्धारित की जाए। अत: लॉर्ड विलियम बैंटिक ने अपने वैधानिक सलाहकार लॉर्ड मैकाले के नेतृत्व में एक शिक्षा आयोग का गठन किया। शिक्षा के माध्यम के विषय को लेकर विद्वानों के अलग-अलग पक्ष उभरकर सामने आए जिसमें एक पक्ष देशी भाषा तथा दूसरा पक्ष पाश्चात्य भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने का पक्षधर था।

- राजा राममोहन राय, मैकाले इत्यादि पाश्चात्य भाषा में शिक्षा देने के पक्ष में थे जिसका मुख्य उद्देश्य भारतीयों को मस्तिष्क से अंग्रेज बनाना था किन्तु पाश्चात्य शिक्षा के समर्थक भारतीय विचारक इसे सामाजिक चेतना की वृद्धि के अस्त्र के रूप में देखते थे।
- दूसरी ओर जेम्स प्रिन्सेप तथा राधाकांत जैसे विचारक भी थे जो अपनी पूर्वी शिक्षा तथा प्राचीन संस्कृति पर गर्व का अनुभव करते थे। इनका विचार था कि पाश्चात्य संस्कृति भारत का उद्धार नहीं कर सकती।
- इनके अनुसार देशी भाषा, संस्कृति तथा मूल्यों को अस्त्र बनाकर ही वास्तविक शिक्षा प्राप्त की जा सकती है। अन्त में पाश्चात्य भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया गया।

गाँधी जी ने वर्तमान शिक्षा पद्धति की कटु आलोचना करते हुए कहा था कि 'अंग्रेजी शिक्षा पद्धति ने हमारे बच्चों को रट्टू बना दिया है' इसलिए उन्होंने बेसिक (बुनियादी) शिक्षा की विचारधारा को विकसित किया तथा उसी के अनुरुप शिक्षा की व्यवस्था करने की दिशा में कार्य किया।

- उनकी बेसिक शिक्षा पद्धति इस अवधारणा पर आधारित थी कि, जिससे बच्चों में सामाजिक और व्यक्तिगत रचनात्मक गुणों को विकसित करने में मदद मिलती है।
- उनके अनुसार शिक्षा को आत्मनिर्भर होना चाहिए तथा यह राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप हो। इसके तहत् शारीरिक प्रशिक्षण, स्वच्छता, स्वावलम्बन पर जोर दिया जाना चाहिये। शिक्षा को हस्तकला से संबंधित होना चाहिए तथा इसका माध्यम मैट्रीकुलेशन तक स्थानीय भाषा हो। उनका मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को उच्चतम लक्ष्य की अनुभूति कराना एवं स्वयं में सर्वोत्तम बनने में प्रेरणादायक होना चाहिए जिससे बेरोजगारी एवं वर्ग-संघर्ष को समाप्त करने में सहायता मिल सके। मात्र अक्षर-ज्ञान या पढ़ने-लिखने की क्षमता ही शिक्षा नहीं है।
- तत्कालीन समय में शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से दी जाती थी जो पूर्ण रूप से विदेशी संस्कृति के हितों का संरक्षण करती थी। यह पद्धति भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल थी जिससे यहाँ के बच्चों का विकास अवरुद्ध होता था। यह रचनात्मक कार्यक्रमों की बजाय सैद्धांतिक ज्यादा थी। इस अर्थ में उनकी बेसिक शिक्षा पद्धति समयानुकूल तथा नैतिक शिक्षा पर जोर देने वाली थी।

राष्ट्रीय आंदोलन में 1920 का दशक
(Decade of 1920's in the National Movement)

खिलाफत और असहयोग आंदोलन
(Khilafat and Non-Cooperation Movement)

गाँधी जी के नेतृत्व में 1919 से 1922 के मध्य **खिलाफत** एवं **असहयोग** आंदोलन चलाए गए। ये दोनों आंदोलन काफी सशक्त थे, किन्तु दोनों ही अहिंसक आंदोलन थे। खिलाफत आंदोलन ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को एक महत्त्वपूर्ण पृष्ठभूमि प्रदान की तथा अंग्रेजों के विरुद्ध हिन्दू-मुस्लिम एकता को प्रोत्साहित करने में प्रमुख भूमिका निभायी।



दोनों आंदोलन प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् अंग्रेजी शासन द्वारा भारतीय संदर्भ में उठाए गए कदमों के कारण घटित हुए। इन आंदोलनों के लिये 1919 का वर्ष सबसे महत्त्वपूर्ण रहा, क्योंकि इस वर्ष में सरकारी नीतियों एवं गतिविधियों ने भारतीय समाज के लगभग हर वर्ग को असंतुष्ट कर दिया था। भारतीयों की इस असंतुष्टि हेतु निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे-

- प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् उत्पन्न हुई आर्थिक कठिनाइयों के कारण मंहगाई बहुत बढ़ गयी। कस्बों और नगरों में रहने वाले मध्यम एवं निम्न मध्यवर्ग के लोग यथा- दस्तकार, मजदूर सभी मंहगाई से परेशान हो गये थे। खाद्यानों की भारी कमी हो गयी। मुद्रास्फीति बढ़ने लगी तथा औद्योगिक उत्पादन कम हो गया। लोग करों के बोझ से दब गये। सूखे, महामारी और प्लेग से भी हजारों लोग मारे गये। इन परिस्थितियों ने भारतीयों में ब्रिटिश विरोधी भावनाओं का प्रसार कर इन्हें आंदोलन हेतु प्रोत्साहित किया।
- रॉलेट एक्ट, पंजाब में मार्शल लॉ का आरोपण तथा जलियांवाला बाग हत्याकांड जैसी घटनाओं ने विदेशी शासकों के क्रूर एवं असभ्य रवैये को उजागर कर दिया।
- पंजाब में ज्यादतियों के संबंध में हंटर कमीशन की सिफारिशों ने सबकी आँखें खोल दीं। उधर ब्रिटिश संसद विशेषकर **'हाउस ऑफ लॉर्डस'** में **जनरल डायर** के कृत्यों को उचित ठहराया गया तथा **'मार्निंग पोस्ट'** ने डायर के लिये 30 हजार पौंड की धनराशि एकत्रित की। ये गतिविधियाँ अंग्रेजी शासन का पर्दाफाश करने के लिये पर्याप्त थीं।
- 1919 के **'मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड'** सुधार भी द्वैध शासन लागू करने की नियत से लाया गया न कि आम जनता को राहत पहुँचाने के उद्देश्य से। स्वशासन की मांग कर रहे राष्ट्रवादियों को भी इससे घोर निराशा मिली।

विश्वयुद्ध के पश्चात् कई अन्य घटनाओं ने भी हिन्दू-मुस्लिम राजनीतिक एकीकरण को मजबूत आधार प्रदान कर राष्ट्रवादी आंदोलन को मजबूती प्रदान किया की। इसमें निम्न प्रमुख हैं-

- लखनऊ समझौता (1916)- इससे कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग में सहयोग बढ़ा।
- रॉलेट एक्ट का हिंदू तथा मुस्लिम वर्ग ने मिलकर विरोध किया।
- कई मुस्लिम राष्ट्रवादी जैसे- मोहम्मद अली, अबुल कलाम आजाद, हकीम अजमल खान एवं हसन इमाम इत्यादि अलीगढ़ स्कूल के रूढ़िवादी विचारों से मुक्त होकर ज्यादा प्रभावशाली हो गये। फलतः मुस्लिम लीग अलीगढ़ स्कूल के प्रभाव से मुक्त होने लगा।
- साम्राज्यवादी दासता समाप्त करने की प्रबल भावना के साथ कई युवा राष्ट्रवादियों ने भी उग्रवादी राष्ट्रवाद की वकालत की तथा राष्ट्रवादी आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाने पर बल दिया।
- इन्हीं सब गतिविधियों के परिदृश्य में खिलाफत का जन्म हुआ तथा स्वतंत्रता आंदोलन की एक कड़ी के रूप में असहयोग आंदोलन चलाया गया।

खिलाफत का मुद्दा (Issue of Khilafat)

प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत तुर्की के प्रति अंग्रेजों के रवैये से भारतीय मुसलमान अत्यन्त उत्तेजित हो गये। चूँकि भारत सहित सम्पूर्ण मुस्लिम जगत तुर्की के खलीफा को अपना धार्मिक प्रमुख मानता था। ऐसे में स्वाभाविक था कि मुसलमानों की सहानुभूति तुर्की के साथ थी।

- प्रथम विश्व युद्ध में तुर्की ने ब्रिटेन के विरुद्ध जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया का साथ दिया था। अतः युद्ध की समाप्ति के उपरांत ब्रिटेन ने तुर्की के प्रति कठोर रवैया अपनाया। तुर्की को विभाजित कर दिया गया तथा खलीफा को पद से हटा दिया गया। ब्रिटेन के इस कदम से पूरे विश्व के मुसलमानों में रोष की लहर दौड़ गयी। भारत में भी मुसलमानों ने ब्रिटेन के इस कदम की तीव्र आलोचना की तथा अंग्रेजों के सम्मुख निम्नलिखित मांगें रखीं-
- मुसलमानों के धार्मिक स्थलों पर खलीफा के प्रभुत्व को पुनर्स्थापित किया जाए।
- खलीफा के प्रदेशों की पुनर्व्यवस्था कर अधिक भू-क्षेत्र प्रदान किया जाए।



1919 के प्रारम्भ में अली बंधुओं-मोहम्मद अली तथा शौकत अली, मौलाना आजाद, अजमल खान तथा हसरत मोहानी के नेतृत्व में **'खिलाफत कमेटी'** का गठन किया गया, जिसका उद्देश्य तुर्की के प्रति ब्रिटेन के रवैया को बदलने के लिये ब्रिटेन पर दबाव डालना था।

- खिलाफत के मुद्दे ने युवा मुसलमानों में राष्ट्रवादी भावना को दृढ़ कर ब्रिटिश के प्रति विरोधी भावनाओं को प्रबलता प्रदान की। इस प्रकार देशव्यापी प्रदर्शन के लिये एक व्यापक पृष्ठभूमि तैयार हो गयी।

खिलाफत का विकास और असहयोग कार्यक्रम का प्रसार (Development of Khilafat and Spreading of Non-Cooperation Programme)

प्रारम्भ में खिलाफत के नेताओं ने सभाओं, धरनों व याचिकाओं के द्वारा ही ब्रिटिश सरकार का विरोध किया। किन्तु, बाद में इन्होंने अंग्रेजी शासन के विरोध में सशक्त प्रदर्शन किया तथा अंग्रेजों के साथ हर प्रकार से असहयोग की अवधारणा का पालन किया। इस प्रकार खिलाफत का रुख धीरे-धीरे परिवर्तित होने लगा।

- **23 नवम्बर, 1919** में खिलाफत का अखिल भारतीय सम्मेलन दिल्ली में आयोजित किया गया। जिसकी अध्यक्षता गाँधी जी को प्रदान की गयी। इस सम्मेलन में अंग्रेजी वस्तुओं के बहिष्कार की मांग की गयी। साथ ही तुर्की के अनुकूल नीतियां बनाये जाने तक सरकार के साथ किसी प्रकार का सहयोग नहीं करने की बात का समर्थन किया गया।
- अखिल भारतीय खिलाफत कमेटी के अध्यक्ष गाँधी जी ने इस मुद्दे को भारतीयों में एकता स्थापित करने तथा सरकार के विरुद्ध असहयोग आंदोलन करने के अवसर के रूप में प्रयोग किया।

खिलाफत मुद्दे पर कांग्रेस का रवैया (Attitude of Congress on Khilafat Issue)

खिलाफत आंदोलन की सफलता कांग्रेस के सहयोग के बिना सम्भव नहीं थी। यद्यपि गाँधी जी खिलाफत के प्रति पूर्ण समर्पित थे तथा इस मुद्दे को लेकर सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह तथा असहयोग आंदोलन प्रारम्भ करना चाहते थे, किन्तु कांग्रेस में इस मुद्दे को लेकर सर्वसम्मति का अभाव था।

- बाल गंगाधर तिलक ने धार्मिक मुद्दों पर मुस्लिम नेताओं के साथ संधि करने का विरोध किया। वे **'सत्याग्रह'** को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग किये जाने के प्रति भी आशंकित थे। कुछ अन्य राज्यों में भी गाँधी जी के असहयोग कार्यक्रम का विरोध किया गया। यद्यपि बाद में कांग्रेस इस मुद्दे पर झुक गयी तथा उसने गाँधी जी के राजनैतिक कार्यक्रम के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान कर दी। कांग्रेस द्वारा खिलाफत के मुद्दे पर लचीला रुख अपनाने तथा गाँधी जी के असहयोग कार्यक्रम को समर्थन प्रदान करने के कई कारण थे-
- यह महसूस किया गया कि हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने तथा मुस्लिम समुदाय को राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा में लाने का यह स्वर्णिम अवसर है। अब तक समाज के विभिन्न वर्ग-हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, किसान, शिल्पकार, पूंजीपति, जनजातियाँ, महिलाएँ, युवा, विद्यार्थी इत्यादि ने विदेशी शासन की उपस्थिति को महसूस किया था तथा अपनी दुर्दशा के लिये उसे उत्तरदायी मानते हुये अपने अधिकारों के लिये संघर्ष की प्रेरणा ली।
- कांग्रेस अब संवैधानिक तरीके से संघर्ष करने के पक्ष में नहीं थी क्योंकि पंजाब की घटनाओं के संबंध में हंटर कमीशन की भेदभावपूर्ण व दमनकारी सिफारिशों से सरकार के प्रति उसका मोहभंग हो गया था।
- कांग्रेस को भली-भांति पता था कि भारतीयों को अपने असंतोष की अभिव्यक्ति के लिये उचित अवसर की तलाश है।

कांग्रेस को मुस्लिम लीग का समर्थन (Support of Muslim League to Congress)

- मुस्लिम लीग ने कांग्रेस को राजनैतिक प्रश्न के मुद्दे पर आंदोलन चलाने हेतु पूर्ण समर्थन देने का निश्चिय किया। फरवरी, 1920 में हिन्दू और मुसलमानों के एक संयुक्त प्रतिनिधिमंडल ने वायसराय से मुलाकात कर खिलाफत के प्रश्न का समाधान करने का आग्रह किया। किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला।
- गाँधी जी ने फरवरी, 1920 में पंजाब के मुद्दे को गलत बताते हुए सरकार से अमृतसर हत्याकांड के लिये खेद प्रकट करने तथा पंजाब में हुई ज्यादतियों का निराकरण करने की मांग की, साथ ही सरकार से तुर्की के प्रति अपने व्यवहार को नर्म करने तथा भारतीयों को संतुष्ट करने के लिये कोई नवीन योजना प्रस्तुत करने की भी मांग की। उन्होंने चेतावनी दी कि अगर सरकार इन मांगों को स्वीकार नहीं करेगी तो वे असहयोग आंदोलन प्रारम्भ कर देंगे।
- जून, 1920 में केन्द्रीय खिलाफत समिति का अधिवेशन इलाहाबाद में हुआ। इसमें स्कूलों, कॉलेजों व न्यायालयों का बहिष्कार करने का निर्णय किया गया तथा गाँधी जी को आंदोलन का नेतृत्व सौंपा गया।
- 10 अगस्त, 1920 में **'सेवर्स सेब्रीज की संधि'** के द्वारा तुर्की का विभाजन कर दिया गया जिससे लोगों में आक्रोश व्याप्त हो गया।
- **1 अगस्त, 1920** में खिलाफत समिति ने औपचारिक तौर पर असहयोग आंदोलन की शुरूआत की। (दुर्भाग्यवश 1 अगस्त, **1920** को बाल गंगाधर तिलक का निधन हो गया।)

खिलाफत आंदोलन का समापन (End of Khilafat Movement)

- अहसयोग एवं खिलाफत आंदोलन साथ-साथ चले किंतु असहयोग आंदोलन के बढ़ते प्रभाव से खिलाफत आंदोलन उसके सामने दब गया।
- खिलाफत के नेताओं को सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा। इनकी संस्थाएँ गैरकानूनी करार दे दी गईं तथा अनेक नेताओं को गिरफ्तार किया गया।
- तुर्की में मुस्तफा कमाल पाशा द्वारा खलीफा के पद को समाप्त करने के साथ ही खिलाफत का प्रश्न समाप्त हो गया, अंततः **1924 ई.** तक यह आंदोलन समाप्त हो गया।

परिणाम (Result)

- एक अखिल इस्लामी प्रतीक ने अखिल भारतीय इस्लामिक लामबंदी का मार्ग प्रशस्त किया जो अंग्रेज विरोधी था।
- मुसलमानों की भारतीय राजनीति की मुख्य धारा में तेजी से भागीदारी बढ़ी।
- हिंदू-मुस्लिम एकता की भावना सुदृढ़ हुई।
- पहली बार राजनीति में किसी विशेष संप्रदाय के मुद्दे को शामिल कर आंदोलन चलाया गया जिससे कहीं न कहीं सांप्रदायिकता को प्रोत्साहन मिला।

असहयोग आंदोलन (अगस्त, 1920) [Non-Cooperation Movement (August, 1920)]

1920 में महात्मा गाँधी ने खिलाफत कमेटी को अंग्रेजी शासन के खिलाफ अहिंसक **असहयोग आंदोलन** छेड़ने को कहा और कांग्रेस पर भी **जलियांवाला बाग हत्याकांड** और हंटर कमीशन की रिपोर्ट से व्यथित होकर अन्याय तथा स्वराज के मुद्दे पर असहयोग आंदोलन छेड़ने के लिए दबाव डाला। फलस्वरूप सितंबर, **1920** में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन कलकत्ता में आयोजित किया गया। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने पंजाब एवं खिलाफत के मुद्दे को हल किये जाने तथा स्वराज की स्थापना होने तक असहयोग कार्यक्रम चलाने की स्वीकृति प्रदान की, बाद में दिसंबर, **1920** में आयोजित कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में इसका अनुमोदन कर दिया गया। इसकी प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं-

- कांग्रेस ने संवैधानिक तरीके से स्वशासन प्राप्ति के अपने लक्ष्य के स्थान पर शांतिपूर्ण एवं न्यायोचित तरीके से स्वराज प्राप्ति को अपना लक्ष्य घोषित किया। इस प्रकार कांग्रेस ने संवैधानिक दायरे से बाहर जन-संघर्ष की अवधारणा को स्वीकार किया।
- कांग्रेस ने रोजमर्रा के क्रियाकलापों को देखने के लिये 15 सदस्यीय

कार्यकारिणी समिति का गठन किया। स्थानीय स्तर पर कार्यक्रमों के वास्तविक क्रियान्वयन् के लिये भाषायी आधार पर प्रदेश कांग्रेस कमेटियों का गठन किया गया। गाँवों और कस्बों में भी कांग्रेस समितियों का गठन किया गया तथा सदस्यता फीस चार आना वार्षिक कर दी गयी।

- गाँधी जी ने घोषणा की कि, 'यदि पूरी तन्मयता से असहयोग आंदोलन चलाया गया तो एक वर्ष के भीतर स्वराज का लक्ष्य प्राप्त हो जाएगा।'
- बंगाल के क्रांतिकारी संगठनों सहित कई अन्य क्रांतिकारी संगठनों ने कांग्रेस के कार्यक्रम को पूर्ण समर्थन देने की घोषणा की। किन्तु इसी समय मोहम्मद अली जिन्ना, एनी बेसेन्ट एवं बी.सी. पाल ने संवैधानिक एवं न्यायपूर्ण ढंग से संघर्ष चलाये जाने का पक्ष लेते हुए कांग्रेस छोड़ दी, जबकि सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने **'इंडियन नेशनल लिबरल फेडरेशन'** का गठन कर लिया।

असहयोग आंदोलन के कार्यक्रम (Programme of Non-Cooperation Movement)

- सरकारी शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार।
- न्यायालयों का बहिष्कार तथा पंचायतों के माध्यम से न्याय का कार्य।
- विधान परिषद का बहिष्कार यद्यपि इस मुद्दे पर कांग्रेस के नेताओं में मतभेद थे तथा वे इस कार्यक्रम को असहयोग के कार्यक्रमों में सम्मिलित किये जाने का विरोध कर रहे थे। विरोधियों में सबसे प्रमुख नाम सी.आर.दास का था, क्योंकि कुछ ही दिनों (नवम्बर, 1920 में) बाद विधान परिषदों के चुनाव होने वाले थे। लेकिन बहिष्कार के विचार से असहमति रखने वाले नेताओं ने भी कांग्रेस के अनुशासन का पालन किया और चुनावों का बहिष्कार किया। अधिकांश मतदाताओं ने भी इन चुनावों में भाग नहीं लिया।
- विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार तथा इसके स्थान पर खादी के उपयोग को बढ़ावा दिया गया। चरखा कातने को भी प्रोत्साहन दिया गया।
- सरकारी उपाधियों तथा अवैतनिक पदों का परित्याग, सरकारी सेवाओं का परित्याग, करों का भुगतान न करना, सरकारी तथा अर्द्ध-सरकारी उत्सवों का बहिष्कार तथा सैनिक, मजदूर व क्लर्कों का मेसोपोटामिया में कार्य करने के लिये न जाना।

असहयोग आंदोलन का प्रसार (Spreading of Non- Cooperation Movement)

गाँधी जी ने खिलाफत नेता अली बंधुओं के साथ पूरे देश का दौरा कर सैकड़ों सभाओं को संबोधित किया तथा सैकड़ों राजनीतिक कार्यकर्ताओं से विचार-विमर्श किया। इससे प्रभावित होकर लगभग 90 हजार छात्रों ने सरकारी स्कूलों और कॉलेजों को छोड़ दिया तथा राष्ट्रीय स्कूलों और कॉलेजों में भर्ती हो गये।

- शिक्षण संस्थाओं के बहिष्कार में पश्चिम बंगाल अग्रणी रहा। कलकत्ता के विद्यार्थियों ने स्कूल के प्रबंधकों पर सरकार से नाता तोड़ने हेतु दबाव डाला तथा राज्यव्यापी हड़ताल का आयोजन किया। सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में विभिन्न राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गयी। सुभाष चन्द्र बोस **'नेशनल कॉलेज कलकत्ता'** के प्रधानाचार्य बन गये। जामिया मिलिया, काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ सहित **पंजाब, बम्बई, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, बिहार** तथा **असम** से भी इस कार्यक्रम को अभूतपूर्व समर्थन प्राप्त हुआ।
- मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, सी.आर. दास, सीराजगोपालाचारी, सैफुद्दीन किचलू, वल्लभभाई पटेल, आसफ अली, टी. प्रकाशम और राजेन्द्र प्रसाद जैसे प्रसिद्ध वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ दी।
- विदेशी कपड़ों की सार्वजनिक रूप से होली जलाई गयी, विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरने दिए गए, चरखे और खादी का खूब प्रचार हुआ। थोड़े ही समय में विदेशी कपड़ों का आयात घटकर आधा रह गया। विदेशी शराब तथा ताड़ी की दुकानों पर भी धरने आयोजित किये गये। महात्मा गाँधी ने **'कैसर-ए-हिन्द'** का पदक लौटा दिया। कांग्रेस ने अपने कार्यकर्ताओं को कोष इकट्ठा करने का आदेश दिया। **'तिलक स्वराज फंड'** ने एक करोड़ रुपये से ज्यादा धन एकत्रित किया। कांग्रेस की स्वयंसेवी सेनाएँ समानांतर पुलिस की तरह कार्य करने लगीं।
- जुलाई, **1921** में कराची में खिलाफत आंदोलन में अली बंधुओं ने मुसलमानों को सेना से त्यागपत्र देने हेतु प्रेरित किया तथा कहा कि किसी भी मुसलमान का सेना में रहना धर्म के खिलाफ है।
- सरकार ने सितम्बर में अली बंधुओं को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया। 4 अक्टूबर को गाँधी जी ने कांग्रेस के **47** वरिष्ठ नेताओं के साथ एक बयान जारी कर अली बंधुओं के बयान की पुष्टि की तथा सभी भारतीय नागरिकों और सैनिकों से उपनिवेशी शासन से सभी प्रकार के संबंध तोड़ लेने का आह्वान किया। दूसरे दिन कांग्रेस कार्यकारिणी ने भी इसी तरह का प्रस्ताव पारित किया तथा स्थानीय कांग्रेस समितियों को भी इसी तरह का प्रस्ताव पारित करने को कहा गया।
- कांग्रेस समितियों को कांग्रेस ने यह इजाजत दे दी कि जनता द्वारा कानून की अवज्ञा करने की सम्भावना होने पर वे आंदोलन प्रारंभ कर सकती हैं। इस समय मिदनापुर (बंगाल) तथा गुंटूर (आंध्र) के चिराला-पिराला तथा पेडानंदीपाडू तालुका में **'यूनियन बोर्ड टेक्सेज'** के खिलाफ कर अदा न करने का आंदोलन पहले से ही चल रहा था। असम में चाय बागान के मजदूरों, स्टीमर पर काम करने वाले मजदूरों तथा असम-बंगाल रेलवे के कर्मचारियों ने भी हड़ताल कर दी। बंगाल के एक राष्ट्रवादी नेता जे.एम. सेनगुप्ता ने इस दौरान महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- 17 नवम्बर, 1921 में **'प्रिंस आफ वेल्स'** के भारत दौरे का जमकर विरोध किया गया। लोगों ने कई स्थानों पर हड़तालें कीं व प्रदर्शन किया। इसके बाद बम्बई समेत कई स्थानों पर हिंसक वारदातें तथा पुलिस के साथ झड़पें हुईं।

असहयोग आंदोलन के प्रति सरकार की प्रतिक्रिया (Reaction of Government towards Non- Cooperation Movement)



इन हिंसक आंदोलनों पर काबू पाने हेतु मई, 1921 में गाँधी जी तथा भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड रीडिंग के मध्य वार्ता हुई। रीडिंग ने सरकार की ओर से गाँधी जी से मांग की कि वे अली बंधुओं से अपने उस भाषण को वापस लेने का आग्रह करें, जिसके कारण व्यापक पैमाने पर हिंसा हो रही थी। गाँधी जी ने

महसूस किया कि सरकार उनके एवं खिलाफत नेताओं के मध्य दरार पैदा करने की कोशिश कर रही है। अत: उन्होंने सरकार की मांग को ठुकरा दिया। इसके पश्चात् दिसम्बर में सरकार ने दमन का रास्ता अपनाते हुए स्वयंसेवी संगठनों को अवैध घोषित कर दिया। साथ ही सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबंध लगा दिया गया और प्रेस को प्रतिबंधित कर दिया गया। सरकार ने गाँधी जी समेत अनेक नेताओं को गिरफ्तार कर लिया।

असहयोग आंदोलन का अंतिम चरण
(Final Stage of Non-Cooperation Movement)

गाँधी जी पर सविनय अवज्ञा आंदोलन आयोजित करने हेतु दबाव पड़ने लगा। इसी मुद्दे पर विचार करते हुए दिसम्बर, **1921 में कांग्रेस का** अधिवेशन **अहमदाबाद** में आयोजित किया गया। (इस अधिवेशन के अध्यक्ष हालाँकि **सी.आर. दास** थे, किन्तु उनके जेल में होने के कारण हकीम अजमल खान को कार्यकारी अध्यक्ष बनाया गया)। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने गाँधी जी को अवज्ञा का लक्ष्य, समय तथा भावी रणनीति तय करने का पूर्ण अधिकार दे दिया।

- उधर सरकार के रुख में कोई परिवर्तन नजर नहीं आ रहा था। जनवरी, **1922** में सर्वदलीय सम्मेलन की अपील तथा गाँधी जी द्वारा वायसराय को लिखे गए पत्र का भी सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।
- 1 फरवरी, **1922** को गाँधी जी ने सरकार से राजनीतिक बंदियों को रिहा कर नागरिक स्वतंत्रता बहाल करने तथा प्रेस से नियंत्रण हटाने की मांग की, ऐसा नहीं करने पर उन्होंने देशव्यापी सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ने की घोषणा कर दी। सरकार के रुख में कोई परिवर्तन नहीं होता देख सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ने का निर्णय लिया गया।
- यद्यपि यह आंदोलन सूरत के बारदोली तालुका से प्रारम्भ होने वाला था। किन्तु इस आंदोलन को प्रारम्भ होने के पूर्व ही चौरी-चौरा की घटना हो गयी तथा सम्पूर्ण परिदृश्य ही बदल गया।

चौरी-चौरा कांड (फरवरी, 1922)
[Chauri- Chaura Incident (February, 1922)]

5 फरवरी, 1922 को गोरखपुर जिले (उत्तर प्रदेश) के **चौरी-चौरा** नामक एक छोटे से गाँव में हुई एक घटना के कारण गाँधी जी को बहुप्रतीक्षित सविनय अवज्ञा आंदोलन भी 6 साल के लिये स्थगित करना पड़ा। पुलिस ने यहां शराब की बिक्री एवं खाद्यान्न के मूल्यों में हुई वृद्धि का विरोध करने हेतु प्रदर्शनकारियों का नेतृत्व कर रहे स्वयंसेवक दलों के नेताओं को बलपूर्वक खदेड़ा। इसके परिणामस्वरूप प्रदर्शनकारियों के एक जत्थे ने पुलिस पर हमला कर दिया। पुलिस ने गोली चलाई। पुलिस की गोलीबारी से सारे लोग उत्तेजित हो गए और पुलिस पर आक्रमण कर दिया। सिपाही भागकर थाने में घुस गए तो भीड़ ने थाने में भी आग लगा दी। जो सिपाही भागने के प्रयास में बाहर आये उन्हें भीड़ ने मार डाला और पुन: आग में फेंक दिया। इस हिंसक घटना में 22 पुलिसकर्मी मारे गये। गाँधी जी इस घटना की खबर से अत्यन्त दु:खी हुये तथा उन्होंने तुरन्त आंदोलन वापस लेने की घोषणा कर दी।

- कांग्रेस ने 12 फरवरी, **1922** में बारदोली में एक बैठक का आयोजन किया। इस बैठक में एक प्रस्ताव पारित कर ऐसी सभी गतिविधियों पर रोक लगा दी गयी जिनसे कानून का उल्लंघन होता हो। साथ ही प्रस्ताव में कई रचनात्मक कार्यों को प्रारम्भ करने की घोषणा भी की गयी। इनमें खादी को लोकप्रिय बनाना, राष्ट्रीय स्कूलों की स्थापना, शराबबंदी के समर्थन में अभियान, अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु अभियान तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता को बल देने जैसे कार्यक्रम शामिल थे।
- अनेक राष्ट्रवादी नेताओं ने गाँधी जी के आंदोलन वापस लेने के निर्णय से अपनी असहमति प्रकट की। इनमें सी.आर. दास, सुभाषचन्द्र बोस, जवाहर लाल नेहरू प्रमुख थे।
- मार्च, **1922** में गाँधी जी को गिरफ्तार कर 6 वर्षों के लिये जेल भेज दिया गया। गाँधी जी ने इस अवसर पर एक ऐतिहासिक भाषण में कहा कि 'मैं यहाँ इसलिये आया हूँ क्योंकि मुझे यह अहसास हुआ कि कानून के उल्लंघन एवं विचारपूर्वक हिंसा के लिए मैं प्रसन्न होकर यहाँ सजा पा रहा हूँ और मुझे लगा कि इस अवसर पर एक सच्चे नागरिक का यही प्रथम कर्तव्य है'।

गाँधी जी ने आंदोलन वापस क्यों लिया
(Why did Gandhi Ji Took Back Movement)

गाँधी जी को यह एहसास हो गया कि इस आंदोलन की बागडोर उनके हाथों से निकलकर हिंसक हाथों में चली जाएगी क्योंकि भारतीय अभी अहिंसा के सिद्धान्त का प्रयोग पूरी तरह नहीं सीख पाये हैं।

- उनका मानना था कि हिंसक आंदोलन को सरकार द्वारा राज्य के हितों की रक्षा के बहाने आसानी से कुचला जा सकता है तथा इसके पीछे सरकार यह तर्क दे सकती है कि हिंसा को दबाने के लिये हथियारों का सहारा लेना उसकी विवशता थी।
- गाँधी जी को आशंका थी कि इस तरह की कार्रवाइयों से अहिंसक असहयोग आंदोलन की पूरी रणनीति विफल हो जाएगी।
- गाँधी जी के अहिंसक असहयोग आंदोलन की रणनीति यह थी कि शांतिपूर्ण आंदोलन के विरुद्ध यदि उपनिवेशी सरकार दमन का सहारा लेगी तो भावनात्मक तौर पर भारतीय इसके विरुद्ध हो जाएंगे तथा सरकार का वास्तविक चेहरा अनावृत हो जाएगा।
- सरकार द्वारा समझौतावादी रुख अपनाने के लिये तैयार नहीं होने के कारण आंदोलन शिथिल पड़ता जा रहा था। इन परिस्थितियों में इतने व्यापक स्तर पर चल रहे आंदोलन को बहुत ज्यादा नहीं खीचा जा सकता था।
- नवम्बर, **1922** में तुर्की की जनता ने मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया तथा सुल्तान के राजनैतिक अधिकार छीन लिये गये। खलीफा का पद समाप्त कर तुर्की में धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना कर दी गयी।
- सम्पूर्ण तुर्की में यूरोप की तर्ज पर विधिक व्यवस्था की स्थापना की गयी तथा महिलाओं को व्यापक अधिकार प्रदान किये गये।
- शिक्षा का राष्ट्रीयकरण किया गया तथा आधुनिक उद्योगों एवं कृषि को प्रोत्साहित किया गया। 1924 में खलीफा का पद पूर्णरूपेण समाप्त कर दिया गया। फलत: आंदोलन का मुख्य मुद्दा खिलाफत भी अब अप्रासंगिक हो गया।

खिलाफत आंदोलन और असहयोग आंदोलन का मूल्यांकन
(Evaluation of Khilafat Movement and Non-Cooperation Movement)

यद्यपि खिलाफत आंदोलन ने शहरी मुसलमानों को राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा में सम्मिलित किया, किन्तु कुछ अर्थों में इसने राष्ट्रीय राजनीति का साम्प्रदायीकरण भी किया। फलत: जब साम्प्रदायिकता की लहर चली तो राष्ट्रीय आंदोलन में साम्प्रदायिक सौहार्द का स्वरूप टूटकर बिखर गया। आंदोलन के नेता मुसलमानों की धार्मिक तथा राजनीतिक चेतना को धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक चेतना के रूप में विकसित करने में भी असफल रहे।

- असहयोग आंदोलन ने पूरे राष्ट्र की जनता को एक सूत्र में बांधने का कार्य किया। इस आंदोलन ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था के रूप में स्थापित किया। आंदोलन ने देश के कोने-कोने में अपना प्रभाव डाला तथा कोई जगह ऐसी नहीं बची, जो आंदोलन के प्रभाव से अछूती रह गयी हो।

- आंदोलन में समाज के हर वर्ग यथा- कृषक, शहरी, ग्रामीण, दस्तकर, बुद्धिजीवी, छात्र, गरीब, वृद्ध, बच्चे, व्यापारी, व्यवसायी, कर्मचारी, पुरुष, महिला इत्यादि सभी ने सक्रिय रूप से भाग लिया।
- इस आंदोलन ने देश की जनता को आधुनिक राजनीति से परिचित कराया तथा उनमें स्वतंत्रता की भूख जगायी।
- आंदोलन ने सिद्ध कर दिया कि भारत के लोग राजनीतिक संघर्ष प्रारम्भ कर सकते हैं तथा गुलामी की दासता से मुक्ति पाने हेतु राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक संघर्ष कर सकता है। इससे अंग्रेजों की यह भ्रांति भी टूट गयी कि भारतीयों में चेतना का अभाव है तथा दासता की त्रासदी को वे अपने भाग्य की नियति मानते हैं।
- उपनिवेशी शासन दो मिथ्या अवधारणाओं पर आधारित था- पहला, यह कि विदेशी शासन भारतीयों के हित में है तथा दूसरा, यह कि वह अजेय है तथा उसे कोई परास्त नहीं कर सकता।
- प्रथम मिथक को नरमपंथी राष्ट्रवादियों ने सरकार की आर्थिक शोषण की प्रवृत्ति को उजागर कर पहले ही तोड़ दिया था तथा दूसरे मिथक को इस आंदोलन ने **'सत्याग्रह'** के द्वारा कड़ी चुनौती दी तथा इसकी जड़ों को हिलाकर रख दिया। इस प्रकार आंदोलन के पश्चात् भारतीयों का साम्राज्यवादी शासन से भय जाता रहा तथा वे स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रति पूर्णरूप से लालायित हो गये।

स्वराज दल (Swaraj Party)



1922 में चौरी-चौरा की घटना के बाद असहयोग आंदोलन के स्थगन के साथ ही परिस्थिति बिल्कुल बदल गयी। अनिश्चितता और गतिहीनता के वातावरण में कांग्रेस में आपसी फूट दृष्टिगोचर होने लगी।

- कुछ लोग कांग्रेस की नीतियों में परिवर्तन चाहते थे और कुछ लोग किसी भी प्रकार के परिवर्तन के विरोधी थे।
- जो अभी तक असहयोग के पक्ष में काउंसिलों का बहिष्कार चाहते थे वे अपरिवर्तनवादी (No Changer) कहलाये। इस दल में वल्लभ भाई पटेल, डॉ. अंसारी और डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आदि थे।
- परिवर्तनवादी (Changer) वे थे जो महात्मा गाँधी के कार्यक्रम से मतभेद रखते थे और निर्वाचन में भाग लेकर काउंसिलों में प्रवेश चाहते थे। इस दल में पंडित मोतीलाल नेहरू, चितरंजन दास, विट्ठल भाई पटेल और हकीम अजमल खाँ प्रमुख थे।
- इस प्रकार 1922 ई. में पुन: ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी, जिससे मालूम पड़ने लगा कि कांग्रेस 1907 की भांति दो दलों में विभक्त हो जाएगी। 1922 के गया अधिवेशन में यह मतभेद खुलकर स्पष्ट रूप से सामने आ गया। इस अधिवेशन में परिवर्तनवादी पराजित हो गए फिर भी वे हताश नहीं हुए।
- कांग्रेस से त्याग पत्र देकर **1 जनवरी, 1923** को **देशबंधु चितंरजनदास** एवं **मोती लाल नेहरू** ने **'कांग्रेस खिलाफत स्वराज पार्टी'** की स्थापना की। इसे **'स्वराज दल'** भी कहा जाता है।
- कांग्रेस में बढ़ती हुई फूट को देखकर मौलाना आजाद ने मध्यस्थता की।
- सितम्बर, 1923 को मौलाना आजाद की अध्यक्षता में दिल्ली में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन बुलाया गया।
- कांग्रेस को काउंसिल के आगामी निर्वाचनों में भाग लेने की अनुमति दी गयी। यह प्रस्ताव पारित किया गया कि, जिन कांग्रेसियों को काउंसिल प्रवेश के विरुद्ध धार्मिक या किसी और प्रकार की आपत्ति न हो, उन्हें अगले निर्वाचन में खड़े होने और अपनी राय देने के अधिकार का उपयोग करने की स्वतंत्रता है।
- इस प्रस्ताव से स्वराजवादी काफी उत्साहित हुए। इन्होंने गाँधीजी का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया। यद्यपि गाँधीजी को स्वराजवादियों की नीति और कार्यक्रमों में विश्वास नहीं था, फिर भी उन्होंने स्वराज दल को अपना आशीर्वाद दिया।
- उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि 'हमारे बीच में वास्तविक और मौलिक भेद हैं, फिर भी मैं भाग नहीं ले सकता तथा ऐसी योजना की मैं सक्रिय सहायता भी नहीं कर सकता जिसमें मुझे स्वयं विश्वास न हो।' इस प्रकार स्वराज दल कांग्रेस का एक राजनीतिक दल बन गया, जिसका उद्देश्य था संसदीय कार्यों में भाग लेना। इससे कांग्रेस का पुन: विभाजन होने से रुक गया।

स्वराज दल के उद्देश्य (Objective of Swaraj Party)

'स्वराज दल' का मूल उद्देश्य स्वराज प्राप्त करना था। गाँधीवादियों का भी यही उद्देश्य था। लेकिन दोनों में स्वराज प्राप्ति के साधनों में अंतर था। स्वराजवादी गाँधीजी के असहयोग आंदोलन में विश्वास नहीं करते थे। उनका कहना था कि असहयोग की नीति को अपनाया जाए, लेकिन काउंसिल में प्रवेश को क्रियान्वित् किया जाए। अर्थात् स्वराजवादियों का लक्ष्य काउंसिल में प्रवेश कर सरकार के कार्य में अड़ंगा लगाना और अंदर से उसे नष्ट करना था। स्वराजवादियों के उद्देश्यों को संक्षेप में निम्न रूप से रखा जा सकता है-

- स्वराज प्राप्ति के संदर्भ में उस परिपाटी का अंत करना, जो अंग्रेजी सत्ता के अधीन भारत में विद्यमान थी।
- काउंसिल में प्रवेश कर असहयोग के कार्यक्रम को अपनाना और असहयोग आंदोलन को सफल बनाना।
- सरकार की नीतियों का घोर विरोध कर उसके कार्यों में अड़ंगा लगाना, जिससे उसके कार्य सुचारू रूप से नहीं चल सकें और सरकार अपनी नीति में परिवर्तन करने को विवश हो।

स्वराज दल के कार्यक्रम (Programme of Swaraj Party)

स्वराज दल ने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित कार्यक्रमों को निश्चित किया-

- सरकारी बजट रद्द करना।
- उन प्रस्तावों का विरोध करना, जो नौकरशाही को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न करे।
- उन प्रस्तावों, योजनाओं और विधेयकों को काउंसिलों में प्रस्तुत करना, जिनके द्वारा राष्ट्र की शक्ति में वृद्धि हो तथा नौकरशाही की शक्तियों में कमी हो।
- काउंसिल के बाहर रचनात्मक कार्यों में सहयोग करना।
- समस्त प्रभावशाली स्थानों पर अधिकार और आवश्यक होने पर पदों का त्याग।

स्वराज दल के कार्य (Functions of Swaraj Party)

मांटेग्यू/चेम्सफोर्ड सुधारों को नष्ट करने के उद्देश्य से स्वराजवादियों ने **मोती लाल नेहरू** और **चित्तरंजन दास** के नेतृत्व में **1923** के निर्वाचन में भाग लिया। मध्य प्रांत में इसे पूर्ण बहुमत तथा बंगाल में आशातीत सफलता मिली। इन प्रांतों में मंत्रिमण्डल का निर्माण असंभव हो गया क्योंकि स्वराज दल जिसे स्पष्ट बहुमत प्राप्त था, न तो स्वयं सरकार का निर्माण करना चाहता था न दूसरे दलों को मंत्रिमंडल का निर्माण करने देना चाहता था।

- केंद्रीय विधानसभा में स्वराजवादियों को 145 में से केवल **45** स्थान प्राप्त हुए, फिर भी कुछ निर्दलीय सदस्यों की सहायता से उन्होंने सरकार का डटकर मुकाबला किया। ऐसा मौका भी आया जब उन्होंने सरकार को पराजित किया। **1925** में वे विट्ठल भाई पटेल को केंद्रीय विधायिका का अध्यक्ष निर्वाचित करवाने में सफल रहे। उन्होंने कई बार असेम्बली से वाक आउट किया और सरकार की प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचाया।

स्वराज दल की नीति में परिवर्तन (Changes in Swaraj Party's Policy)

प्रारंभ में स्वराज दल ने सरकार के साथ असहयोग की नीति अपनायी और उसके कार्यों में अड़ंगे लगाये। लेकिन उसे इस नीति में विशेष सफलता नहीं मिली। अत: इस नीति में परिवर्तन कर उत्तरदायित्वपूर्ण सहयोग (Responsiable Cooperation) की नीति अपनानी शुरू कर दी। यहाँ तक कि चित्तरंजन दास अपने जीवन काल में यह अनुभव करने लगे थे कि असहयोग की नीति लाभप्रद नहीं है। 1924 ई. में फरीदपुर सम्मेलन में उन्होंने सरकार से समझौता करने के लिए कुछ प्रस्ताव भी प्रस्तुत किए थे। लेकिन कुछ स्वराजवादी अभी भी **'अड़ंगा'** की नीति में विश्वास करते थे। अत: स्वराज दल में फूट दिखायी पड़ने लगी। सरकार ने इस मौके का फायदा उठाया और सहयोगवादियों को विभिन्न समितियों में स्थान देकर खुश करना शुरू कर दिया। **1924** में कुछ प्रमुख स्वराजवादियों को इस्पात, सुरक्षा समिति में स्थान दिया।

- **1925** में स्वयं **मोतीलाल नेहरू** ने **'स्क्रीन समिति'** की सदस्यता स्वीकार कर ली तथा विट्ठल भाई पटेल केंद्रीय व्यवस्थापिका के अध्यक्ष चुने गये। इस प्रकार थोड़े समय में ही स्वराज दल की नीति में पूर्णतया परिवर्तन हो गया। असहयोग का स्थान उत्तरदायी सहयोग ने ले लिया।
- फलत: स्वराज दल कमजोर हो गया और इसका आकर्षण जाता रहा। अत: **1926** के निर्वाचन में इसे बहुत कम सफलता प्राप्त हुई।

स्वराज दल के कार्यों का महत्त्व (Importance of Swaraj Party's Functions)

स्वराजवादियों के कार्यों की तीखी आलोचना की जाती है। अनेक कांग्रेसी नेताओं का विचार था कि **'अड़ंगा डालने की नीति'** अव्यावहारिक और निरर्थक थी। डॉ. जकारिया का विचार है कि 'स्वराजवादियों की स्थिति उन व्यक्तियों जैसी थी, जो अपनी रोटी को रखना भी चाहते हैं और खाना भी।'

- स्वराज दल अपने उद्देश्यों में आंशिक सफलता ही प्राप्त कर सका। इनके विरोध के बावजूद सरकारी नीतियों में कोई परिवर्तन नहीं हो सका। इसके बावजूद इस दल के कार्यों का महत्त्व इस बात में है कि इसने असहयोग आंदोलन के बाद की शिथिलता के समय जनता में उत्साह और साहस का वातावरण तैयार किया। जिस समय कांग्रेस रचनात्मक कार्यों में व्यस्त थी और गाँधी जी राजनीतिक निर्वासन का जीवन व्यतीत कर रहे थे, उस समय स्वराजवादियों ने राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व संभाला तथा अपनी अड़ंगावादी नीतियों के परिणामस्वरूप द्वैध शासन को व्यर्थ कर दिया।
- साइमन कमीशन ने भी यह स्वीकार किया था कि उस समय स्वराज दल ही एक सुसंगठित और अनुशासित दल था, जिसके पास एक सुनिश्चित कार्यक्रम था। संक्षेप में, स्वराज दल ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के अंधकारपूर्ण समय में आशा की किरण प्रज्वलित की और जनता में उत्साह तथा नवजीवन का संचार किया।

वामपंथी आंदोलन (Leftist Movement)

दक्षिण और वाम शब्द का प्रथम प्रयोग फ्रांसीसी क्रांति के समय हुआ। राज्य के अनुयायी दक्षिणपंथी एवं उनके विरोधी वामपंथी कहे गये। आगे चलकर वामपंथ को ही **'समाजवाद'** एवं **'साम्यवाद'** कहा जाने लगा।

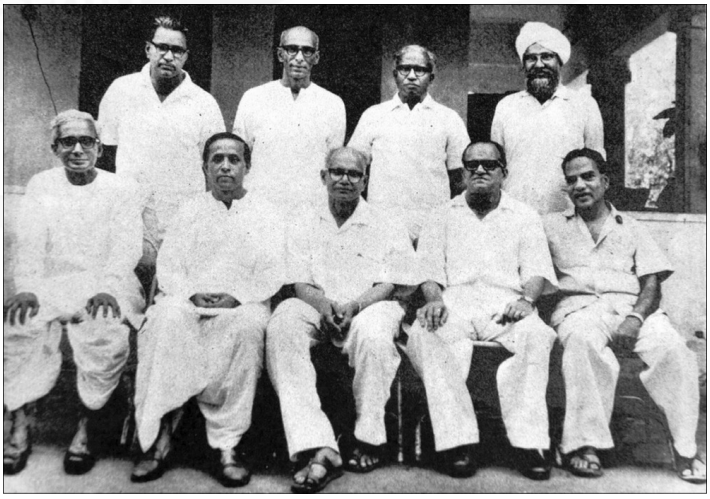
भारत में यह विचारधारा प्रथम विश्वयुद्ध के बाद प्रचलन में आई। तत्कालीन औद्योगिक नगर कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, लाहौर एवं मद्रास में साम्यवाद का कुछ अधिक प्रभाव रहा। बंगाल में **'नवयुग'** के सम्पादक मुजफ्फर अहमद, बम्बई में सोशलिस्ट के सम्पादक एस.ए. डांगे, मद्रास के सिंगारवेल्लू चैट्टियार एवं लाहौर में **'इंकलाब'** के सम्पादक गुलाम हुसैन आदि ने साम्यवादी विचारधारा को भारत में अपना पूर्ण समर्थन देते हुए उसके प्रसार में योगदान दिया।

- भारत में साम्यवादी आंदोलन एशिया के पुराने आंदोलनों में से एक है। भारत में वामपंथी आन्दोलन का दो विचारधाराओं, साम्यवाद और कांग्रेसी सोशलिस्ट दल के रूप में विकास हुआ।
- साम्यवाद को **'कामिन्टर्न'** रूस के साम्यवादी संगठन का समर्थन प्राप्त था। दूसरी ओर कांग्रेस सोशलिस्ट दल को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का समर्थन प्राप्त था दूसरे शब्दों में यह कांग्रेस का वामपंथी दल था।
- समाजवादी विचारधारा राष्ट्रीय कांग्रेस की युवा पीढ़ी के प्रतीक जवाहर लाल नेहरू तथा सुभाषचंद्र बोस की भी विचारधारा बन गई।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (Indian Communist Party)

1920 में एम.एन. राय एवं उनके कुछ अन्य सहयोगियों ने **'साम्यवादी दल'** (Communist Party) बनाने की घोषणा की। ताशकंद में एम.एन. राय के सहयोगी मोहम्मद अली तथा मोहम्मद शफीक, आचार्य ए.टी. राय, अवनी मुखर्जी, रतन सिंह, तेजा सिंह आदि थे।

- ब्रिटिश सरकार भारत में साम्यवादी विचारों के प्रचार-प्रसार के विरुद्ध थी। भारत में साम्यवादी गतिविधियाँ एम.एन. राय द्वारा विदेश से ही नियंत्रित होती रहीं तथा वह कम्युनिस्ट इंटरनेशनल को भारत की स्थिति से अवगत करवाते रहते थे। उन्होंने ब्रिटिश दमन से बचने के लिए नवंबर, **1922** में एक दोहरे संगठन का प्रस्ताव रखा।



- मजदूर, किसानों की औपचारिक कानूनी पार्टी।
- एक गोपनीय साम्यवादी केंद्र जो मजदूर किसान दलों के व्यापक ढाँचे के बीच कार्य करेगा।
- परिणामस्वरूप सिंगारवेल्लू चेट्यिार ने **1923** में एक **'लेबर किसान पार्टी'** की स्थापना की घोषणा की परंतु अपने प्रारंभिक दिनों में साम्यवादी दल व्यापक स्तर पर कांग्रेस की छत्र-छाया में काम करते रहे। एस.ए. डांगे, शौकत उस्मानी, नलिनी गुप्ता जैसे साम्यवादियों को मई, **1924** में गिरफ्तार कर कानपुर बोल्शैविक षड्यंत्र में मुकदमा चलाया गया। इसके पश्चात् कानपुर में ही सत्यभक्त द्वारा **'भारतीय साम्यवादी दल'** की स्थापना की गयी, जिसके वह खुद सचिव और मौलाना हसरत मोहानी, रामगोपाल, वी. एम. जोशी, रामशंकर अवस्थी को सदस्य बनाया।
- इस पार्टी को पूर्ण रूप से एक राष्ट्रवादी दल बताया गया जिसका कम्युनिस्ट इंटरनेशनल से किसी प्रकार के संबंध को नकारा गया। अत: इसका नाम **'भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी'** (न कि कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया) रखा गया। पार्टी की कार्यपद्धति को लेकर विवाद होने के पश्चात् पार्टी का पुनर्गठन किया गया और **27 दिसबंर, 1925** को **'कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया'** की स्थापना की घोषणा की गयी। एस.ए. डांगे इसके महामंत्री बने। इसे कम्युनिस्ट इंटरनेशनल से मान्यता प्राप्त हो गई। इसने एक नया संविधान अपनाया जिसके अनुसार पार्टी का प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश शासन से सम्पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना तथा सोवियत रूस के पदचिन्हों पर भारत में एक राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करना था।
- पेशावर **षड्यंत्र केस** (1922-23), कानपुर **षड्यंत्र** केस (1924) एवं मेरठ षड्यंत्र केस (1929-33) से संबंधित होने के कारण इस बीच **साम्यवादी दल** के सदस्य काफी चर्चित रहे। इन मुकदमों के लिए कांग्रेस ने केन्द्रीय सुरक्षा समिति का गठन किया। इन मुकदमों की सुनवायी के लिए **जवाहर लाल नेहरू, कैलाश नाथ काटजू** एवं **डॉक्टर अंसारी** प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुत हुए। **1934** तक **'साम्यवादी दल'** ने भारत में काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। जुलाई, **1934** में ही ब्रिटिश भारत की सरकार ने इसके विस्तार को देखते हुए **'साम्यवादी दल'** पर प्रतिबंध लगा दिया।

कांग्रेस समाजवादी दल (Congress Socialist Party)

'कांग्रेस समाजवादी दल' (Congress Socialist Party) की स्थापना **1934** में आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण, मीनू मसानी एवं अशोक मेहता के प्रयत्नों से की गयी। इस दल का प्रथम सम्मेलन **1934** में पटना में हुआ। इस पार्टी की स्थापना का उद्देश्य था देश के आर्थिक विकास की प्रक्रिया राज्य द्वारा नियोजित एवं नियंत्रित हो, राजाओं और जमींदारों का उन्मूलन बगैर मुआवजे से किया जाये एवं कांग्रेस की नीतियों को समाजवादी अवधारणा से ओत-प्रोत किया जाए।

- जुलाई, **1931** में बिहार में **'समाजवादी दल'** की स्थापना जयप्रकाश नारायण, फूलन प्रसाद वर्मा एवं कुछ अन्य लोगों ने मिलकर की।
- **1933** में पंजाब में भी एक **'समाजवादी दल'** का गठन किया गया। **'समाजवाद ही क्यों'** पुस्तक की रचना जय प्रकाश नारायण ने तथा **'समाजवाद एवं राष्ट्रीय आन्दोलन'** पुस्तक की रचना आचार्य नरेन्द्र देव ने की।
- कुछ अन्य लघु वामपंथी दलों की भी स्थापना की गई। **1939** में सुभाष चन्द्र बोस ने महात्मा गाँधी से मतभेद होने पर **'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस'** से अलग होकर मार्च, **1939** में **'फॉरवर्ड ब्लॉक'** की स्थापना की।
- **1940** में क्रांतिकारी समाजवादी दल का गठन किया गया, यह दल अंग्रेजों को शक्ति द्वारा भारत से निकालना चाहता था तथा भारत में समाजवाद की स्थापना करना चाहता था।
- **'भारतीय बोल्शेविक दल'** की स्थापना **1939** में एन. दत्त मजूमदार ने की।
- **1942** में सौम्येन्द्र नाथ टैगोर ने **'क्रांतिकारी साम्यवादी दल'** (Revolutionary Communist Party) का गठन किया।
- ट्राटस्की के समर्थक क्रांतिकारी अजीत राय एवं इन्द्र सेन ने **1941** में **'बोल्शेविक-लेनिनिस्ट दल'** की स्थापना की। भारत में साम्यवादी दल को दिशा देने वाले एम.एन. राय ने **1940** में **'अतिवादी लोकतांत्रिक दल'** (Redical Democratic Party) की स्थापना की।

साइमन कमीशन (Simon Commission)

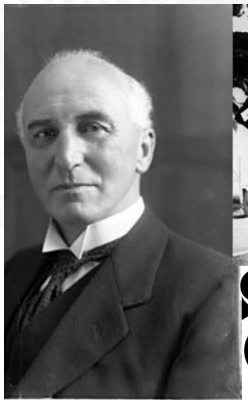
1919 के अधिनियम में मांटेग्यू चेम्सफोर्ड अधिनियम के पारित होने के 10 वर्ष पश्चात् भारत में उत्तरदायी सरकार की प्रगति की दिशा में किये गए कार्यों की समीक्षा का प्रावधान किया गया था। इसके अनुसार सरकार को **1931** ई. में इस कार्य के लिए एक आयोग नियुक्त करना था लेकिन सरकार ने **1927** ई. में ही इस आयोग की नियुक्ति कर दी। इस आयोग के अध्यक्ष थे सर जॉन साइमन जिनकी अध्यक्षता में **'भारतीय संवैधानिक आयोग'** या **'इंडियन स्टेट्यूटरी कमीशन'** बहाल किया गया। अध्यक्ष सहित इसमें कुल 7 सदस्य थे। इसमें ब्रिटेन के तीनों प्रमुख राजनीतिक दलों (कंजर्वेटिव, लिबरल और लेबर) के प्रतिनिधि रखे गये, परंतु किसी भी भारतीय सदस्य को इसमें नहीं लिया गया। यह प्रजातीय विभेद का एक जीता-जागता उदाहरण था।

कमीशन में भारतीयों को सम्मिलित न करने का कारण यह बतलाया गया कि कमीशन को अपनी रिपोर्ट ब्रिटिश संसद को देनी होगी इसलिए उसमें ब्रिटिश संसद के सदस्यों को ही सम्मिलित किया जाना उचित था। किंतु सरकार का यह स्पष्टीकरण एक भुलावा था क्योंकि इस समय दो भारतीय **लॉर्ड सिंहा** और **मि. सकलतवाला** भी ब्रिटिश संसद के सदस्य थे।

साइमन कमीशन का उद्देश्य (Objectives of Simon Commission)

ब्रिटिश सरकार का कहना था कि भारतीयों की मांगों के अनुसार शासन में जल्द से जल्द सुधार लाने के उद्देश्य से आयोग की नियुक्ति समय से पूर्व की गयी थी, लेकिन वास्तविक कारण कुछ और ही थे।

- ब्रिटेन की अनुदार सरकार उस समय भारत में आयोग भेजना चाहती थी, जबकि देश में सांप्रदायिक दंगे जोरों पर थे और भारत की एकता नष्ट हो चुकी थी। सरकार चाहती थी कि आयोग भारतीयों के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन के विषय में बुरा विचार लेकर लौटे।





Simon COMMISSION

- इंग्लैंड में आम चुनाव **1929** में होने वाला था। अनुदार दल को हार जाने का भय था। वे यह नहीं चाहते थे कि भारतीय समस्या को सुलझाने का मौका

मजदूर दल को दिया जाए क्योंकि उसके हाथ में वे साम्राज्य के हितों को सुरक्षित नहीं समझते थे।
- स्वराज दल ने सुधार की जोरदार मांग की। ब्रिटिश सरकार ने इस सौदे को बहुत सस्ता समझा क्योंकि इससे यह संभावना थी कि यह दल आकर्षणहीन हो जाएगा और धीरे-धीरे उसका अस्तित्व समाप्त हो जायेगा।

भारत में साइमन कमीशन का विरोध (Opposition to Simon Commission in India)

कांग्रेस ने दिसम्बर, 1927 ई. के मद्रास अधिवेशन में साइमन कमीशन के प्रति अपने दृष्टिकोण तथा नीति को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया- "चूँकि ब्रिटिश सरकार ने भारत के आत्म-निर्णय के अधिकार की पूर्ण उपेक्षा करके एक शाही कमीशन (Royal Commission) नियुक्त किया है, अत: कांग्रेस के लिए आत्म-सम्मानपूर्ण मार्ग यही है कि वह कमीशन का हर हालत में और हर प्रकार से बहिष्कार करे।"
- कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा और लिबरल फेडरेशन ने एक स्वर से कमीशन का विरोध किया। केवल सर मोहम्मद शफी के नेतृत्व में मुस्लिम लीग के एक वर्ग ने कमीशन का स्वागत करने का निश्चय किया।
- लाहौर में लाला लाजपत राय के नेतृत्व में कमीशन के विरोध में एक विशाल जुलूस का आयोजन किया गया। पुलिस द्वारा लाला लाजपत राय पर लाठियों और डंडों की भीषण वर्षा की गयी, जिससे उन्हें संघातिक चोट लगी और उनकी मुत्यु हो गयी।
- इस घटना से कमीशन के प्रति और अधिक विरोध प्रदर्शित किया गया तथा बंगाल व पंजाब में इससे आतंकवादी कार्यों को प्रोत्साहन मिला।
- भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त ने भारतीय भावनाओं को प्रकट करने के लिए केंद्रीय व्यवस्थापिका में बम फेंका और लालाजी पर लाठी प्रहार के लिए उत्तरदायी मि. सॉण्डर्स की लाहौर में हत्या कर दी गयी। केंद्रीय विधानसभा ने भी कमीशन का स्वागत करने से इंकार कर दिया। पटना, कलकत्ता, मद्रास और अन्य जगहों पर साइमन विरोधी नारे लगाए गये। विरोध के बावजूद आयोग ने अपना कार्य पूर्ण किया तथा 1930 ई. में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

साइमन कमीशन की रिपोर्ट (Report of Simon Commission)

- ***प्रांतों में द्वैध शासन की समाप्ति और प्रांतीय स्वायत्तता की स्थापना***- रिपोर्ट में कहा गया कि 1919 के अधिनियम द्वारा स्थापित प्रांतों में द्वैध शासन अनेक आंतरिक दोषों के कारण सफल नही हो सकता है, अत: इसे समाप्त करके प्रांतों को स्वायत्तता दी जाए। समस्त प्रांतीय शासन मंत्रियों को सौंप दिया जाए और उन्हें प्रांतीय विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी बनाया जाए, लेकिन इसके साथ ही यह भी सिफारिश की गयी कि प्रांतीय गवर्नर को कुछ विशेषाधिकार अवश्य प्रदान किये जाएँ जिससे वह कतिपय महत्त्वपूर्ण मामलों में आवश्यकतानुसार मंत्रियों के निर्णय की उपेक्षा कर सके।
- ***मताधिकार और विधान सभाओं का विस्तार***- 1926 में भारत की लगभग 3 प्रतिशत जनसंख्या को मताधिकार प्राप्त था। इसलिए रिपोर्ट में मताधिकार के विस्तार की सिफारिश करते हुए कहा गया कि कम से कम 10 प्रतिशत जनसंख्या को मताधिकार प्राप्त होना चाहिए। उसके सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से किया जाना चाहिए।
- ***संघ शासन की स्थापना***- इस रिपोर्ट में, भारत के लिए भविष्य में एक संघ शासन की स्थापना करने की सिफारिश की गयी, जिसमें प्रत्येक प्रांत जहाँ तक संभव हो, अपने क्षेत्र का स्वामी हो। इस संघ में ब्रिटिश भारत के प्रांत और समस्त भारतीय देशी राज्य, रियासती राज्य शामिल होंगे।
- ***सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व का पूर्ववत् जारी रहना***- रिपोर्ट में सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व को पूर्ववत् जारी रखने की सिफारिश की गयी।
- ***केंद्रीय क्षेत्र में अनुत्तरदायी शासन***- कमीशन ने केंद्रीय क्षेत्र में उत्तरदायी शासन के मांग की पूर्ण उपेक्षा की। यहाँ तक कि उसने केंद्र में द्वैध शासन व्यवस्था की भी सिफारिश नहीं की। उसने केंद्रीय व्यवस्थापिका सभा को नियंत्रण से पूर्णतया स्वतंत्र रखने की सिफारिश की किंतु कमीशन का विचार केंद्र में सदैव के लिए अनुत्तरदायी सरकार बनाए रखने का नहीं था। **'रक्षा वह प्रश्न'** था जिसके संतोषजनक ढंग से हल हो जाने के उपरांत वह केंद्र में भी उत्तरदायी शासन की स्थापना के पक्ष में था।
- ***केन्द्रीय व्यवस्थापिका का पुनर्गठन***- कमीशन ने सिफारिश की, संघीय आधार पर केंद्रीय व्यवस्थापिका का पुनर्गठन किया जाना चाहिए। केंद्रीय विधान सभा में भावी संघ में शामिल होने वाले प्रांतों के प्रतिनिधि शामिल हों व उसमें देशी रियासतों के प्रतिनिधि भी उस समय शामिल किए जा सकते हैं, जब वे संघ में मिलने के लिए तैयार हो जाएँ। केंद्रीय व्यवस्थापिका के उच्च सदन राज्यसभा को संघीय आधार पर गठित किया जाना चाहिए। रिपोर्ट में दोनों सदनों के गठन हेतु अप्रत्यक्ष चुनाव की सिफारिश की गयी।
- कमीशन के द्वारा सेना के भारतीयकरण की आवश्यकता को स्वीकार किया गया। रिपोर्ट में बर्मा को भारत से व सिंध को बंबई से पृथक कर देने की सिफारिश की गयी। यह भी कहा गया कि उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत के पिछड़े होने के कारण उसे अभी प्रांतीय स्वशासन नहीं दिया जाना चाहिए तथा प्रति 10 वर्ष के बाद भारत की संवैधानिक प्रगति की जांच करने की पद्धति छोड़ दी जाए और इसके स्थान पर नवीन संविधान में स्वयं ही विकसित होने की व्यवस्था रखी जाए।

मूल्यांकन (Evaluation)

साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में भारतीय राजनीति की समस्त कठिनाइयों और समस्याओं पर प्रकाश डाला, किंतु उसने तत्कालीन भारत और उसकी जनता की अभिलाषाओं और आकांक्षाओं की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। साइमन कमीशन की रिपोर्ट से भारतीय नेता बहुत असंतुष्ट हुए, क्योंकि-
- रिपोर्ट में भारतीयों की औपनिवेशिक स्वराज की मांग की पूर्ण उपेक्षा की गयी थी।
- इसने भारतीयों की केंद्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना करने की मांग को स्वीकार नहीं किया।
- प्रांतों में यद्यपि इसने उत्तरदायी मंत्रिमंडल की स्थापना करने की व्यवस्था की, लेकिन इसके साथ ही प्रांतीय गवर्नरों को कुछ ऐसी विशेष शक्तियाँ प्रदान करने की सिफारिश की गयी, जिससे उत्तरदायी शासन का महत्त्व बहुत कम हो जाता।
- नि:संदेह रिपोर्ट निरर्थक तथा रद्दी कागज के समान थी, फिर भी भारतीय समस्याओं के अध्ययन के दृष्टिकोण से यह महत्त्वपूर्ण लेख था। साइमन कमीशन का एक महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि इसने अप्रत्यक्ष और अस्थायी तौर पर ही सही देश, के विभिन्न समूहों और दलों को एकजुट कर दिया।

नेहरू रिपोर्ट (Nehru Report)

जिस समय पूरा देश साइमन कमीशन का बहिष्कार कर रहा था, उसी समय भारतीय मामलों के मंत्री, लॉर्ड बर्केनहेड ने स्वराजवादियों को चुनौती देते हुए कहा था कि, 'वह एक ऐसा संविधान तैयार करें, जिसमें ऐसी व्यवस्थाएं हों, जिस पर भारत की महान जनता आमतौर पर उससे सहमति व्यक्त करे।

- भारत सचिव की चुनौती का जवाब देने के लिए कांग्रेस ने फरवरी, **1928** में दिल्ली में एक सर्वदलीय सम्मेलन (All Party Conference) का आयोजन किया। इसकी अनेक बैठकें हुईं। इन बैठकों में निश्चित किया गया कि श्री मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में 8 व्यक्तियों की एक समिति बनायी जाए जो **1 जुलाई, 1928** के पहले भारत के लिए संविधान का एक प्रारूप तैयार कर सके।
- 29 राजनीतिक संगठनों ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। कमेटी ने जिसके सदस्यों में अली ईमाम, तेज बहादुर सप्रु, सुभाष चंद्र बोस, श्री एम. एस. अणे, सरदार मंगल सिंह, श्री शोएब कुरैशी तथा श्री.जी.आर.प्रधान शामिल थे, शीघ्र ही अपना काम पूरा कर अपना प्रतिवेदन अगस्त, **1928** में पेश कर दिया। यह प्रारूप **'नेहरू रिपोर्ट'** के नाम से जाना जाता है।

नेहरू रिपोर्ट के प्रमुख सुझाव (Major Suggestions of Nehru Report)

- भारत को औपनिवेशिक स्वराज प्रदान किया जाना चाहिए और उसका स्थान ब्रिटिश शासन के अंतर्गत अन्य उपनिवेशों के समान होना चाहिए।
- केंद्र में पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना होनी चाहिए। भारत के गवर्नर जनरल को लोकप्रिय मंत्रियों के परामर्श पर और संवैधानिक प्रधान के रूप में कार्य करना चाहिए।
- केंद्रीय व्यवस्थापिका द्वि-सदनीय (Bicameral) हो और मंत्रिमंडल उसके प्रति उत्तरदायी हों। निम्न सदन का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रीति से तथा उच्च सदन का परोक्ष रीति से हो।
- प्रांतों में भी केंद्र की भांति उत्तरदायी शासन की स्थापना हो।
- केंद्र और प्रांतों के मध्य शक्ति वितरण की एक योजना प्रस्तुत की गयी, जिसमें अवशिष्ट शक्तियां केंद्र को प्रदान की गयीं।
- सांप्रदायिक निर्वाचन का अंत कर उसके स्थान पर संयुक्त निर्वाचन व्यवस्था का सुझाव दिया गया। साथ-साथ यह भी सिफारिश कि गयी की अल्पसंख्यक वर्गों के लिए उनकी जनसंख्या के आधार पर उनको आरक्षण प्रदान किया जाए।
- उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत को ब्रिटिश भारत के अन्य प्रांतों के समान वैधानिक स्तर प्राप्त होना चाहिए।
- सिंध को बम्बई से अलग कर उसको एक पृथक प्रांत बनाया जाए।
- रिपोर्ट में मौलिक अधिकार का उल्लेख किया गया और उन्हें संविधान में स्थान देने की सिफारिश की गयी।
- रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि देशी राज्यों के अधिकारों तथा विशेषाधिकारों की रक्षा की व्यवस्था की जाए। साथ-साथ उन्हें यह चेतावनी भी दी गयी कि भारतीय संघ में उन्हें तभी सम्मिलित किया जाएगा, जब उनके राज्य में उत्तरदायी शासन की व्यवस्था हो जाए।

मूल्यांकन (Evaluation)

नेहरू रिपोर्ट पर विचार करने के लिए **1928** में ही लखनऊ और दिल्ली में सर्वदलीय सम्मेलन हुए। इन सम्मेलनों में भारतीय नेताओं का विरोध उभरकर सामने आया। सम्मेलन में मोहम्मद अली ने रिपोर्ट की मांग की, तो आगा खाँ ने देश के हर प्रांत को स्वाधीनता दिए जाने की मांग की।

- मुसलमानों के अड़ंगा लगाने पर हिंदू संप्रदायवादी भी अकड़ गये। सिक्खों ने पंजाब में विशेष प्रतिनिधित्व की मांग की। जिन्ना ने बाद में अपनी **'14 सूत्री मांगें'** रखीं।
- इसके विपरीत राष्ट्रवादी मुसलमानों का दल (डॉ. अंसारी, अली इमाम इत्यादि) नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार करने के पक्ष में थे, स्वयं कांग्रेस में भी इस रिपोर्ट पर मतभेद था।
- सुभाष चंद्र बोस, पंडित जवाहर लाल नेहरू, सत्यमूर्ति तथा अनेक अन्य युवा राष्ट्रवादी नेहरू रिपोर्ट से पूर्णतया सहमत नहीं थे। ये लोग औपनिवेशिक शासन के विपरीत पूर्ण स्वाधीनता के पक्ष में थे। भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु इन लोगों ने नवम्बर, **1928** में **'ऑल इंडिया इंडिपेंडेन्स लीग'** (All India Independence League) की स्थापना भी की तथा युवा वर्ग में स्वतंत्रता के प्रति रुझान पैदा करने में सफल रहे।
- कलकत्ता अधिवेशन में भी इस वर्ग ने कांग्रेस नेतृत्व से अपने लक्ष्य में परिवर्तन करने की मांग की। गाँधीजी के प्रयासों से विद्रोह दब गया, परंतु यह तय हुआ कि अगर एक वर्ष के अंदर सरकार ने डोमिनियन स्टेट्स प्रदान नहीं किया तो कांग्रेस का लक्ष्य **'पूर्ण स्वाधीनता'** की प्राप्ति बन जाएगा।
- कांग्रेस ने यह भी स्वीकार किया कि अगर सरकार नेहरू रिपोर्ट को अस्वीकृत कर देगी, तो पुनः असहयोग आंदोलन प्रारंभ कर दिया जाएगा।

गोलमेज सम्मेलन (Round Table Conference)

प्रथम गोलमेज सम्मेलन (नवंबर, 1930 से जनवरी, 1931 तक) [First Round Table Conference (November, 1930 to January, 1931)]

सरकार ने **12 नवंबर, 1930** को साइमन कमीशन की रिपोर्ट तथा संवैधानिक मुद्दों पर चर्चा करने हेतु लंदन में प्रथम गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया। ब्रिटिश सरकार एवं भारतीयों के मध्य समान स्तर पर आयोजित की गयी यह प्रथम वार्ता थी। कांग्रेस एवं अधिकांश व्यावसायिक संगठनों ने इस सम्मलेन का बहिष्कार किया लेकिन मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, उदारवादियों, दलित वर्ग तथा भारतीय रजवाड़ों ने इस सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन में मुख्यतयः तीन प्रकार के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

- तीनों ब्रिटिश दल-लिबरल, कंजरवेटिव और श्रमिक दल के प्रतिनिधि।
- ब्रिटिश भारत से ब्रिटिश सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य।
- भारत के रजवाड़ों से राजा/राजकुमार या उनके द्वारा मनोनीत प्रतिनिधि।
- ब्रिटेन की तीनों पार्टियों का प्रतिनिधित्व अलग-अलग प्रतिनिधि कर रहे थे। जबकि भारतीय प्रतिनिधियों में से कुछ वायसराय द्वारा मनोनीत थे तथा कुछ का मनोनयन भारतीय रजवाड़ों ने किया था। इस सम्मेलन में राज्य लोक संगठन का कोई प्रतिनिधित्व नहीं था। प्रतिनिधियों का मनोनयन ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठा तथा उनके स्वशासन संबंधी विचार के आधार पर किया गया था।
- इस सम्मेलन में सम्मिलित सभी दलों के प्रतिनिधियों ने यथासंभव अपने हितों को साधने का प्रयास किया। सम्मेलन के दौरान केवल समस्याएँ व विचारार्थ विषय ही प्रस्तुत किये गए लेकिन कोई ठोस परिणाम सामने नहीं आ सका। अंततः **19 जनवरी, 1931** को बिना किसी ठोस परिणाम के यह सम्मेलन समाप्त हो गया।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन (सितंबर, 1931 से दिसंबर, 1931 तक) [Second Round Table Conference (September, 1931 to December 1931)]

लंदन में **7 सितंबर, 1931** से **दिसंबर, 1931** तक आयोजित द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में गाँधी जी ने भाग लिया। गाँधी जी इस सम्मेलन हेतु **'राजपुताना'** नामक जहाज से रवाना हुए जिसमें महादेव देसाई, मदनमोहन मालवीय, देवदास गाँधी, घनश्यामदास बिड़ला एवं मीरा बेन भी थीं। इस गोलमेज सम्मेलन से गाँधी जी को कुछ विशेष प्राप्त होने की उम्मीद नहीं थी क्योंकि-

- कांग्रेस को ब्रिटिश सरकार द्वारा बराबरी का दर्जा दिये जाने का चर्चिल के नेतृत्व वाले दक्षिण पंथी खेमें ने कड़ा विरोध किया। उसने भारत में और सुदृढ़ ब्रिटिश शासन की मांग की। ब्रिटेन में रैम्जे मैक्डोनाल्ड के नेतृत्व में बनी लेबर पार्टी की सरकार में रूढ़िवादी सदस्यों का बोलबाला था तथा इसी समय सेमुअल होअर को भारत का गृहसचिव नियुक्त किया गया, जो कि घोर दक्षिणपंथी था।
- द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में मुख्यतया रूढ़िवादी, प्रतिक्रियावादी, साम्प्रदायिक एवं ब्रिटिश राजभक्तों के प्रतिनिधि थे, जिनका उपयोग साम्राज्यवादी सरकार ने यह प्रदर्शित करने के लिये किया कि कांग्रेस सभी भारतीयों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था नहीं है। साथ ही सरकार का मकसद था कि हर मोर्चे पर गाँधी जी को परास्त किया जाए।
- अल्पसंख्यकों के मुद्दे पर शीघ्र ही सम्मेलन में मतभेद उभरने लगे। मुसलमानों, ईसाइयों, आंग्ल-भारतीयों एवं दलितों ने पृथक प्रतिनिधित्व की मांग प्रारंभ कर दी। ये सभी आपस में मिलकर **'अल्पसंख्यक गठजोड़'** के रूप में संगठित हो गए। किंतु गाँधी जी ने साम्प्रदायिक आधार पर किसी भी संवैधानिक प्रस्ताव का अंत तक विरोध किया।
- भारतीय रजवाड़े भी संघ बनाने के मुद्दे पर ज्यादा उत्साहित नहीं थे। मुख्यतया उस स्थिति में जब सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित कर कांग्रेस, केंद्र में सरकार का गठन करे। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन, रेम्जे मैकडोनाल्ड की इस घोषणा के साथ संपन्न हुआ-
  - दो मुस्लिम प्रांतों-उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांत एवं सिंध का गठन।
  - भारतीय सलाहकारी परिषद की स्थापना।
  - तीन विशेषज्ञ समितियों-वित्त, मताधिकार एवं राज्यों संबंधी समितियों का गठन।
  - यदि भारतीयों में सहमति नहीं हो सकी तो सर्वसम्मति से साम्प्रदायिक निर्णय की घोषणा।
- सरकार द्वारा सम्मेलन में भारतीयों की **'स्वतंत्रता'** की मांग पर किसी भी प्रकार का निर्णय नहीं किया जा सका। **28 दिसम्बर, 1931** को गाँधी जी भारत लौट आए तथा **29 दिसम्बर, 1929** को कांग्रेस कार्यकारिणी ने **'सविनय अवज्ञा'** आंदोलन फिर से प्रारंभ करने का निर्णय लिया।

तृतीय गोलमेज सम्मेलन (नवंबर, 1932 से दिसंबर, 1932 तक) [Third Round Table Conference (Novermber, 1932 to December, 1932)]

17 नवम्बर, 1932 से प्रारम्भ तृतीय गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस के किसी प्रतिनिधि ने भाग नहीं लिया। **24 दिसम्बर, 1932** में बिना किसी निर्णय के यह सम्मेलन समाप्त हो गया। ब्रिटिश सरकार ने तीनों अधिवेशनों पर हुए विचारों के आधार पर भारतीय संविधान के सुधारों का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसे मार्च, **1933** में प्रकाशित श्वेतपत्र में शामिल किया गया। इस प्रस्ताव पर आधारित एक बिल ब्रिटिश संसद में पारित किया गया जिसे **'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट'** के नाम से जाना जाता है।

राष्ट्रीय आंदोलन में 1930 का दशक
(National Movement in the Decade of 1930's)

सविनय अवज्ञा आंदोलन (Civil Disobedience Movement)



सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रारंभ
(Start of Civil Disobedience Movement)

दूसरा नागरिक अवज्ञा आंदोलन (प्रथम असहयोग आंदोलन था) **12 मार्च, 1930** को गाँधी जी के प्रसिद्ध 'दांडी मार्च' के साथ (साबरमती आश्रम से समुद्र तट पर बसे गांव दांडी के लिए निकलने के साथ) शुरू हुआ। उनकी यात्रा, उनके भाषणों तथा जनता पर उनके प्रभाव की खबर प्रतिदिन समाचार पत्रों में छपती रही। रास्ते में पड़ने वाले सैकड़ों गाँवों के अधिकारियों ने त्यागपत्र दे दिये। (सुभाषचंद्र बोस ने दांडी यात्रा की तुलना नेपोलियन के **'पेरिस'** मार्च और मुसोलिनी के **'रोम मार्च'** से की।) 6 अप्रैल, 1930 को गाँधीजी ने **डांडी पहुंचकर** समुद्र तट से थोड़ा-सा नमक उठाकर शांतिपूर्ण और अहिंसात्मक ढंग से नमक कानून का उल्लंघन किया।

- पूरे देश में सनसनी फैल गयी, जो जहां था वहीं सरकार का असहयोग करने लगा। हजारों विद्यार्थियों ने स्कूल कॉलेज छोड़ दिये, किसानों ने लगान देना बंद कर दिया, मजदूरों ने हड़ताल रखी और प्रदर्शन किये।
- विदेशी वस्त्रों की होली जलायी गयी, सरकारी दुकानों पर धरने दिये गए। सरकार ने भी अपना दमनचक्र चलाया। हजारों कार्यकत्ताओं को जेल भेज दिया गया। अनेक व्यक्तियों को सेना और पुलिस के डंडों का शिकार होना पड़ा।
- कांग्रेस को गैर-कानूनी संस्था घोषित कर दिया गया और 15 मई को गाँधी जी को भी गिरफ्तार कर लिया गया।
- गाँधीजी की गिरफ्तारी से आंदोलन दबने की बजाय और भड़क उठा, आंदोलन तेजी से फैला और पूरे देश में नमक कानून तोड़े गये।
- महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा मध्य भारत में नमक कानून का व्यापक उल्लंघन किया गया। पूर्वी भारत में ग्रामीण जनता ने चौकीदारी कर देने से इंकार कर दिया।
- आंदोलन बढ़कर एकदम उत्तर-पश्चिमी छोर तक भी पहुँचा जहाँ, **'सीमांत गांधी'** के नाम से विख्यात खान अब्दुल गफ्फार खान ने खुदाई खिदमतगार (लाल कुर्ती) नामक स्वयंसेवी संगठन बनाकर स्वाधीनता संघर्ष को आगे बढ़ाया।
- इस समय पेशावर में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। गढ़वाली सिपाहियों की दो प्लाटूनों ने अहिंसक प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने से इंकार कर दिया। इसके नेता **चंद्र सेन** गढ़वाली थे। इसके बदले उनका कोर्ट मार्शल किया गया। इसने स्पष्ट कर दिया कि राष्ट्रवाद की भावना सेना में भी फैल चुकी है।
- इसी तरह आंदोलन की गूंज देश के पूर्वी कोने में भी सुनाई पड़ी। इसमें मणिपुरी जनता की भरपूर भागीदारी रही। नागालैंड की अल्पवयस्क **रानी गाइडिन्ल्यू** ने विद्रोह का झंडा उठाया और **1932** में यह युवा रानी पकड़ी गयी और उसे आजीवन कारावास की सजा मिली। बंगाल में चटगाँव शस्त्रागार पर सूर्यसेन और उनके साथियों ने अधिकार कर लिया।
- इस आंदोलन की एक प्रमुख विशेषता स्त्रियों की भागीदारी थी। हजारों स्त्रियों ने घरों से बाहर निकलकर आंदोलन में सक्रिय सहयोग दिया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि, मुस्लिम लीग को छोड़ भारत के सभी दलों और सभी वर्गों ने इस आंदोलन का साथ दिया।
- अब सरकार भी गाँधीजी और कांग्रेस के महत्त्व को समझने लगी। वह समझ गयी कि आंदोलन को सिर्फ ताकत के बल पर नहीं दबाया जा सकता, अत: संवैधानिक सुधारों की बात सोची जाने लगी।
- इसी उद्देश्य से लंदन में प्रथम गोलमेज सम्मेलन हुआ, लेकिन कांग्रेस के बहिष्कार के चलते वह असफल रहा। बाध्य होकर सरकार को गाँधी जी के साथ समझौता-वार्ता करनी पड़ी जो **'गाँधी-इरविन पैक्ट'** के नाम से विख्यात है।

सविनय अवज्ञा आंदोलन का कारण
(Reason of Civil Disobedience Movement)

इस आंदोलन को शुरू करने के कारणों को संक्षेप में निम्नलिखित रूप से रखा जा सकता है-

- ब्रिटिश सरकार ने नेहरू रिपोर्ट को अस्वीकृत कर भारतीयों के लिए संघर्ष के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं छोड़ा।
- देश की आर्थिक स्थिति चिंतनीय हो गयी थी। विश्वव्यापी आर्थिक मंदी से भारत भी अछूता नहीं रहा। एक तरफ विश्व की महान आर्थिक मंदी ने, तो दूसरी तरफ सोवियत संघ की समाजवादी सफलताओं और चीन की क्रांति के प्रभाव से दुनिया के विभिन्न देशों की स्थिति बहुत ही दयनीय हो गयी थी। फलस्वरूप देश का वातावरण तेजी से ब्रिटिश सरकार विरोधी होता गया। गाँधी जी ने इस मौके का लाभ उठाकर इस विरोध को सविनय अवज्ञा आंदोलन की तरफ मोड़ दिया।
- भारत की विप्लवकारी स्थिति ने भी आंदोलन शुरू करने को प्रेरित किया। राष्ट्रवादी गतिविधियाँ बढ़ रही थी। **'मेरठ षड्यंत्र केस'** और **'लाहौर षड्यंत्र केस'** ने सरकार विरोधी विचारधाराओं को उग्र बना दिया। किसानों, मजदूरों और राष्ट्रवादियों के बीच समान दृष्टिकोण बनते जा रहे थे। इससे हिंसा और भय का वातावरण व्याप्त हो गया। हिंसात्मक संघर्ष की संभावना अधिक हो गयी थी।
- सरकार राष्ट्रीयता और देश के प्रेम की भावना से त्रस्त हो चुकी थी। अत: वह नित्य दमन के नये-नये उपाय ढूँढ़ती थी। इसी संदर्भ में सरकार ने जनवरी, 1929 में **'पब्लिक सेफ्टी बिल'** या **'काला कानून'** पेश किया, जिसे विधानमंडल पहले ही अस्वीकार कर चुकी थी। इससे भी जनता में असंतोष फैला।
- **31 अक्टूबर, 1929** को वायसराय लॉर्ड इरविन ने यह घोषणा की कि "मुझे ब्रिटिश सरकार की ओर से घोषित करने का यह अधिकार मिला है कि सरकार के मतानुसार **1917** की घोषणा में यह बात अंतर्निहित है कि भारत को अंत में औपनिवेशिक स्वराज प्रदान किया जाएगा।" लॉर्ड इरविन

की घोषणा से भारतीयों के बीच एक नयी आशा का संचार हुआ। फलतः वायसराय के निमंत्रण पर गाँधी जी, जिन्ना, तेज बहादुर सप्रु, विट्ठल भाई पटेल इत्यादि कांग्रेसी नेताओं ने दिल्ली में उनसे मुलाकात की। वायसराय डोमिनियन स्टेट्स के विषय पर इन नेताओं को कोई निश्चित आश्वासन नहीं दे सके। दूसरी तरफ, ब्रिटिश संसद में इरविन की घोषणा (दिल्ली घोषणा पत्र) पर असंतोष व्यक्त किया गया। इससे भारतीय जनता को बड़ी निराशा हुई और सरकार के विरुद्ध घृणा की लहर सारे देश में फैल गयी।

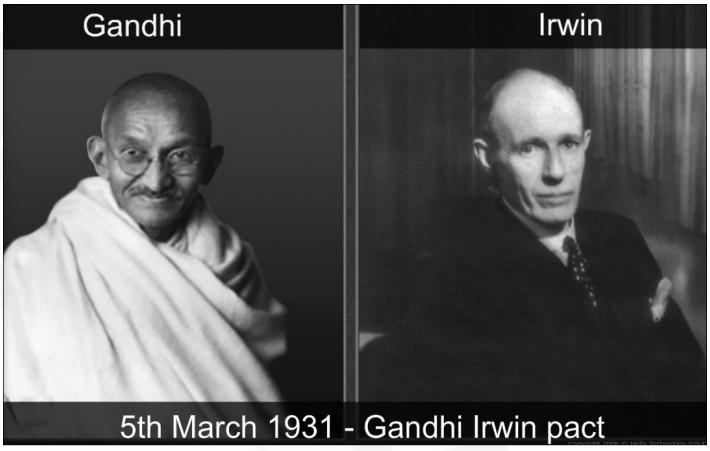
- उत्तेजनापूर्ण वातावरण में दिसम्बर, **1929** को लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। अधिवेशन के अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू थे जो युवक आंदोलन और उग्र राष्ट्रवाद के प्रतीक थे। इस बीच सरकार ने नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार नहीं किया था। महात्मा गाँधी ने राष्ट्र की नब्ज को पहचान लिया और यह महसूस किया कि हिंसात्मक क्रांति को रोकने के लिए 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' को अपनाना होगा। अतः उन्होंने लाहौर अधिवेशन में प्रस्ताव पेश किया कि भारतीयों का लक्ष्य अब **'पूर्ण स्वाधीनता'** है न कि औपनिवेशिक स्वराज की प्राप्ति, जो गत् वर्ष कलकत्ता अधिवेशन में निश्चित किया गया था।
- **31 दिसम्बर, 1929** की मध्य रात्रि को रावी के तट पर जवाहर लाल नेहरू ने तिरंगा झंडा फहराया तथा स्वतंत्रता की घोषणा का प्रस्ताव पढ़ा। **1930** में कांग्रेस कार्यकारिणी ने महात्मा गाँधी को सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ करने का अधिकार दिया। पूरे देश में उत्साह की एक नयी लहर दौड़ गयी। **2 जनवरी, 1930** को कांग्रेस कायकारिणी की बैठक में यह भी निश्चित किया गया कि **26 जनवरी, 1930** को **'पूर्ण स्वतंत्रता दिवस'** के रूप में मनाया जाएगा। इस दिन लोगों को महात्मा गाँधी द्वारा तैयार किये गए **'पूर्ण स्वराज शपथ'** का वचन लेना था।
- गाँधी जी ने आंदोलन प्रारंभ करने के पूर्व वायसराय से बातचीत कर समझौता करने का प्रयास किया। उन्होनें अपनी 11 सूत्री मांग पेश की तथा यह आश्वासन दिया कि अगर सरकार उन्हें स्वीकार कर लेगी, तो वे अपना प्रस्तावित आंदोलन स्थगित कर देंगे। गाँधी जी की 11 सूत्री मांगे निम्न थीं-
- लगान की राशि आधी कर दी जाए।
- विनिमय की दर घटकर 1 शिलिंग 4 पेंस की जाए।
- खर्च में 50 प्रतिशत की कमी की जाए।
- असैनिक कर्मचारियों के वेतन में कमी हो।
- रक्षात्मक शुल्क लगे और विदेशी वस्तुओं के आयात को नियंत्रित किया जाए।
- भारतीय समुद्र तट केवल भारतीय जहाजों के लिए सुरक्षित रहें।
- गुप्तचर विभाग या तो समाप्त कर दिया जाए या उस पर सार्वजनिक नियंत्रण हो।
- भारतीयों को आत्मरक्षा के लिए आग्नेय अस्त्र रखने का अधिकार मिले तथा इसके लिए अनुमति पत्र प्रदान किये जाएँ।
- नमक कर समाप्त किया जाए।
- नशीली वस्तुओं की बिक्री बंद की जाए।
- सभी राजनैतिक कैदियों को छोड़ दिया जाए और निर्वासित भारतीयों को स्वदेश आने की अनुमति दी जाए।

सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रभाव
(Influence of Civil Disobedience Movement)

- गाँधीवादी नीतियों के साथ असंतोष।
- राष्ट्रवाद के साथ सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रमों को समन्वित करने पर जोर देने की मांग।
- कांग्रेस में वामपंथ का प्रभाव (कांग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना एवं विस्तार)।

उपर्युक्त प्रभावों के अतिरिक्त इस आंदोलन के कई अन्य सकारात्मक प्रभाव भी पड़े। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है **1937** में बने कांग्रेसी मंत्रिमंडलों को व्यापक जनसमर्थन मिलना। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय आंदोलन के विकास में इस आंदोलन ने गाँधीवादी नीतियों को प्रसारित करने एवं आम जनता को प्रेरित करने में प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया।

गाँधी-इरविन समझौता-मार्च, 1931
(Gandhi-Irwin Agreement-March, 1931)



लंदन में आयोजित प्रथम गालेमजे सम्मलेन की असफलता और असहयोग आंदोलन की व्यापकता ने सरकार के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेस और गाँधी के बिना भारत की राजनीतिक समस्या का समाधान आसान नहीं है। इसलिए लॉर्ड इरविन ने गाँधीजी से समझौता वार्ता प्रारंभ की। गाँधीजी को **26 जनवरी, 1931** को **यरवदा** जेल से रिहा कर दिया गया और **17 फरवरी** से दिल्ली में गाँधी और **इरविन** के मध्य वार्ता प्रारंभ हुई। **5 मार्च, 1931** को **'गाँधी-इरविन पैक्ट'** (दिल्ली पैक्ट) के मसौदा पर हस्ताक्षर किये गये। इस समझौते के अनुसार सरकार ने निम्नलिखित वादे किए-

- हिंसात्मक अपराधों के बंदियों के अतिरिक्त अन्य समस्त राजनीतिक बंदियों को मुक्त कर दिया जाएगा।
- सरकार द्वारा जब्त संपत्तियों को वापस कर दिया जाएगा।
- नमक को निःशुल्क तैयार करने या एकत्रित करने की अनुमति दी जाएगी।
- शराब, अफीम और विदेशी कपड़ों की दुकानों पर शांतिपूर्वक धरना देने की अनुमति दी जाएगी।

दूसरी ओर कांग्रेस ने भी निम्नलिखित बातें स्वीकार कीं-

- वह सविनय अवज्ञा आंदोलन को स्थगित कर देगी।
- वह पुलिस अत्याचार के लिए निष्पक्ष जांच की मांग नहीं करेगी।
- वह भारत के हित में संरक्षणों तथा रक्षा कवचों सहित उत्तरदायित्व के आधार पर दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेगी।
- वह समस्त बहिष्कारों को बंद कर देगी।

कांग्रेस ने बहुमत से समझौते का स्वागत किया, परंतु वामपंथियों तथा युवाओं ने इसका घोर विरोध किया। सुभाष चंद्र बोस ने इसका घोर विरोध करते हुए इसे **'कांग्रेस की पराजय'** कहा।

गाँधी-इरविन समझौते के तहत् गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन को स्थगित कर द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने लंदन गये। जहाँ सम्मेलन में कोई तार्किक निर्णय न निकलने के कारण गाँधी जी वापस लौटे तथा कहा कि **'मैं खाली हाथ लौटा हूँ'** और पुनः सविनय अवज्ञा आंदोलन को प्रारम्भ करने का निर्णय किया।

जो पहले की तरह जोर न पकड़ सका और किसी तरह **1934** तक चलता रहा। गाँधी जी ने **1934** में सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित कर दिया और लोगों को देश में रचनात्मक कार्यों में लगने को कहा। जिसमें देश की जनता को राजनीति के प्रति शिक्षित करना तथा आंदोलन के प्रति जागरुक करना भी सम्मिलित था। जिसकी परिणति **1942** के आंदोलन में हुई।

मैकडोनाल्ड अवार्ड तथा पूना पैक्ट-1932 (Macdonald Award & Poona Pact-1932)



गोलमेज सम्मेलन के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों के बीच की आपसी खाई को और बढ़ाने का निश्चय किया। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर ब्रिटिश प्रधानमंत्री मैकडोनाल्ड ने **16 अगस्त, 1932** को एक अवार्ड की घोषणा की, जो कि **'सांप्रदायिक निर्णय'** या **'सांप्रदायिक पंचाट'** (Communal Award or Macdonald Award) के नाम से प्रसिद्ध है। इस अवार्ड में निम्न प्रावधान थे-

- प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं की सदस्य संख्या बढ़ाकर दोगुनी कर दी गयी।
- अल्पसंख्यकों तथा विशेष हितों वाले संप्रदायों की संख्या बढ़ा दी गयी। इसके अंतर्गत मुसलमानों, सिक्खों, दलितों, पिछड़ी जातियों, भारतीय ईसाइयों, एंग्लो इंडियनों, यूरोपीयन, व्यापारिक एवं औद्योगिक वर्गों को रखा गया।
- अल्पसंख्यकों के लिए अलग निर्वाचन की व्यवस्था की गयी।
- अछूतों को हिंदुओं से अलग मानकर उनके लिए भी पृथक निर्वाचन तथा प्रतिनिधित्व का अधिकार दिया गया।
- स्त्रियों के लिए भी कुछ स्थान आरक्षित किये गए।
- श्रम, वाणिज्य-उद्योग, चाय बगान संघों, जमींदारों और विश्वविद्यालयों के लिए भी पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की गयी तथा स्थान आरक्षित किये गये।
- जिन क्षेत्रों में हिंदू अल्पसंख्या में थे, उन्हें वैसी रियासत नहीं दी गयी जैसी मुसलमानों को दी गयी, जिन प्रांतों में मुसलमानों की संख्या कम थी, वहाँ जनसंख्या के अनुपात से भी अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया।
- वैसे तो संपूर्ण अवार्ड ही अन्यायपूर्ण था, लेकिन अवार्ड का दलित वर्गों (अस्पृश्य) से संबंध रखने वाला उपबंध तो महात्मा गाँधी के लिए असहनीय था। **18 अगस्त, 1932** को मैकडोनाल्ड को एक पत्र लिखकर गाँधीजी ने इस निर्णय का विरोध किया। उन्होंने यह भी धमकी दी कि सरकार यदि अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन प्रणाली समाप्त नहीं करेगी तो वे **20 सितम्बर, 1932** से आमरण अनशन आरंभ कर देंगे।
- सरकार ने इस पत्र पर कोई ध्यान नहीं दिया, उल्टे उन्हीं पर आरोप लगाया कि वे दलितों का उत्थान नहीं चाहते। अत: गाँधीजी ने यरवदा जेल में ही अनशन शुरू कर दिया। गाँधीजी के अनशन से देश के सार्वजनिक जीवन में हलचल मच गयी। पंडित मदन मोहन मालवीय, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद तथा अनेक हिंदू नेता पहले बम्बई में, फिर पूना में एकत्रित हुए।
- डॉ. अम्बेडकर से समझौता वार्ता शुरू की गयी तथा **24 सितम्बर, 1932** को एक हल निकल आया। यह हल ही **'पूना पैक्ट'** या पूना समझौता के नाम से प्रसिद्ध है, जिसे बाद में **हिंदू महासभा** और **ब्रिटिश सरकार** के द्वारा भी स्वीकार कर लिया गया। पूना समझौते की प्रमुख व्यवस्थाएं निम्नलिखित थीं-
- अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन प्रणाली समाप्त कर दी गयी। इसके बदले उनके लिए 71 के स्थान पर 148 स्थान आरक्षित कर दिये गए इन आरक्षित स्थानों के लिए चुनाव दो भागों में कराने की व्यवस्था की गयी। पहले चरण में अछूतों को ही प्रत्येक आरक्षित स्थान के लिए 4 प्रत्याशी चुनने थे। दूसरे चरण में अछूत उच्चवर्गीय हिंदुओं के साथ मिलकर किसी एक सदस्य का चुनाव कर सकते थे।
- केंद्रीय विधायिका में भी हरिजनों या अछूतों के लिए 18 प्रतिशत स्थान आरक्षित किये गए।
- अछूतों के लिए स्थानीय संस्थाओं एवं सार्वजनिक सेवाओं में भी उचित प्रतिनिधित्व देने की बात की गयी।
- उनके समुचित और शैक्षणिक एवं आर्थिक विकास के लिए प्रयास करने की व्यवस्था की गयी।

इस समझौते के पश्चात् गाँधीजी का ध्यान मुख्यत: हरिजन उद्धार की तरफ लग गया। उनके प्रयासों से हरिजनों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ बनायी गयीं। अस्पृश्यता निवारण के प्रयास किये गये। गाँधीजी ने अछूतों के लिए उपवास भी रखे तथा इस प्रकार **'अखिल भारतीय अस्पृश्यता विरोधी लीग'** की स्थापना हुई, जिसका नाम परिवर्तित करके बाद में **'हरिजन सेवक संघ'** कर दिया गया।

1935 का भारत-शासन अधिनियम (Government of India Act of 1935)



अधिनियम के पारित होने की परिस्थितियाँ (Circumstances of Passing of the Act)

- वर्ष **1919** के 'मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों की असफलता (कांग्रेस ने इसे असंतोषजनक अपर्याप्त और निराशाजनक कहा)।
- **'असहयोग आंदोलन'** तथा **'सविनय अवज्ञा आंदोलन'** द्वारा उत्पन्न दबाव से सरकार को यह एहसास हो गया कि वह दमनकारी नीतियों से राष्ट्रीय भावनाओं को ज्यादा दिन तक दबा नहीं सकती। सरकार राष्ट्रीय आंदोलन को स्थायी रूप से दुर्बल करने तथा कांग्रेस को विभक्त करने की योजना बनाने लगी क्योंकि उसे उम्मीद थी कि संवैधानिक सुधारों के इस अधिनियम से कांग्रेस के एक खेमे को संतुष्ट कर औपनिवेशिक प्रशासन में समाहित कर लिया जाएगा तथा राष्ट्रवादी आंदोलन का दमन कर समाप्त कर दिया जाएगा।

- स्वराज दल ने विधानमंडलों में प्रवेश कर सरकार की नीतियों का विरोध किया तथा जनता को राजनीतिक रूप से और जागरुक बनाया।
- साइमन कमीशन की रिपोर्ट में की गई संस्तुतियाँ, अप्रत्यक्ष रूप से **'मांटेग्यू चेम्सफोर्ड'** सुधारों की कमियों तथा कुछ अन्य सुधारों की आवश्यकता को रेखांकित कर रहीं थीं।
- नेहरू रिपोर्ट में सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था की आलोचना तथा उसके स्थान पर अल्पसंख्यकों को जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व देने की मांग की गयी। इसके साथ-साथ संपूर्ण भारत के लिये एक एकीकृत संविधान की रूपरेखा प्रस्तुत की गई, जिससे केंद्र तथा सभी प्रांतों को पूर्णस्वायत्तता मिल सके।
- लॉर्ड इरविन की **'डोमिनियन स्टेट'** से संबद्ध घोषणा अक्टूबर, **1929** में रैम्जे मैकडोनाल्ड के नेतृत्व में सत्ताधारी श्रमिक सरकार से विचार विमर्श के पश्चात् यह घोषणा की गयी कि भारत में सुधारों का लक्ष्य 'डोमिनियन स्टेटस' प्राप्त करना है।
- ***गोलमेज सम्मेलनों की भूमिका***- 1930, 1931, 1932 में आयोजित तीनों गोलमेज सम्मेलनों का मुख्य उद्देश्य भारत में संवैधानिक मुद्दों पर विचार-विमर्श करना तथा आगे की रणनीति तय करना था, किंतु इस सम्मेलन में कोई विशेष उपलब्धि हासिल नहीं हो सकी।

अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ (Main Features of the Act)

एक अखिल भारतीय संघ

प्रस्तावित संघ में सभी ब्रिटिश भारतीय प्रांतों, मुख्य आयुक्त के प्रांतों तथा सभी भारतीय प्रांतों का सम्मिलित होना अनिवार्य था, किंतु देशी रियासतों का सम्मिलित होना वैकल्पिक था, इनका उल्लेख एक पत्र में किया जाना था। चूंकि यह नहीं हो सका, इसलिए संघ कभी अस्तित्व में नहीं आया तथा वर्ष **1946** तक केंद्र सरकार भारत सरकार अधिनियम **1919** के प्रावधानों के अनुसार ही चलती रही।

संघीय व्यवस्था (Federal System)

कार्यपालिका (Executive)

- केंद्रीय या संघ सरकार के लिए द्वैध-शासन की व्यवस्था की गई, जैसा कि **1919 ई.** के कानून के अंतर्गत प्रांतों में की गई थी।
- गवर्नर जनरल केंद्र में समस्त संविधान का केंद्र बिंदु था। संघीय विषयों को दो भागों में बांटा गया-संरक्षित विषय तथा हस्तांतरित विषय। हस्तांतरित विषय का प्रशासन गवर्नर जनरल कुछ मंत्रियों की सहायता से करता था, जिनका निर्वाचन व्यवस्थापिका द्वारा किया गया था। ये मंत्री केंद्रीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे तथा अविश्वास प्रस्ताव पारित होने पर उन्हें त्यागपत्र देना अनिवार्य था।
- गवर्नर जनरल को भारत में अंग्रेजी राज्य की सुरक्षा, शांति, ब्रिटिश सम्राट और देशी नरेशों के सम्मान की रक्षा, विदेशी आक्रमण से रक्षा कुछ विशेष दायित्व आदि जैसे अधिकार प्रदान किए गये थे।
- गवर्नर जनरल संघ शासन का प्रधान था, उसके प्रशासनिक, आर्थिक और व्यावसायिक संबंधी अधिकार विस्तृत थे। आर्थिक प्रस्ताव बिना उसकी अनुमति के व्यवस्थापिका सभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। उसे अध्यादेश जारी करने और स्वेच्छा से कानून बनाने का भी अधिकार प्राप्त था। भारतीय उच्चायुक्त की नियुक्ति का अधिकार गवर्नर जनरल को दिया गया था।
- **भारतीय परिषद** को समाप्त कर दिया गया, उसके स्थान पर भारत सचिव के लिए कुछ सलाहकारों की व्यवस्था की गयी।

व्यवस्थापिका (Legislature)

- संघीय व्यवस्थापिका द्वि-सदनीय (दो सदनों की व्यवस्था) की गई। राज्य परिषद (उच्च सदन) तथा संघीय सभा (निम्न सदन)। राज्य परिषद एक स्थायी सदन था जिसके 1/3 सदस्य प्रत्येक तीन वर्ष के बाद चुने जाने थे। संघीय सभा का कार्यकाल पांच वर्ष का था दोनों सदनों में ब्रिटिश भारतीय प्रांतों के सदस्यों तथा नरेशों के राज्यों से आने वाले सदस्यों की व्यवस्था की गयी। राज्य परिषद में ब्रिटिश भारत के सदस्यों के लिए, निर्वाचन प्रणाली अपनायी गयी, जबकि नरेश राज्यों के सदस्यों के लिए वहां के नरेशों द्वारा मनोनित किये जाने की व्यवस्था थी। संघीय सभा के लिए ब्रिटिश भारत के सदस्यों का निर्वाचन, प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों द्वारा किया जाना था जबकि देशी राज्यों के सदस्यों की नियुक्ति राज्यों के नरेशों द्वारा किये जाने की व्यवस्था थी।
- यह एक अत्यंत विचित्र व्यवस्था थी, जहाँ उच्च सदन के सदस्यों का चुनाव सीधे मतदाताओं द्वारा जबकि निम्न सदन जो ज्यादा महत्त्वपूर्ण था, उसके सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष तरीके से होता था।
- इसी प्रकार राजाओं को उच्च सदन के 40% तथा निम्न सदन के 55% सदस्य मनोनीत करने थे।
- समस्त विषयों का बंटवारा तीन सूचियों में किया गया केंद्रीय सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची।
- संघीय सभा के सदस्य, मंत्रियों के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव ला सकते थे, किंतु राज्य परिषद में अविश्वास नहीं लाया जा सकता था।
- धर्म आधारित एवं जाति आधारित निर्वाचन व्यवस्था को आगे भी जारी रखने की व्यवस्था की गयी।
- संघीय बजट का 80% भाग ऐसा था, जिस पर विधानमंडल, मताधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता था।
- गवर्नर जनरल के अधिकार अत्यंत विस्तृत थे वह-
  - अनुदान मांगों में कटौती कर सकता था।
  - विधान परिषद द्वारा अस्वीकार किये गए विधेयक का अनुमोदन कर सकता था।
  - अध्यादेश जारी कर सकता था।
  - किसी विधेयक के संबंध में 'वीटो' का प्रयोग कर सकता था।
  - दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन बुला सकता था।

प्रांतीय व्यवस्था (Provincial System)

प्रांतीय स्वायत्तता (Provincial Autonomy)

- प्रांतों को स्वायत्तता प्रदान कर दी गई तथा द्वैध-शासन समाप्त कर दिया गया।
- प्रांतों को भारत सचिव एवं गवर्नर जनरल के अलावा कमान वाले आदेशों से मुक्त कर दिया गया इस प्रकार वे प्रत्यक्ष और सीधे तौर पर महामहिम ताज (क्राउन) के अधीन आ गए।

कार्यपालिका (Executive)

- गवर्नर प्रांत में शासन का मनोनीत प्रतिनिधि होता था, जो महामहिम की ओर से समस्त कार्यों का संचालन एवं नियंत्रण करता था।
- गवर्नर को अल्पसंख्यकों, लोक सेवकों के अधिकार, कानून एवं व्यवस्था, ब्रिटेन के व्यापारिक हितों तथा देशी रियासतों इत्यादि के संबंध में विशेष शक्तियाँ प्राप्त थीं।
- प्रांतीय शासन का प्रधान गवर्नर था, जो अपने उत्तरदायित्वों की पूर्ति व्यवस्थापिका सभा में चुने हुए और उसी के प्रति उत्तरदायी भारतीय मंत्री

के परामर्श से करता था। इस एक्ट के द्वारा शासन के समस्त विषय भारतीय मंत्रियों के अधीन कर दिये गये। इसी कारण इस व्यवस्था को प्रांतीय स्वशासन के नाम से संबोधित किया जाता है, परंतु वास्तविकता कुछ और थी। गवर्नरों के अधिकार विस्तृत थे। विशेष उत्तरदायित्व के अतिरिक्त वे अनेक समस्याओं पर निर्णय स्वयं से कर सकते थे। वैधानिक संकट (यदि गवर्नर यह अनुभव करें कि प्रांत का शासन संवैधानिक उपबंधों के आधार पर नहीं चलाया जा रहा है) होने पर वह संपूर्ण प्रांत के शासन को स्वयं अपने हाथ में ले सकता था।

व्यवस्थापिका (Legislature)

सांप्रदायिक तथा अन्य वर्गों को पृथक प्रतिनिधित्व दिया गया, अधिनियम के मतदाता मंडलों का निर्धारण **'सांप्रदायिक निर्णय'** तथा **'पूना समझौता'** के अनुसार किया गया।

1935 के अधिनियम का मूल्यांकन (Evaluation of 1935 Act)

1935 के अधिनियम द्वारा प्रांतों में स्वशासन और केंद्र में द्वैध शासन की स्थापना की गयी। प्रथम बार संपूर्ण भारत के लिए संघीय शासन की स्थापना की गई, जिसमें भारतीय नरेशों के राज्य भी सम्मिलित थे। एक संघीय न्यायालय की स्थापना और द्वि-सदनीय प्रणाली की स्थापना की गयी। परंतु इसमें अनेक दोष थे।

- गवर्नर जनरल तथा प्रांतों में गवर्नर को प्रदान किये गए **'विशेष संरक्षण'** एवं **'विशिष्ट उत्तरदायित्व'** से व्यवस्थापिका सभाओं के अधिकार बहुत सीमित हो गए।
- सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली पहले की भाँति विद्यमान थी जिसकी दुखद परिणति **1947** के विभाजन के रूप में हुई।
- इस अधिनियम ने एक कठोर (Rigid) विधान प्रस्तुत किया तथा संविधान संशोधन की शक्ति, ब्रिटिश संसद में निहित होना भी एक बड़ा दोष था।
- अधिनियम की संघीय व्यवस्था दोषपूर्ण थी तथा जिस संघ के निर्माण की परिकल्पना की गयी थी, उसके प्रति न तो सरकार गंभीर थी और न ही इसके लिए कोई प्रावधान किए गए। संघ में शामिल होने का निर्णय देशी रियासतों की मर्जी पर छोड़ दिया गया था, इसलिए संघ निर्माण की अवधारणा कभी पूर्ण नहीं हो सकती थी।
- इस अधिनियम ने केंद्र पर द्वैध-शासन थोप दिया, जिसे **'साइमन-कमीशन'** ने पहले ही दोषपूर्ण बताया था।

1935 के अधिनियम की कुछ अन्य विशेषताएँ (Some Other Features of 1935 Act)

- संघीय न्यायालय की व्यवस्था, एक केंद्रीय बैंक (रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया) की स्थापना।
- बर्मा तथा अदन को भारत के शासन से पृथक कर दिया गया।
- उड़ीसा तथा सिंध दो नये प्रांत बनाये गए तथा पश्चिमी सीमा प्रांत को गवर्नर के अधीन रख दिया गया।
- इसमें भारत के राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा की गयी।
- प्रांतीय स्वायत्तता नाम मात्र की थी।
- इसके अतिरिक्त इसमें ऐसा कोई प्रावधान नहीं था जिससे गवर्नर जनरल मंत्रियों की सलाह को मानने के लिए बाध्य हो।

अंग्रेज, मुस्लिम लीग एवं भारतीय नरेशों आदि ने इस व्यवस्था का विरोध किया। इस कारण इस कानून के तहत् केंद्रीय व्यवस्था को कार्य रूप में परिणत किया जाना स्थगित कर दिया गया। लेकिन प्रांतों में इसी व्यवस्था के आधार पर चुनाव हुए और 6 प्रांतों में कांग्रेस ने स्पष्ट बहुमत प्राप्त किया। गवर्नर जनरल **लॉर्ड लिनलिथगो** (Lord Linlithgow) ने आश्वासन दिया कि गवर्नर दिन प्रतिदिन के शासन में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। **1937** ई. में मंत्रिमंडलों का निर्माण किया गया। भारतीय मंत्रियों ने विविध प्रांतों में कुछ लाभप्रद कार्य भी किये लेकिन **1939** में द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारंभ होने पर गवर्नर जनरल के द्वारा बिना भारतीय मंत्रियों की सलाह के भारत को ब्रिटेन की ओर से युद्ध से सम्मिलित कर देने पर असंतुष्ट होकर सभी मंत्रियों ने त्यागपत्र दे दिये और इस कानून द्वारा स्थापित आंशिक शासन व्यवस्था भी समाप्त हो गयी।

1937 के चुनाव (Elections of 1937)

1937 के प्रारंभ में प्रांतीय विधान सभाओं हेतु **चुनाव** कराने की घोषणा की गयी तथा इसी के साथ ही सत्ता में भागीदारी के प्रश्न पर द्वितीय चरण की रणनीति पर बहस प्रारंभ हो गयी।

सभी **राष्ट्रवादियों** ने आम सहमति से **1935** के अधिनियम का पूरी तरह विरोध करने का निर्णय किया परन्तु इस बात पर पूर्ण सहमति थी कि व्यापक **आर्थिक, राजनीतिक कार्यक्रमों** को आधार बनाकर कांग्रेस को ये चुनाव लड़ने चाहिए। इससे जनता में **औपनिवेशिक शासन** के विरुद्ध चेतना का और प्रसार होगा लेकिन चुनावों में **कांग्रेसियों को प्रांतों** में बहुमत मिला तो उसे सरकार बनानी चाहिए या नहीं, यह तय नहीं किया गया था।

इस मुद्दे को लेकर राष्ट्रवादियों के मध्य तीव्र मतभेद थे। इस मुद्दे पर बहस ने, एक बार पुनः वामपंथियों एवं **दक्षिणपंथियों** के मध्य उग्र रूप धारण कर लिया।

नेहरू, सुभाषचंद्र बोस, कांग्रेस सोशलिस्ट एवं **साम्यवादियों** ने सत्ता में भागीदारी तथा **1935** के अधिनियम का विरोध किया तथा इन्होंने तर्क दिया कि सत्ता में भागीदारी करने का अर्थ **1935** के अधिनियम को स्वीकार करना तथा राष्ट्रवादियों द्वारा स्वयं को दोषी ठहराना होगा। इसका तात्पर्य बिना अधिकार के उत्तरदायित्व स्वीकार करना होगा। इसके साथ ही, इससे जन-आंदोलन का क्रांतिकारी चरित्र समाप्त हो जाएगा तथा कांग्रेस, संसदीय कार्यों में इस प्रकार उलझ जाएगी कि वह साम्राज्यवादी शासन का एक अंग बनकर रह जाएगी तथा स्वतंत्रता, सामाजिक-आर्थिक न्याय और गरीबी दूर करने का उसका लक्ष्य अधूरा रह जाएगा। इन्होंने सुझाव दिया कि संसद में घुसकर सरकारी कदमों का विरोध किया जाए तथा ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी जाएँ, जिससे **1935** के अधिनियम का अमल संभव न हो सके। मजदूरों और किसानों को वर्गीय आधार पर संगठित कर इन्हें कांग्रेस से सम्बद्ध करने की दीर्घकालिक रणनीति का भी सुझाव दिया गया, जिससे कांग्रेस द्वारा आंदोलन को पुनः प्रारंभ किया जा सके।

दूसरी ओर सत्ता में भागीदारी के समर्थकों ने सत्ता में भागीदारी को संसदीय संघर्ष की अल्पकालिक रणनीति बताते हुए कहा कि, वे भी **1935** के अधिनियम का विरोध करते हैं। इन्होंने कहा कि यद्यपि इस प्रकार स्वतंत्रता हासिल नहीं की जा सकती किंतु मौजूदा राजनीतिक परिस्थितियों में जन-आंदोलन हेतु कोई अन्य विकल्प नहीं है। फलतः संसदीय संघर्ष की राजनीति अपनाना ही श्रेयस्कर है। अतः समय की आवश्यकता है कि जन-राजनीति को संसदीय राजनीति, उसमें हो रही गतिविधियों तथा प्रांतों की सरकारों से संबद्ध किया जाए, जिससे आंदोलन के लिये उपयुक्त राजनीतिक वातावरण निर्मित किया जा सके। यहां चुनाव के सिद्धांत से ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात रणनीति की है। यद्यपि उन्होंने इससे उत्पन्न होने वाले खतरों की ओर भी इशारा किया और कहा कि सत्ता में किसी भी पद को धारण करने वाला कांग्रेसी किसी गलत रास्ते पर भी जा सकता है लेकिन हमें इन खतरों और बुराइयों से संघर्ष करना है न कि इनके डर से प्रशासन में भागीदारी का बहिष्कार/प्रशासन को स्वार्थपरक तथा अवसरवादी तत्वों के लिये नहीं छोड़ना चाहिए। इनके अनुसार कांग्रेस द्वारा प्रांतों में सरकारों का गठन करने के पश्चात् सीमित अधिकारों के बावजूद मंत्री रचनात्मक कार्यों को प्रोत्साहित कर सकते थे।

गाँधी जी की भूमिका (Role of Gandhi)

गाँधी जी सत्ता में भागीदारी के विरोधी थे, किंतु **1936** तक वे कांग्रेस को सरकार बनाने का अवसर देने के पक्ष में राजी हो गए। **1936** के प्रारंभ में लखनऊ अधिवेशन और **1937** के अंत में फैजपुर अधिवेशन में कांग्रेस ने चुनावों में भाग लेने, प्रशासन में भागीदारी के विरोध को स्थगित करने तथा सत्ता में भागीदारी के मुद्दे पर चुनाव के पश्चात् विचार करने का निर्णय लिया।

कांग्रेस का चुनावी घोषणा-पत्र (Congress Election Manifesto)

कांग्रेस ने अपने **घोषणा-पत्र** में **1935** के भारत शासन अधिनियम को पूरी तरह अस्वीकार कर दिया। उसने नागरिक स्वतंत्रता की बहाली, राजनीतिक बंदियों की रिहाई, कृषि के ढाँचे में व्यापक परिवर्तन, भू-राजस्व और लगान में उचित कमी, किसानों को कर्ज से राहत तथा मजदूरों को हड़ताल करने, विरोध प्रदर्शन करने तथा संगठन बनाने के अधिकार देने इत्यादि का वचन दिया।

कांग्रेस का प्रदर्शन (Congress Performance)

कांग्रेस ने **1161** सीटों में से 716 स्थानों पर चुनाव लड़ा। इस चुनाव में कांग्रेस ने असम, बंगाल, पंजाब, सिंध और उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांत को छोड़कर शेष सभी प्रांतों में स्पष्ट बहुमत प्राप्त किया। बंगाल, असम और उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांत में वह सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी।

- कांग्रेस ने 6 प्रांतों में स्पष्ट बहुमत से सरकार का गठन किया। चुनावों में उल्लेखनीय सफलता हासिल करने के कारण कांग्रेस की प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई तथा नेहरू मानने लगे कि **'संघर्ष-समझौता-संघर्ष'** की रणनीति ही सही रणनीति है।

प्रांतों में कांग्रेस शासन के 28 माह (28 Month of Congress Rule in the Provinces)

जुलाई, **1937** में कांग्रेस ने छह प्रांतों-बम्बई, मद्रास, मध्य भारत, उड़ीसा, बिहार एवं संयुक्त प्रांत में मंत्रिमंडल का गठन किया। बाद में असम और पश्चिमोत्तर सीमांत प्रांत में भी उसने सरकार बनायी। यहाँ कांग्रेस को सबसे बड़े दल होने का लाभ प्राप्त था। केवल बंगाल, पंजाब तथा सिंध में कांग्रेस को बहुमत नहीं मिल पाया।



- पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी तथा मुस्लिम लीग ने मिलकर संयुक्त सरकार का गठन किया, लेकिन आगे चलकर मुस्लिम लीग ने सिंकदर हयात खां के प्रधानमंत्रित्व काल में यूनियनिस्ट पार्टी के मुस्लिम वर्ग पर अपना प्रभाव कायम कर लिया। इससे यह सरकार मार्च, **1947 ई.** तक बिना किसी व्यवधान के कार्य करती रही।
- बंगाल में **'कृषक प्रजापार्टी'** तथा मुस्लिम लीग की संयुक्त सरकार सत्ता में आई, लेकिन बाद में मुस्लिम लीग का मंत्रिमंडल गठित हुआ, जो **14 अगस्त, 1947** तक सत्ता में रहा, इसके प्रधानमंत्री एच.एस. सोहरावर्दी थे।
- सिंध में **1937** से **1947 ई.** के दौरान भिन्न-भिन्न नेताओं के अधीन गैर-कांग्रेसी मंत्रिमंडल बना रहा।

कांग्रेस ने कुल **8** राज्यों में अपनी सरकारें बनाईं और यहां प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए एक केंद्रीय नियंत्रण परिषद् का गठन किया।

- इस परिषद् को संसदीय उपसमिति नाम दिया गया। इसके सदस्य सरदार पटेल, **मौलाना आजाद** और **डॉ. राजेंद्र प्रसाद** थे। इस समय प्रांतों के प्रमुखों को प्रधानमंत्री कहा जाता था। कांग्रेस की सरकारों ने **28** माह के अपने संक्षिप्त कार्यकाल में यह प्रमाणित कर दिया कि वह केवल जन संघर्षों के लिए ही जनता का नेतृत्व नहीं कर सकती बल्कि उनके हित में राज्य सत्ता का उपयोग भी कर सकती है।
- **1939** ई. में द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारंभ होने के पश्चात् तत्कालीन वायसराय **लॉर्ड लिनलिथगो** ने भारतीय विधान मंडलों की सहमति के बिना भारत को युद्ध में शामिल कर लिया, साथ ही देश में आपातकाल की घोषणा कर दी गई। कांग्रेस कार्य-समिति ने युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा करने की मांग की तथा यह भी मांग रखी कि युद्ध के बाद भारत को स्वतंत्र कर दिया जाए। सरकार ने इस मांग की उपेक्षा की। **22 अक्टूबर, 1939** को कांग्रेस कार्य-समिति ने ब्रिटिश सरकार के इस कदम से कांग्रेस मंत्रिमंडलों को इस्तीफा देने के लिए कहा।
- फलस्वरूप **29-30 अक्टूबर, 1939** को कांग्रेस शासित **8** प्रांतों की सरकारों ने इस्तीफा दे दिया। कांग्रेस मंत्रिमंडलों के त्याग पत्र देने के बाद मुस्लिम लीग ने **22 दिसंबर, 1939** को **'मुक्ति दिवस'** एवं **'धन्यवाद दिवस'** के रूप में मनाया।

गाँधी जी की सलाह (Advice of Gandhi)

गाँधी जी ने कांग्रेसियों को सरकार में शामिल होने के मुद्दे को सहजता से लेने की **सलाह** दी। उन्होंने कहा कि यह कांटों का ताज है और इससे कोई गौरव प्राप्त नहीं होगा, ये पद इसलिये स्वीकार किये गए हैं, जिससे हम यह जान सकें कि हम अपने राष्ट्रवादी लक्ष्य की ओर अपेक्षित गति से आगे बढ़ रहे हैं या नहीं।

- गाँधी जी ने सलाह दी कि **1935** के अधिनियम का उपयोग सरकार की उम्मीदों के अनुसार नहीं किया जाना चाहिए तथा सरकार जिस रूप में चाहती है, उस रूप में इसके इस्तेमाल से बचना चाहिए।
- देश के विभिन्न प्रांतों में सरकार के गठन से पूरे राष्ट्र में खुशी की लहर दौड़ उठी। भारतीय ऐसा महसूस करने लगे मानो वे स्वयं के शासन में जी रहे हैं।
- सरकारों के गठन से कांग्रेस की प्रतिष्ठा में भारी वृद्धि हुई। इससे लोगों के बीच यह धारणा बनी कि यह न केवल जनता की विजय है, अपितु यह जनता की भलाई के लिए जनता द्वारा, उसके प्रतिनिधियों को सौंपा हुआ उत्तरदायित्व है।
- अब जनता के प्रतिनिधि राज्य की शक्तियों का प्रयोग जनता के हित में करेंगे। लेकिन कांग्रेस के मंत्रियों के अधिकार और वित्तीय संसाधन सीमित थे। अत: वे किसी ऐसी नीति का क्रियान्वयन करने में सक्षम नहीं थे जिससे ब्रिटिश साम्राज्य पर आघात पहुँचे तथा एक नये क्रांतिकारी युग का उदय हो सके।

कांग्रेस मंत्रिमंडलों के अधीन किये गए कार्य (Works Done Under Congress Cabinets)

कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने नागरिक स्वतंत्रता की बहाली हेतु अनेक कदम उठाए–

नागरिक स्वतंत्रता (Civil Liberty)

- **1932** में जनसुरक्षा अधिनियम द्वारा प्रांतीय सरकारों को प्रदान की गईं सभी आपातकालीन शक्तियाँ रद्द कर दी गईं।

- हिन्दुस्तान सेवा दल और यूथ लीग जैसे संगठन तथा पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं से प्रतिबंध हटा दिया गया।
- प्रेस पर लगाए गए प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया गया।
- सरकारी विज्ञापन के लिये जिन प्रेसों को काली सूची में डाल दिया गया था, उनको हटा लिया गया।
- जब्त किये गए हथियार वापस लौटा दिये गए तथा रद्द किये गए लाइसेंस पुन: बहाल कर दिये गए।
- पुलिस के अधिकारों में कटौती कर दी गयी। पुलिस द्वारा जनता के बीच दिये गए व्याख्यान को दर्ज करने तथा गुप्तचर पुलिस द्वारा राजनीतिक कार्यकर्ताओं का पीछा किये जाने की व्यवस्था पर रोक लगा दी गयी।
- राजनीतिक बंदियों तथा जेल में बंद क्रांतिकारियों को रिहा कर दिया गया। राजनीतिक निर्वासन तथा नजरबंदी से संबंधित सभी आदेश रद्द कर दिये गये।
- बंबई में सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान जब्त की गयी भूमि, किसानों को वापस कर दी गयी।
- सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान बर्खास्त अधिकारियों? के पेंशन-भत्ते पुन: प्रारंभ कर दिये गए।
- गाँधी जी ने कांग्रेस मंत्रिमंडल से पुलिस और सेना की अल्प सहायता से शासन चलाने का आग्रह किया। नागरिक स्वतंत्रता के संबंध में कांग्रेसी मंत्रियों द्वारा किये गए कुछ कार्यों की आलोचना भी की गयी।
- **जुलाई, 1937** में एक समाजवादी नेता युसुफ मेहर अली को उत्तेजक भाषण देने के कारण मद्रास सरकार ने दंडित किया। इसी तरह अक्टूबर, 1937 में एक समाजवादी कांग्रेसी नेता **एस.एस. बाटलीवाला** पर राजद्रोह भड़काने वाला भाषण देने का आरोप लगाया गया। इस कारण मद्रास सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर उन पर मुकदमा चलाया तथा उन्हें छह माह की सजा दी गयी।
- बंबई के तत्कालीन गृहमंत्री के.एम. मुंशी ने साम्यवादी तथा वामपंथी कांग्रेसियों पर नजर रखने के लिये खुफिया विभाग का उपयोग किया।

कृषि सुधार (Agricultural Reforms)

जमींदारी प्रथा को पूरी तरह समाप्त न करके कांग्रेस ने कृषि ढांचे को परिवर्तित करने का प्रयास नहीं किया। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थें–

- मंत्रिमंडलों के पास पर्याप्त अधिकार नहीं थे।
- इस कार्य के लिये उनके पास वित्तीय संसाधनों का घोर अभाव था, क्योंकि भारतीय राजस्व के अधिकांश हिस्से का उपयोग भारत की केंद्रीय सरकार करती थी।
- कांग्रेसी मंत्रिमंडल मौजूदा प्रशासनिक ढाँचे को किसी भी प्रकार से परिवर्तित नहीं कर सकते थे क्योंकि ऐसा करने का अधिकार केवल वायसराय या गवर्नरों के ही पास था।
- विभिन्न वर्गों के बीच सामंजस्य बैठाना एक अन्य प्रमुख समस्या थी। विभिन्न वर्गों को साथ लेकर चलाया जाने वाला आंदोलन तभी प्रगति कर सकता था, जब विभिन्न प्रतिस्पर्धी हितों के बीच ताल-मेल बनाये रखा जाए।
- उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष करने हेतु भारतीयों को एक जुट करने के लिये आपसी सामंजस्य अत्यंत आवश्यक था।
- कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के पास ज्यादा समय नहीं था।
- **1938** के बाद यूरोप में युद्ध के बादल मंडराने लगे।
- लगभग सभी कांग्रेस शासित राज्यों यथा- बंबई, बिहार, मद्रास, असम और संयुक्त प्रांत में प्रतिक्रियावादी तत्वों वाला द्वितीय सदन मौजूद था, जिसे विधान परिषद (लेजिस्लेटिव काउंसिल) के नाम से जाना जाता था। इसमें जमीदारों, भूस्वामियों, पूंजीपतियों और सूदखोरों का वर्चस्व था। इन परिषदों में कांग्रेस अल्पमत में थी। अत: किसी भी कानून को पास कराने के लिये सरकार को इन तत्वों से समझौता करना पड़ता था।
- कृषि का ढाँचा अत्यंत जटिल और उलझा हुआ था।
- किंतु, इन अवरोधों के पश्चात् भी कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने कृषि ढाँचे में अनेक सुधार किये तथा अनेक विधानों का निर्माण किया। ये विधान-भू-सुधार, ऋणग्रस्तता से राहत, वनों में पशुओं को चराने की अनुमति, भू-राजस्व की दरों में कमी तथा नजराना व बेगारी जैसे गैर-कानूनी कार्यों को समाप्त करने इत्यादि से संबंधित थे। परन्तु, इन सुधारों का लाभ बड़े काश्तकारों को ही मिला तथा कृषक मजदूरों की दशा वैसी ही रही।

मजूदरों के प्रति नजरिया (Attitude Towards Workers)

कांग्रेस मंत्रिमंडल मजदूरों के हितों की रक्षा तथा औद्योगिक शांति की स्थापना करना चाहती थी। अत: इन्होंने हड़तालों का कम से कम आयोजन करने तथा हड़ताल पर जाने के पहले अनिवार्य मध्यस्थता की वकालत की। मजदूरों और मालिकों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों की स्थापना हेतु उन्होंने कांग्रेसियों की मध्यस्थता पर बल दिया। इसके साथ ही इन्होंने श्रमिकों की बदतर हालत सुधारने तथा उनकी मजदूरी में वृद्धि करने के प्रयास भी किये।

- कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने उग्रवादी मजदूर संघ की हड़तालों का भी समाधान किया तथा इस हेतु मध्यस्थ की भूमिका निभायी।
- यद्यपि यह काफी सफल रहा किंतु, बंबई में यह उतना सफल नहीं रहा। इसके अतिरिक्त वामपंथी आलोचक भी इस व्यवस्था से उतने संतुष्ट नहीं थे।
- आंदोलनकारी मजूदरों के विरुद्ध इन्होंने धारा 144 का इस्तेमाल किया तथा कई अवसरों पर मजदूर नेताओं को गिरफ्तार भी किया गया।
- जवाहरलाल नेहरू व्यक्तिगत तौर पर जन-आंदोलन के विरोध प्रदर्शन के प्रति कांग्रेस मंत्रिमंडलों के व्यवहार से अप्रसन्न थे। किंतु अपनी अप्रसन्नता को उन्होंने सार्वजनिक तौर पर कभी व्यक्त नहीं किया।
- जनता के बीच उन्होंने कांग्रेस मंत्रिमंडलों का समर्थन किया तथा उनके कदमों को उचित बताया। गाँधी जी ने भी उग्रवादी एवं हिंसक तरीके अपनाए जाने का विरोध करते हुए जनसामान्य को राजनीतिक शिक्षा दिये जाने का प्रयास किया।
- उन्होंने महसूस किया कि कांग्रेस को अपना लोकिप्रिय जनाधार नहीं खोना चाहिए। उन्होंने कांग्रेसजनों से आग्रह किया कि प्रशासन चलाने के लिये साम्राज्यवादी तौर-तरीके न अपनाये जाएँ।

समाज कल्याण संबंधी सुधार (Social Welfare Related Reforms)

इन सुधारों में निम्न प्रावधान सम्मिलित थे-

- कुछ निश्चित क्षेत्रों में शराब निषेध कानून लागू कर दिया गया।
- हरिजनों के कल्याण हेतु अनेक उपाय लागू किये गये। जिनमें-मंदिरों में प्रवेश, सामान्य नागरिक सुविधाओं का प्रयोग, छात्रवृत्तियाँ, पुलिस एवं सरकारी नौकरियों में इनकी संख्या में वृद्धि इत्यादि सम्मिलित थे।
- प्राथमिक, तकनीकी एवं उच्च शिक्षा की ओर ज्यादा ध्यान दिया गया तथा लोक स्वास्थ्य एवं स्वच्छता जैसे मुद्दों को प्राथमिकता दी गयी।
- अनुदान एवं अन्य तरीकों द्वारा खादी के प्रयोग को प्रोत्साहित किया गया।
- बंदी सुधार प्रारंभ किये गये।
- स्वदेशी उद्योगों को प्रोत्साहन दिया गया।
- राष्ट्रीय योजना के विकास को प्रोत्साहित करने हेतु **1938** में कांग्रेस अध्यक्ष सुभाषचंद्र बोस ने **'राष्ट्रीय योजना समिति'** का गठन किया।

कांग्रेस की अन्य संसदीय जन-गतिविधियाँ

इन गतिविधियों में निम्न प्रयास सम्मिलित थें-

- जन-शिक्षा अभियान की स्थापना।
- कांग्रेस लोक शिकायत समितियों की स्थापना जिसका कार्य लोक शिकायतों को सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करना था।

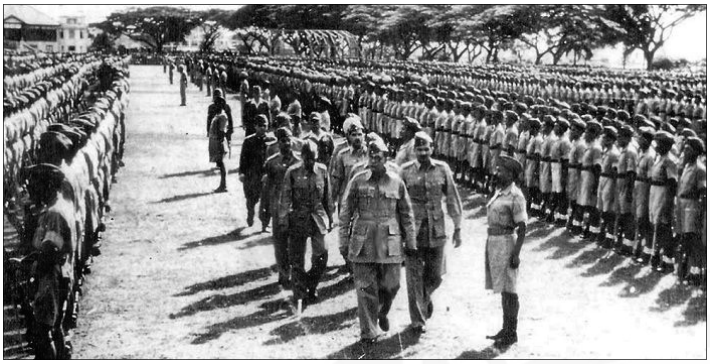
मूल्यांकन (Evaluation)

यद्यपि **1939** के अंत तक कांग्रेसियों के मध्य, सत्ता के लिये अवसरवादिता, आंतरिक कलह एवं जोड़-तोड़ के प्रयास जैसी बुराइयाँ परिलक्षित होने लगी थीं, किंतु, फिर भी उनके संसदीय कार्यों ने उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि की तथा जनता के मध्य उनके आधार को मजबूत किया। कांग्रेस का 28 माह का शासन निम्न कारणों से भी महत्त्वपूर्ण था-

- यह धारणा सिद्ध हो गयी कि मौलिक सामाजिक संक्रमण के लिये भारतीय स्व-शासन आवश्यक है।
- मंत्रिमंडलों ने भारतीयों के सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक उत्थान की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किये।
- मंत्रिमंडलों ने सांप्रदायिकता को रोकने के सार्थक एवं सफल प्रयास किये।
- अंग्रेजी नौकरशाही के मनोबल में कमी आई।
- कांग्रेस के संसदीय कार्यों ने जमींदार इत्यादि विरोधी तत्वों पर अंकुश लगाया।
- लोगों को एक ऐसा खाका खींचने में मदद मिली जैसे कि उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली हो।
- मंत्रिमंडलों के प्रशासनिक कार्यों ने इस भ्रांति को तोड़ दिया कि भारतीय शासन करने में सक्षम नहीं है।

द्वितीय विश्व युद्ध से उत्पन्न राजनीतिक संकटों के चलते अक्टूबर, **1939** में कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिया।

राष्ट्रीय आंदोलन में 1940 का दशक
(Decade of 1940's in the National Movement)





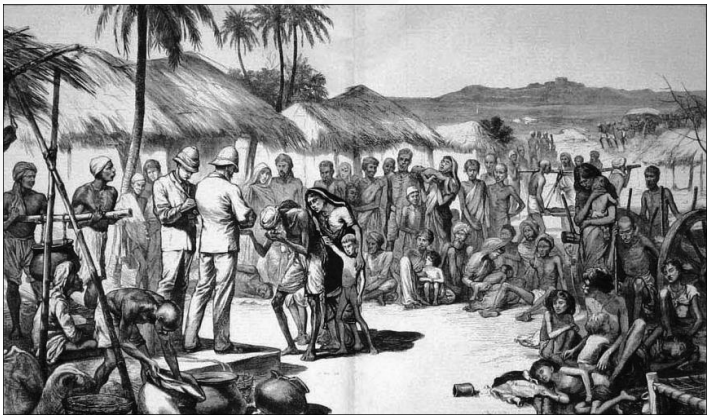
द्वितीय विश्व युद्ध और राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया
(World War II & Nationalist Response)

द्वितीय **विश्व युद्ध** के पूर्व कांग्रेस ब्रिटेन की उम्मीद से कहीं अधिक फासीवाद, नाजीवाद, सैन्यवाद तथा साम्राज्यवाद की विरोधी हो गयी। युद्ध में कांग्रेस द्वारा समर्थन देने का प्रस्ताव दो प्रमुख मांगों पर आधारित था–

- युद्धोपरांत संविधान सभा की बैठक बुलायी जाए, जो स्वतंत्र भारत की राजनीतिक संरचना पर विचार करेगी।
- अतिशीघ्र, केंद्र में किसी प्रकार की वास्तविक एवं उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो।
- वायसराय लिनलिथगो ने कांग्रेस के इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। किंतु कांग्रेस ने स्पष्ट किया कि युद्ध में भारतीयों का समर्थन प्राप्त करने के लिये सरकार को उपरोक्त मांगें माननी पड़ेंगी।
- **द्वितीय विश्वयुद्ध** में अंग्रेजों का समर्थन करने या न करने के मुद्दे पर कांग्रेस कार्य समिति की वर्धा में आयोजित बैठक (10-14 सितम्बर, 1939)
- इस बैठक में कांग्रेस द्वारा विचार-विमर्श किया गया जिससे विभिन्न मत सामने आए–
- गाँधी जी ने मित्र राष्ट्रों के प्रति सहानुभूति प्रकट की। गाँधी जी का मत था कि पश्चिमी यूरोप के लोकतांत्रिक राज्यों और हिटलर का नेतृत्व स्वीकार करने वाले निरंकुशतावादी राज्यों में स्पष्ट अंतर है।
- **सुभाषचन्द्र बोस** और **समाजवादियों** का तर्क था कि यह युद्ध साम्राज्यवादी युद्ध है तथा दोनों पक्ष अपने-अपने औपनिवेशिक हितों के लिये युद्धरत हैं, फलतः किसी एक पक्ष का समर्थन नहीं किया जा सकता। इनका मानना था कि कांग्रेस को इस स्थिति का लाभ उठाकर स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये तुरंत सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ कर देना चाहिये।
- **नेहरू** ने युद्धरत दोनों समूहों **फासीवाद** और **लोकतंत्र** के बीच स्पष्ट भेद प्रकट किया। उनका दृष्टिकोण यह था कि फ्रांस, ब्रिटेन और पोलैंड का पक्ष न्यायोचित है किन्तु फ्रांस और ब्रिटेन साम्राज्यवादी नीतियों वाले देश हैं और द्वितीय विश्वयुद्ध, प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् पूंजीवाद के गहराते हुये अंतर्विरोधों का परिणाम है। अतः भारत को स्वतंत्र होने से पहले न ही युद्ध में भाग लेना चाहिये और न ही ब्रिटेन की परेशानियों का लाभ उठाकर आंदोलन प्रारंभ करना चाहिये।
- कांग्रेस कार्यसमिति ने वर्धा बैठक में प्रस्ताव पारित कर फासीवाद तथा नाजीवाद की भर्त्सना की। प्रस्ताव में कहा गया कि–
- भारत ऐसे युद्ध में सम्मिलित नहीं हो सकता, जो प्रत्यक्षतः लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के लिये लड़ा जा रहा हो, जबकि खुद उसे ही स्वतंत्रता से दूर रखा जा रहा हो।
- यदि ब्रिटेन प्रजातांत्रिक मूल्यों तथा स्वाधीनता की रक्षा के लिये युद्ध कर रहा है तो उसे भारत को स्वतंत्रता प्रदान कर यह सिद्ध करना चाहिये कि वह लोकतांत्रिक हितों का समर्थक है।
- सरकार को अतिशीघ्र ही अपने युद्ध के उद्देश्यों को सार्वजनिक करना चाहिये तथा यह भी स्पष्ट करना चाहिये कि भारत पर किस तरह के लोकतांत्रिक सिद्धांतों को लागू किया जाना चाहिए।

इस प्रकार कांग्रेस का नेतृत्व ब्रिटिश सरकार और वायसराय को पूरा मौका देना चाहता था।

भारतीय औपनिवेशिक सरकार की प्रतिक्रिया
(Indian Colonial Government's Response)



ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रिया आंतरिक तौर पर नकारात्मक थी। लिनलिथगो ने अपने वक्तव्य में मुस्लिम लीग तथा देशी रियासतों को कांग्रेस के विरुद्ध भड़काने की कोशिश की। इस अवसर पर सरकार ने ब्रिटेन के युद्ध पर और कुछ न कहकर सिर्फ यह कहा कि ब्रिटेन भेदभावपूर्ण आक्रमण का प्रतिरोध कर रहा है।

- ब्रिटिश सरकार ने भविष्य के लिये यह वादा किया कि युद्धोपरांत सरकार, भारत के 'कई दलों, समुदायों और हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली शक्तियों तथा भारतीय राजाओं आदि से **1935** के भारत सरकार अधिनियम में किस प्रकार के संशोधन किये जाएँ उस पर विचार-विमर्श करेगी और यदि आवश्यकता हुई तो परामर्श लेने के लिये सरकार, एक परामर्श समिति का भी गठन करेगी।
- लिनलिथगो का विचार वास्तविकता से विचलन नहीं अपितु सामान्य ब्रिटिश योजना का हिस्सा था इसका उद्देश्य 'युद्ध से फायदा उठाकर खोये हुये उस आधार को पुन: प्राप्त करना था जो कि कांग्रेस के प्रयासों के कारण सरकार के हाथ से निकल गया था।'
- सरकार की नीति थी कि कांग्रेस को सरकार के साथ विवादों में उलझाया जाये जिससे उत्पन्न परिस्थितियों का लाभ उठाकर सत्ता को और स्थायी बनाने का प्रयास किया जाए।
- इसी नीति के तहत् युद्ध की घोषणा के पश्चात् **1935** के अधिनियम में संशोधन द्वारा केंद्र ने राज्य के अधिकारों में हस्तक्षेप करके असीम अधिकार प्राप्त किये।
- युद्ध की घोषणा के दिन ही भारतीय सुरक्षा अध्यादेश पारित कर नागरिक अधिकारों तथा स्वतंत्रता आंदोलन के दमन हेतु अधिकार प्राप्त कर लिया गया। मई, **1940** में क्रांतिकारी आंदोलन से संबंधित एक अति गुप्त अध्यादेश तैयार किया गया, इसका मूल उद्देश्य कांग्रेस द्वारा प्रारम्भ किये जाने वाले आंदोलन को समाप्त करना था।
- इसके पीछे सरकार की मंशा कांग्रेस द्वारा प्रारम्भ किये गए किसी भी आंदोलन को आसानी से कुचलने तथा भारतीयों की सहानुभूति को भी प्राप्त करना था।
- सरकार का मानना था कि यह अध्यादेश उदारवादियों एवं वामपंथियों की सहानुभूति प्राप्त करने में सहायक होगा तथा सरकार कांग्रेस की छवि को जापान एवं जर्मनी के समर्थक दल के रूप में प्रस्तुत करने में सफल हो जाएगी।
- ब्रिटिश भारतीय सरकार की **दमनकारी** एवं **भेदभावमूलक** नीतियों का इंग्लैंड के प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल एवं भारत सचिव **जेटलैंड** ने पूर्णरूपेण समर्थन किया। **जेटलैंड** ने तो कांग्रेस को **विशुद्ध हिंदूवादी संगठन** तक घोषित कर दिया।
- धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगा कि ब्रिटिश सरकार, युद्ध के पहले या बाद में अपनी उपनिवेशवादी पकड़ में कोई भी ढील नहीं देना चाहती तथा कांग्रेस से शत्रुतापूर्ण व्यवहार करने की मंशा रखती है।
- ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय जनता की उपेक्षा तथा कांग्रेस के प्रति उसके शत्रुतापूर्ण रुख की गाँधी जी ने कड़ी आलोचना की।
- गाँधी जी कहा कि- 'सरकार की भारत संबंधी घोषणा यह दर्शाती है कि ब्रिटेन का वश चले तो वह भारत में लोकतंत्र कभी न आने दे।' अल्पसंख्यक तथा विशिष्ट वर्ग के हितों में उन्होंने कहा कि 'कांग्रेस प्रत्येक अल्पसंख्यक तथा विशिष्ट वर्ग के हितों की रक्षा करेगी बशर्ते उनके **दावों** का देश की स्वाधीनता के मुद्दे से कोई टकराव नहीं होना चाहिये।'
- **23 अक्टूबर, 1939** को कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक आयोजित की गयी, जिसमें-
- वायसराय के वक्तव्य को पुरानी साम्राज्यवादी नीति का ही हिस्सा बताकर अस्वीकार कर दिया गया।
- युद्ध का समर्थन न करने का निर्णय किया गया।
- कांग्रेस की प्रांतीय सरकारों को त्यागपत्र देने का आदेश दिया गया।

जनवरी, **1940** में लिनलिथगो ने घोषणा की कि 'युद्ध के पश्चात् डोमीनियन स्टेट्स की स्थापना, भारत में ब्रिटिश सरकार की नीति का मुख्य लक्ष्य है।' अक्टूबर, **1939** में लिनलिथगो की घोषणा के पश्चात् जन सत्याग्रह प्रारंभ करने के मुद्दे पर एक बार फिर बहस प्रारंभ हो गयी। गाँधी जी एवं उनके समर्थक आंदोलन को तुरंत प्रारंभ करने के पक्षधर नहीं थे, क्योंकि उनका मत था कि-

- मित्र राष्ट्रों का पक्ष न्यायसंगत है।
- सांप्रदायिक संवेदनशीलता एवं हिन्दू-मुस्लिम एकता के अभाव में साम्प्रदायिक दंगे प्रारम्भ हो सकते हैं।
- संगठनात्मक तौर पर कांग्रेस की स्थिति अच्छी नहीं है तथा तत्कालीन परिस्थितियाँ जन सत्याग्रह के प्रतिकूल हैं।
- जनता अभी किसी भी प्रकार के संघर्ष के लिये तैयार नहीं है।
- अत: जन सत्याग्रह के स्थान पर यह आवश्यक है कि कांग्रेस को संगठित और मजबूत बनाया जाए, जनता को राजनीतिक प्रशिक्षण दिया जाए, उसे संघर्ष हेतु तैयार किया जाए तथा सरकार से विचार-विमर्श किया जाए और तब तक किया जाए जब तक यह स्थिति न आ जाए कि विचार-विमर्श से समस्या का समाधान नहीं हो सकता तथा इस जन सत्याग्रह के लिये उपनिवेशिक शासन जिम्मेदार है। इसके पश्चात् ही आंदोलन प्रारम्भ किया जाना चाहिये।
- कांग्रेस के **रामगढ़ अधिवेशन** (मार्च, 1940) में पारित किये गए प्रस्ताव में गाँधी जी तथा उनके समर्थकों के विचारों को पूर्ण सहमति प्रदान की गयी। इस प्रस्ताव में कहा गया कि 'जैसे ही कांग्रेस संगठन संघर्ष के योग्य हो जाता है या फिर परिस्थितियां इस प्रकार बदल जाती हैं कि संघर्ष निकट दिखाई दे, वैसे ही कांग्रेस, सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारम्भ कर देगी।'
- सुभाषचन्द्र बोस और उनके फॉरवर्ड ब्लॉक, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी तथा **समाजवादियों, वामपंथी** इत्यादि समूहों का तर्क था कि यह युद्ध एक साम्राज्यवादी युद्ध है तथा यही सही समय है **जब ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध चौतरफा युद्ध** को प्रारंभ कर स्वतंत्रता हासिल कर ली जाए, इनका मानना था कि जनता संघर्ष के लिये पूरी तरह से तैयार है तथा सिर्फ आंदोलन प्रारम्भ करने की प्रतीक्षा कर रही है। इन्होंने स्वीकार किया कि कांग्रेस संगठन में साम्प्रदायिक कटुता जैसी समस्याएँ अवश्य विद्यमान हैं, किन्तु जनसंघर्ष के प्रवाह में ये सारी समस्याएं बह जाएंगी। इनका तर्क था कि संगठन संघर्ष के पहले तैयार नहीं होता अपितु संगठन का निर्माण संघर्ष प्रारम्भ होने के पश्चात् ही होता है। अत: कांग्रेस को अतिशीघ्र आंदोलन प्रारम्भ कर देना चाहिये।
- सुभाषचन्द्र बोस ने तो यहाँ तक कहा कि यदि कांग्रेस शीघ्र ही सत्याग्रह प्रारम्भ करने के मुद्दे पर उनका साथ नहीं देती तो वामपंथी कांग्रेस से नाता तोड़ लें तथा समानांतर कांग्रेस का गठन कर आंदोलन प्रारम्भ करें। किन्तु **'कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी'** और **'कम्युनिस्ट पार्टी'** ने सुभाष चन्द्र बोस के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया।
- नेहरू को मित्र राष्ट्रों के साम्राज्यवादी चरित्र का एहसास था फिर भी वे ऐसा कोई कदम नहीं उठाना चाहते थे, जिससे यूरोप में नाजीवाद के समर्थक हिटलर की विजय आसान हो जाए। जहाँ उनकी सम्पूर्ण मंशा और राजनीतिक चिंतन आंदोलन को प्रारम्भ किये जाने को उद्यत हो रही थी तो दूसरी ओर वे नाजीवाद विरोधी संघर्ष और जापान विरोधी संघर्ष को दुर्बल बनाये जाने के पक्षधर भी नहीं थे। बहरहाल नेहरू ने अंत में कांग्रेस नेतृत्व और गाँधी जी का समर्थन किया।

मुस्लिम लीग का पाकिस्तान प्रस्ताव
(Pakistan Resolution of the Muslim League)

23 मार्च, 1940 को **मुस्लिम लीग** का वार्षिक अधिवेशन लाहौर में हुआ। इस

अधिवेशन में प्रसिद्ध **'पाकिस्तान प्रस्ताव'** पारित किया गया। इस प्रस्ताव की रूपरेखा तैयार करने में **खलीकुज्जमा, फजल-उल-हक** तथा **सिकंदर हयात खाँ** का महत्त्वपूर्ण योगदान था। इस प्रस्ताव को फजल-उल-हक ने प्रस्तुत किया तथा **खलीकुज्जमा** ने इसका अनुमोदन किया। इसकी अध्यक्षता मोहम्मद अली जिन्ना ने की थी। इसकी अध्यक्षता मोहम्मद अली जिन्ना नेकी थी।

- इस प्रस्ताव में कहा गया कि 'भौगोलिक स्थिति से एक-दूसरे से लगे हुये प्रदेश आवश्यक परिवर्तनों के साथ इस प्रकार गठित किये जाएँ ताकि वहाँ मुस्लिम समुदाय बहुसंख्यक हो जाएँ। जैसे कि भारत के उत्तरी-पश्चिमी और पूर्वी प्रदेशों को मिलाकर एक स्वतंत्र राज्य बना दिया जाए और उसमें सम्मिलित प्रदेश प्रभुसत्ता सम्पन्न और स्वशासी हों तथा जिन राज्यों में मुसलमान अल्पसंख्यक हों वहां उनके हितों की सुरक्षा के लिये आवश्यक उपबंध हों।'



अगस्त प्रस्ताव (August Offer)

इस समय तक युद्ध में जर्मनी की तेजी से विजय हो रही थी। डेनमार्क, नॉर्वे, हॉलैंड, फ्रांस आदि उसके अधिकार में आ गए थे। फ्रांस में अंग्रेजी सेना को मुँह की खानी पड़ी थी और स्वयं ब्रिटेन पर खतरे के बादल मंडरा रहे थे। युद्ध के कारण ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था भी बुरी तरह प्रभावित हुई थी। ऐसी स्थिति में सरकार को भारत के समर्थन की अत्यधिक आवश्यकता थी। अत: चर्चिल से अनुमति लेकर भारतीयों को संतुष्ट करने के लिए वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो ने **8 अगस्त, 1940** को अपना **'अगस्त प्रस्ताव'** प्रस्तुत किया, जिसमें निम्न बातें थीं-

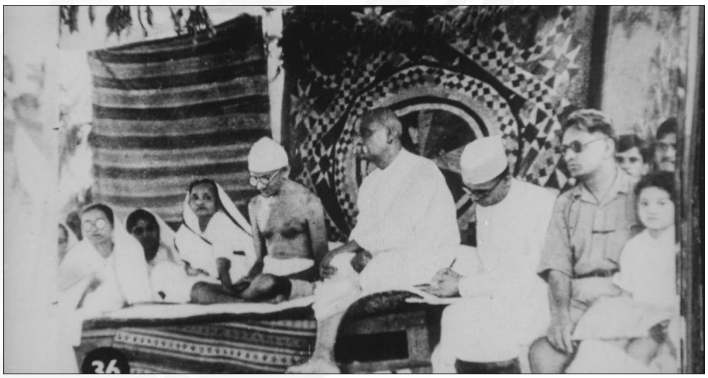
- ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना करना है।
- युद्ध संबंधी विषयों पर सरकार को सलाह देने के लिए **'युद्ध परामर्शदात्री परिषद'** (War Advisory Council) बनायी जाएगी, जिसमें भारतीयों को भी शामिल किया जाएगा।
- युद्ध की समाप्ति के पश्चात् सभी वर्गों एवं राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों की एक सभा बुलाकर संवैधानिक विकास की समस्या पर विचार किया जाएगा अर्थात् अंग्रेजी सरकार इस बात से सहमत है कि नया संविधान बनाना मुख्यत: भारतीयों का अपना उत्तरदायित्व है।
- अल्पसंख्यकों की स्वीकृति के अभाव में सरकार किसी भी संवैधानिक परिवर्तन को लागू नहीं करेगी।
- वायसराय की कार्यकारिणी का विस्तार कर उसमें अधिक भारतीयों को स्थान दिया जाएगा।

यह घोषणा एक महत्त्वपूर्ण प्रगति थी, क्योंकि इसमें स्पष्ट कहा गया था कि भारत का संविधान बनाना भारतीयों का अपना अधिकार है और इसमें स्पष्ट प्रादेशिक स्वशासन (Dominion Status) की प्रतिज्ञा की गयी थी। परंतु, कांग्रेस ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। कांग्रेस स्वतंत्रता और अपनी सरकार की मांग कर रही थी, जो उसे नहीं मिली, इस प्रस्ताव की सबसे बुरी बात यह थी कि इसमें अल्पसंख्यकों को जरूरत से ज्यादा महत्त्व प्रदान किया गया।



- इससे कालांतर में सांप्रदायिकता और देश के विभाजन को बल मिला। इसी कारण जहाँ कांग्रेस ने इस प्रस्ताव का विरोध किया, वहीं मुस्लिम लीग इस प्रस्ताव से संतुष्ट थी। उसके हाथ में एक ऐसा हथियार आ गया था, जिसके सहारे वह आसानी से पाकिस्तान प्राप्त कर सकती थी।
- हालाँकि लीग ने भी प्रस्ताव से असंतुष्ट होने का ही दिखावा किया, क्योंकि इसमें पाकिस्तान की मांग को स्पष्टत: स्वीकार नहीं किया गया था।

व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आंदोलन (Individual Satyagrah Movement)



यद्यपि कांग्रेस सरकार का सहयोग करना चाहती थी, परंतु सरकार के रवैये से क्षुब्ध होकर कांग्रेस को पुन: आंदोलन का मार्ग चुनना पड़ा। ऐसा करना इसलिए भी आवश्यक था कि कांग्रेस की नीतियों से उसकी प्रतिष्ठा जनता में घटती जा रही थी। इसे बचाये रखने के लिए कांग्रेस के सामने आंदोलन शुरू करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था।

- कांग्रेस ने अगस्त, 1940 में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करने का निश्चय किया।
- **17 अक्टूबर, 1940,** को यह आंदोलन शुरू हुआ जिसके पहले सत्याग्रही **विनोबा भावे** हुए। नेहरू ने भी इसमें भाग लिया। गाँधी जी के सत्याग्रहियों पर नियंत्रण के बावजूद हजारों व्यक्ति जेल गये।
- इसी बीच अगस्त प्रस्ताव के अनुसार वायसराय की कार्यकारिणी का विस्तार कर उसमें भारतीयों की संख्या बढ़ा दी गयी। कांग्रेस और लीग इसमें सम्मिलित नहीं हुए। इस समय तक युद्ध में ब्रिटेन की स्थिति नाजुक होती जा रही थी। इधर जापानी भय लगातार बढ़ता जा रहा था।

- ऐसी स्थिति में कांग्रेस ने सरकार को परेशान न करने का निश्चय किया और संभावित जापानी आक्रमण को आधार बनाकर **बारदोली अधिवेशन** में कांग्रेस ने **व्यक्तिगत सविनय** अवज्ञा आंदोलन बंद करने का निश्चय किया।

क्रिप्स मिशन (The Cripps Mission)

हताशा और निराशा के वातावरण में ब्रिटेन भारत का सक्रिय सहयोग पाने के लिए परेशान था, ताकि न केवल जापान को आगे बढ़ने से रोका जा सके, बल्कि युद्ध की तैयारी में उसे भरपूर मदद मिल सके।

- इसके अलावा चीन और अमेरिका भी ब्रिटेन पर दबाव डाल रहे थे कि वह भारत की राजनीतिक समस्या का उचित समाधान करे। अत: विंस्टन चर्चिल ने युद्धकालीन मंत्रिमंडल के एक सदस्य स्टैफोर्ड क्रिप्स को भारत भेजने की योजना बनायी। क्रिप्स **23 मार्च, 1942** को दिल्ली पहँचे और **30 मार्च, 1942** को अपनी योजना प्रस्तुत की, जिसमें अन्य बातों के अलावा निम्नलिखित बातें सम्मिलित थीं-
- युद्ध की समाप्ति के तुरंत बाद भारत को डोमिनियन स्टेट्स की प्राप्ति, जिसमें राष्ट्रमंडल से अलग होने का अधिकार भी शामिल होगा।
- युद्ध के पश्चात् भारत के लिए एक संविधान निर्मात्री निकाय का गठन, जिसके सदस्यों का चुनाव प्रांतीय विधायिका से होगा और जिसमें देशी रियासतों के द्वारा मनोनीत सदस्य भी होंगे।
- प्रांतों को भारतीय संघ से अलग अपना अस्तित्व बनाये रखने का अधिकार होगा तथा वे अपने भविष्य के बारे में सीधे ब्रिटेन से समझौता कर सकेंगे।
- ब्रिटिश सरकार और संविधान सभा में एक संधि होगी जिसमें अंग्रेजी सरकार द्वारा अल्पसंख्यक जातियों को दिये गए आश्वासनों और सुरक्षा का वर्णन होगा अर्थात् नये संविधान में उन सुविधाओं को बनाए रखना होगा।
- देश की रक्षा की जिम्मेदारी सिर्फ ब्रिटेन की होगी तथा अपवाद स्वरूप एक भारतीय रक्षा सदस्य के रूप में नियुक्त किया जाएगा।
- **एम.एन.राय** एवं **ए.घोष** जैसे कुछ नेताओं ने सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं। वास्तव में उस समय धुरी राष्ट्रों की पराजय ज्यादा महत्त्वपूर्ण थी, क्योंकि भारत एवं विश्व के लिए तानाशाही का खतरा ब्रिटिश साम्राज्यवाद से अधिक घातक था। मुस्लिम लीग सहित सभी दल इसके विरुद्ध थे। दूसरे अल्पसंख्यकों ने भी और अधिक सुरक्षा की मांग की। कांग्रेस को डोमिनियन स्टेट्स, देशी राज्यों द्वारा मनोनीत प्रतिनिधियों की व्यवस्था एवं प्रांतों का स्वतंत्र रूप से समझौता करने के स्वविवेकीय आधार पर आपत्ति थी।
- ब्रिटेन ने प्रभावकारी शक्ति को तुरंत भारतीयों के हाथों में हस्तांतरित करने व भारत की सुरक्षा में हिस्सा देने से इंकार कर दिया। अंतत: इस मुद्दे पर बातचीत टूट गयी। गाँधीजी ने इसे **'उत्तरतिथिक चेक'** (Postdated Cheque) की संज्ञा दी।
- इन सबके बावजूद क्रिप्स प्रस्ताव ने, **'अगस्त प्रस्ताव'** से आगे संवैधानिक प्रगति की दिशा में कुछ ठोस कार्य किये, उदाहरण स्वरूप राष्ट्रमंडल से अलग होने के साथ-साथ डोमिनियन स्टेटस का निश्चित आश्वासन तथा सिर्फ भारतीय सदस्यों से बनने वाली संविधान सभा। इस तरह क्रिप्स मिशन भारतीयों का सक्रिय सहयोग पाने के अपने प्राथमिक उद्देश्य में असफल रहा, फिर भी इसका वास्तविक लाभ चर्चिल को ही हुआ। उसने रूजवेल्ट को संतुष्ट कर दिया कि भारत में **संवैधानिक सुधारों** के लिए भारतीय नेता ही तैयार नहीं हैं।
- **11 अप्रैल, 1942** को यह प्रस्ताव वापस लिया गया। इस असफलता का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि क्रिप्स को बातचीत में लचीला होने की सुविधा नहीं थी। उसे **'प्रारूप घोषणा'** के **अतिक्रमण** का भी अधिकार नहीं था। क्रिप्स मिशन की असफलता ने भारतीयों में कटुता को भर दिया तथा इससे अंतत: **'भारत छोड़ो आंदोलन'** का जन्म हुआ।

भारत छोड़ो आंदोलन (Quit India Movement)



क्रिप्स मिशन से असंतुष्ट होकर, **गाँधी जी** ने एक प्रस्ताव तैयार किया जिसमें अंग्रेजों से तुरन्त भारत छोड़ने तथा जापानी आक्रमण होने पर भारतीयों से अहिंसक असहयोग का आह्वान किया गया था। कांग्रेस कार्यसमिति ने **वर्धा** की अपनी बैठक **4 जुलाई, 1942** में संघर्ष के **गाँधीवादी** प्रस्ताव को अपनी स्वीकृति दी।

संघर्ष क्यों अपरिहार्य हो गया इसके कई कारण थे-

- संवैधानिक गतिरोध को हल करने में क्रिप्स मिशन की असफलता ने संवैधानिक विकास के मुद्दे पर ब्रिटेन के अपरिवर्तित रुख को उजागर किया तथा यह बात स्पष्ट हो गयी कि भारतीयों की ज्यादा समय तक चुप्पी उनके भविष्य को ब्रिटेन के हाथों में सौंपने के समान होगी। इससे अंग्रेजों को भारतीयों से विचार-विमर्श किये बिना उनके भविष्य निर्धारण का अधिकार मिल जाएगा।
- मूल्यों में बेतहाशा वृद्धि तथा चावल, नमक इत्यादि आवश्यक वस्तुओं के अभाव से सरकार के विरुद्ध जनता में तीव्र असंतोष था। सरकार ने बंगाल और उड़ीसा की नावों को जापानियों द्वारा दुरुपयोग किये जाने के भय से जब्त कर लिया था, जिससे स्थानीय लोगों को परेशानी का सामना करना पड़ रहा था। जापानी आक्रमण के भये से ब्रिटेन ने असम, बंगाल एवं उड़ीसा में दमनकारी एवं भेदभावपूर्ण भू-नीति का सहारा लिया।
- दक्षिण-पूर्व एशिया में ब्रिटेन की पराजय तथा शक्तिशाली ब्रिटेन के पतन के समाचार ने भारतीयों में असंतोष को व्यक्त करने की इच्छाशक्ति जगायी। ब्रिटिश शासन के स्थायित्व से लोगों की आस्था कम होने लगी तथा लोग डाकघरों एवं बैंकों से अपना रुपया वापस निकालने लगे।
- बर्मा और मलाया को खाली करने के ब्रिटिश सरकार के तौर-तरीकों से काफी असंतोष फैला। सरकार ने यूरोपियों की बस्तियां खाली करा लीं तथा स्थानीय निवासियों को उनके भाग्य के भरोसे छोड़ दिया। यहाँ दो तरह की सड़कें बनायी गयीं-भारतीय शरणार्थियों के लिये **काली सड़क** तथा यूरोपीय शरणार्थियों के लिये सफेद सड़क। **ब्रिटिश सरकार** की इन हरकतों से **अंग्रेजों की प्रतिष्ठा** को गहरा आघात लगा तथा उनकी सर्वश्रेष्ठता की मनोवृत्ति उजागर हो गयी।
- निराशा के कारण, जापानी आक्रमण का जनता द्वारा कोई प्रतिरोध न किये जाने की आशंका से राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं को संघर्ष प्रारम्भ करना अपरिहार्य लगने लगा।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक- **ग्वालिया टैंक मैदान, बम्बई** में **8**

अगस्त, 1942 को हुई। इस बैठक में गाँधी जी के वर्धा प्रस्ताव को स्वीकृति देते हुए अंग्रेजों भारत छोड़ो का प्रस्ताव पारित किया गया तथा घोषणा की गयी कि–

- भारत में ब्रिटिश शासन को तुरंत समाप्त किया जाए।
- स्वतंत्र भारत सभी प्रकार की फासीवादी एवं साम्राज्यवादी शक्तियों से स्वयं की रक्षा करेगा तथा अपनी अक्षुण्णता को बनाये रखेगा।
- अंग्रेजों की वापसी के पश्चात् कुछ समय के लिये अस्थायी सरकार की स्थापना की जाएगी।
- ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सविनय अवज्ञा आंदोलन का समर्थन किया गया।
- गाँधी जी को संघर्ष का नेता घोषित किया गया।

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान गाँधीजी द्वारा समाज के विभिन्न वर्गों को कुछ निर्देश दिए गये, जो इस प्रकार हैं–

- सैनिक सेना से त्यागपत्र न दें किंतु अपने सहयोगियों एवं भारतीयों पर गोली न चलाएँ।
- छात्रों में यदि आत्म-विश्वास हो तो, शिक्षण संस्थाओं में जाना बंद कर दें तथा पढ़ाई छोड़ दें।
- यदि जमींदार सरकार विरोधी हों तो कृषक पारस्परिक सहमति के आधार पर तय किया गया लगान अदा करते रहें किंतु यदि जमींदार सरकार समर्थक हों तो लगान देना बंद कर दें।
- राजे-महाराजे जनता को सहयोग दें तथा अपनी प्रजा की संप्रभुता को स्वीकार करें।
- देशी रियासतों के लोग शासकों का सहयोग तभी करें जब वे सरकार विरोधी हों तथा सभी अपने को राष्ट्र का एक अंग घोषित करें।

इस अवसर पर गाँधी जी ने लोगों से कहा था "एक मंत्र है, छोटा सा मंत्र, जो मैं आपको देता हूँ। उसे आप अपने हृदय में अंकित कर सकते हैं और प्रत्येक श्वास द्वारा व्यक्त कर सकते हैं, यह मंत्र है- **'करो या मरो'** या तो हम भारत को आजाद कराएंगें या इस प्रयास में अपनी जान दें देंगे अपनी गुलामी का स्थायित्व देखने के लिये हम जिन्दा नहीं रहेंगे।"

गाँधी जी सविनय अवज्ञा आंदोलन, सांगठनिक कार्यों तथा लगातार प्रचार अभियान से आंदोलन का वातावरण निर्मित कर चुके थे। लेकिन ब्रिटिश सरकार कांग्रेस से किसी भी तरह के समझौते के पक्ष में नहीं थी। वह आंदोलन के औपचारिक शुभारंभ की प्रतीक्षा कर रही थी। आंदोलन की घोषणा होते ही ब्रिटिश सरकार ने गिरफ्तारी और दमन के निर्देश जारी कर दिये। **9 अगस्त, 1942** को प्रात: ही सभी महत्त्वपूर्ण कांग्रेसी नेताओं को बंदी बना लिया गया तथा अज्ञात स्थानों पर ले जाया गया। इन शीर्षस्थ नेताओं की गिरफ्तारी से नेतृत्व के अभाव में आंदोलन की बागडोर युवा उग्रवादी तत्वों के हाथों में आ गयी। यह आंदोलन एक तरह से नेतृत्व विहीन हो गया। जगह-जगह जनता के गुटों ने अपने-अपने विचार से आंदोलन को गति दी।

जनता ने सरकारी सत्ता के प्रतीकों पर आक्रमण किया तथा सरकारी भवनों पर बलपूर्वक तिरंगा फहराया। सत्याग्रहियों ने गिरफ्तारियाँ दीं, पुल उड़ा दिये गये, रेलों की पटरियाँ उखाड़ दी गयीं तथा तार एवं टेलीफोन की लाइनें काट दी गयीं। शिक्षण संस्थाओं में छात्रों ने हड़ताल कर दी, छात्रों द्वारा जुलूस निकाले गये, गैरकानूनी पर्चे लिखे गये, उन्हें जगह-जगह बांटा गया तथा अनेक लोगों ने भूमिगत कार्यकताओं के लिये संदेशवाहक का कार्य किया। अहमदाबाद, बम्बई, जमशेदपुर, अहमदनगर एवं पूना में मजदूरों ने हड़ताल कर दी।

भूमिगत गतिविधियाँ (Underground Activities)

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान शीर्ष नेताओं की गिरफ्तारी हो गई थी जबकि कुछ आंदोलनकारियों द्वारा भूमिगत अर्थात् ब्रिटिश सरकार से छुपकर आंदोलन को जारी रखने का प्रयास किया गया। **राम मनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण, अरुणा आसफ अली, उषा मेहता, बीजू पटनायक, छोटू भाई पुराणिक, अच्युत पटवर्धन, सुचेता कृपलानी** तथा **आर.पी. गोयनका** भूमिगत गतिविधियाँ संचालित करने वाले अग्रगण्य नेताओं में से थे। **उषा मेहता** ने बम्बई में **भूमिगत रेडियो स्टेशन** की स्थापना की। भूमिगत गतिविधियों में संलग्न लोगों को व्यापक सहयोग मिल रहा था। उन्हें बड़ी मात्रा में हथियार और गोला-बारूद दिया गया। इन आंदोलनकारियों का मुख्य उद्देश्य यह होता था कि सरकारी भवनों, संचार तथा यातायात के माध्यमों तथा अन्य सरकारी प्रतिष्ठानों पर हमले किये जाएँ और जो व्यक्ति सरकार के समर्थक हैं या सरकार के लिये जासूसी करते हैं, उन्हें मौत के घाट उतार दिया जाए।

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान समानांतर सरकारें (Parallel Governments by the Time of Quit India Movement)



भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान देश के कई स्थानों पर समानांतर सरकारों की स्थापना की गई जैसे– बलिया (अगस्त, 1942 में केवल एक सप्ताह के लिये)- यहां **चित्तू पांडे** के नेतृत्व में **समानांतर सरकार** की स्थापना की गयी। उनकी सरकार ने **स्थानीय जिलाधिकारी** से शासन के सभी अधिकार छीन लिये तथा जेल में बंद सभी कांग्रेसी नेताओं को रिहा कर दिया।

- इसी प्रकार **तामलुक** की जातीय सरकार ने **तूफान पीड़ितों** की सहायता के लिए कार्यक्रम प्रारंभ किया, स्कूलों को अनुदान दिये, धनी लोगों का अतिरिक्त **धन गरीबों में बाँटा** तथा एक सशस्त्र विद्युत वाहिनी का गठन किया। सतारा में सबसे लंबे समय तक चलने वाली सरकार थी, यहां **'समानांतर सरकार'** के नाम से समानांतर सरकार स्थापित की गयी, जो सबसे ज्यादा दीर्घजीवी साबित हुई।
- इस सरकार की स्थापना में **वाई.बी. चव्हाण** तथा **नाना पाटिल** इत्यादि की प्रमुख भूमिका थी। सरकार के कार्यों में ग्रामीण पुस्तकालयों की स्थापना, न्यायदान मंडलों (जन अदालतों) का गठन, शराब बंदी अभियान आदि का आयोजन जैसे कार्य सम्मिलित थे।
- भारत छोड़ो आंदोलन में आम जनता ने आंदोलनकारियों को अभूतपूर्व सहयोग प्रदान किया। समाज का कोई भी वर्ग सहायता एवं समर्थन देने में पीछे नहीं रहा।
- युवकों ने मुख्य रूप से स्कूल एवं कालेज के छात्रों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।
- महिलायें मुख्यतया स्कूल एवं कालेज की छात्राओं ने आंदोलन में सक्रियता से भाग लिया। महिलाओं में **अरुणा आसफ अली, सुचेता कृपलानी** तथा **उषा मेहता** के नाम प्रमुख हैं।

- पूरे देश के किसान इस आंदोलन की जान थे। किसान चाहे अमीर हों या गरीब, सभी ने आंदोलन में ऐतिहासिक भागीदारी निभायी। यहाँ तक कि कुछ **जमींदारों** ने भी **आंदोलन** में भाग लिया।
- प्रशासन एवं पुलिस के निचले तबके से सम्बद्ध अधिकारियों ने भी आंदोलन में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया, फलत: इस तबके के सरकारी अधिकारियों से सरकार का विश्वास समाप्त हो गया।
- **मुसलमानों** ने भी **भूमिगत आंदोलनकारियों** को प्रश्रय प्रदान किया। आंदोलन के दौरान साम्प्रदायिक हिंसा का नामा-निशान नहीं था।
- **कम्युनिस्टों** ने यद्यपि आंदोलन का बहिष्कार किया था फिर भी स्थानीय स्तर पर सैकड़ों कम्युनिस्टों ने आंदोलन में भाग लिया।
- देशी रियासतों ने कम रूचि दिखायी थी।
- मुस्लिम लीग- इन्होंने भारत छोड़ों आंदोलन का विरोध किया। इनकों डर था कि यदि इसी समय अंग्रेज भारत छोड़कर चले गए, तो हिंदुओं द्वारा अल्पसंख्यकों का शोषण किया जाएगा।
- हिन्दू महासभा ने आंदोलन का बहिष्कार किया।

आंदोलन का सरकार द्वारा दमन (Suppression of the Movement by Government)

आंदोलनकारियों के विरुद्ध सरकार ने दमन की नीति को अपनाया तथा वह आंदोलन को पूर्णरूपेण कुचल देने की नीति पर उतर आयी। यद्यपि मार्शल लॉ लागू नहीं किया गया था किंतु सरकार की दमनात्मक कार्रवाई अत्यंत गंभीर थी। प्रदर्शनकारियों पर निर्दयतापूर्वक लाठी चार्ज किया गया, आंसू गैसों के गोले छोड़े गए तथा गोलियां बरसायी गयीं। सरकार ने प्रेस पर हमला बोल दिया तथा कई समाचार-पत्रों पर पाबंदी लगा दी। देश के कई शहरों में सेना का नियंत्रण हो गया तथा पुलिस एवं गुप्तचर सेवाओं का साम्राज्य कायम हो गया। विद्रोही गाँवों पर भारी जुर्माने लगाए गए तथा लोगों को सार्वजनिक रूप से कोड़े लगाए गये।

मूल्यांकन (Evaluation)

- भारत छोड़ो आंदोलन के मुख्य केंद्र- पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, मिदनापुर, महाराष्ट्र एवं कर्नाटक थे।
- छात्र, मजदूर एवं कृषक आंदोलन की रीढ़ थे, जबकि **उच्च वर्ग** एवं **नौकरशाही सदैव** की भांति इस आंदोलन में भी तटस्थ बने रहे।
- सरकार के प्रति निष्ठा रखने वालों को **आंदोलनकारियों ने देशद्रोही** माना। आंदोलन से यह स्पष्ट हो गया कि **भारतीयों** में **राष्ट्रवाद** की भावना अन्दर तक बैठ चुकी थी।
- इस आंदोलन से यह बात भी स्पष्ट हो गयी कि भारतीयों की इच्छा के विरुद्ध भारत पर अब और अधिक शासन करना संभव नहीं है।
- पूर्ववर्ती आंदोलनों की तुलना में इस आंदोलन में स्वत: स्फूर्ति का तत्व कहीं ज्यादा था। यद्यपि असहयोग आंदोलन तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन (दोनों चरण) में भी कांग्रेस ने स्वत:स्फूर्ती तत्वों के विकास की संभावनाओं को अवसर दिया था किंतु **1942** के भारत छोड़ो आंदोलन में स्वत:स्फूर्ति तुलनात्मक रूप से काफी अधिक थी।
- वस्तुत: गाँधीवादी जन आंदोलन की रणनीति थी कि शीर्ष नेतृत्व कार्यक्रम की योजना बना देता था तथा उसका कार्यान्वयन जनता तथा स्थानीय स्तर के कार्यकर्ताओं के हाथों में छोड़ दिया जाता था।
- यद्यपि नेतृत्व को आंदोलन छेड़ने का अवसर न मिल पाने के कारण भारत छोड़ो आंदोलन की रूपरेखा स्पष्ट नहीं की गयी थी किंतु एक बार जब कांग्रेस नेतृत्व एवं गाँधी जी ने आंदोलन को परिभाषित कर दिया, सभी लोग उत्प्रेरित होकर आंदोलन से जुड़ गये। इसके अतिरिक्त कांग्रेस भी सैद्धांतिक, राजनीतिक एवं संगठनात्मक तौर पर काफी लंबे समय से इस संघर्ष की तैयारी कर रही थी।
- भारत छोड़ो आंदोलन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि स्वतंत्रता संघर्ष के एजेंडे में भारत को तुरंत आजादी दिये जाने की मांग को सम्मिलित किया गया था। इस आंदोलन के पश्चात् कांग्रेस का नेतृत्व तथा भारतीय, इस मांग के संदर्भ में कभी नरम नहीं पड़े।
- इस आंदोलन में जनसामान्य की भागीदारी अप्रत्याशित थी। लोगों ने अदम्य साहस एवं राष्ट्रभक्ति का परिचय दिया। यद्यपि उन्होंने जो प्रताड़ना झेली वह अत्यंत बर्बर एवं अमानवीय थी तथा संघर्ष की परिस्थितियाँ भी उनके प्रतिकूल थीं, किंतु आंदोलन के हर मोर्चे पर जनता ने अत्यंत सराहनीय भूमिका निभायी तथा आंदोलनकारियों को पूर्ण समर्थन एवं सहयोग प्रदान किया।
- सरकार, गाँधी जी पर लगातार यह दबाव डाल रही थी कि वो आंदोलन के दौरान हो रही व्यापक हिंसा के लिये आंदोलनकारियों की निंदा करें, लेकिन गाँधी जी ने ऐसा करने से इंकार कर दिया तथा तर्क दिया कि इस हिंसा के लिये सरकार की दमनकारी नीतियाँ ही उत्तरदायी हैं।
- गाँधी जी ने इसी सरकारी दमन के विरोध में फरवरी, **1943** में 21 दिन का उपवास प्रारंभ कर दिया। गाँधी जी के उपवास की खबर आग की तरह फैली जिससे देश की जनता में आक्रोश फैल गया। देश भर में प्रदर्शन, हड़ताल एवं जुलूसों का आयोजन किया गया।
- विदेशों में भी गाँधी के उपवास की खबर से व्यापक स्तर पर प्रतिक्रिया हुयी तथा सरकार से उन्हें तुरंत रिहा करने की मांग की गयी। वायसराय की कार्यकारिणी परिषद से तीन सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिया।
- सरकार, गाँधी जी से किसी भी तरह का समझौता करने को तैयार नहीं थी बल्कि ब्रिटिश सरकार तो गाँधी के मृत्यु का इंतजार करने लगी। कुछ इतिहासकार तो यहां तक कहते हैं कि गाँधी जी की चिता के लिए चंदन की लकड़ी की व्यवस्था भी कर दी गई थी।
- ब्रिटिश सरकार यह मानकर चुप रही कि गाँधी की मृत्यु के पश्चात् भारतीय साम्राज्यवाद की ब्रिटिश नीति का सबसे बड़ा अवरोध समाप्त हो जाएगा। किन्तु गाँधीजी ने हमेशा की तरह अपने विरोधियों को मात दे दी तथा मरने से इंकार कर सरकारी मंसूबों पर पानी फेर दिया।

स्मरणीय तथ्य

- भारत छोड़ो का प्रस्ताव कांग्रेस ने पेश किया **14 जुलाई, 1942** को।
- अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी बैठक (बॉम्बे 8 अगस्त, 1942) में भारत छोड़ो प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित कर दिया गया।
- **9 अगस्त, 1942** को सभी प्रमुख कांग्रेसी नेता गिरफ्तार कर लिये गए।
- ग्वालियाटैंक मैदान को **'अगस्त क्रांति मैदान'** के नाम से भी जाना जाता है।
- भारत छोड़ो आंदोलन को **'अगस्त क्रांति'** तथा भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष की अंतिम लड़ाई के रूप में याद किया जाता है।
- राष्ट्रीय आंदोलन का यह प्रथम ऐसा आंदोलन था जो पूरी तरह नेतृत्वविहीन था।
- भारत छोड़ो आंदोलन के समय ही गाँधी ने **'करो या मरो'** कालजयी नारा दिया।
- भारत छोड़ो आंदोलन के समय स्थापित स्वशासित समनांतर सरकारों में सर्वाधिक दीर्घजीवी सरकार सतारा (महाराष्ट्र) की थी।
- 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन की जांच के लिए नियुक्त जांच कमीशन के प्रमुख टी. विकेंडेन (आई.सी.एस.) मध्य प्रांत के जज थे। इसकी रिपोर्ट **29 नवम्बर 1943** को सरकार को सौंपी गई।
- आंदोलन के समय गाँधी जी को गिरफ्तार कर आगा खाँ पैलेस में रखा गया।
- ब्रिटिश सरकार ने भारत छोड़ो आंदोलन के समय ही आगा खाँ पैलेस में गाँधी के अंतिम संस्कार की तैयारी कर ली थी।

- **1942** के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान हजारीबाग सेन्ट्रल जेल की दीवारों को फांदकर जय प्रकाश नारायण ने आंदोलन में हिस्सा लिया।
- भारत छोड़ो आंदोलन के समय ही गाँधी जी को अपनी पत्नी कस्तूरबा और निजी सचिव महादेव देसाई के देहान्त की खबर मिली।
- आंदोलन के समय कांग्रेस का गुप्त रेडियो स्थापित हुआ।

आजाद हिन्द फौज (Azad Hind Fauj)

'आजाद हिन्द फौज' या इंडियन नेशनल आर्मी (आई. एन.ए.) की स्थापना का विचार सर्वप्रथम **मोहन सिंह** के मन में मलाया में आया। मोहन सिंह, ब्रिटिश सेना में एक भारतीय सैन्य अधिकारी थे किंतु कालांतर में उन्होंने साम्राज्यवादी ब्रिटिश सेना में सेवा करने के स्थान पर जापानी सेना की सहायता से अंग्रेजों को भारत से निष्कासित करने का निश्चय किया।



जापानी सेना द्वारा भारतीय युद्ध बंदियों को छोड़ने के पश्चात् **मोहन सिंह** ने उन्हें संगठित कर **'आजाद हिन्द फौज'** का गठन किया। सिंगापुर के जापानियों के हाथ में आने के पश्चात् मोहन सिंह को 45 हजार युद्धबंदी प्राप्त हुये। यह घटना अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी। 1942 के अंत तक इनमें से 40 हजार लोग **'आजाद हिन्द फौज'** में सम्मिलित होने को राजी हो गये।

- भारत छोड़ो आंदोलन ने **'आजाद हिन्द फौज'** को एक नयी ताकत प्रदान की। मलाया में ब्रिटेन के विरुद्ध तीव्र प्रदर्शन किया गया। **1 सितम्बर, 1942** को 16300 सैनिकों को लेकर 'आजाद हिन्द फौज' की पहली टुकड़ी का गठन किया गया।
- भारतीय सैनिकों के संगठित होने से जापान भारत पर आक्रमण करने की अपनी योजना को मूर्तरूप देने हेतु उत्साहित हो गया। किंतु दिसम्बर, **1942** तक आते-आते **'आजाद हिन्द फौज'** की भूमिका के प्रश्न पर मोहन सिंह एवं अन्य भारतीय सैन्य अधिकारियों तथा जापानी अधिकारियों के बीच तीव्र मतभेद पैदा हो गये।
- जापानी अधिकारियों की मंशा थी कि भारतीय सेना प्रतीकात्मक हो तथा उसकी संख्या 2 हजार तक सीमित रखी जाए किंतु मोहन सिंह का उद्देश्य 2 लाख सैनिकों की फौज तैयार करने का था।

सुभाष चंद्र बोस और आजाद हिन्द फौज (Subhash Chandr Bose and Azad Hind Fauj)

गाँधी जी से मतभेद होने के कारण **सुभाषचंद्र बोस** ने कांग्रेस की सदस्यता से त्यागपत्र देकर **1939** में **'फॉरवर्ड ब्लॉक'** के नाम से एक नए दल का गठन किया। भारत से पलायन के पश्चात् उन्होंने रूसी नेताओं से मुलाकात कर ब्रिटेन के विरुद्ध सहायता देने की मांग की।

- **जून, 1941** में सोवियत संघ के मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध में सम्मिलित होने के बाद सुभाषचंद्र बोस जर्मनी चले गये। तत्पश्चात् वहां से फरवरी, **1943** में वे जापान पहुंचे। उन्होंने जापान से ब्रिटेन के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष प्रारंभ करने की मांग की।
- **जुलाई, 1943** में सुभाषचंद्र बोस सिंगापुर पहँचे, जहाँ रासबिहारी बोस एवं अन्य लोगों ने उनकी मदद की तथा उन्होंने **'आजाद हिन्द फौज'** एवं **'इंडियन लीग'** की कमान को संभाला। सुभाषचन्द्र बोस ने सैनिकों से कहा 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा।'
- **अक्टूबर, 1943** में उन्होंने सिंगापुर में अस्थायी भारतीय सरकार का गठन किया। सिंगापुर के अतिरिक्त रंगून में भी इसका मुख्यालय बनाया गया। **धुरी राष्ट्रों** ने इस सरकार को मान्यता प्रदान की। सैनिकों को गहन प्रशिक्षण दिया गया तथा फौज के लिये धन एकत्रित किया गया। नागरिकों को भी सेना में भर्ती किया गया। स्त्री सैनिकों के लिए **'रानी झांसी रेजीमेंट'** नाम से दल बनाया गया।
- **जुलाई, 1944** में सुभाषचंद्र बोस ने गाँधी जी से रेडियो पर **"भारत की स्वाधीनता के अंतिम युद्ध"** के लिये आशीर्वाद मांगा तथा गाँधीजी को राष्ट्रपिता के नाम से सम्बोधित किया।
- **कर्नल शाहनवाज** के नेतृत्व में **'आजाद हिन्द फौज'** की एक बटालियन जापानी फौज के साथ युद्ध में भाग लेने के लिये इम्फाल भेजी गयी। किंतु यहां भारतीय सैनिकों से दुर्व्यवहार किया गया। उन्हें न केवल रसद एवं हथियारों से वंचित रखा गया अपितु जापानी सैनिकों के निम्न स्तरीय काम करने के लिये भी बाध्य किया गया। इससे भारतीय सैनिकों का मनोबल टूट गया। इम्फाल अभियान की विफलता तथा **जापानी** सैनिकों के पीछे लौटने से इस बात की उम्मीद समाप्त हो गयी कि **'आजाद हिन्द फौज'** भारत को स्वाधीनता दिला सकती है।
- जापान के द्वितीय विश्व युद्ध में आत्मसमर्पण करने के पश्चात् **'आजाद हिन्द फौज'** के सैनिकों को युद्ध बंदी के रूप में भारत लाया गया। ऐसा माना जाता है कि इसी समय एक हवाई दुर्घटना में सुभाष चंद्र बोस की मृत्यु हो गई।

आजाद हिन्द फौज पर मुकदमा (Case on Azad Hind Fauj)

जब ब्रिटिश सरकार ने **'आजाद हिन्द फौज'** के कुछ अफसरों के विरुद्ध शासन की वफादारी की शपथ तोड़ने और विश्वासघात करने के आरोप में मुकदमा चलाने की घोषणा की, तो राष्ट्रवादी विरोध की लहर सारे देश में फैल गयी। देशभर में विशाल प्रदर्शन हुए और अफसरों की रिहाई की मांग की गयी।

- जब सरदार **गुरुबख्श सिंह ढिल्लन, प्रेम सहगल** और **शाहनवाज खाँ** के ऊपर ब्रिटिश हुकूमत ने राजद्रोह का मुकदमा चलाया, इन तीनों को फाँसी की सजा तथा राशिद अली को 7 वर्ष के कारावास का दंड दिया गया, तो संपूर्ण राष्ट्र में विद्रोह की भावना भड़क उठी और ये सभी देश के विभिन्न संप्रदायों की सांकेतिक एकता के प्रतीक बन गये।
- कोर्ट मार्शल का मुकदमा लाल किले में चलाया गया था। कांग्रेस ने इन अफसरों की पैरवी का फैसला किया, न केवल कांग्रेस बल्कि सभी राजनैतिक दलों ने भी मुकदमे की सुनवाई का विरोध किया और इन तीनों की रिहाई की जोरदार आवाज उठायी।
- कांग्रेस ने **'आजाद हिंद बचाव समिति'** का गठन किया। जिसमें भूलाभाई देसाई के नेतृत्व में तेजबहादुर सप्रू, कैलाशनाथ काटजू, अरूणा आसफ अली और जवाहर लाल नेहरू प्रमुख वकील थे। इनके प्रति जनता की इतनी सहानुभूति थी कि दस्तखतों के आंदोलन, सभाओं के दौर के आगे सरकार को हथियार डालने पड़े। गवर्नर जनरल ने अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग करते हुए उन्हें रिहा कर दिया।

मूल्यांकन (Evaluation)

यद्यपि **'आजाद हिन्द फौज'** अपने प्रयत्न में असफल रही, परंतु इससे राजनीतिक एवं मानसिक रूप से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में बहुत योगदान मिला। **'आजाद हिन्द फौज'** और उसके द्वारा किये गये कार्यों का देश की जनता पर व्यापक असर पड़ा। इसी का परिणाम था कि जब **'आजाद हिन्द फौज'** के तीन अफसरों पर देशद्रोह का अभियोग चलाया गया तो, अंग्रेजों को देश जनभावनाओं को भांपते हुए उन्हें रिहा करना पड़ा। इस घटना से अंग्रेजों को यह आभास हो गया कि अब वे भारतीय सेना पर विश्वास नहीं कर सकते थे और अब भारत छोड़ने का समय आ गया है। मनोवैज्ञानिक रूप से **'आजाद हिन्द फौज'** के वीरों ने एक साहस का उदाहरण प्रस्तुत किया, जिससे भारत का स्वतंत्रता प्राप्ति का संकल्प और भी दृढ़ हो गया।

शाही भारतीय नौसेना का विद्रोह (Mutiny of the Royal Indian Navy)

'आजाद हिन्द फौज' के आंदोलन का प्रभाव **राष्ट्रीय आंदोलन** पर तथा **सेना** पर भी पड़ा। **1946** में सेना में अशांति, शाही सेना का विद्रोह अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटनाएँ थीं, जिन्होंने ब्रिटिश शासन की भारत में नींव हिला दी।



फरवरी, 1946 में नौसेना के कुछ नाविकों का बैरकों में प्रशिक्षण चल रहा था। वहीं खराब खाने की शिकायत को लेकर ठन गयी। शीघ्र ही बैरकों की दीवारों पर पोस्टर लग गये- **अंग्रेजों भारत छोड़ो, हिंदुस्तान जिंदाबाद'**। कुछ रेडियो ऑपरेटरों को इस संदेह में गिरफ्तार कर लिया गया कि, वे **कम्युनिस्ट पार्टी** के आदमी हैं। इस गिरफ्तारी का जवाब नाविकों ने **18 फरवरी, 1946** की हड़ताल से दिया। यह हड़ताल कराची तथा मद्रास में भी फैल गयी। परंतु मुख्य रूप से यह बंबई में केंद्रित रही। नौसेना के विद्रोहियों को बंबई के नागरिकों का पूर्ण समर्थन प्राप्त था। उनके दमन के लिए भेजे गए भारतीय फौजी दस्तों ने शस्त्र उठाने से इंकार कर दिया। तब ब्रिटिश फौजें बुलायी गयीं और 7 घंटे तक किले की बैरकों के बाहर युद्ध हुआ।

- **22 फरवरी** को ब्रिटिश शासन ने बेहिसाब गोलियाँ चलाकर जनता के मनोबल को तोड़ना चाहा। इसी दिन बंबई में अभूतपूर्व हड़ताल हुई थी, जिसमें 20 लाख से भी अधिक मजदूरों ने हिस्सा लिया था। तीन दिनों में लगभग 200 लोग मारे गये।
- जबलपुर के सैनिकों ने **23 फरवरी** को हमदर्दी दिखाने के लिए हड़ताल की घोषणा की। कलकत्ता, बंबई तथा अन्य नगरों में विशाल जन प्रदर्शन हुए। नौसेना के इस विद्रोह के पीछे जन-समर्थन तथा भारतीय सेना की हमदर्दी से ब्रिटिश शासक घबरा गये। बंबई के कामगारों तथा मध्यवर्गीय जनता ने जिस प्रकार सशस्त्र क्रांतिकारी नौसेना के विद्रोहियों का साथ दिया उससे ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिल गयी।
- **25 फरवरी, 1946** को नौसेना के विद्रोहियों को समर्पण की सलाह देने वाले वल्लभ भाई पटेल के दबाव से यह आंदोलन बिखर गया। इसी आशय का दबाव **'मुस्लिम लीग'** ने भी डाला। अंततः केंद्रीय हड़ताल समिति ने हथियार डाल दिये।
- हड़ताल समिति के अध्यक्ष ने आखिरी बयान दिया कि 'हम भारत के सामने आत्म-समर्पण कर रहे हैं, ब्रिटेन के सामने नहीं।' कांग्रेस और लीग के आश्वासनों के बावजूद दो दिन बाद हड़ताल समिति के नेता गिरफ्तार कर लिए गये। इस प्रकार भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का एक स्वर्णिम दौर बिखर गया।
- इस विद्रोह का महत्त्व यह है कि इसने यह दिखाया कि भारतीय जनता अब विदेशी शासन के अपमान को और अधिक सहन करने को तैयार नहीं है। रॉयल इंडिया नेवी में हुआ विद्रोह ब्रिटिश शासन के अंत का लगभग वैसा ही प्रतीक है जैसा कि स्वतंत्रता दिवस।



इन विद्रोहों का नेतृत्व कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट या फॉरवर्ड ब्लॉक वालों ने या तीनों ने मिलकर किया। इनके आपस के संबंध या कांग्रेस के साथ संबंध विरोध या असहयोग के थे। ऐसा लगने लगा कि विस्फोटक स्थिति नियंत्रण के बाहर हो जाएगी, जो राजनीतिक दलों के लिए चिंता का विषय हो गया, क्योंकि स्वतंत्र भारत के लिए अनुशासित सशस्त्र सेनाएँ आवश्यक थीं और जल्दी ही इन दलों को शासन करना था।

- एक तरह से यह विद्रोह कांग्रेस की प्रारंभिक राष्ट्रवादी गतिविधियों का ही विस्तार था। वास्तव में यह कांग्रेस द्वारा घोषित साम्राज्य विरोधी भावना की अभिव्यक्ति थी। कांग्रेस ने इन ब्रिटिश विरोधी भावनाओं का निर्माण अपने चुनाव प्रचार, आजाद हिंद फौजियों के साथ एकजुटता का प्रदर्शन एवं 1942 की ज्यादतियों को दर्शाकर किया।
- हालाँकि कांग्रेस ने इस विद्रोह का आह्वान नहीं किया था और न ही दूसरे दलों ने, नाविकों के दमन के विरुद्ध इनके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने एवं रोष दर्शाने के लिए लोग स्वतः इकट्ठा हो गये।
- यद्यपि कांग्रेस ने लोगों की भावनाओं का स्वागत किया एवं सरकारी दमन की निंदा की, लेकिन इसने अधिकाधिक रूप से विद्रोह का समर्थन नहीं किया क्योंकि इसका तरीका एवं समय गलत था। कांग्रेस नेताओं के लिए यह स्पष्ट था कि सरकार समर्थ है एवं विद्रोह को कुचलने के लिए

दृढ़प्रतिज्ञ है। इसलिए वल्लभ भाई पटेल ने नाविकों से आत्मसमर्पण के लिए कहा।

- कांग्रेस द्वारा इस तरह की चेष्टाएं वास्तव में यह प्रदर्शित करती हैं कि संधि एवं समझौते कांग्रेसी संघर्ष के तरीके के अभिन्न अंग थे तथा जन आंदोलन प्रारंभ करने से पहले उन्हें आजमाया जाता था।

राजगोपालाचारी योजना और जिन्ना
(Rajgopalachari Formula and Jinnah)

क्रिप्स मिशन की असफलता के पश्चात् सरकार ने अगस्त **क्रांति की हिंसक** घटनाओं का **दोषारोपण गांधीजी** और कांग्रेस पर किया। गाँधीजी इतने बड़े झूठे आरोप को सहने के लिए तैयार नहीं थे। अत: उन्होंने इन आरोपों को अस्वीकार करते हुए **निष्पक्ष न्यायालय** में जांच कराने की मांग की। सरकार ने उनकी मांग को अस्वीकार कर दिया। अत: गाँधीजी ने **10 फरवरी, 1944** से 21 दिन के उपवास का निश्चय किया।



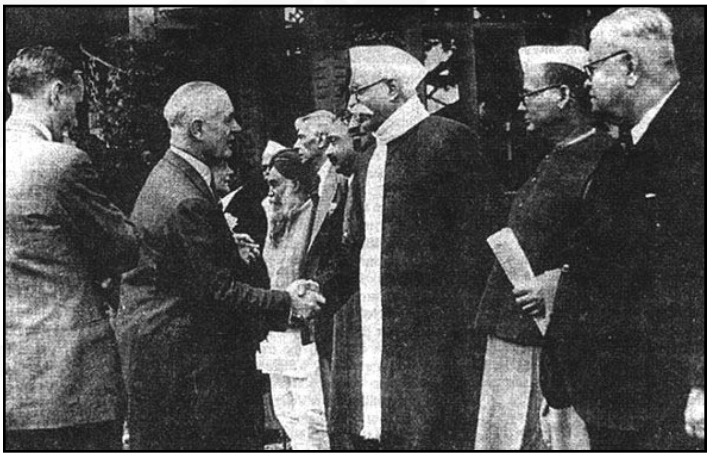
गाँधीजी का यह उपवास सरकार की **पाश्विक हिंसा** के विरोध और **आत्मशुद्धि** के लिए था। अंतत: खराब स्वास्थ्य के कारण सरकार ने उन्हें जेल से रिहा कर दिया। जेल से छूटने के बाद गाँधीजी ने राजनीतिक गतिरोध को दूर करने की दृष्टि से सरकार से समझौता वार्ता करनी शुरू की।

- उन्होंने वायसराय को एक पत्र लिखा जिसमें कहा गया था कि कांग्रेस का भविष्य में सत्याग्रह करने का इरादा बिल्कुल नहीं है, बशर्ते कि राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए कदम उठाए जाएँ, लेकिन सरकार ने यह शर्त रखी कि कांग्रेस पहले भारत छोड़ो आंदोलन वापस ले ले और आंदोलन की नीति का परित्याग करे। अत: संवैधानिक गतिरोध पूर्ववत् बना रहा। इस गतिरोध को दूर करने के उद्देश्य से मार्च, **1944** में **राजगोपालाचारी** ने एक योजना तैयार की।
- इस योजना के तहत् मुस्लिम लीग के साथ सांप्रदायिक समस्या का निवारण करने के उद्देश्य से एक समझौता करने का प्रयास किया गया और गाँधीजी ने जिन्ना से बातचीत शुरू की लेकिन जिन्ना ने इस योजना को स्वीकार नहीं किया। राजगोपालाचारी योजना की मुख्य बातें निम्नलिखित थीं-
- मुस्लिम लीग स्वतंत्रता की भारतीय मांग को स्वीकार करेगी और कांग्रेस के साथ **संक्रांति काल** के लिए **अंतरिम सरकार** के निर्माण में सहयोग करेगी।
- युद्ध समाप्ति के पश्चात् भारत के **उत्तर-पश्चिम** एवं **उत्तर-पूर्व** के उन क्षेत्रों में जहां मुसलमान बहुसंख्यक थे, एक आयोग द्वारा उन इलाकों को स्पष्ट करना तथा इन इलाकों में जनमत संग्रह द्वारा यह निश्चित करना कि वे भारत में रहना चाहते हैं या उससे अलग होना चाहते है।
- बंटवारे की स्थिति में **प्रतिरक्षा, संचार, आवागमन** एवं **जनसंख्या** का आदान-प्रदान एक समझौते द्वारा तय किया जाएगा।
- ये शर्तें तभी लागू होंगी जब ब्रिटेन द्वारा सत्ता का पूर्ण हस्तांतरण कर दिया जाएगा।
- गाँधीजी और जिन्ना शर्तों को स्वीकार करेंगे और कांग्रेस तथा लीग की स्वीकृति लेने का प्रयत्न करेंगे।
- गाँधीजी इस योजना के साथ जिन्ना से मिले किंतु जिन्ना ने इसे स्वीकार नहीं किया। वह पाकिस्तान में उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत, सिंध, ब्लूचिस्तान के साथ-साथ समस्त पंजाब, समस्त बंगाल और असम चाहते थे।

इसके अलावा जिन्ना जनमत संग्रह में केवल मुसलमानों को भाग लेने देना चाहते थे। उन्होंने कहा कि राजगोपालाचारी जी की योजना के अनुसार एक **"अंगहीन और दीमक लगा हुआ पाकिस्तान"** (Limbless and termite infested Pakistan) होगा। अत: गाँधी-जिन्ना वार्ता विफल हो गयी। वार्ता की विफलता ने विभाजन को अवश्यंभावी बना दिया। जिन्ना का राजनीतिक महत्त्व अधिक बढ़ गया। वे मुसलमानों के सबसे बड़े नेता बन गये। स्वयं मौलाना अबुल कलाम आजाद ने कहा था कि, "गाँधी जी का इस अवसर पर जिन्ना से बातचीत करना भारी राजनीतिक गलती थी।" इससे जिन्ना को एक नया और अतिरिक्त महत्त्व मिल गया, जिसका उसने अपने उद्देश्यों की पूर्ति (पाकिस्तान की स्थापना) के लिए खूब इस्तेमाल किया।

वैवेल योजना और शिमला सम्मेलन
(Wavell Plan and Shimla Conference)

1943 में लॉर्ड लिनलिथगो की जगह लॉर्ड वैवेल भारत के नये गवर्नर जनरल नियुक्त हुए। इसके पहले वे भारतीय सेना के सर्वोच्च सेनापति थे, अत: उन्हें भारतीय समस्याओं की अधिक जानकारी थी। भारत आते ही उन्होंने संवैधानिक गतिरोध को दूर करने के प्रयत्न शुरू कर दिये। इधर इंग्लैंड में चुनाव होने वाले थे, अत: चर्चिल ने 1945 में विचार-विमर्श के लिए लॉर्ड वैवेल को लंदन बुलाया। वापस आकर जून, 1945 में लॉर्ड वैवेल ने संवैधानिक सुधारों की रूपरेखा प्रस्तुत की। इसकी मुख्य बातें निम्नलिखित थीं-



- गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद में सम्मिलित होने के लिए सभी राजनैतिक दलों के नेताओं को निमंत्रित किया जाएगा। स्वयं **गवर्नर जनरल** और प्रधान **सेनापति** के अतिरिक्त इस परिषद के अन्य सभी सदस्य भारतीय राजनीतिक दलों के नेता ही होंगे।
- सरकार का विदेश विभाग भी एक भारतीय सदस्य के हाथ में होगा।

- कार्यकारिणी परिषद में सवर्ण हिंदुओं और मुसलमानों की संख्या बराबर रखते हुए सभी प्रमुख संप्रदायों को संतुलित प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा।
- कार्यकारिणी परिषद एक प्रकार की अंतरिम राष्ट्रीय सरकार के समान होगी और गवर्नर जनरल विशेषाधिकार का प्रयोग अकारण नहीं करेगा।
- दूसरे अधिराज्यों के समान ही भारत में भी ब्रिटेन के व्यापारिक एवं अन्य हितों की देख-रेख के लिए ब्रिटिश उच्चायुक्त की नियुक्ति की जाएगी।
- युद्ध की समाप्ति पर भारतीय लोग अपने संविधान का स्वयं निर्माण करेंगे।
- शिमला में शीघ्र ही भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया जाएगा।
- 25 जून, 1945 को शिमला में लॉर्ड वैवेल की अध्यक्षता में सम्मेलन प्रारंभ हुआ, जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग के अतिरिक्त सिक्ख, दलित वर्ग, एवं यूरोपियन दल के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया गया।
- सम्मेलन में वैवेल प्रस्ताव पर विचार किया गया। सम्मेलन आशापूर्ण वातावरण में प्रारंभ हुआ लेकिन दो दिन के उपरांत ही स्थगित कर दिया गया। इसका कारण यह था कि वायसराय की कार्यकारिणी परिषद के निर्माण पर कोई समझौता नहीं हो सका।
- मौलाना आजाद ने कांग्रेस की ओर से कार्यकारिणी की जो सूची प्रस्तुत की, उसमें तीन मुस्लिम लीग के सदस्यों के साथ दो राष्ट्रीय कांग्रेस से मुसलमानों को भी सम्मिलित किया गया। जिन्ना ने इसे अस्वीकार करते हुए कहा कि कार्यकारिणी परिषद् के पांचों मुस्लिम सदस्य मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि होने चाहिए। जिन्ना की इस दावे की हठधर्मिता से टकराकर वैवेल योजना समाप्त हो गयी।

कैबिनेट मिशन योजना-1946 (Cabinet Mission Plan-1946)



19 फरवरी, 1946 को क्लीमेंट एटली ने भारत की समस्या के समाधान के लिए कैबिनेट मिशन भारत भेजने की घोषणा की। यह मिशन भारतीय नेताओं से भारतीय स्वतंत्रता के प्रश्न पर विचार करने के लिए यहाँ आया। इसके पश्चात् **15 मार्च, 1946** को एटली ने ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स में कहा कि, भारत को यह तय करने का अधिकार है कि उसका संविधान कैसा होगा, वह स्वाधीन होगा या ब्रिटिश कॉमनवेल्थ का सदस्य होगा। उन्होंने अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा की भी बात की, परंतु यह भी कहा कि "हम बहुसंख्यक समाज की अग्रगति को रोकने का अधिकार अल्पसंख्यक समाज को नहीं दे सकते।" यह एक महत्त्वपूर्ण घोषणा थी।

- इस घोषणा में पहली बार भारत के लिए स्वाधीनता शब्द का उपयोग किया गया था। साथ ही, अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक दोनों के अधिकारों की सुरक्षा की बात की गयी।
- **24 मार्च, 1946** को मिशन दिल्ली पहुंचा। इसके अध्यक्ष भारत मंत्री लॉर्ड पैथिक लॉरेंस थे तथा दो सदस्य स्टॅफोर्ड क्रिप्स (अध्यक्ष बोर्ड ऑफ ट्रेड) तथा ए.वी. एलेक्जेण्डर (नौसेना मंत्री) थे।
- भारत आगमन के साथ ही मिशन ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह भारत में विरोधी दावों का निर्णय करने के लिए नहीं, बल्कि भारतीयों को सत्ता हस्तांतरण का उपाय खोजने के लिए आया है। मिशन का उद्देश्य था- "भारतीय नेताओं से मिलकर भारत में पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति को जल्दी संभव बनाना।"
- इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मिशन ने भारतीय नेताओं से बातचीत शुरू की। **17 अप्रैल, 1946** तक चली इस वार्ता से किसी प्रकार का समझौता नहीं हो सका और अंत में मिशन द्वारा शिमला में **'त्रिदलीय सम्मेलन'** का आयोजन किया गया। यह सम्मेलन भी भारतीय समस्या का समाधान करने से असफल रहा।
- लीग किसी भी दशा में पाकिस्तान की मांग को छोड़ने को तैयार नहीं थी और कांग्रेस ऐसी किसी भी योजना को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी, जो पाकिस्तान की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करती हो।
- अत: कैबिनेट मिशन ने एक योजना प्रकाशित की जो **'कैबिनेट मिशन योजना'** के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना के मुख्य प्रावधान निम्नलिखित थे-

आगामी भारतीय संविधान से संबंधित प्रस्ताव (Proposal Related to Upcoming Indian Consitution)

- ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों का एक संघ बने जिसके हाथों में **विदेशी मामले, रक्षा** और **यातायात संबंधी अधिकार** हों। साथ ही, इसके लिए आवश्यक धन जुटाने की क्षमता भी संघ में होनी चाहिए।
- संघीय विषयों के अतिरिक्त सभी विषय (अवशिष्ट विषय सहित) प्रांत के नियंत्रण में हो।
- **देशी रियासतें, संघ** को सौपें गए विषयों के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों पर अपना अधिकार रखेंगी।
- प्रस्तावित संघ में **कार्यकारिणी** और **विधायिका** होगी, जिसमें ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के प्रतिनिधि होंगे। विधान सभा में किसी **साप्रंदायिक** प्रश्न के फैसले के दौरान दोनों मुख्य संप्रदायों के विधायक अलग-अलग मतदान द्वारा उसका फैसला करेंगे।
- प्रांतों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया प्रथम वर्ग- मद्रास, बंबई, संयुक्त प्रांत, बिहार तथा उड़ीसा। दूसरा वर्ग- पंजाब, उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत तथा सिंध। अंतिम वर्ग- **बंगाल और असम**।

तीनों वर्गों के प्रांतों के प्रतिनिधियों को अपने-अपने वर्ग तथा प्रांत के लिए संविधान बनाने का अधिकार दिया गया। यदि कोई प्रांत वर्ग परिवर्तन चाहे तो नए संविधान के अंतर्गत हुए निर्वाचनों के पश्चात् ही ऐसा कर सकता था। दस वर्षों के पश्चात् संविधान को पुन: संशोधित करने की बात कही गयी।

संविधान निर्माण सभा (Constituent Assembly)

- संविधान सभा में 389 सदस्य होंगे। इनमें 292 सदस्यों का चुनाव **ब्रिटिश भारत** प्रांतों की विधानसभाएं अप्रत्यक्ष तरीके से सांप्रदायिक आधार पर करेंगी। ब्रिटिश भारत के सदस्यों में **210 सामान्य** (मुसलमान तथा सिखों को छोड़कर) **78 मुसलमान** तथा **4 सिख** थे। शेष **93 सीटों** पर देशी रियासतों के प्रतिनिधियों को चुनने का तरीका बाद में तय किया जाना था।

देशी रियासतें (Princely States)

- संविधान के अस्तित्व में आते ही **अंग्रेजी सर्वोच्चता** समाप्त हो जाएगी। देशी रियासतों को अधिकार होगा कि वे संघ से संबंध स्थापित करें अथवा प्रांतों से।

सत्ता हस्तांतरण (Power Transfer)

- विधान सभाओं को ब्रिटेन के साथ शक्ति हस्तांतरण से संबंधित मामलों पर एक संधि करनी होगी।

पाकिस्तान की मांग (Demand of Pakistan)

- पाकिस्तान की मांग को स्वीकार नहीं किया गया।

अंतरिम सरकार (Interim Government)

- संविधान के निर्माण के पूर्व अंतरिम सरकार की स्थापना का भी सुझाव रखा गया, जिसे प्रमुख राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त हो। इसमें 40% सीटें हिंदुओं को तथा 40% सीटें लीग द्वारा मनोनीत मुसलमानों को और 20% स्थान सिक्खों, भारतीय ईसाइयों, अनुसूचित जातियों आदि को मिलेंगी। यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि अगर कोई अंतरिम सरकार में शामिल नहीं होगा तब भी सरकार बनायी जाएगी।
- इस योजना का मुख्य गुण यह था कि संविधान सभा लोकतंत्रवादी सिद्धांत-जनसंख्या पर आधारित थी और पुराने महत्व (Weightage) का सिद्धांत समाप्त कर दिया गया था।
- कांग्रेस को खुश रखने के लिए जहां संगठित भारत की व्यवस्था थी, वहीं लीग और रियासतों की संतुष्टि के लिए केंद्र को कमजोर रखा गया। अंतरिम सरकार में समस्त उत्तरदायित्व भारतीयों को सौंप दिया गया तथा संविधान सभा को पूर्ण स्वतंत्रता एवं अधिकार प्रदान किया गया।
- प्रांतों के गुट बनाने की व्यवस्था अव्यवहारिक एंव दोषपूर्ण थी और संविधान बनाने की प्रणाली भी जटिल थी, फिर भी मिशन ने देशवासियों के बीच एक नयी आशा **'स्वतंत्रता की प्राप्ति'** का संचार किया। फलत: सभी दलों ने योजना को स्वीकार कर लिया।
- प्रारंभ में तो कांग्रेस और लीग दोनों ने ही **'कैबिनेट मिशन'** को स्वीकार कर लिया था, लेकिन अंतरिम सरकार बनाने की योजना को कांग्रेस ने अस्वीकार कर दिया। लीग ने जब कांग्रेस के बिना ही सरकार बनाने का दावा पेश किया तो **वायसराय** ने लीग के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। इससे जिन्ना काफी निराश हुए। दूसरी तरफ संविधान सभा के चुनावों में कांग्रेस ने **214** सामान्य स्थानों में **205** प्राप्त किये तथा लीग को **78** मुस्लिम स्थानों में से **73** स्थान मिले।
- अत: जिन्ना ने सोचा कि **296** सदस्यीय संविधान सभा में तो उसके पास केवल **73** सदस्य हैं जो कि 25% से भी कम है। इसलिए **29 जून, 1946** को लीग शिष्टमंडल ने योजना को अस्वीकार कर दिया और पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए सीधी कारवाई (Direct Action) करने की धमकी दी।
- इस बीच **8 अगस्त, 1946** को कांग्रेस द्वारा अंतरिम सरकार बनाने की योजना स्वीकार कर ली गई। नेहरू ने जिन्ना को भी सरकार में सम्मिलित होने के लिए आग्रह किया पर वे अपनी जिद पर डटे रहे तथा 16 अगस्त को **'सीधी कारवाई दिवस'** निश्चित कर दिया। उस दिन कलकत्ता में, जो उस समय लीग सरकार के अधीन था, सैंकड़ों की संख्या में हिंदू लूटे और मारे गये। इसके प्रतिकार में हिंदू बहुसंख्यक प्रांत बिहार में मुसलमानों पर अत्याचार हुए।
- उसके प्रतिकार में पूर्वी बंगाल में नोआखली में हिंदुओं पर अत्याचार हुए। फिर यू.पी और बंबई में सांप्रदायिक दंगे हुए। बंगाल में प्रांत के बंटवारे के लिए हिंदुओं ने आंदोलन आंरभ किया। **24 अगस्त, 1946** को वायसराय ने अंतरिम सरकार के 14 मंत्रियों वाले मंत्रिमंडल की घोषणा कर दी। अंतरिम सरकार को 2 सितम्बर को कार्यभार संभालना
- जवाहर लाल नेहरू को अंतरिम सरकार का प्रधानमंत्री बनाया गया। बाद में वायसराय के सुझाव पर लीग ने भी **अक्टूबर, 1946** में सरकार में शामिल होना स्वीकार कर लिया। लीग का सरकार में शामिल होने का उद्देश्य अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना, पाकिस्तान की मांग मंगवाना, सरकारी कार्यों में रुकावट डालना और देश की प्रगति को अवरुद्ध करना था।

एटली की घोषणा-20 फरवरी, 1947 (Atlee's Declaration-20 February, 1947)



20 फरवरी, 1947 को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली द्वारा की गयी घोषणा के मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं-

- अंग्रेज सरकार **30 जून, 1948** तक भारतवासियों को सत्ता सौंप देगी।
- यदि इस तिथि तक संविधान नहीं बन सका तो उस स्थिति में **ब्रिटिश सरकार** यह विचार करेगी कि निश्चित तिथि को ब्रिटिश शासित भारत की केंद्रीय सरकार की सत्ता किसको सौंपी जाए।
- **लॉर्ड वैवेल** के स्थान पर लॉर्ड माउंटबेटन को भारत का नया वायसराय नियुक्त किया गया। एटली की उपर्युक्त घोषणा में पाकिस्तान के निर्माण का भाव निहित था। साथ ही, यह घोषणा राज्यों के **बाल्कनीकरण** एवं क्रिप्स प्रस्तावों के समर्थन का आभास दे रही थी।
- ब्रिटिश सरकार को आशा थी कि सत्ता हस्तांतरण के लिये तिथि निर्धारित करने पर भारत के राजनीतिक दल मुख्य समस्या के समाधान हेतु सहमत हो जाएंगे। जिससे उत्पन्न तत्कालीन संवैधानिक संकट टल जाएगा।
- सरकार इस बात को स्वीकार कर चुकी थी कि भारतवासियों को सत्ता हस्तांतरण कर उसकी वापसी निश्चित हो गई है।

कांग्रेस की प्रतिक्रिया (Response of Congress)

कांग्रेस ने **स्वायत्तशासी उपनिवेशों** को **सत्ता हस्तांतरित** करने की योजना को इसलिये स्वीकार किया क्योंकि इससे भारत के अधिक **विंखडित** होने की संभावना समाप्त हो गयी थी। इस योजना में प्रांतों एवं देशी रियासतों को अलग से स्वतंत्रता देने का कोई प्रावधान नहीं था। साथ ही तत्कालीन प्रांतीय व्यवस्थापिकाएँ स्वयं अपने क्षेत्रों के लिये संविधान का निर्माण कर सकती थी तथा इससे गतिरोध को समाप्त करने में मदद मिलने की उम्मीद थी।

- लेकिन शीघ्र ही मुस्लिम लीग के प्रयासों से कांग्रेस की यह उम्मीद टूट गयी। लीग ने पंजाब की गठबंधन सरकार के विरुद्ध आंदोलन प्रारंभ कर दिया तथा समझौते की संभावनायें लगभग समाप्त हो गयी।

भारत विभाजन की ओर (India Towards Division)

1947 के प्रारंभ में साम्प्रदायिक दंगों की आग में झुलस रहे देश तथा कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के मध्य बढ़ते गतिरोध के कारण **भारतीय राष्ट्रवादी विभाजन** के उस दुखद एवं ऐतिहासिक निर्णय के संबंध में सोचने को विवश हो गये, जिसकी उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। इस दौरान सबसे महत्त्वपूर्ण **मांग**

बंगाल एवं **पंजाब के हिन्दू** एवं सिख समुदाय की ओर से उठायी गयी। इसका प्रमुख कारण यह था कि यह समुदाय समूहीकरण की अनिवार्यता के कारण इस बात से चिंतित था कि उसे कहीं पाकिस्तान में सम्मिलित न होना पड़े। **बंगाल मे हिन्दू** महासभा ने पं. बंगाल के रूप में एक पृथक हिन्दू राज्य की अवधारणा प्रस्तुत की।

- इन परिस्थितियों को देखते हुए जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि वर्तमान समस्या के समाधान का सबसे सर्वोत्तम उपाय यह है कि **कैबिनेट मिशन, पंजाब** एवं **बंगाल का विभाजन** कर दें। भारतीय कांग्रेस के वर्तमान अध्यक्ष जे.बी. कृपलानी ने **वायसराय** को लिखा कि "युद्ध से बेहतर यह है कि हम उनकी पाकिस्तान की मांग को मान लें। किंतु यह तभी संभव होगा जब आप पंजाब और बंगाल का ईमानदारी पूर्वक विभाजन करें।"

माउंटबेटन वायसराय के रूप में
(Mountbatten as Viceroy)

लॉर्ड माउंटबेटन अपने पूर्ववर्ती वायसरायों की तुलना में निर्णय लेने में ज्यादा त्वरित एवं निर्णायक सिद्ध हुए। साथ ही, उन्हें ब्रिटिश सरकार के इस दृढ़ निर्णय से भी काफी सहायता मिली कि जितनी जल्दी हो सके भारतीयों को सत्ता हस्तांतरित कर दी जाए।

- उनका प्रमुख कार्य यह था कि अक्टूबर, 1947 से पहले वे इस बात का पता लगायें कि भारत में एकता या विभाजन दोनों में से क्या होना है और इसके पश्चात् उनका उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार को इस बात से अवगत कराना था कि भारतीयों को सत्ता हस्तांतरण किस प्रकार किया जाएगा तथा उसका स्वरूप क्या होगा? माउंटबेटन के आने से पूर्व ही भारतीय परिस्थितियां निर्णायक मोड़ लेने लगी थीं, इससे भी **माउंटबेटन** को परिस्थितियों को समझने तथा निर्णय लेने में मदद मिली।



कैबिनेट मिशन निष्फल प्रयास के रूप में सामने आया तथा जिन्ना इस बात पर दृढ़तापूर्वक अड़े हुए थे कि वे पाकिस्तान से कम कुछ भी स्वीकार नहीं करेंगे।

माउंटबेटन योजना, 3 जून, 1947
(3 June, 1947 Mountbatten Plan)

लॉर्ड माउंटबेटन के वायसराय बन कर आने के पूर्व ही भारत में 'विभाजन के साथ स्वतंत्रता' का फार्मूला भारतीय नेताओं द्वारा लगभग स्वीकार कर लिया गया था। **3 जून** को माउंटबेटन ने भारत के विभाजन के साथ सत्ता हस्तांतरण की एक योजना प्रस्तुत की। इसे **'माउंटबेटन योजना'** के साथ ही **'3 जून योजना'** के नाम से भी जाना जाता है।

माउंटबेटन योजना के मुख्य बिन्दु निम्नानुसार थें-

- भारत का विभाजन **भारतीय संघ** और पाकिस्तान में कर दिया जाए।
- इन राज्यों की सीमा निश्चित करने के पूर्व पश्चिमोत्तर **सीमा प्रांत प्रदेश** और **असम के सिलहट जिले** में जनमत संग्रह कराया जाए और सिंध विधानसभा में वोट द्वारा यह निश्चित किया जाए कि वे किसके साथ रहना चाहते हैं।
- बंगाल और पंजाब में हिंदू तथा मुसलमान बहुसंख्यक जिलों की प्रांतीय विधानसभा के सदस्यों की अलग-अलग बैठक बुलायी जाए। उसमें से अगर कोई भी पक्ष प्रांत का **विभाजन** चाहेगा तो **विभाजन** कर दिया जाएगा।
- हिंदुस्तान की संविधान सभा दो हिस्सों में बंट जाएगी, जो अपने-अपने लिए संविधान तैयार करेगी। दोनों राज्यों को डोमिनयन स्टेट्स प्रदान किया जाएगा।
- देशी रियासतों को यह स्वतंत्रता होगी कि वे जिसके साथ चाहें, जाएँ या अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखें।

मुस्लिम लीग तथा **कांग्रेस** द्वारा इस योजना के स्वीकार किये जाने के बाद **लॉर्ड माउंटबेटन** ने इसे तुरंत क्रियान्वित कर दिया। **पश्चिमी पंजाब** और **पूर्वी बंगाल** ने पाकिस्तान में रहने का निर्णय किया। **पश्चिमी सीमा प्रांत, सिंध, बलूचिस्तान** और **असम के सिलहट** जिले ने भी यही फैसला किया। इन निश्चयों के फलस्वरूप **15 अगस्त, 1947** को भारत तथा पाकिस्तान नामक दो स्वतंत्र राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ।

भारत ने डोमिनयन का दर्जा क्यों स्वीकार किया?
(Why India accepted Dominion Status?)

लाहौर अधिवेशन **(1929)** की पूर्ण स्वतंत्र की भावना के विरुद्ध कांग्रेस ने डोमिनियन स्टेट्स का दर्जा स्वीकार किया क्योंकि-

- इससे शांतिपूर्ण एवं त्वरित सत्ता हस्तांतरण की प्रक्रिया सुनिश्चित हो जायेगी।
- देश की तत्कालीन विस्फोटक परिस्थितियों को नियंत्रित करने के लिये कांग्रेस को जल्द से जल्द शासन की शक्तियाँ प्राप्त करना आवश्यक था।
- देश में प्रशासनिक एवं सैन्य ढाँचे की निरंतरता को बनाये रखने के लिये भी यह अनिवार्य था।
- भारत द्वारा डोमिनियन स्टेट्स का दर्जा स्वीकार करने से ब्रिटेन को उसे राष्ट्रमंडल में शामिल करने का अवसर मिल गया। इससे ब्रिटेन की यह चिर-प्रतीक्षित इच्छा पूरी हो गयी। यद्यपि भले ही यह अस्थायी था, परंतु ब्रिटेन को विश्वास था कि भारत के राष्ट्रमंडल में आ जाने से उसे आर्थिक सुदृढ़ता तथा **रक्षात्मक शक्ति** मिलेगी तथा भारत में उसके निवेश के नये द्वार खुलेंगे।
- ब्रिटेन द्वारा सत्ता हस्तांतरण समय से पूर्व ही कर दिया गया क्योंकि ब्रिटेन, डोमिनियन स्टेट्स के मुद्दे पर कांग्रेस की स्वीकृति चाहता था। इसके साथ ही वह उस समय हो रहे भीषण सांप्रदायिक दंगों की जिम्मेदारी से भी बचना चाहता था।
- योजना यह थी कि जैसे ही डोमिनियन स्टेट्स के लिये कांग्रेस की स्वीकृति मिले, योजना को तुरंत, बिना किसी विलंब के क्रियान्वित कर दिया जाए। इस योजना के अनुसार, सीमांत प्रांत में जनमत संग्रह द्वारा यह तय होना था कि वह भारत में शामिल होगा या पाकिस्तान में इसी प्रकार असम के मुस्लिम बहुसंख्यक सिलहट जिले में भी जनमत संग्रह द्वारा यह निश्चित होना था कि वह भारत में सम्मिलित होगा या पूर्वी बंगाल में। बंगाल और पंजाब की विधानसभाओं को दो भागों में, एक में मुस्लिम बहुसंख्यक प्रदेश के प्रतिनिधि तथा दूसरे में शेष अन्य प्रतिनिधियों को यह निश्चित करना था कि प्रांतों का विभाजन हो या नहीं।
- दोनों प्रांतों के हिंदू बहुसंख्यक प्रदेशों के प्रतिनिधियों ने यह निश्चय किया कि प्रांतों का विभाजन हो। पूर्वी पंजाब और पश्चिमी बंगाल ने यह तय किया कि वे भारत में सम्मिलित होंगे। सिलहट और सीमांत प्रांत का जनमत संग्रह पूर्वी पाकिस्तान के पक्ष में गया। बलूचिस्तान एवं सिंध में जनमत ने भारी बहुमत से पश्चिमी पाकिस्तान में सम्मिलित होने की इच्छा जतायी।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 (Indian Independence Act, 1947)

आधुनिक भारत के इतिहास में **1947** के भारतीय **स्वतंत्रता अधिनियम** का विशेष महत्त्व है। इसका निर्णायक महत्त्व इस दृष्टि से है कि इसने भारत में एक **नवीन युग** की शुरूआत के साथ ही, ब्रिटिश संसद द्वारा पारित यह **अंतिम अधिनियम** था। इसके पश्चात् **स्वतंत्र भारत** का अपना संवैधानिक इतिहास प्रारंभ होता है।

- वास्तव में **1947** का भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम स्वयं में कोई मौलिक कृति नहीं था। इसके द्वारा माउंटबेटन की योजना को ही प्रभावी बनाया गया था। भारत में अंतिम गवर्नर-जनरल के रूप में माउंटबेटन की नियुक्ति का उद्देश्य, भारत में सत्ता हस्तांतरण की प्रक्रिया को मूर्तरूप देना था।
- माउंटबेटन ने प्रमुख भारतीय राजनीतिक दलों में एकमतता को प्राप्त कर अपनी योजना का प्रारूप तैयार किया।
- प्रारूप को वैधानिक रूप प्रदान करने के ध्येय से ब्रिटिश सरकार ने औपचारिकता पूरी करने हेतु कदम उठाया। इसी के प्रयास-स्वरूप ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली ने माउंटबेटन योजना को विधेयक के रूप में 4 जुलाई, 1947 ई. को हाउस ऑफ कॉमन्स सभा में तथा 16 जुलाई को लॉर्ड्स सभा में प्रस्तुत किया। शीघ्र ही 18 जुलाई, 1947 को इसके पारित होने के बाद इस पर शाही हस्ताक्षर किये और यही विधेयक भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के नाम से जाना गया। वस्तुतः इस अधिनियम द्वारा **3 जून, 1947** की योजना को ही वैधानिक रूप प्रदान किया गया था। इस अधिनियम की प्रमुख धाराएँ निम्नानुसार थीं-
- दो अधिराज्यों की स्थापना।
- संविधान सभाओं को सत्ता सौंपना।
- दोनों के लिए अलग-अलग गवर्नर जनरल।
- भारत मंत्री के पद का अंत।
- 1935 के भारत शासन अधिनियम द्वारा शासन।
- देशी रियासतों पर सर्वोच्चता का अंत।

इस प्रकार **14 अगस्त** को पाकिस्तान का निर्माण हुआ और ठीक **12 बजे रात्रि को 15 अगस्त, 1947** को भारत स्वतंत्र हुआ। जिन्ना पाकिस्तान के गवर्नर जनरल और लियाकत अली प्रधानमंत्री बने। भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड माउंटबेटन और प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू बने।

अधिनियम का मूल्यांकन (Evaluation of Act)

भारत के संवैधानिक तथा **आधुनिक इतिहास में 1947** के **भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम** का विशेष महत्त्व है। प्रथमतः इसके द्वारा भारत, पाकिस्तान तथा भारतीय रियासतों में अंग्रेजी सत्ता समाप्त हो गयी। इन क्षेत्रों में गवर्नर-जनरल को संवैधानिक प्रमुख बनाया गया। इस प्रकार, भारत तथा पाकिस्तान को अपने-अपने संविधान के निर्माण का अधिकार देकर भारतीय उपमहाद्वीप में साम्राज्यवादी युग का अंत कर दिया गया।

- इस परिणाम के कारण अधिनियम का यह पहलू तो सुखद था, किंतु विभाजन इस महाद्वीप के लिये इतनी बड़ी समस्या बन गयी कि इसके दुष्परिणाम आज भी दिखाई देते हैं।
- वास्तव में विभाजन का आधार धर्म नहीं था क्योंकि भारत में अब भी कई करोड़ मुसलमान थे। वैसे विभाजन तथा स्वतंत्रता अधिनियम में मौलिकता नहीं थी। यह पूर्वनिर्मित परिस्थितियों से प्रेरित तथा निर्मित योजना की वैधानिकता का प्रमाण मात्र था।

राज्यों का एकीकरण (Integration of States)

वर्ष 1946-47 के दौरान राज्यों में विभिन्न जन-आंदोलन शुरू हुए, जिसमें लोगों ने अधिक राजनीतिक अधिकार तथा संविधान सभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने की मांग की। **1945** में उदयपुर में तथा **1947** में ग्वालियर में अखिल भारतीय राज्य जन सम्मेलनों का आयोजन किया गया, जिनकी अध्यक्षता जवाहरलाल नेहरू ने की। उन्होंने घोषणा की कि जो राज्य संविधान सभा में सम्मिलित होने से इंकार करेंगे उनसे शत्रुतापूर्ण व्यवहार किया जाएगा।

- जुलाई, 1947 में वल्लभभाई पटेल को **'नये राज्यों के विभाग'** का दायित्व सौंपा गया। श्री पटेल के नेतृत्व में दो चरणों में विभिन्न राज्यों को भारत में सम्मिलित करने का कार्य किया गया। इसके लिये पटेल ने दूरदर्शितापूर्ण सामंजस्य, जनमत के दबाव एवं धमकी तीनों युक्तियों का सहारा लिया।

15 अगस्त, 1947 तक कश्मीर, **हैदराबाद** एवं **जूनागढ़** को छोड़कर लगभग सभी राज्यों ने भारत में सम्मिलित होने के **विलय-पत्रों** पर हस्ताक्षर कर दिये थे। ये सभी राज्य अपनी रक्षा, विदेशी मामले और संचार व्यवस्था को भारत के अधीनस्थ मानकर सम्मिलित हो गये। देशी रियासतों के शासक विलय-पत्रों पर हस्ताक्षर करने के लिये आसानी से तैयार हो गये।

- **15 अगस्त, 1947** तक **136** देशी रियासतें भारत में सम्मिलित हो चुकी थीं। कश्मीर पाकिस्तान के आक्रमण के कारण **26 अक्टूबर, 1947** को तथा हैदराबाद एवं जूनागढ़ ने सैनिक कार्यवाही से **1948** में विलय-पत्रों पर हस्ताक्षर किये।
- बहुत सी छोटी-छोटी रियासतें तो आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था में अलग-अलग नहीं रह सकती थी, संलग्न प्रांतों में विलय कर दी गई।
- इस चरण को पूरा होने में लगभग एक वर्ष का समय लगा देशी रियासतों को विलय के लिये राजी करने हेतु राजाओं को अनेक रियायतें दी गयीं। रजवाड़ों को विशेषाधिकार (प्रिवीपर्स) प्रदान किये गए तथा अनेक राजाओं को राज्यपाल एवं राजप्रमुख के पद दिये गये।
- कम समय में देश का इस तीव्र गति से एकीकरण, सरदार वल्लभभाई पटेल की एक महान उपलब्धि थी।

कांग्रेस द्वारा विभाजन क्यों स्वीकार किया गया? (Why Partition was Accepted by Congress?)

- कांग्रेस ने इस टाले न जा सकने वाले दुखद विभाजन को इसलिए स्वीकार किया क्योंकि वह बढ़ती हुई सांप्रदायिकता को रोकने में असफल रही।
- कांग्रेस के साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन के दो पक्ष उजागर हुए। इस दिशा में कांग्रेस द्वारा किये गए प्रयासों को दो भागों में बाँटा जा सकता है-
  - विभिन्न समूहों, वर्गों, समुदायों एवं क्षेत्रों का एक राष्ट्र के रूप में एकीकरण।
  - भारत के लिये स्वतंत्रता सुनिश्चित करना।
  - यद्यपि कांग्रेस, अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिये बाध्य करने में सफल रही। वह इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये भारतीयों में चेतना जागृत करने तथा जन दबाव बनाने में भी सफल रही किंतु देश में बढ़ती हुई सांप्रदायिकता को नहीं रोक सकी। मुस्लिम लीग जैसे संगठनों जो विशुद्ध रूप से सांप्रदायिक राजनीति पर आधारित थे। उनका सशक्त विरोध कर उनके बढ़ते प्रभाव को नहीं रोक पायी।
- सत्ता का त्वरित हस्तांतरण ही साम्प्रदायिक हिंसा एवं लीग की प्रत्यक्ष कार्यवाई को रोक सकता था। अंतरिम सरकार के कई मुद्दों पर असफल होने से भी पाकिस्तान के निर्माण की धारणा को हवा मिली तथा उसका निर्माण अवश्यम्भावी दिखाई देने लगा।
- विभाजन की योजना में देशी रियासतों को स्वतंत्रता देने या अपना पृथक अस्तित्व बनाये रखने से स्पष्ट रूप से इंकार किया गया था। यह राष्ट्रीय एकता के लिए महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी क्योंकि इनके स्वतंत्र होने की दशा

में ये देश की एकता के लिये खतरा उत्पन्न कर सकते थे। यह एक प्रकार से राष्ट्र का बाल्कनीकरण कर देता।

- विभाजन को स्वीकार करना ही मुस्लिम लीग की वर्षों से चली आ रही इस अड़ियलवादी मांग का समाधान था ताकि पृथक पाकिस्तान का निर्माण किया जाए। इसके लिये मुस्लिम लीग शुरू से ही प्रयासरत रही थी। लीग की मांग चरणबद्ध तरीके से आगे बढ़ती रही।
- क्रिप्स मिशन (1942 ई.) के दौरान मुस्लिम बहुल प्रांतों को स्वायत्ता प्रदान करने की बात की गई थी।
- गाँधी-जिन्ना वार्ता (1944 ई.) के दौरान गाँधी जी ने मुस्लिम बहुल प्रांतों के आत्म-निर्धारण के अधिकार को स्वीकार कर लिया था।
- कैबिनेट मिशन योजना (1946 ई.) के पश्चात् कांग्रेस ने मुस्लिम बहुल प्रांतों के पृथक संविधान सभा गठित किये जाने की संभावना को स्वीकार कर लिया। दिसम्बर-1946 में कांग्रेस ने बिना किसी आपत्ति के अनिवार्य **समूहीकरण** के **प्रावधान** को स्वीकार कर लिया।
- **पाकिस्तान के संबंध** में **अधिकारिक तौर** पर घोषणा मार्च, 1947 में की गयी कांग्रेस कार्यकारिणी के प्रस्ताव में यह जोर देकर कहा गया कि यदि देश का विभाजन किया गया तो पंजाब एवं बंगाल का भी विभाजन होना चाहिए।
- 3 जून योजना (माउंटबेटन योजना)- **कांग्रेस ने विभाजन** स्वीकार कर लिया।
- संविधान सभा को स्वायत्तता दिये जाने की दृढ़तापूर्वक मांग करने के साथ ही कांग्रेस ने अनिवार्य समूहीकरण एवं विभाजन की मांग को शांतिपूर्वक स्वीकार कर लिया क्योंकि साम्प्रदायिक दंगों को तभी रोका जा सकता था।

विभाजन के संबंध में कांग्रेस की सोच संतुलित नहीं रही। उसके नेताओं द्वारा दिये जा रहे वक्तव्यों में भी यह बात परिलक्षित हो रही थी कि उनमें विभाजन के संबंध में उपयुक्त एवं **दूरदर्शितापूर्ण** समझ का अभाव है। कांग्रेस विभाजन का बिल्कुल सटीक आकलन करने में भी असफल रही। यह बात समय-समय पर कांग्रेसी नेताओं द्वारा दिये गए वक्तव्यों से प्रकट होती है। जैसे-नेहरू ने कहा-

- "एक बार अंग्रेजों के भारत से चले जाने पर हिन्दू-मुस्लिम एकता पुनः स्थापित हो जाएगी तथा संयुक्त भारत का निर्माण हो जाएगा।"
- "विभाजन अस्थायी है।"
- "विभाजन शांतिपूर्ण होगा-एक बार जब पाकिस्तान का निर्माण हो जाएगा तो लीग के पास लड़ने के लिये क्या बचेगा?"

1920 से 1930 के मध्य साम्प्रदायिकता का जो स्वरूप था वह 1940 के दशक से भिन्न था। इस दशक में यह पूर्णरूप से एक **पृथक मुस्लिम राष्ट्र** की स्थापना के लिये **सिमटकर** रह गया था। लेकिन कांग्रेस नेतृत्व, साम्प्रदायिकता के इस रूप एवं उसकी शक्ति का आकलन करने में विफल रहा।

गाँधी जी की असमर्थता (Inability of Gandhiji)

इस समय गाँधी जी स्वयं को असमर्थ महसूस कर रहे थे क्योंकि पूरे देश के लोग **सांप्रदायिकता** के रंग में रंग चुके थे। शुरू में तो उन्होंने विभाजन को स्वीकार करने से इंकार कर दिया था किन्तु बाद में नेहरू, पटेल आदि के कहने पर उन्होंने विभाजन को अत्यंत दुखी मन से स्वीकार किया क्योंकि लोग यही चाहते थे। अतः उनके सम्मुख कोई दूसरा विकल्प नहीं था।

- उन्होंने कांग्रेस के लोगों से आग्रह किया कि वे दिल से विभाजन को स्वीकार न करें।

क्या भारत का विभाजन अनिवार्य था?

(Was the Partition of India Mandatory?)

इस मुद्दे की व्याख्या करते समय विशेषकर भारतीय, पाकिस्तानी एवं अंग्रेज इतिहासकारों ने विभाजन को अपने-अपने नजरिये से देखा है तथा अपनी-अपनी विचारधाराएँ प्रस्तुत की हैं।

- भारतीय इतिहासकार विभाजन को महान दुर्घटना मानते हैं तथा इसे देश के लिये एक अपूरणीय क्षति बताते हैं। भारतीय इतिहासकारों के मतानुसार, भारत का विभाजन अंग्रेजों की **'फूट डालो और राज करो'** की नीति तथा मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिकता तथा पृथकता की नीति का चरमोत्कर्ष था।
- इन दोनों कारकों ने एक-दूसरे के समानांतर रहते हुए कार्य किया तथा भारतीय उपमहाद्वीप को विभाजन की त्रासदी झेलने हेतु विवश कर दिया। ये दोनों ही कारक अपने उदय के उपरांत उत्तरोत्तर प्रभावी होते गए तथा इनका अंतिम परिणाम विभाजन के रूप में सामने आया। इन कारकों की प्रभावोत्पादकता इस बात से भी परिलक्षित होती है कि कांग्रेस जो विभाजन के बिल्कुल विरुद्ध थी, वह भी इन कारकों को निष्प्रभावी न बना सकी तथा उसे भी विभाजन स्वीकार करना पड़ा।
- कुछ भारतीय इतिहासकार विभाजन के लिये कांग्रेस की नीतियों तथा उसके नेताओं को जिम्मेदार ठहराते हैं। उनका तर्क है कि यदि कांग्रेस द्वारा स्पष्ट एवं दूरदर्शितापूर्ण नीति अपनायी गयी होती तथा मुस्लिम जनसमुदाय को राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा में समाहित कर लिया गया होता तो न ही इससे सांप्रदायिकता का उद्भव एवं विकास होता और न ही देश को विभाजन की त्रासदी झेलनी पड़ती।
- पाकिस्तानी इतिहासकार **विभाजन** को न्यायोचित एवं अनिवार्य मानते हैं। उनके मत से विभाजन ही **मुसलमानों** के हितों के संरक्षण एवं पोषण का एकमात्र उपाय था। यदि विभाजन नहीं होता तो मुसलमानों की अस्मिता तथा उनकी महत्वाकांक्षाएँ बहुसंख्यक हिन्दू राष्ट्र में घुटकर रह जातीं।
- अंग्रेजी इतिहासकार एवं पदाधिकारी भी विभाजन के प्रश्न पर भिन्न-भिन्न राय प्रस्तुत करते हैं। कुछ इसे उचित तथा कुछ इसे अनुचित मानते हैं।
- परंतु भले ही इस प्रश्न पर इतिहासकारों की धारणा कुछ भी हो इतना तय है विभाजन का सबसे प्रमुख उत्तरदायित्व मुहम्मद अली जिन्ना पर था। उन्होंने इस प्रश्न को सुलझाने के बजाय दिनों-दिन जटिल बनाया। वे मुसलमानों को इस बात का अहसास कराने में सफल रहे कि वे एक पृथक समुदाय हैं तथा हिन्दू बहुसंख्यक, भारत में उनके हित कभी सुरक्षित नहीं हो सकते। फलतः मुस्लिम समाज की उन्नति एवं सुदृढ़ता के लिये उनका अलग राष्ट्र में रहना जरूरी है। उन्होंने विभाजन की डोर को इस प्रकार थामा कि वह डोर से रस्सी बन गयीं तथा अंततः उसने मुस्लिम भावनाओं को इसी रस्सी के अंदर जकड़कर रख दिया।
- वे दिनोंदिन शक्तिशाली होते रहे तथा धीरे-धीरे सफलतापूर्वक अपने मूल उद्देश्य की ओर बढ़ते रहे। उन्होंने अंततः एक ऐसा वातावरण निर्मित कर दिया कि समाधान की सभी संभावनाएं खत्म हो गयी तथा देश का विभाजन अपरिहार्य हो गया।

यद्यपि विभाजन के लिये जिन्ना एवं उनके कार्यक्रम सर्वाधिक उत्तरदायी थे किंतु यदि घटनाओं का संतुलित विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि भूल दोनों पक्षों से हुई। जैसे हिन्दू महासभा जैसे-हिन्दूवादी संगठनों ने भी कुछ कम गलत कदम नहीं उठाये तथा उन्होंने भी माहौल को बिगाड़ने में भरपूर योगदान दिया। समय-समय पर उन्होंने भेदभावपूर्ण बयान दिये तथा स्थिति को बद से बदतर बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यदि वे ही कुछ संतुलित रुख अपना लेते तो शायद विभाजन को रोका जा सकता था। परंतु सभी कारकों एवं परिस्थितियों ने मिलकर ऐसा वातावरण निर्मित कर दिया कि देश को अंततः दो भागों में विभाजित होना पड़ा तथा उसे इस प्रक्रिया की अपूरणीय क्षति झेलनी पड़ी।

सांप्रदायिकता एवं भारत का विभाजन
(Communalism and Partition of India)

सांप्रदायिकता का अर्थ (Meaning of Communalism)

सामान्य अर्थों में सांप्रदायिकता का तात्पर्य किसी धर्म विशेष के प्रति विद्वेष भाव से है। आपसी मत-भिन्नता को सम्मान देने की बजाय विरोधाभास का उत्पन्न होना, अथवा ऐसी परिस्थितियों का उत्पन्न होना जिससे व्यक्ति किसी अन्य धर्म के विरोध में अपना मत प्रस्तुत करे, **'सांप्रदायिकता'** कहलाता है। जब एक **संप्रदाय** के हित दूसरे से टकराते हैं तो **'सांप्रदायिकता'** का उद्भव होता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि किसी धर्म विशेष के प्रति आस्था या सांप्रदायिकता नहीं है।

वास्तव में सांप्रदायिकता एक **आधुनिक विचारधारा** है जिसके केंद्र में मुख्यत: एक **राजनीतिक प्रवृत्ति** दिखाई पड़ती है पर इसके साथ ही सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ भी जुड़े होते हैं। बुनियादी तौर पर सांप्रदायिकता ही वह विचारधारा है जिसके आधार पर सांप्रदायिक राजनीति भी विकसित होती है।

सांप्रदायिकता के कारण (Causes of Communalism)

सामाजिक-आर्थिक कारण (Social-Economic Reason)

भारतीय संदर्भ में सांप्रदायिकता का उद्भव 19वीं सदी में हुए विभिन्न परिवर्तनों के संबंध में देख सकते हैं। इसके विकास में राजनीतिक प्रवृत्तियाँ तो प्रमुख रही हीं पर इसकी जड़ें सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में देखी जा सकती हैं।

ब्रिटिश औपनिवेशिक शोषण के कारण पिछड़ापन (Backwardness due to British Colonical Exploitation)

एक लंबी अवधि तक जारी रहने वाले ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के कारण आर्थिक संसाधन सीमित रूप में ही उपलब्ध थे। औपनिवेशिक शोषण के कारण इन संसाधनों के विकास की **संभावनाएँ भी सीमित** थीं। संसाधनों की कमी से संप्रदाय आधारित प्रवृत्तियों को पनपने हेतु उर्वर जमीन मिली। विशेषकर मुस्लिम वर्ग इस पिछड़ेपन का ज्यादा शिकार था। यही कारण है कि जब संप्रदाय विशेष के आधार पर विकास की बात की गई तब **मुस्लिम वर्ग** द्वारा विशेष प्रोत्साहन की मांग हुई।

- **1872** एवं **1881** की जनगणना ने समुदाय विशेष आधारित विचारधारा को आगे बढ़ाया जिसपर आगे की सांप्रदायिक राजनीति भी की गई। इसी समय **हिंदी-उर्दू** विवाद तथा अन्य विवादों से भी सांप्रदायिकता को बढ़ने का मौका मिला।
- सांप्रदायिकता के विकास में मध्यम वर्ग की भी भूमिका रही जो एक प्रकार से **अवसरवादी वर्ग** था। इसने हमेशा अपने **हितों के अनुसार** निर्णय लिये। उदाहरण के लिए रोजगार के मुद्दे पर **हिन्दू-मुस्लिम** संप्रदायों में जो संघर्ष चल रहा था उसे मध्यमवर्ग ही आगे बढ़ा रहा था। यह वर्ग हर हालत में स्वयं के लिए ज्यादा से ज्यादा संभावनाएँ और अवसर चाहता था और इस प्रक्रिया में वह सांप्रदायिक प्रवृत्तियों की प्रतिरोध की जगह अप्रत्यक्ष रूप से उसे बढ़ावा देता प्रतीत होता है।
- भारतीय समाज का उच्च वर्ग एक सुविधा भोगी वर्ग था। इस वर्ग की राष्ट्रवादी प्रवृत्ति का स्वरूप इस बात से संचालित होता था कि उसके हित सदैव संरक्षित रहें। **1920** के दशक में कांग्रेस द्वारा किसान, मजदूर हितों पर विशेष बल दिया जाने लगा तब जमींदार, पूंजीपति आदि उच्च वर्गों ने हिन्दू एवं मुस्लिम संप्रदायवादियों को समर्थन देना प्रारम्भ कर दिया।

राजनीतिक कारण (Political Reason)

'फूट डालो और शासन करो' की नीति (Divide and Rule Policy)

सांप्रदायिकता के विकास में इस नीति की आधारभूत एवं निर्णायक भूमिका रही। **1857** के विद्रोह में **हिन्दू** एवं **मुस्लिम** दोनों वर्गों ने जिस तरह एकजुट होकर ब्रिटिश शासन का प्रतिरोध किया उसके कारण ब्रिटिश शासन द्वारा **1857** के पश्चात् हर स्तर पर इस नीति के तहत् हिन्दू-मुस्लिम एकता को तोड़ने का प्रयास हुआ। जिसके तहत् वैचारिक तथा सांप्रदायिक तत्वों को दोनों रूपों से संरक्षण दिया गया।

- वैचारिक स्तर पर ब्रिटिश शासन द्वारा यह प्रचारित किया गया कि भारत एक राष्ट्र नहीं है, वरन यह विभिन्न संप्रदायों का देश है। इसके पीछे का उद्देश्य स्पष्ट था कि भारत में राष्ट्रीयता का विकास धार्मिक स्तर पर हो।
- यही नहीं समय-समय पर सांप्रदायिक तत्वों को संरक्षण प्रदान किया गया। उदाहरणस्वरुप 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना, 1909 का पृथक निर्वाचन अधिनियम आदि।
- इतिहास का सांप्रदायिक इस्तेमाल भी सांप्रदायिकता के विकास का कारण बना जिसके तहत् प्राचीन भारत को हिन्द युग, मध्यकाल को मुस्लिम-युग एवं अत्याचारी शासन के रूप में चित्रित किया गया। इस प्रवत्ति से कहीं न कहीं संप्रदायों में परस्पर विरोध फैला और सांप्रदायिक राजनीति की जमीन भी तैयार हुई।
- प्रारंभिक राष्ट्रीय आंदोलन में एक हिन्दूवादी रुख भी दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए **1890** के दशक में गोवध विरोध प्रचार को एक राष्ट्रीय मुद्दे के रूप में स्थापित किया गया, तिलक द्वारा गणेश महोत्सव, शिवाजी महोत्सव आदि के माध्यम से राष्ट्रवादी तत्वों को जागृत करने का प्रयास किया गया लेकिन इन गतिविधियों में जो प्रतीक चुने गए उनमें धार्मिकता का रुख था। सांप्रदायिक तत्वों को इनका गलत रूप से इस्तेमाल करने का मौका मिला और इससे भी सांप्रदायिक राजनीति विकसित हुई।
- 19वीं सदी में सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन के तहत् दयानंद सरस्वती द्वारा धर्म परिवर्तित हिन्दुओं को पुन: हिन्दू धर्म में वापस लाने के लिए जो शुद्धि आंदोलन चलाया गया वह भी सांप्रदायिता के विकास में महत्त्वपूर्ण रहा।

सांप्रदायिकता का विकास (Development of Communalism)

भारत में **सांप्रदायिकता के विकास** को **1857** के विद्रोह के बाद की परिस्थितियों तथा उन परिस्थितियों में हुई गतिविधियों से जोड़कर देखा जाता है। एक उल्लेखनीय बात यह रही कि इस दौर में एक जन आधारित राजनीति भी विकसित हो रही थी जो मूलत: सामूहिकता की भावना पर आधारित थी। सामूहिकता की यह भावना विभिन्न संदर्भों में अभिव्यक्त हुई जिसमें एक संदर्भ सांप्रदायिकता भी रहा। सांप्रदायिकता के विकास को तीन चरणों में बांट कर देखा जा सकता है-

प्रथम चरण/उद्भव चरण (1857-1905) [First Stage/Evolution Stage (1857-1905)]

यह चरण **1857** की क्रांति से लेकर **1906** में मुस्लिम लीग की स्थापना से पूर्व का चरण है। इस चरण की मूल विचारधारा यह रही कि एक धर्म के मानने वालों

के हित एक जैसे होते हैं, इस चरण की प्रमुख गतिविधियां निम्नलिखित हैं-

- **1857** के बाद अंग्रेजों द्वारा 'फूट डालो और शासन करो' की नीति चलाना।
- **1872** एवं **1881** की जनगणना का प्रभाव (इसके कारण समूह आधारित सांप्रदायिक राजनीति को बढ़ावा मिला)

सर सैय्यद अहमद खाँ की भूमिका

सैय्यद अहमद मुस्लिम समाज के धर्म सुधारकों में उल्लेखनीय रहे। **1880** के दशक के पूर्व इन्होंने **'अलीगढ़ आंदोलन'** आदि के माध्यम से मुस्लिम समाज में आधुनिकता लाने के लिए शिक्षा एवं समाज सुधारों के क्षेत्र में विभिन्न प्रयास किये। इसी समय इन्होंने हिन्दू-मुस्लिम समन्वय की भी वकालत की पर **1880** के दशक में जब कांग्रेस की स्थापना हुई तो इन्होंने अंग्रेजों के अप्रत्यक्ष समर्थन से अपनी राजनीतिक संस्था तैयार की जिसके माध्यम से इन्होंने मुस्लिम हितों की राजनीति की। इस दौरान यह प्रचारित किया गया कि एक धर्म के मानने वालों के हित एक जैसे होते हैं। हालाँकि इस समय कांग्रेस के अंदर कई राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता थे जैसे- बदरुद्दीन तैय्यब जी। इस प्रकार **1905** के स्वदेशी आंदोलन तक सांप्रदायिता के उद्भव का चरण तैयार हो चुका था।

द्वितीय चरण/विकास चरण (1906-37)
[Second Stage/Development Stage (1906-37)]

यह चरण **'मुस्लिम लीग'** की स्थापना से प्रारंभ होकर **1937** के चुनाव तक का है। जिसमें सांप्रदायिकता का यह तत्व विकसित हुआ कि 'दो धर्मों के हित अलग-अलग होते हैं।' इस तत्व को संस्थागत स्तर पर विकसित करने में मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसी संस्थाएं थीं वहीं विभिन्न गतिविधियों जैसे- 1909 का पृथक निर्वाचन अधिनियम आदि ने भी इस चरण के विकास को निर्णायक गति दी। इस विकास क्रम को विभिन्न बिन्दुओं पर देखा जा सकता है-

- **1905** में बंग भंग आंदोलन/स्वदेशी आंदोलन के दौरान मुसलमानों का भी सहयोग मिला पर इसी दौरान मुस्लिम संप्रदायवादियों ने यह महसूस किया कि उन्हें अपने हितों के लिए अपनी पृथक राजनीति चलानी चाहिए और इसी उद्देश्य से **1906** में **'मुस्लिम लीग'** की स्थापना हुई।
- ***लीग के समानांतर हिन्दू सांप्रदायिकता का विकास***- दयानंद सरस्वती के **'शुद्धि आंदोलन'**, 1890 के गोवध विरोधी प्रचार आदि से जो पृष्ठभूमि तैयार हुई उससे **1909** ई. में **'पंजाब हिन्दू महासभा'** की स्थापना हुई। इनकी स्थापना को हिन्दू सांप्रदायिक विचारधारा एवं राजनीति के विकास के लिए संस्थागत नींव के रूप में देखा जा सकता है। आगे चलकर **1915** में **'अखिल भारतीय हिन्दू महासभा'** तथा **1925** में **'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ'** की स्थापना हुई।
- ***1909 के एक्ट से सांप्रदायिक आधार पर पृथक निर्वाचन व्यवस्था की शुरूआत***- **'फूट डालो, शासन करो'** की नीति के तहत् ब्रिटिश शासन के इस कदम से सांप्रदायिकता के विकास को नीतिगत एवं व्यावहारिक आधार मिला और सरकारी प्रोत्साहन के कारण आगे चलकर समय-समय पर संप्रदायवादी राजनीति द्वारा इसे विस्तारित करने की कोशिश की गई।
- ***1916 में कांग्रेस लीग समझौता***- इस समझौते के तहत् कांग्रेस ने पृथक निर्वाचन व्यवस्था को स्वीकार किया जो कि, कांग्रेस की एक भूल भी साबित हुई क्योंकि इसे मानना अपरिहार्य नहीं था। स्वीकार्यता की इस प्रवृत्ति ने अप्रत्यक्ष रूप से सांप्रदायिक तत्वों के प्रति कांग्रेस के नरम रुख को ही अभिव्यक्त किया।
- ***1919 के खिलाफत***- असहयोग आंदोलन से दोनों संप्रदायों में एकता एवं विश्वास बढ़ा। **1921 ई.** में जिन्ना ने कांग्रेस से दूरी बना ली।
- **1922** से **1927** के दौरान कुछ जगहों पर सांप्रदायिक दंगे हुए।
- **1928** में नेहरू रिपोर्ट आई जिसमें भारतीय संवैधानिक व्यवस्था के स्वरूप की बात की गई थी पर मुस्लिम लीग के विरोध के कारण यह रिपोर्ट असफल रही। जिन्ना ने इसी समय अपनी 14 सूत्री मांगें रखी जिसकी मूल बातें -प्रतिनिधि सभाओं में मुस्लिमों को एक तिहाई सीटें मिलें, सरकारी नौकरियों में मुसलमानों को आरक्षण आदि थीं।
- इस प्रकार सांप्रदायिकता के इस दूसरे चरण में यह बात बलवती हो चुकी थी कि दो अलग-अलग धर्मों के मानने वाले लोगों के हित अलग-अलग होते हैं।

तीसरा चरण/उग्रपंथी सांप्रदायिकता का दौर (1937-47)
[Third Stage/Phase of Extremist Communalism (1937-47)]

इस चरण का प्रारंभ **1937** के चुनावों से होता है। इस चुनाव में लीग की करारी हार हुई और लीग मुस्लिमों के लिए आरक्षित सीटों पर भी संतोषजनक प्रदर्शन नहीं कर पाई। लीग सिर्फ बंगाल में **'कृषक प्रजा पार्टी'** तथा पंजाब में **'यूनियनिस्ट पार्टी'** के सहयोग से सरकार बना पाई। 1937 के चुनावों के बाद उपजी परिस्थितियों में **मुस्लिम लीग** के पास सीमित विकल्प थे- या तो अपना अस्तित्व समाप्त कर ले या उग्र तरीके से अपना प्रसार करे क्योंकि इसी से वह अपने अस्तित्व को बचाए रख सकती थी तथा आगे प्रसार कर सकती थी। **मुस्लिम लीग** ने दूसरे रास्ते को ही चुना। इस निर्णय के पश्चात् आगे कई ऐसी घटनाएं घटीं जिसके कारण लीग को आगे बढ़ते रहने का अवसर मिलता रहा-

- **1930** के दशक में जमींदार एवं निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा सांप्रदायिक दलों को सहयोग दिया गया क्योंकि कांग्रेस इस समय किसान एवं मजदूर हितों पर आधारित कार्यक्रमों को प्रखरता से अपनाती दिख रही थी। ये कार्यक्रम इन निहित स्वार्थी तत्वों के लिए उपयुक्त नहीं थे। परिणामत: ये तत्व सांप्रदायिक राजनीति को बढ़ावा देते थे, ताकि अपने हितों को संरक्षित कर सकें।
- इसी समय लीग ने अपना जनाधार बढ़ाने के लिए अपनी सदस्यता शुल्क को घटाया और प्रांतीय कमेटियाँ बनाईं। **पीरपुर समिति** जैसी जाँच समिति बनाई गई। यह जाँच **समिति पीरपुर** के राजा मोहम्मद मेंहदी के नेतृत्व में बनाई गई थी। जिसका कार्य था हिन्दू बहुल कांग्रेसी प्रांतों में मुसलमानों पर हो रहे अत्याचारों की जांच करना। मुस्लिम लीग के इस कदम से न सिर्फ कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच तनाव बढ़ा बल्कि सांप्रदायिकता के विचार को भी बढ़ावा मिला।
- **1938 से 46** के बीच जिन्ना द्वारा उग्र संप्रदायवादी घोषणाएं की गईं। इन घोषणाओं का उद्देश्य मुस्लिमों को गोलबंद करना था, पर इसके कारण सांप्रदायिक गोलबंदी भी हुई।

1939 से 1947 के बीच की विभिन्न घटनाएँ (Various Events between 1939 to 1947)

- ***22 दिसंबर, 1939 को मुस्लिम लीग द्वारा मुक्ति दिवस मनाना***- जब द्वितीय विश्वयुद्ध में बिना कांग्रेस की सहमति के भारत को युद्ध में शामिल किया गया तो प्रांतीय कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने इस्तीफा दे दिया। मुस्लिम लीग ने इसका स्वागत करते हुए **'मुक्ति दिवस'** मनाया।
- ***1940 में पाकिस्तान प्रस्ताव***- **1940** के मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में पहली बार व्यवस्थित रूप से मुस्लिम लीग द्वारा **'द्विराष्ट्र सिद्धांत'** की बात की गई और कहा गया कि मुस्लिम अल्पसंख्यक नहीं वरन् एक राष्ट्र हैं। इस सम्मेलन में ही पाकिस्तान का प्रस्ताव पारित हुआ हालांकि इससे पहले **चौधरी रहमत अली** ने **'पाकिस्तान'** शब्द को रूप दिया तथा इकबाल ने पाकिस्तान के विचार को बढ़ावा दिया था।
- ***1942 का क्रिप्स प्रस्ताव***- इस प्रस्ताव में **'पाकिस्तान'** की मांग को सांस्कृतिक स्वीकृति मिली।

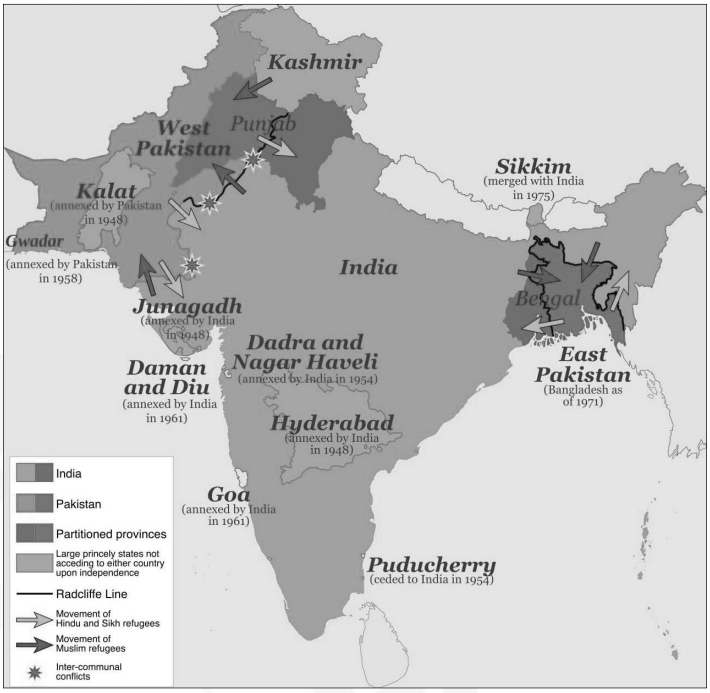
- ***1942 का 'भारत छोड़ो आंदोलन'***– इस समय मुस्लिम लीग ने आंदोलन के समर्थन की जगह **'अंग्रेजो बांटो और छोड़ो'** का नारा दिया।
- ***1945 का शिमला सम्मेलन***– इस सम्मेलन में सिर्फ लीग द्वारा ही मुस्लिम सदस्यों को नामजद करने के अधिकार की मांग के कारण यह सम्मेलन विफल रहा।
- ***1946 में कैबिनेट मिशन***– इसमें प्रांतों के समूहीकरण की बात का प्रावधान था। परिणामत: इससे मुस्लिम बहुसंख्यक प्रांत के स्वरूप का निर्धारण भी हो रहा था। इससे आगे चलकर विभाजन को प्रेरणा मिली।
- ***1946 में मंत्रिमंडल में शामिल होने को लेकर हुआ गतिरोध***– 1946 के चुनावों के बाद जब केन्द्रीय स्तर पर मंत्रिमंडल की बात हुई तब पुन: मुस्लिम लीग एवं कांग्रेस के बीच विरोध उभरा एवं गतिरोध की स्थिति में **16 अगस्त, 1946** को मुस्लिम लीग द्वारा **'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस'** मनाया गया। इसमें मुस्लिम लीग ने नारा दिया, **'लड़कर लेंगे पाकिस्तान'**। इस समय एक प्रकार के भीषण तनाव की स्थिति पैदा हुई जिसके कारण कई क्षेत्रों नोआखोली (बंगाल), बिहार, संयुक्त प्रांत, बम्बई आदि में भीषण सांप्रदायिक दंगे हुए हालाँकि लीग आगे चलकर सरकार में शामिल हुई पर दोनों में फूट जारी रही।
- ***3 जून, 1947 की माउंटबेटन योजना तथा भारत का विभाजन***– इस योजना के तहत् भारत का विभाजन कर दिया गया तथा **14 अगस्त, 1947** को **'पाकिस्तान'** का निर्माण हुआ।

भारत के विभाजन का मुद्दा (Issue of Partition of India)

1947 में **भारत-विभाजन** के कारणों को लेकर विवाद की स्थिति है। विशेष रूप से विवाद इस बिन्दु पर है कि इस विभाजन के लिए कांग्रेस की कहाँ तक भूमिका रही। किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए पूरे संदर्भ का सम्यक मूल्यांकन आवश्यक है।

जहाँ तक कांग्रेस की भूमिका का सवाल है इस बात का मूल्यांकन दो आधारों पर हो सकता है–

- 1947 के तत्कालीन संदर्भों में तथा दूसरा पृष्ठभूमि के रूप में दीर्घकालिक संदर्भों में कांग्रेस की भूमिका। पहले संदर्भ में 1947 में जो स्थितियाँ पैदा हो चुकी थीं। उनमें कांग्रेस के समक्ष विभाजन को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं था। अगर इसे नहीं स्वीकार किया जाता तो **एक प्रकार** का **गृहयुद्ध** भी हो सकता था जिसके परिणाम और विकृत होते क्योंकि उस समय सेना और पुलिस पर ब्रिटिश नियंत्रण ही था।
- यहाँ तात्पर्य यह है कि **1947** की परिस्थितियों में **विभाजन अपरिहार्य** था और कांग्रेस को इसे स्वीकार भी करना पड़ा। अत: तत्कालीन संदर्भों में भारत के विभाजन के लिए कांग्रेस की भूमिका को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पर अगर दूसरे संदर्भ अर्थात् दीर्घकालीन संदर्भों में कांग्रेस की भूमिका का मूल्यांकन किया जाये तो कई ऐसे बिन्दु ठहरते हैं जहाँ कांग्रेस की कमियाँ दिखाई पड़ती हैं। **'सांप्रदायिकता'** के संदर्भ में उसके प्रतिरोध के लिए कांग्रेस के पास दीर्घकालिक रणनीति का अभाव था।



- यही कारण है कि कांग्रेस ने बहुत जल्दी ही **1916** में पृथक निर्वाचन पद्धति को स्वीकार कर लिया। इस स्वीकार्यता से सांप्रदायिक राजनीति को अप्रत्यक्ष रूप से विकसित होने का मौका मिला। आगे चलकर हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों संप्रदायवादियों के प्रति कांग्रेस ने नरमपंथी तरीके ही अपनाए रखे और दीर्घकालिक रणनीति के अभाव में निरंतर बढ़ते सांप्रदायिकता के स्वरूप में स्वयं को सक्रिय नहीं रखा।
- तात्पर्य यह है कि अगर सांप्रदायिकता की विकास प्रक्रिया में ही कांग्रेस जैसे प्रमुख संगठन द्वारा सक्रिय प्रतिरोध किया जाता तथा इसे रोकने के लिए एक दीर्घकालिक रणनीति अपनाई जाती तो संभवत: स्थितियाँ कुछ और होतीं। अत: कहा जा सकता है कि दीर्घकालिक संदर्भों में कांग्रेस की नीतियाँ भी कुछ हद तक सांप्रदायिकता के विकास में जिम्मेदार थीं। वास्तव में प्रतिरोध के संदर्भ में कांग्रेस की भूमिका का मूल्यांकन किया जा सकता है क्योंकि कांग्रेस मुख्य धारा में थी।
- भारत के विभाजन के संदर्भ को मूलत: उन्नीसवीं सदी से विकसित हो रहे सांप्रदायिकता के विकास के संदर्भ से भी जोड़कर देखा जाना चाहिए क्योंकि एक राजनीतिक प्रवृत्ति के रूप में विकसित हुई इस विचारधारा ने आगे चलकर अपने साथ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि विभिन्न संदर्भों को जोड़ते हुए एक व्यापक रूप धारण कर लिया और तब इसे रोकना मुश्किल हुआ तथा इसकी अंतिम परिणति भारत के विभाजन के रूप में दिखाई पड़ी।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन

अधिवेशन	वर्ष	अध्यक्ष	स्थान
पहला	दिसम्बर 1885	डब्ल्यू.सी. बनर्जी	बम्बई
दूसरा	दिसम्बर, 1886	दादाभाई नौरोजी	कलकत्ता
तीसरा	दिसम्बर, 1887	बदरुद्दीन तेयबजी	मद्रास
चौथा	दिसम्बर, 1888	जार्ज यूले	इलाहाबाद
पांचवा	दिसम्बर, 1889	बिलियम वेडरबर्न	बम्बई
छठाँ	दिसम्बर, 1890	फिरोजशाह मेहता	कलकत्ता
सातवाँ	दिसम्बर, 1891	पी. आनन्द चालू	नागपुर
आठवाँ	दिसम्बर, 1892	डब्ल्यू.सी. बनर्जी	इलाहाबाद
नौवां	दिसम्बर, 1893	दादाभाई नौरोजी	लाहौर
दसवाँ	दिसम्बर 1894	अल्फ्रेड वेब	मद्रास
ग्यारहवाँ	दिसम्बर, 1895	सुरेन्द्रनाथ बनर्जी	पूना
बारहवाँ	दिसम्बर, 1896	रहीम तुल्ला सयानी	कलकत्ता
तेरहवाँ	दिसम्बर, 1897	सी. शंकरन नायर	अमरावती
चौदहवाँ	दिसम्बर, 1898	ए.एम.बोस	मद्रास
पन्द्रहवाँ	दिसम्बर, 1899	रमेशचन्द्र दत्त	लखनऊ
सोलहवाँ	दिसम्बर, 1900	एन.जी. चन्द्रावरकर	लाहौर
सत्रहवाँ	दिसम्बर, 1901	दिनशा ई. वाचा	कलकत्ता
अट्ठारहवाँ	दिसम्बर, 1902	सुरेन्द्रनाथ बनर्जी	अहमदाबाद
उन्नीसवाँ	दिसम्बर, 1903	लाल मोहन घोष	मद्रास
बीसवाँ	दिसम्बर, 1904	सर हेनरी कॉटन	बम्बई
इक्कीसवाँ	दिसम्बर, 1905	गोपाल कृष्ण गोखले	वाराणसी
बाईसवाँ	दिसम्बर, 1906	दादा भाई नौरोजी	कलकत्ता
तेईसवाँ	दिसम्बर, 1907	रास बिहारी घोष	सूरत (स्थगित)
तेईसवाँ	दिसम्बर, 1908	रास बिहारी घोष	मद्रास
चौबीसवाँ	दिसम्बर, 1909	मदन मोहन मालवीय	लाहौर
पच्चीसवाँ	दिसम्बर, 1910	सर विलियम वेडरबर्न	इलाहाबाद
छब्बीसवाँ	दिसम्बर, 1911	विशन नारायण दत्त	कलकत्ता
सत्ताईसवाँ	दिसम्बर, 1912	आर.एन. माधोलकर	बाँकीपुर (बिहार)
अट्ठाइसवाँ	दिसम्बर, 1913	नवाब सैय्यद मुहम्मद	करांची
उन्तीसवाँ	दिसम्बर, 1914	भूपेन्द्रनाथ बसु	मद्रास
तीसवाँ	दिसम्बर, 1915	एस.पी. सिन्हा	बम्बई
इकतीसवाँ	दिसम्बर, 1916	अम्बिका चरण मजूमदार	लखनऊ
बत्तीसवाँ	दिसम्बर, 1917	श्रीमती एनी बेसेन्ट	कलकत्ता
तैतीसवाँ	दिसम्बर, 1918	मदन मोहन मालवीय	दिल्ली
चौंतीसवाँ	दिसम्बर, 1919	मोतीलाल नेहरू	अमृतसर
पैंतीसवाँ	दिसम्बर, 1920	हकीम अजमल खाँ	अहमदाबाद
छत्तीसवाँ	दिसम्बर, 1921	सी.आर.दास	अहमदाबाद
सैंतीसवाँ	दिसम्बर, 1922	सी.आर.दास	गया
अड़तीसवाँ	दिसम्बर, 1923	मौलाना मुहम्मद अली	कालीनाडा (आन्ध्र प्रदेश)
उन्तालीसवाँ	दिसम्बर, 1924	महात्मा गांधी	बेलगाम (कर्नाटक)
चालीसवाँ	दिसम्बर, 1925	सरोजिनी नायडू	कानपुर
इकतालीसवाँ	दिसम्बर, 1926	एस.श्रीनिवास अयंगर	गुवाहाटी
बयालीसवाँ	दिसम्बर, 1927	एम.ए. अंसारी	मद्रास
तिरालीसवाँ	दिसम्बर, 1928	मोतीलाल नेहरू	कलकत्ता
चौवालीसवाँ	दिसम्बर, 1929	जवाहर लाल नेहरू	लाहौर
पैंतालीसवाँ	मार्च, 1931	बल्लभभाई पटेल	करांची
छियालीसवाँ	अप्रैल, 1932	अमृत रणछोड़दास सेठ	दिल्ली
सैंतालीसवाँ	अप्रैल, 1933	श्रीमती नेल्ली सेनगुप्ता	कलकत्ता
अड़तालीसवाँ	अक्टूबर, 1934	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	बम्बई
उन्चासवाँ	अप्रैल, 1936	जवाहर लाल नेहरू	लखनऊ (कृषि कार्य)
पचासवाँ	दिसम्बर, 1937	जवाहर लाल नेहरू	फैजपुर (महाराष्ट्र)
इक्यावनवाँ	फरवरी, 1938	सुभाषचंद्र बोस	हरिपुरा (गुजरात)
बावनवाँ	मार्च, 1939	सुभाषचंद्र बोस	त्रिपुरी (मध्य प्रदेश)
तिरपनवाँ	मार्च, 1940, 41-45	मौलाना अबुल कलाम आजाद	रामगढ़ (झारखंड)
चौवनवाँ	नवम्बर, 1946	आचार्य जे बी कृपलानी	मेरठ
पचपनवाँ	दिसम्बर, 1948	डॉ. पट्टाभि सीतारमैया	जयपुर

राष्ट्रीय आंदोलन की महत्त्वपूर्ण तिथियाँ

16 अक्टूबर, 1905	बंगाल विभाजन
1907	कांग्रेस का प्रथम विभाजन (सूरत)
30 दिसम्बर 1906	अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना।
दिसम्बर 1911	बंगाल विभाजन की घोषणा रद्द तथा दिल्ली को कलकत्ता की जगह नई राजधानी बनाने का प्रस्ताव।
1 अप्रैल 1912	दिल्ली को कलकत्ता की जगह भारत की राजधानी बनाया गया।
28 जुलाई 1914	प्रथम विश्व युद्ध की शुरूआत।
अप्रैल 1916	तिलक द्वारा होमरूल लीग की स्थापना।
13 अप्रैल 1919	जलियां वाला बाग नरसंहार।
1 अगस्त 1920	असहयोग आन्दोलन की शुरूआत।
5 फरवरी 1922	चौरी-चौरा काण्ड।
12 फरवरी 1922	असहयोग आन्दोलन समाप्त।
1923	स्वराज्य पार्टी की स्थापना।
3 फरवरी 1928	साइमन कमीशन का बम्बई आना।
17 नवम्बर 1928	लाला लाजपत राय की मृत्यु (साइमन कमीशन का विरोध करते समय पुलिस द्वारा लाठी चार्ज में)।
8 अप्रैल 1929	भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त द्वारा केन्द्रीय विधान सभा में बम विस्फोट।
13 सितम्बर, 1929	जेल में 64 दिनों के उपवास के उपरान्त जतिन दास का निधन।

राष्ट्रीय आंदोलन की महत्वपूर्ण तिथियाँ	
31 दिसम्बर, 1929	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में भारत के लिए पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य रखा गया।
26 जनवरी, 1930	प्रथम स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया।
14 फरवरी, 1930	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्यकारी समिति की साबरमती में बैठक हुई जिसमें सविनय अवज्ञा प्रस्ताव पारित किया।
12 मार्च, 1930	महात्मा गाँधी ने नमक कानून के विरुद्ध नमक बनाने के लिए अपनी ऐतिहासिक डाण्डी यात्रा (12 मार्च से 5 अप्रैल) के साथ नागरिक अवज्ञा आन्दोलन किया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रथम चरण 12 मार्च 1930 से 5 मार्च, 1931।
5 मार्च, 1930	गाँधी इर्विन समझौते पर हस्ताक्षर हुए। सविनय अवज्ञा आन्दोलन बंद कर दिया गया।
23 मार्च, 1931	भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी दी गयी।
16 अगस्त, 1932	ब्रिटिश प्रधानमन्त्री रैम्जे मैकडोनाल्ड ने हरिजनों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र देते हुए कुख्यात साम्प्रदायिक निर्णय की घोषणा की।
20 सितम्बर, 1932–34	गाँधी जी सक्रिय राजनीति से अलग होकर रचनात्मक कार्यक्रमों (1934–39) में लगे रहे।

राष्ट्रीय आंदोलन की महत्वपूर्ण तिथियाँ	
1 सितम्बर, 1939	द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ।
अक्टूबर, 1939	प्रान्तों में कांग्रेस सरकारों ने ब्रिटिश सरकार की युद्धनीति के विरोध में त्याग पत्र दे दिया।
12 दिसम्बर, 1939	मुस्लिम लीग ने कांग्रेस सरकारों के त्याग पत्र को मुक्त दिवस के रूप में मनाया।
मार्च, 1940	मुस्लिम लीग ने अपने लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान प्रस्ताव को पारित किया।
17 अक्टूबर, 1940	कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया।
8 अगस्त, 1942	भारत छोड़ो आंदोलन सम्बन्धी प्रस्ताव पारित।
9 अगस्त, 1942	भारत छोड़ो आन्दोलन शुरू हुआ। अगस्त की महान क्रांति।
21 अक्टूबर, 1943	सुभाष चन्द्र बोस स्वतन्त्र भारत की अन्तरिम सरकार के गठन की उद्घोषणा की।
दिसम्बर, 1943	मुस्लिम लीग के करांची अधिवेशन में 'बांटो और छोड़ो' का नारा पारित किया।
18 फरवरी, 1946	बम्बई में भारतीय नौसैनिकों का विद्रोह।
दिसम्बर, 1946	भारतीय संविधान सभा का पहला अधिवेशन शुरू हुआ। मुस्लिम लीग ने इसका बहिष्कार किया।
20 फरवरी, 1947	ब्रिटिश प्रधानमन्त्री एटली ने यह घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार जून 1948 से पूर्व भारत छोड़ देगी।
13 जून, 1947	भारत विभाजन की माउण्टबेटेन योजना और 15 अगस्त को ब्रिटिश सत्ता के हस्तान्तरण की घोषणा (4 जून)।
15 अगस्त, 1947	भारत की स्वतंत्रता का सूर्योदय।

Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

KGS IAS

Test Series

UPSC Prelims 2024

Offline | Online

- Detailed Solutions for all Questions (PDF)
- Time - Bound, Disciplined, & Result-Oriented Tests
- Holistic Coverage of all Study Materials & Sources
- Pattern and Trend Based on UPSC CSE Prelims Exam
- Fundamental and Comprehensive Test



Scan to Know More

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform

KHAN GLOBAL STUDIES

Most Trusted Learning Platform



Read Daily Current Affairs

Our Offline Center's Now in:

- Patna
- Delhi
- Prayagraj
- Dehradun

Follow Us

YouTube | Website | Telegram | Whatsapp

For more informaiton: 8757354880 | enquiry@khanglobalstudies.com